UNIVERSAL LIBRARY

OU_178218

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H910/P92B Accession No. H2818

Author प्रीस, डि० एम०.

Title भूगोल के उपादान

This book should be returned on or before the date last marked below.

भूगोल के आधार

भूगोल के आधार

मूल ग्रन्थकार

डी० एम० प्रीस,

भूतपूर्व भूगोल अध्यापिका, क्यू काउन्टी ग्रामर स्कूल।

तथा

एच० आर० बी० वुड, एम० ए०

वैलेज़े के शिक्षा अध्यक्ष, भूतपूर्व भूगोल अध्यापक सेंट मेरी ट्रेनिंग कालेज, स्ट्राबरी हिल।

हिन्दी संस्करण के सम्पादक

अमरनाथ कपूर, एम० ए०, डी० फिल०।

सर्वोदय साहित्य मंदिर,

कोठी, (बसन्टण्ड,) हैदराबाद

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

दिल्ली : जालन्धर : लखनऊ

*Translated and Published in India by arrangements with **University Tutorial Press, London** through **Oxford University Press, Bombay**.*

एस० चन्द एण्ड कम्पनी

फव्वारा दिल्ली

माई हीरां गेट जालन्धर

जय हिन्द सिनेमा बिल्डिंग लखनऊ

Copyright of the Hindi edition reserved with the publishers.
(S. Chand & Co.)

मूल्य ७) रुपये

मुद्रक : न्यू इंडिया प्रेस, कनाट सर्कस, नई दिल्ली।

प्राक्कथन

'भूगोल के आधार' के मूल लेखक श्रीमती डी० एम० प्रीस तथा श्री एस० आर० बी० वुड है। इन दो विख्यात भूगोलशास्त्रियों ने स्कूलों व कालिजों के छात्रों के लिए 'Foundations of Geography' पुस्तक का निर्माण किया। 'भूगोल के आधार' उसी का हिन्दी संस्करण है। इस रूप में अंग्रेजी भाषा की इस महत्वपूर्ण पुस्तक को हिन्दी भाषा भाषी भारतीय छात्रों के लिए प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक हाई स्कूल, हायर सैकण्डरी तथा इन्टरमीडिएट के छात्रों की आवश्यकताओं को पूरा करती है। इसमें उन सभी विषयों का विवेचन किया गया है जो उक्त परीक्षाओं के पाठ्यक्रम में है। यह पुस्तक सामान्य भूगोल (General Geography) के पूर्ण पाठ्यक्रम को ही पूरा नहीं करती बल्कि प्रादेशिक भूगोल के अध्ययन के लिए उपयुक्त आधार भी प्रस्तुत करती है।

मानव भूगोल का महत्व तो स्पष्ट ही है। परन्तु भूगोल के प्रत्येक अध्यापक का यह अनुभव है कि जबतक भूगोल के भौतिक तत्वों का निरूपण करके वे भूगोल के सामान्य सिद्धान्तों को स्पष्ट नही कर देते तबतक विद्यार्थी को प्रादेशिक भूगोल का सम्यक ज्ञान नही हो पाता। प्रस्तुत पुस्तक में उन सभी तत्वों, आधारों व सिद्धान्तों की विवेचना की गई है जिनके सहारे भूगोल विषय का पूर्ण अध्ययन सन्तोषजनक रूप से किया जा सकता है।

पुस्तक में चित्रों, मानचित्रों तथा रेखाचित्रों को पर्याप्त संख्या में दिया गया है। इनके द्वारा विषय स्पष्ट व रोचक हो जाता है। सम्पूर्ण पुस्तक में कोई १७५ चित्र दिये गये हैं। इनके अलावा बहुत से फोटो चित्रों का भी यथास्थान समावेश कर दिया गया है। भूमिति चित्रों (Ordnance Maps) का प्राथमिक अध्ययन इस की अपनी विशेषता है। इस हिन्दी संस्करण में भारत में भूमिति चित्रांकन के विकास तथा अध्ययन की विवेचना विशेष रूप से की गई है। मिर्जापुर प्रदेश के भूमिति चित्र ६३K/१२ का विस्तृत अध्ययन भी दिया गया है। पुस्तक के अन्त में मिर्जापुर के भूमिति चित्र की प्रतिलिपि भी लगा दी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में विषय का निरूपण चार विभागों में किया गया है। प्रथम अध्याय में भूमिति चित्रों का अध्ययन है। दूसरे से आठवें अध्याय तक पृथ्वी के सौर सम्बन्ध तथा स्थल मण्डल का विवरण है। तीसरे विभाग या अध्याय नौ से अध्याय

सोलह तक जलवायु तथा उसके आधार पर बने प्राकृतिक विभागों का विवेचन है। अन्तिम विभाग या अध्याय सत्रह से अध्याय छब्बीस तक के खंड में आर्थिक भूगोल से सम्बन्धित वस्तु उत्पादन वितरण, व्यापार तथा मानव रहन-सहन का निरूपण है। अन्त में एक प्रश्नावली है जिसमें कोई ८० प्रश्न दिये गये हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि इस रूप में प्रस्तुत पुस्तक बड़ी ही उपयोगी तथा लोकप्रिय सिद्ध होगी।

दिल्ली
२६ अगस्त, १९५६

अमरनाथ कपूर

विषय-सूची

		पृष्ठ
अध्याय एक	भूमिति चित्र (Ordnance Survey Maps)	१
अध्याय दो	पृथ्वी के सौर सम्बन्ध (The Earth as a Planet)	२९
अध्याय तीन	महाद्वीप निर्माण (The Building of the Continents)	४९
अध्याय चार	महासागर (The Oceans)	६५
अध्याय पाँच	अनावृत्तीकरण के साधन और भू-आकार (The Agents of Erosion and Landforms)	८३
अध्याय छः	झीलें (Lakes)	१०६
अध्याय सात	ज्वालामुखी और उनका क्रियाकलाप (Volcanoes and Volcanic Action)	१०९
अध्याय आठ	तट और द्वीप (Coasts and Islands)	११३
अध्याय नौ	जलवायु के तत्व--(१) तापक्रम (Climatic Factors—I. Temperature)	१२०
अध्याय दस	जलवायु के तत्व--(२) वर्षा (Climatic Factors—II. Rainfall)	१३२
अध्याय ग्यारह	जलवायु के तत्व--(३) वायु भार और हवायें (Climatic Factors—III. Pressure and Winds)	१४३
अध्याय बारह	प्राकृतिक विभाग (Natural Regions)	१५०
अध्याय तेरह	प्राकृतिक विभाग--शीत प्रदेश (Natural Regions—Cold Lands)	१६०
अध्याय चौदह	प्राकृतिक विभाग--शीत शीतोष्ण प्रदेश (Natural Regions--Cold Temperate Regions)	१६४
अध्याय पन्द्रह	प्राकृतिक विभाग—उष्ण शीतोष्ण प्रदेश (Natural Regions—warm Temperate Lands)	१७५
अध्याय सोलह	प्राकृतिक विभाग—उष्ण प्रदेश (Natural Regions—The Hot Lands)	१८६
अध्याय सत्रह	आदि जातियाँ (Primitive Communities)	२०१
अध्याय अट्ठारह	अनाज (Cereals)	२१०

अध्याय उन्नीस	अन्य भोज्य पदार्थ (Other Food Products)	२२०
अध्याय बीस	प्रमुख कच्चा माल (Major Raw Meterials)	२३५
अध्याय इक्कीस	विश्व के शक्ति साधन (The Power Resources of the World)	२५५
अध्याय बाईस	विश्व यातायात (World Communications)	२६२
अध्याय तेईस	जनसंख्या का विश्वव्यापी वितरण (World Distribution of Population)	२७५
अध्याय चौबीस	नगर स्थिति (Town Sites)	२७८
अध्याय पच्चीस	सीमायें (Frontiers)	२८२
अध्याय छब्बीस	उष्ण कटिबंधीय खेती (Tropical Agriculture)	२८९
	प्रश्नावली	२९०

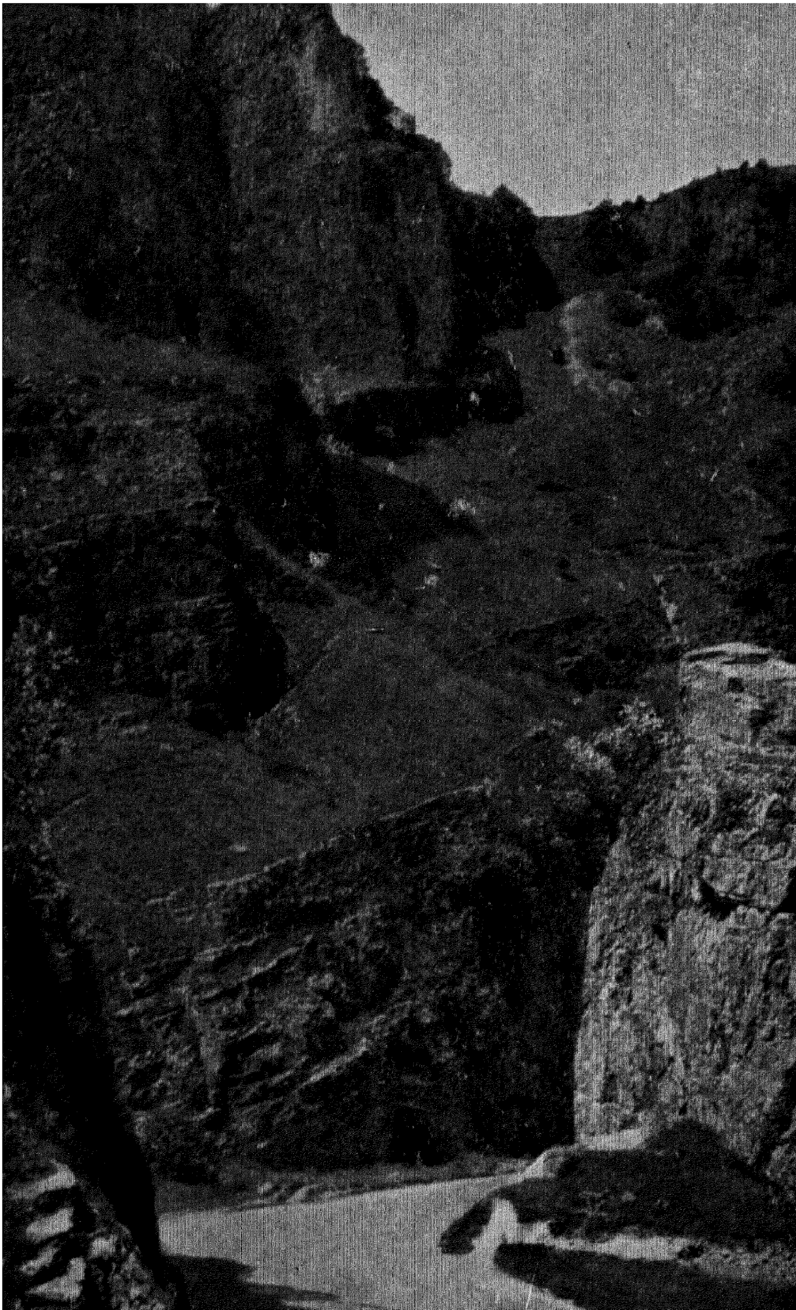

चेद्दर गार्ज—लम्बरूप चूने की चट्टानें और बहुत हल्की मिट्टी देखने योग्य है।

अध्याय एक

भूमिति चित्र

(ORDNANCE SURVEY MAPS)

ब्रिटेन के प्रथम मानचित्र

मानचित्रांकन की कला सैकड़ों वर्ष पुरानी है। सभी पुरानी सभ्यताओं के लोग —हिन्दू, यूनानी, बैबीलोनियन, फोनीशियन तथा रोमन जातियाँ अपने-अपने विचारों के अनुसार पृथ्वी का मानचित्र बनाती रही हैं। उनके द्वारा बनाये गये कुछ छोटे-छोटे मानचित्र भी मिले हैं। इंगलैंड का सबसे प्राचीन मानचित्र प्टोलमी (Ptolemy) द्वारा बनाया गया था। प्टोलमी रोम का प्रसिद्ध भूगोलशास्त्री था और ईसा की दूसरी शताब्दी में जीवित था। प्टोलमी की मृत्यु के बाद कोई एक हजार वर्ष तक ब्रिटेन के कोई भी मानचित्र नहीं बने।

ईसा की मृत्यु के बाद १२५० ईसवी में मैथ्यू पेरिस नामक मठाधीश ने ग्रेट-ब्रिटेन का मानचित्र तैयार किया। यद्यपि यह बहुत त्रुटिपूर्ण है परन्तु फिर भी प्रथम प्रयास के रूप में महत्त्वपूर्ण है। १३०० ईसवी में एक दूसरा मानचित्र तैयार किया गया। यह रंगीन था। १८ मील प्रति इंच के मानदंड पर बनाये गये इस मानचित्र पर सड़कों, नगरों व नदियों को दिखलाया गया था। वर्तमान समय में १ : १०,००,००० मानदंड (Scale) पर बनाये गये अन्तर्राष्ट्रीय मानचित्रों (International Maps) से इसकी भली-भाँति तुलना की जा सकती है। अगले ३०० वर्ष तक यह इंगलैंड का सबसे अच्छा मानचित्र समझा जाता था। १६वीं सदी में और मानचित्र बनाये गये। इनमें जार्ज लिली (George Lily) और मरकेटर के प्रयास सराहनीय हैं। सन् १५७० में क्रिस्टोफर सैक्सटन (Cristopher Sexton) ने इंगलैंड और वेल्स के विभिन्न प्रदेशों की पैमाइश का काम शुरू किया और इन्हीं को वर्तमान मानचित्रांकन का पिता कहना चाहिए।

सैक्सटन (Sexton) द्वारा बनाये गये मानचित्रों का मानदंड ४ मील प्रति इंच होता है और वे बहुत ही प्रसिद्ध हैं। उनमें पर्वत, नदियाँ और नगर दिखलाये जाते हैं परन्तु सड़कें नहीं रहतीं। पहाड़ियाँ रेखांकित की गई हैं। अतः सम्पूर्ण प्रदेश घास-फूस तथा चारे के गट्ठरों से पूर्ण खेत-सा प्रतीत होता है। उसी समय एक अन्य विशेषज्ञ—जान नारडेन ने कुछ ऐसे मानचित्र बनाये जिनमें सड़कें भी दिखलाई गई थीं।

सड़कों की पैमाइश (Survey) का असली काम सत्रहवीं शताब्दी में शुरू हुआ। सन् १६७५ में जान ओगलबी नामक सज्जन ने सड़कों के ऊपर एक पुस्तक लिख डाली। इस दिशा में जान रोक का कार्य भी महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने २ इंच बराबर है १ मील के मानदण्ड पर लन्दन, मिडलसेक्स और सरे के मानचित्र बनाये। इनमें इतनी बातें दिखलाई गई हैं कि प्रत्येक मकान, सड़क, नाले और झुरमुट तक को सम्यक् स्थान दिया गया है। इनको देखकर सरकारी पैमाइश पर तैयार किये गये भूमिति चि

भास होता है। १८वीं सदी के अन्त तक मानचित्रों का महत्त्व स्पष्ट हो चुका था और त्रुटिहीन विस्तीर्ण मानचित्रों के युग का सूत्रपात हो चुका था। इसमें रायल सोसायटी से विशेष प्रोत्साहन मिला। १ मील प्रति इंच के मानचित्रों में सबसे अच्छे नक्शों पर इनाम देकर मानचित्रांकन को रायल सोसायटी ने विशेष बढ़ावा दिया।

सन् १७४५ के बलवे में ब्रिटिश सेना को ठीक-ठीक मानचित्रों की आवश्यकता हुई और स्काटलैंड के उच्च प्रदेशों के यथार्थ मानचित्र बनाये जाने लगे। मेजर जनरल रॉय के निरीक्षण व आदेश में इस प्रकार के मानचित्रों का बनना शुरू हुआ। लड़ाई के बाद रॉय को ग्रेट ब्रिटेन की पैमाइश और भूमिति विभाग का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया। १७९० में उनकी मृत्यु हो गई परन्तु उनके बाद ही ग्रेट ब्रिटेन के त्रिभुजीकरण के लिए तैयारी शुरू हो गई।

त्रिभुजीकरण (Triangulation)—एक विशेष प्रकार की पैमाइश का नाम है। इसका आधारभूत सिद्धान्त यह है कि यदि किसी त्रिभुज की एक भुजा और दो कोण ज्ञात हों तो अन्य दो भुजाओं की लम्बाई भी पता लग सकती है। नीचे

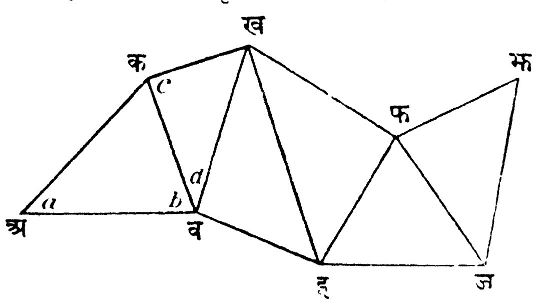

चित्र १—त्रिभुजीकरण का सिद्धान्त

दिये हुए चित्र में 'अ' 'ब' और 'क' प्रमुख स्थल रूप हैं। अब यदि आधार रेखा 'अ ब' की लम्बाई मालूम है और 'अ क' तथा 'अ ब क' कोण के अंश भी पता हो जायें तो 'ब क' तथा 'अ क' रेखाओं की वास्तविक लम्बाई ज्ञात हो सकती है। यदि 'ख' एक दूसरा प्रमुख स्थलरूप है तो कोण 'ख क ब' और 'क ब ख' को नापकर तथा 'ब क' रेखा की निकाली हुई लम्बाई को आधार मानकर 'क ख' और 'ब ख' रेखाओं की वास्तविक लम्बाई भी निकाली जा सकती है। इस प्रकार निरीक्षण या पैमाइश करने वाला एक त्रिभुज के बाद दूसरे त्रिभुज की पैमाइश करता हुआ आगे बढ़ता है। एक बार आधार रेखा को निकाल लेने के बाद फिर रेखाओं की दूरी नापने की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है।

ग्रेट ब्रिटेन के प्रथम त्रिभुजीकरण (Triangulation) के लिए दो आधार-रेखायें नापी गई। एक तो सेलिसबरी मैदान में और दूसरी आयरलैंड में लफ फायल के समीप। बाद में परीक्षा के रूप में त्रिभुज की एक भुजा को स्काटलैंड में नाप लिया गया। त्रिभुजीकरण इतना ठीक था कि एक मील में केवल एक इंच की भूल निकली।

त्रिभुजीकरण (Triangulation) में कोणों को नापने के लिए थियोडलाइट (Theodolite) नामक यन्त्र को प्रयोग में लाते हैं। प्राथमिक त्रिभुजीकरण के

त्रिभुजों की भुजाएँ ३० मील लम्बी थीं । कभी इन बड़े त्रिभुजों की भुजाओं को दो भागों में बाँट दिया गया और उन पर बनाये गये छोटे त्रिभुजों की पैमाइश की गई। जरूरत पड़ने पर इन छोटे त्रिभुजों को और छोटे त्रिभुजों में बाँट दिया गया। इस प्रकार एक दूसरे के प्रति सम्बन्धित सभी प्रमुख स्थल-भागों को निश्चित कर लिया गया। इसके बाद पैमाइश के और दूसरे तरीकों से जरूरी बातों को अंकित कर दिया गया। पैमाइश के अन्य तरीकों में नापने वाली जंजीर, समतल मेज और प्रिज़्मेटिक दिशासूचक यन्त्र का प्रयोग प्रमुख है। इस आधार पर तैयार किया गया सर्वप्रथम भूमिति चित्र केन्ट का था जो १८०१ में छापा गया। इसका मानदंड १ इंच : १ मील का था। इस पर नगर, ग्राम, नदी, नाले, सडके, वन और बाग-बगीचों को स्पष्टतया अंकित किया गया था। उच्चभूमि को छायांकित किया गया था।

सन् १८२४ में ब्रिटिश पैमाइश विभाग ने आयरलैंड का भूमिति चित्र तैयार किया। इसका मानदंड ६ इंच : १ मील था। सन् १८४० मे यह निश्चय हुआ कि ग्रेट ब्रिटेन की पैमाइश की जावे। १८६३ में यह निश्चय कुछ बदल गया । पहाड़ी और बंजर भागों को छोड़ कर सम्पूर्ण ग्रेट ब्रिटेन की पैमाइश २५ इंच : १ मील के मानदंड पर शुरू की गई। जब यह पैमाइश पूरी हुई तो पुराने मानचित्रों के संशोधन का प्रश्न उत्पन्न हुआ। उनमें नयी सडकों, रेलों तथा घरों आदि के अंकित करने की समस्या उठ खडी हुई। हर १५ वर्ष बाद प्रत्येक एक इच वाले मानचित्र को संशोधित कर देते हैं परन्तु पिछले दो विश्व-युद्धों मे यह काम बहुत कुछ पिछड़ गया है। पहिले भूमिति-चित्र काले रग मे छापे जाते थे परन्तु आजकल उपयुक्त रंगों का प्रयोग किया जाता है जिससे उनके पढने में आसानी होती है।

इंगलैण्ड के पैमाइश विभाग ने १ इंच : १ मील के मानदंड पर भूगर्भ-तत्त्व सम्बन्धी भूमिति चित्रों को भी प्रकाशित किया है। और इसी प्रकार के मानचित्र ६ इंच मानदंड पर तैयार किये जा रहे हैं। भूमि-उपयोग सम्बन्धी मानचित्र भी प्रकाशित हो रहे है। इनमे वन प्रदेश को गहरे हरे रंग मे; घास के चरागाहों को हल्के हरे रंग मे; खेतिहर भूमि को भूरे रंग से; झाड़ी प्रदेश और दलदलों को पीले रंग से; बगीचों और उद्यानों को पहाड़ी रंग से तथा बंजर भूमि को लाल रंग से दिखलाते हैं।

भारत में पैमाइश और भूमिति चित्रों का उत्थान

भारत में पैमाइश का काम कोई सौ वर्ष पहले शुरू किया गया । शुरू-शुरू में अंग्रेज़ों के प्रयत्न के फलस्वरूप भारत के मानचित्र १, २ और ४ मील प्रति इंच के मानदंड पर बनाये गये है। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण भूमिति चित्र वे हैं जो १ : १०,००,००० के मानदंड पर बनाये गये है। इनको दो क्रम से प्रकाशित किया गया है :

(१) भारत और समीपवर्ती देश तथा, (२) अन्तर्राष्ट्रीय क्रम।

प्रथम प्रकार के मानचित्रों में अफगानिस्तान, तिब्बत और चीन के प्रदेशों को भी दिखलाया गया है। ये भूमिति चित्र ४ × ४ अंश के हैं और ऐसी योजना है कि सम्पूर्ण देश को इसी माप के भूमिति खंडों में विभाजित कर दिया जाय। इनकी क्रमसंख्या

३८, ३९ आदि रक्खी जायेगी। कभी-कभी प्रदेश के सबसे बड़े नगर के नाम पर भूमिति चित्र का नाम पड़ जाता है जैसे श्रीनगर, लेह, दिल्ली, मिर्जापुर आदि। इन भूमिति चित्रों में लिखावट काली होती है। जल के लिए नीला रंग प्रयुक्त होता है और समोच्च भूमि दर्शक रेखाये भूरे रंग से बनाई जाती हैं। सड़कें और नगर लाल रंग से अंकित किये जाते हैं। इन भूमिति चित्रों को दो रूपों में प्रकाशित किया गया है— (१) राजनीतिक विभाग युक्त रंगीन और (२) विभिन्न रंगों की परत वाले जिनमें भूमि की उच्चता दिखलाई जाती है। हाल में बंधुर भूमिति चित्रों के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय भूमिति चित्र प्रकाशित किये जा रहे हैं। इनका मानदण्ड १ : १०,००,००० होता है।

भारत में हवाई जहाजों द्वारा पैमाइश का काम सन् १९२४ में शुरू हुआ। परन्तु सन् १९२८ तक इस दिशा में कुछ भी विशेष कार्य न हो सका। मलाया, बोर्नियो और बर्मा में समान अनुभव के आधार पर पूर्ण भारत के चिटगाँव जिले का एक मानचित्र बनाया गया जिसका मानदंड १६ इंच : १ मील था। तत्पश्चात् बंगाल के चार जिलों, उत्तरप्रदेश के ४०० वर्गमील प्रदेश और बलूचिस्तान के १००० वर्गमील क्षेत्र की हवाई पैमाइश की गई। इनका प्रधान ध्येय मिट्टी के तेल के कुँए खोजना था। देश की खनिज सम्पत्ति, योजनाओं की सफलता और भूमि उपयोग के मानचित्रों को बनाने के लिए वैज्ञानिक ढंग की पैमाइश की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस प्रकार की पैमाइश के बाद देश की आर्थिक योजनाओं में विशेष प्रगति होगी।

मानचित्रों के प्रकार

(१) **एक इंच वाले मानचित्रों** को लोकप्रिय संस्करण भी कहते हैं। इस मानचित्र पर समोच्चभूमि-दर्शक रेखाये ५० फीट के अन्तर पर खींची जाती हैं और उनका रंग भूरा होता है। नदियाँ और झीलें नीले रंग से अंकित की जाती हैं। जंगल हरे रंग से, सड़कें लाल रंग से दिखलाई जाती हैं। प्रकार-भेद के अनुसार सड़कों को भूरे, पीले और सफ़ेद रंग से भी दिखाया जाता है। रेलमार्ग काले रंग से दिखलाये जाते हैं। साथ-साथ और भी बहुत से लाक्षणिक संकेतों का प्रयोग किया जाता है।

(२) **२½ इंच वाले मानचित्र** में मकान, बस्ती और स्टेशन आदि भी दिखलाये जाते हैं। समोच्चभूमि-दर्शक रेखाओं के बीच २५ फीट का अन्तर रहता है।

(३) **६ इंच वाले मानचित्रों** में समोच्चभूमि-दर्शक रेखाओं के बीच का अन्तर ५० फीट होता है और ज़िले व नगरों की हद को बिन्दु रेखा द्वारा अंकित करते हैं।

(४) **२५ इंच वाले मानचित्र** में विशिष्ट तथ्यों को विस्तार से दिखलाया जाता है। नगर के घर, बाग, गली-कूचों तक को दिखाया जा सकता है। सड़कों की सही चौड़ाई दिखाई जाती है। स्थानीय कौंसिलों और कमेटियों के लिए इस प्रकार के भूमिति चित्रों का विशेष महत्त्व है।

(५) **५० इंच वाले मानचित्र**, नम्बर (४) के ही परिवर्द्धित रूप होते हैं।

लाक्षणिक संकेत (Conventional Signs)—भूमिति चित्रों पर इतने अधिक और विभिन्न तथ्यों को अंकित करना होता है कि कुछ विशेष संकेतों का प्रयोग

किया जाता है। इन्हें लाक्षणिक संकेत कहते हैं। विभिन्न लाक्षणिक संकेत नीचे दिये हुए चित्र से स्पष्ट हो जायेंगे।

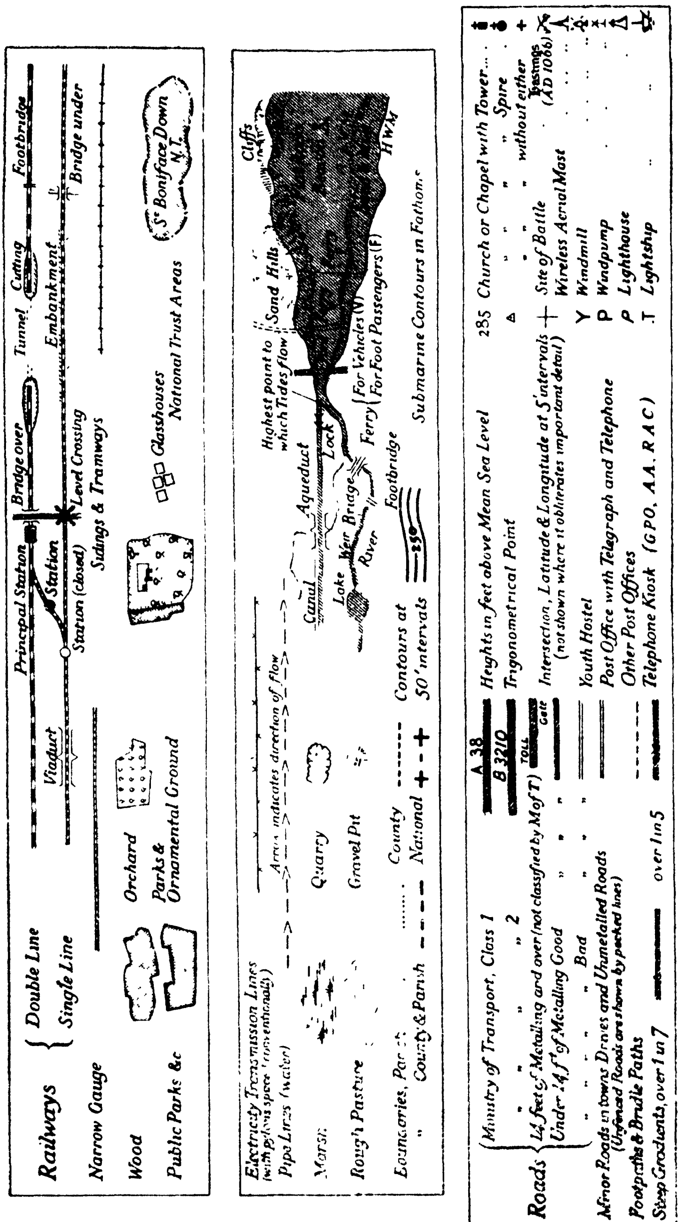

चित्र—२ लाक्षणिक संकेत

मान दण्ड (Scale)

मानचित्रों का मानदंड रेखांकित होता है। मानचित्र पर अंकित रेखा का भूमि पर अंकित रेखा से जो सम्बन्ध होता है उसे मानदण्ड या पैमाना कहते हैं। वास्तव में मानचित्र पर दो बिन्दुओं के बीच की दूरी का भूमि पर की वास्तविक दूरी से अनुपात ही मानदंड कहलाता है।

मान लीजिये एक कमरे का मानचित्र बनाना है जिसकी लम्बाई ३६ फीट और चौड़ाई १२ फ़ीट है। इसको यदि हम ३६ इंच × १२ इंच का बनायें तो कमरे का सही-सही आकार आ जायेगा। इस प्रकार के मानचित्र पर १ फुट को १ इंच द्वारा अंकित किया गया है। इसलिए मानदंड हुआ एक इंच = १ फुट। कमरे की एक-एक दिशा वास्तविक विस्तार का $\frac{१}{१२}$ वाँ अंश होगी। अतः मानदंड को १ : १२ या $\frac{१}{१२}$ के द्वारा अंकित कर सकते हैं। इस भिन्न को प्रतिनिधि भिन्न कहते हैं।

एक इंच मानचित्रों में १ इंच बराबर है एक मील के। एक मील मे ६३,३६० इंच होते हैं। मानचित्र पर एक इंच एक मील दिखलाता है। अतएव मानचित्र पर प्रत्येक रेखा भूमि पर वास्तविक विस्तार की $\frac{१}{६३३६०}$ अश होगी। मानचित्रावली में प्रत्येक मानचित्र के नीचे उसकी प्रतिनिधि भिन्न (Representative Fraction) दी रहती है। साथ-साथ में रेखांकित मानदड भी दिया रहता है। मान लीजिये किसी मानचित्रावली के नक्शे का मानदंड १ : २०,००,००० है। तो इसके अर्थ हैं कि १ इंच वास्तविक भूमि पर २,००,००० इंचों की दूरी का प्रतिनिधित्व करता है। चूँकि २०,००,००० इंच बराबर है ३२ मील के। इसलिए १ : २०,००,००० का मानदंड '१ इंच : ३२ मील' के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है।

अब प्रश्न यह है कि दो भाँति से मानदड को क्यों व्यक्त किया जाय। इसका प्रधान कारण यह है कि भिन्न रूप मानदंड को प्रत्येक देश में समझा जा सकता है। उदाहरण के लिए यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी मानदण्ड से अनभिज्ञ होने के कारण फ्रांस का विद्यार्थी १ इंच : १ मील को समझने में असफल रहता है। परन्तु जब वह $\frac{१}{६३३६०}$ को देखेगा तो फौरन समझ लेगा कि १ सैन्टीमीटर बराबर है ६३३६० सैन्टीमीटर के। उससे वह यह निष्कर्ष निकालेगा कि १ सैन्टीमीटर=०.६३ किलोमीटर के। इस प्रकार वह अंग्रेजी मानचित्र को आसानी से समझ लेगा।

किसी मानचित्र पर दिये हुए रेखांकित मानदण्ड को ध्यान से देखिये। इसको एक-एक इंच के ६ बराबर भागों में बाँट दिया होता है। प्रत्येक इंच एक मील दिखलाता है। ध्यान देने की बात यह है कि शून्यान्श (०) रेखा के बिल्कुल अन्तिम बायें सिरे पर नहीं है। प्रथम अंश के दायें सिरे पर ० है। ० अंश से बायीं ओर के हिस्से को ८ भागों में बाँट दिया जाता है। प्रत्येक उपभाग १ फर्लांग सूचित करता है। उससे दाँयी ओर ५ भाग होते हैं। प्रत्येक १ इंच लम्बा होता है और एक मील की दूरी सूचित करता है। ० अंश को इस प्रकार रखने से मानदण्ड पढ़ने में आसानी होती है। मानचित्र पर दो बिन्दुओं के बीच की दूरी को डिवाइडर से नाप लेते हैं और फिर उसे रेखांकित मानदण्ड पर रख कर

इंचों में प्राप्त कर लेते है। बाद मे इंचों को मील व फर्लांग म परिवर्तित कर लेते है.

यदि मानदण्ड द्वारा हमें मानचित्र पर रेखांकित दूरी का भूमि पर वास्तविक दूरी के साथ सम्बन्ध ज्ञात होता है तो मानचित्र पर के क्षेत्रफल का वास्तविक क्षेत्रफल के साथ क्या सम्बन्ध होगा, यही देखना है।

मान लीजिये, आपके स्कूल की मेज़ का ऊपरी तख्ता ३० इंच लम्बा और २० इंच चौड़ा है। इसका नक्शा १ : १० के मानदण्ड पर बनाइये। अब आपका नक्शा ३ इंच × २ इंच का बनेगा। एक कागज के टुकड़े को काट लीजिये और यह पता लगाइये कि पूरे तख्ते को मापने के लिए ऐमे कितने टुकड़े आवश्यक होंगे। पूरे-पूरे १०० टुकड़े लगेंगे। अतएव पूरे नक्शे का क्षेत्रफल तख्ते के क्षेत्रफल का १/१०० या १/१०² होगा। इसलिए यदि दूरी का मानदंड १/१० है तो क्षेत्रफल का मानदंड १/१०² होगा। एक इंच वाले मानचित्र पर एक वर्ग इंच एक वर्गमील को सूचित करना है। परन्तु एक वर्गमील में (६३३६०)² वर्ग इंच होते है। इसलिए मानचित्र के क्षेत्रफल और भूमि के क्षेत्रफल मे १/६३३६० का सम्बन्ध होगा।

प्रश्नावली

(१) निम्नलिखित मानदडवाले मानचित्रों की प्रतिनिधि भिन्न क्या होगी—
(अ) १ इंच = २ मील, (ब) २५ इंच : १ मील, (स) ६ इंच : १ मील, (द) १ इच : १० मील, (इ) एक सैन्टीमीटर : १ किलोमीटर।

(२) निम्नलिखित मानदंड को अन्य प्रकार से व्यक्त कीजिये—
(अ) १/२५०० (ब) १ : १०,००,०००, (म) १ : ३१,६८०

उच्च भूमि का चित्रण

भूमिति चित्र या अन्य प्रकार के मानचित्रों पर ऊँचाई को निम्नलिखित प्रकार से अंकित किया जा मकता है :—

अ ब स

चित्र ३—उच्चभूमि का प्रदर्शन—(अ) छायाकरण (समोच्चभूमिदर्शक रेखाओं सहित) (ब) रंगीन तहें (समोच्चभूमिदर्शक रेखाओं सहित) (स) समोच्चभूमिदर्शक रेखायें।

(१) छायाकरण, (२) रंगीन तहों द्वारा, (३) समोच्चभूमि-दर्शक रेखायें, (४) आकृति रेखायें, (५) समोच्चभूमि-दर्शक रेखाओं में रंगीन तहों के समन्वय द्वारा।

कभी-कभी दो तरीकों का मिश्रण कर देते हैं।

(१) **छायाकरण** (Hachures)—छायाकरण में छोटी-छोटी रेखायें इस प्रकार खींची जाती हैं कि उनके द्वारा यह स्पष्ट हो जाये कि ऊपर से नीचे को जल का प्रवाह किस प्रकार होगा। तीव्र ढालों पर ये रेखायें एक दूसरे के समीप होती हैं परन्तु क्रमशः ढालों पर अपेक्षाकृत दूर-दूर। सपाट भूमि पर बिल्कुल भी नहीं होतीं। केवल छायाकरण द्वारा उच्च-भूमि-प्रदर्शन का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसके द्वारा वास्तविक ऊँचाई का कुछ भी अन्दाज नहीं मिलता। इसमें उच्च पठारों तथा नीचे मैदानों दोनों को ही छायारहित छोड़ देते हैं। पर्वतीय प्रदेशों में पास-पास या घने छाया-करण से मानचित्र के अन्य तथ्य छिप जाते हैं। हाँ, एक बात ज़रूर है कि छायाकरण द्वारा मानचित्र की आकृति ढली हुई-सी प्रतीत होती है और प्राकृतिक बनावट स्पष्ट हो जाती है।

(२) **रंगीन तहें** (Hill-Shading)—इस विधि द्वारा प्राकृतिक बनावट को प्रकाश व छाया द्वारा दिग्दर्शित करते हैं। प्रायः दो तरीके प्रयोग में लाते हैं। (क) मानचित्र में अंकित प्रदेश पर प्रकाश को लम्ब रूप लटकता हुआ मान लेते हैं। तब तीव्र ढालों को घनी छाया द्वारा अंकित करते हैं। सपाट भूमि को चाहे वह ऊँचाई पर हो या निम्न तल पर सादा ही छोड़ देते हैं।

(ख) उत्तर पश्चिम से आते हुए एक प्रकाश की कल्पना कर लेते हैं। फलतः दक्षिण और पूर्व की तरफ वाले ढाल उत्तर और पश्चिम वाले ढालों की अपेक्षा अधिक गहरे रंग से दिखलाये जाते हैं।

इन दोनों ही तरीकों से प्रदेश-विशेष की प्राकृतिक बनावट का सामान्य ज्ञान प्राप्त हो जाता है परन्तु इसमें वही दोष होते हैं जो छायाकरण में। इसके द्वारा वास्त-विक ऊँचाई का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। कभी-कभी तो यह भी पता नहीं चल पाता कि भूमि का ढाल चढ़ाई में है या उतार में—पहाड़ी के ऊपर की तरफ या उसके नीचे की तरफ।

(३) **समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें** (Contours)—समुद्रतल से समान ऊँचाई पर स्थित सभी प्रदेशों से होकर खींची गई रेखा को समोच्च भूमि-दर्शक रेखा कहते हैं। किसी भी देश की तटरेखा इसका सबसे अच्छा नमूना है। समुद्रतल से ० फीट की ऊँचाई पर स्थित सभी स्थानों को यह मिलाती है। चूँकि पानी की सतह एक ही तल पर होती है, इसलिए किसी तालाब या झील का किनारा भी एक समोच्च-भूमिदर्शक रेखा है। अधिकतर मानचित्रों में इसी विधि द्वारा प्राकृतिक बनावट को अंकित करते हैं। प्रायः ये रेखायें ५० फीट के लम्बान्तर पर खींची जाती हैं और बीच-बीच में विशिष्ट ऊँचाइयों को भी दिखलाते हैं। समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं और विशिष्ट ऊँचाइओं की स्थिति को पैमाइश द्वारा ज्ञात करते हैं।

(४) **आकृति रेखायें** (Form lines)—बहुत से भूमिति चित्रों में जहाँ पूरी पैमाइश नहीं हो पाई है, समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के स्थान पर आकृति रेखाओं का प्रयोग किया जाता है। आकृति-रेखायें समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के

समान ही होती हैं परन्तु न तो उन्हें पैमाइश के बाद खींचा जाता है, और न ही उनमे निश्चित ऊँचाइओं का ज्ञान हो पाता है। साधारणतया इन्हें बिन्दुओं द्वारा अंकित करते हैं और इसी कारण ये समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं से सर्वथा भिन्न मालूम पड़ती हैं।

(५) **समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें और रंगीन तहों का समन्वय** (Contours and Hill-Shading)—दो समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच रंगीन तहों द्वारा भूमि की बनावट स्पष्ट करते है। समुद्रतल और २०० फीट की समोच्च-भूमि-दर्शक रेखा के बीच की सारी भूमि गहरे हरे रंग में दिखाई जाती है। २०० फीट और ४०० फीट वाली रेखाओं के बीच की भूमि को हल्के हरे रंग से अंकित करते है। इस प्रकार के मानचित्र बड़े ही स्पष्ट व आकर्षक होते है। इनमे भूमि की प्राकृतिक बनावट आसानी से स्पष्ट हो जाती है। परन्तु अधिक ऊँचाई के स्थानों मे इस विधि से कोई विशेष सफलता नही मिलती क्योंकि प्रत्येक दो उच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच एक भिन्न रंग प्रयोग करना पड़ता है। परन्तु यात्रियों के लिए बनाये गये विशिष्ट मानचित्रों में इसी विधि को प्रयोग करते है।

समोच्चभूमि दर्शक रेखाओं (Contours) का अध्ययन

इन रेखाओं के सम्बन्ध में प्राय: दो पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करते है—लम्बान्तर (Vertical Interval) और समतल रूप (Horizontal Equivalent)। निम्नलिखित चित्र से यह स्पष्ट हो जायेगा।

मान लीजिये 'अ ब' रेखा एक ढाल को अंकित करती है। बिन्दु-रेखाये समुद्रतल से क्रमश: १०० फीट, २०० फीट और ३०० फीट की ऊँचाइओं को दिखलाती है। 'ख इ' और 'फ ज' समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच का लम्बान्तर उनके बीच की लम्बवत् दूरी है। यह प्राय: एक समान होती है परन्तु कुछ मानचित्रों में १००० फीट की ऊँचाई तक लम्बान्तर १०० फीट होता है और उसके बाद लम्बान्तर २५० फीट हो जाता है।

समतल रूप (Horizontal Equivalent) दो समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच की समानान्तर दूरी होती है। 'क ख' और 'इ फ' समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच समतल दूरी ही उनका समतल रूप है। भूमि के ढाल के अनुसार इसमें अन्तर होता जाता है। जहाँ ढाल तीव्र होना है वहाँ यह कम हो जाना है, जैसे 'इ क' और जहाँ ढाल क्रमश: होता है वहाँ यह बढ़ जाता है, जैसे 'ज इ'। किसी मानचित्र पर 'क' और 'इ' बिन्दुओं के बीच की दूरी 'क ख' द्वारा अंकित की जायेगी। मानचित्रांकन से पहिले सभी ढालू प्रदेश एक समतल पर अंकित समझ लिये जाते है।

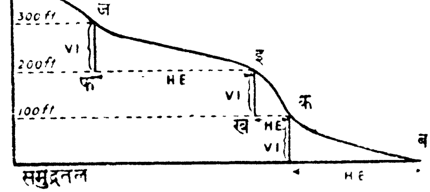

चित्र ४—लम्बान्तर और समतल रूप

प्रश्नावली

(१) किसी मानचित्र का मानदंड १ : १०,५६० है। इस पर एक पहाड़ी रेलमार्ग १.२ इंच लम्बी रेखा द्वारा दिखलाया गया है। नीचे का स्टेशन समुद्रतल से १२५ फीट ऊँचा है। ऊपर का स्टेशन समुद्रतल से ५६५ फीट की ऊँचाई पर स्थित है। यदि ढाल स्थिर हो तो रेलमार्ग की वास्तविक लम्बाई क्या है ?

(२) ममान ढाल का एक पहाडी मार्ग ५२० फीट लम्बा है। यदि मार्ग का निचला भाग समुद्रतल से ३०० फीट की ऊँचाई पर है और मार्ग को एक इंच लम्बी रेखा द्वारा दिखलाया गया है तथा मानदंड १ : ५७६० है तो मार्ग के ऊपरी सिरे की समुद्रतल से ऊँचाई बतलाइये।

खंडचित्र (Sections)

सम-उच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं (Contours) को अध्ययन करने की सबसे सरल रीति खंड चित्र बनाकर है। यह विधि निम्नलिखित चित्र से स्पष्ट हो जायेगी।

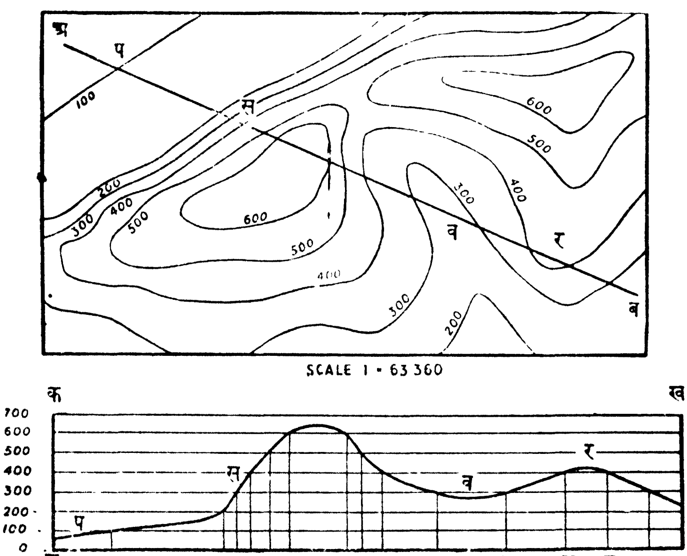

चित्र—५

मान लीजिए कि 'अ' से 'ब' तक का खंड-चित्र बनाना है। 'अ ब' रेखा के बराबर लम्वाई की एक दूसरी रेखा 'अ$_1$ ब$_1$' खींचिये। इस रेखा के दोनों सिरों पर दो लम्ब रेखायें खींचिये और इन्हें 'अ$_1$ क' तथा 'ब$_1$ ख' कहेंगे। मानचित्र को देखने से पता चलता है कि 'अ ब' रेखा के मार्ग में पड़ी हुई सबसे अधिक ऊँचाई ६०० से ७०० फीट तक है। $_1$ क और ब$_1$ ख को सात बराबर-बराबर भागों में बाँट लीजिये। इन बिन्दुओं को

मिलाते हुए सात समानान्तर रखायें खींचिये। ये रेखायें 'अ₁ ब₂' के समानान्तर होंगी। इन पर १०० फीट के अन्तर पर निशान लगाते जाइये। इसके बाद कागज की एक पतली पर सीधी पट्टी लेकर 'अ ब' रेखा पर रखिये और वह रेखा जहाँ-जहाँ उच्च भूमि-रेखाओं को काटती हुई गुजरती है, उन्हें इस कागज पर अंकित कर लीजिये। अब इस कागज को अ₁ ब₁ के बराबर रखिये और समोच्च-भूमि रेखाओं के बिन्दुओं को इस पर अंकित कर दीजिये। इ, फ, न, उ, ट, ज, ह, ऊ, त, झ, ड, ल, म, य बिन्दुओं पर लम्ब-रेखाये खींचिये। 'इ' पर खड़ी लम्ब रेखा उस बिन्दु की ओर इंगित करती है जहाँ १०० फीट वाली समोच्च-भूमि रेखा 'अ ब' रेखा को काटती है। इसलिए जहाँ यह लम्ब रेखा १०० फीटवाली समानान्तर रेखा को छूती है वहाँ 'प' बिन्दु रख दीजिये। इसी प्रकार की लम्ब रेखायें प्रत्येक बिन्दु पर खींचते जाइये और जहाँ वे उपयुक्त समानान्तर रेखा को छुयें वहाँ बिन्दु रखते जाइये। बाद मे समानान्तर रेखाओं पर अंकित लम्ब रेखाओं के सभी बिन्दुओं को एक रेखा द्वारा मिला दीजिये। इस प्रकार प्राप्त टेढ़ी-मेढ़ी रेखा ज और ह बिन्दुओं के बीच सबसे अधिक ऊँची होगी पर ७०० वाली रेखा से नीचे ही रहेगी। इसी प्रकार 'झ' और 'ड' बिन्दुओं के बीच यह रेखा झुकेगी परन्तु २०० फीट की समानान्तर रेखा को नही छुयेगी। इस प्रकार प्राकृतिक बनावट का एक खंडचित्र तैयार हो जायेगा और इससे प्रदेश विशेष की प्राकृतिक विशेषतायें स्पष्ट हो जायेंगी। 'त' एक मैदान है, 'म' तीव्र ढाल है, 'व' एक घाटी है और 'र' एक श्रेणी है।

इसमें ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि समानान्तर मानदंड तो १ इंच : १ मील या १ : ६३३६० है परन्तु लम्बवत् मानदंड १।१० फीट : १०० फीट या १ इंच : १००० फीट है। करीब-करीब ५$\frac{1}{4}$ इंच एक मील के बराबर हुए। स्पष्ट है कि समानान्तर मानदंड की अपेक्षा लम्बवत् मानदण्ड कोई ५ गुना अधिक बढ़ जाता है।

सड़कों और नदियों के ढाल के चित्र भी इसी भाँति खींचे जाते हैं। परन्तु चूँकि ये सीधी रेखायें नही होतीं, इसलिए इनकी लम्बाई और विभिन्न समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच का अन्तर अलग-अलग एक धागे के टुकड़े से नापते हैं। इसका फल यह होता है कि नदी या सड़क सीधी हो जाती है और इसके ढाल इसकी पूर्ण लम्बाई के प्रति स्पष्ट हो जाते हैं।

स्थानों की अन्तर्दृश्यता (Intervisibility)

जब हम किसी मानचित्र का अध्ययन करते हैं तो यदि उसमें एक स्थान से दूसरे स्थान को देखा जा सकता है तो अध्ययन विशेष सुविधाजनक हो जाता है। समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं को देख कर अन्तर्दृश्यता का निश्चय किया जा सकता है।

(१) जहाँ की समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं से उन्नतोदर (Convex) ढाल का प्रदर्शन होता है वहाँ पहाड़ी का शिखर नीचे से नहीं दिखलाई पड़ता।

(२) जहाँ की समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं से नतोदर (Concave) ढाल का प्रदर्शन होता है वहाँ की पहाड़ी का शिखर नीचे से और नीचे का भाग शिखर से दिखलाई पड़ता है। हाँ, मार्ग में स्थित जगल या इमारतों से अन्तर्दृश्यता में बाधा अवश्य पड़ती है।

इसलिए समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के आधार पर कोई स्थान स्पष्ट दिखलाई पड़ता हो परन्तु वास्तव में वह किसी वन या इमारत में ओट में हो ऐसा भी हो सकता है।

(३) समान ऊँचाई पर स्थित दो बिन्दु स्पष्ट रूप से अन्तर्दृश्य होते हैं यदि उनके बीच में कोई उच्च भूमि न स्थित हो।

(४) यदि बीच में कोई अधिक ऊँचा भूमि-खंड नहीं है तो असम्भव ऊँचाई पर स्थित दो बिन्दुओं के बीच अन्तर्दृश्यता हो भी सकती है और नहीं भी। इस दशा में अन्तर्दृश्यता का निश्चय खंडचित्र द्वारा हो सकता है।

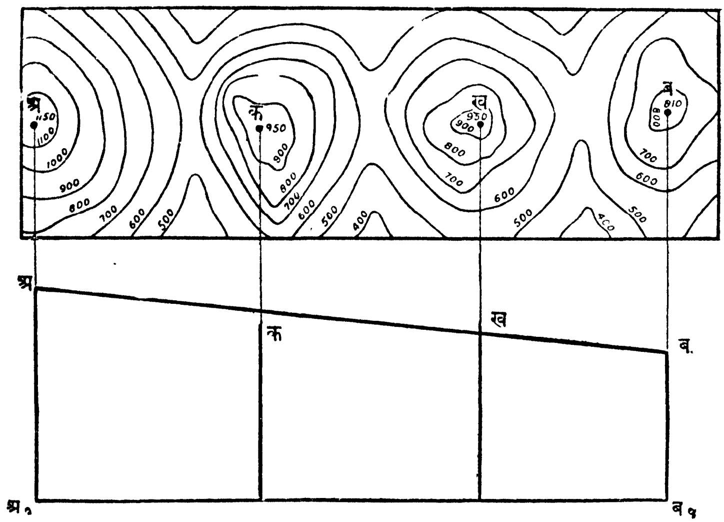

चित्र ६—अन्तर्दृश्यता निश्चित करने का तरीका

उपर्युक्त चित्र में निश्चय करना है कि अ और ब बिन्दु आपस में दृश्य है या नहीं?

इस चित्र में 'अ ब क ख' चार पहाड़ियाँ हैं। क और ख अ से ऊँची नहीं हैं परन्तु दोनों ही 'ब' से अधिक ऊँची है। 'अ ब' को मिला दीजिये। और इस रेखा पर अ और ब के बीच सबसे ऊँचे बिन्दुओं पर निशान लगा लीजिये। ये बिन्दु 'क' और 'ख' है। अब 'अ ब' रेखा के बराबर $अ_१$ $ब_१$ रेखा खींचिए। $अ_१$ पर एक लम्ब रेखा खींचिये जो १.१५ इंच लम्बी हो और $\frac{१}{१०}$ इंच के मानदंड पर ११५० फीट की ऊँचाई इंगित करे। 'अ क' दूरी पर एक और लम्ब रेखा खींचिये जो 'च' पहाड़ी को इंगित करे। 'क' पहाड़ी ९५० फीट ऊँची है। इसलिए यह रेखा ०.९५ इंच की होगी। $अ_१$ से 'अ ख' के बराबर दूरी पर एक और लम्बरेखा बनाइये। यह ही ०.९५ इंच की होगी और ख पहाड़ी को अंकित करेगी। $ब_१$ पर ०.८१ इंच की एक लम्ब रेखा खींच के 'ब' पहाड़ी की ऊँचाई अंकित करिए। 'अ ब' खंड चित्र में अ और ब को मिला दीजिये। इससे स्पष्ट हो जायेगा कि यद्यपि क रेखा से ऊपर नहीं उठती परन्तु 'ख' पहाड़ी ऊपर को उठ जाती है और इसलिए अन्तर्दृश्यता में रुकावट डालती है। अतएव 'अ' और 'ब' अन्तर्दृश्य नहीं हैं।

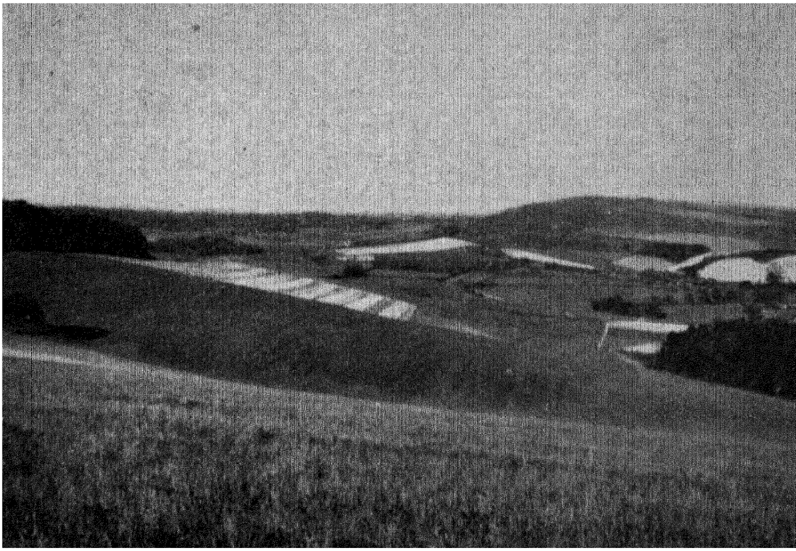

ऊपर : बरी पहाड़ी से दृश्य ।

नीचे : बरी ग्राम और नदी के मोड़ ।

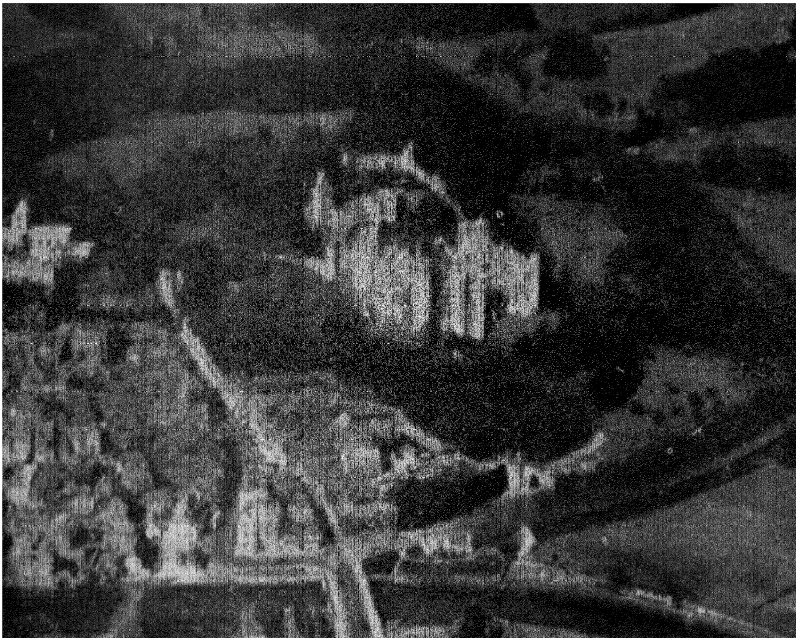

ऊपर : अरन्डल नगर और उसका किला ।

नीचे : मार्गों के मिलन बिन्दु पर स्थित चिसेस्टर नगर ।

दृश्य (Views)

दृश्य का विवरण इस प्रकार होना चाहिये :

"सामने एक खेत है जिसके पीछे कई मैदान है और वन प्रदेश बिल्कुल नही है। इसका ढाल दक्षिण की ओर नदी की घाटी की तरफ है। इसके बाद ऊँची-नीची भूमि की एक पट्टी है जिसपर घना जंगल पाया जाता है और जिसकी आकाश-रेखा बराबर है।"

किसी दृश्य का विवरण लिखने में छोटी-छोटी बातों के विस्तार में नही जाना चाहिए। प्रयत्न यह होना चाहिए कि मुख्य-मुख्य बातें स्पष्ट हो जायें। इसमें यह भी याद रखना चाहिए कि पेड़, इमारते, और क्रमशः ढाल भी मानचित्र पर अंकित वस्तुओं की दृश्यता में रुकावट उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के लिए, ऊपर दिये हुए विवरण में न तो नदी ही है और न ही रेलमार्ग क्योंकि दोनों ही गड्ढे में स्थित है।

ढाल (Gradient)

किसी मानचित्र पर अंकित समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं और विशिष्ट ऊँचाइओं से पहाड़ी भूमि, सड़कों आदि के ढाल का पता लगाया जा सकता है। किसी मानचित्र पर अंकित दो बिन्दुओं के बीच का औसत ढाल जानने के लिए निम्नलिखित बातों का जानना जरूरी है—(अ) दोनों स्थानों की ऊँचाई, और (ब) दोनों के बीच की दूरी।

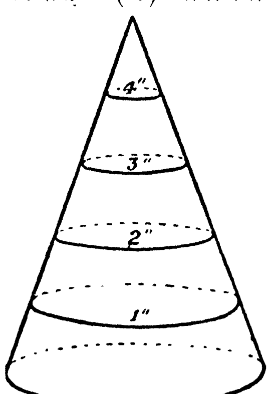

चित्र ७

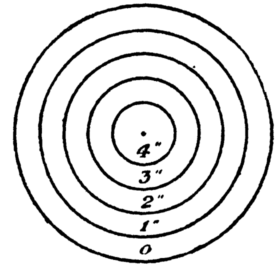

चित्र ८

४१८ फीट ऊँची पहाड़ी पर स्थित 'अ' चौराहे और ५२० फीट ऊँची 'द' पहाड़ी पर स्थित 'क' के बीच की सड़क का ढाल पता लगाना है।

समुद्रतल से 'क' बिन्दु की ऊँचाई (विशिष्ट ऊँचाई)	१५८ फीट
चौराहे पर ऊँचाई (समोच्च-भूमि-दर्शक रेखा)	५० फीट
दोनों के बीच ऊँचाई का अन्तर	१०८ फीट
दोनों के बीच की दूरी (नाप द्वारा)	१.१५ मिलीमीटर
इस प्रकार १०८ फीट की ऊँचाई	१.१५ मिलीमीटर में होती है,
इस प्रकार १०८ फीट की ऊँचाई	१.१५ × ५२८० फीट में होती है,
इसलिए १ फीट की ऊँचाई	$\frac{१.१५ \times ५२८०}{१०८}$ फीट में होगी

इसलिए करीब-करीब हर ५६ फीट में १ फीट का ढाल होगा, अतः ५६ में १ फीट का ढाल हुआ।

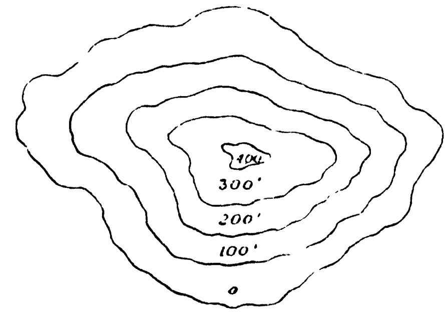

चित्र--९

समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के कुछ विशेष रूप (Some Contour Forms)

चूँकि अधिकतर भूमिति चित्रों में प्राकृतिक बनावट को समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं द्वारा ही चित्रित करते हैं इसलिए प्रधान स्थल रूपों के लिए प्रयुक्त विशिष्ट रेखा-रूपों को समझ लेना सुविधाजनक होता है।

यदि किसी शंकु के चारों ओर रेखाये खींची जायँ जैसा कि चित्र ७ में दिखलाया गया है कि प्रथम रेखा शंकु के आधार से १ इंच की दूरी पर हो; दूसरी २ इंच की दूरी पर और तीसरी ३ इंच की दूरी पर तो ऊपर से देखने पर ये रेखाये समकेन्द्र वृत्त के समान प्रतीत होंगी जैसा चित्र ८ में दिखलाया गया है। यही शंकु का समोच्च-भूमि-दर्शक चित्र होगा। चित्र नं० ९, एक ऐसे द्वीप का समोच्चभूमि-दर्शक चित्र है, जिसकी भूमि किनारे से पहाड़ी के शिखर तक ४०० फीट ऊँची है।

चित्र नं० १० में एक ऐसी पहाड़ी श्रेणी को अंकित किया गया है जिसकी ऊँचाई ४०० फीट से अधिक है। पश्चिम में पहाड़ी की दूरी 'अ ब' है परन्तु ऊँचाई ३०० फीट है, पूर्व में दूरी 'ख इ' अधिक है परन्तु ऊँचाई वही ३०० फीट है।

स्पष्ट है कि श्रेणी के पश्चिमी भाग का ढाल पूर्वी भाग की अपेक्षा अधिक तीव्र है। पास-पास बनायी गयी समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें तीव्र ढाल इंगित करती

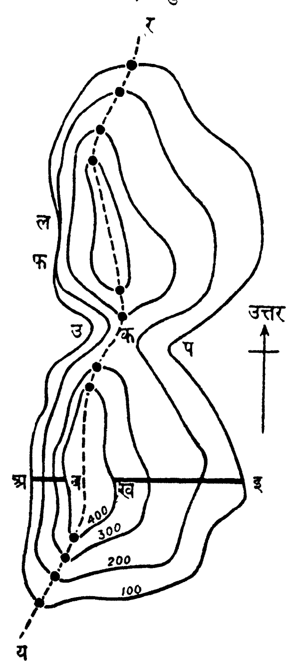

चित्र १०--जल विभाजक

हैं। दूर-दूर पर स्थित रेखायें क्रमश: ढाल चित्रित करती है। इस प्रकार की श्रेणी को **उच्छृंग श्रेणी** (Scrap Ridge) कहते हैं। पश्चिमी ढाल को उच्छृंग ढाल कहते हैं और पूर्वी ढाल को **झुकाव ढाल** (Dip Slope) कहते हैं। समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें एक-दूसरे को काट नहीं सकतीं। परन्तु 'ल क' स्थान पर ३०० फीटवाली रेखा १०० फीटवाली रेखा से मिल जाती है और थोड़ी दूर तक दोनों साथ-साथ एक होकर आगे बढ़ती हैं। इससे स्पष्ट है कि ढाल इतना तीव्र है कि एक चट्टान श्रेणी लम्ब-रूप १०० फीट ऊँची खड़ी हुई है। तटीय चट्टानें इसी प्रकार दिखलाई जाती हैं।

उ और प बिन्दुओं के बीच श्रेणी को बिना ३०० फीट तक चढ़े पार किया जा सकता है। परन्तु अधिक उत्तर या दक्षिण में श्रेणी को पार करने के लिए ४०० फीट तक चढ़ना होगा। इस स्थल-रूप को विभाजक पात्र (Col) या फैला हुआ गर्त (Saddle) कहते हैं। 'क' स्थान इसी प्रकार का है। बिन्दु-रेखा 'र य' जलविभाजक बताती है। इस श्रेणी पर पड़ने वाली वर्षा का कुछ जल तो पश्चिमी ढाल पर बह जाता है और कुछ दक्षिणी ढाल पर। पूर्वी प्रवाह क्षेत्र को पश्चिमी प्रवाह क्षेत्र से अलग करने वाले सभी उच्च बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा को जल-विभाजक कहते हैं। चित्र में गहरी स्याही से बने मोटे बिन्दुओं को ध्यान मे देखिये। इन्ही स्थानों पर जलविभाजक उच्चभूमिदर्शक रेखाओं को काटती है।

दिये हुए चित्र ११ (अ) और ११ (ब) में समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें V आकार की हैं परन्तु उनके ऊपर पड़ी संख्यायें भिन्न हैं। यद्यपि सामान्य रूप से देखने से दोनों ही चित्र एक से मालूम होते हैं परन्तु ये दो सर्वथा भिन्न स्थल-रूपों को चित्रित करते हैं।

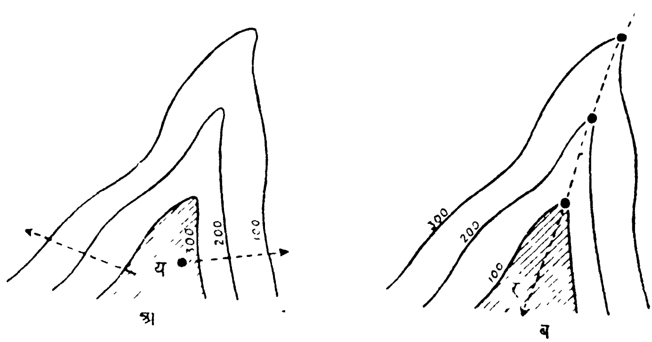

चित्र ११

(अ) पर्वत शाखा (Spur) **(ब) घाटी** (Valley)

चित्र ११ (अ) में छायांकित प्रदेश 'य' आस-पास के प्रदेशों की अपेक्षा अधिक ऊँचा है। परन्तु चित्र ११ (ब) में छायांकित प्रदेश 'र' आस-पास के प्रदेशों की अपेक्षा नीचा है। (अ) चित्र पहाड़ी श्रेणी के अन्तिम छोर या पर्वतशाखा का है और (ब) चित्र नदी घाटी के एक हिस्से को प्रस्तुत करता है। चित्र ११ (अ) में जलप्रवाह बिन्दु-रेखाओं की दिशा में बाहर की तरफ होगा परन्तु चित्र ११ (ब) में प्रवाह बीच से होगा।

जहाँ-जहाँ नदी समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं को काटती है वहाँ गहरे काले बिन्दु रख दिये गये हैं। नदी घाटी के आकार की रेखाओं का अन्तिम बिन्दु नदी के स्रोत की ओर इंगित करता है।

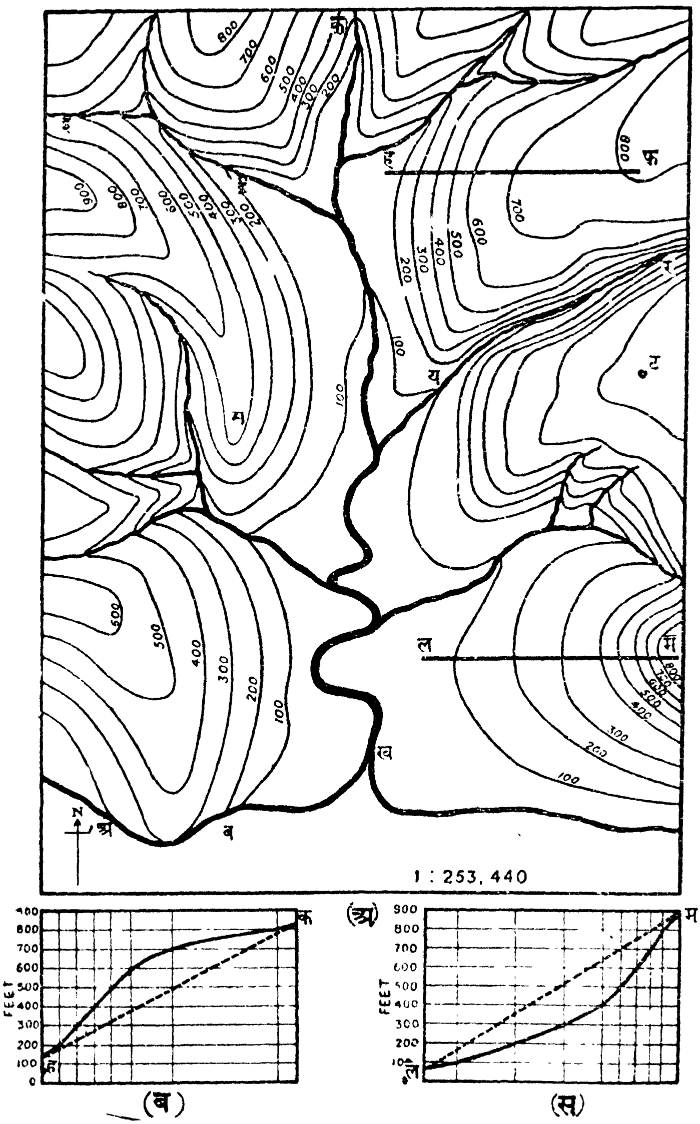

चित्र—१२

ऊपर दिये हुए चित्र में (अ) चित्र भाग एक ऐसी नदी-घाटी को प्रस्तुत करता है जिसमें

अनेक सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं। सहायक नदियों का ऊपरी भाग तेज प्रवाह-युक्त है। अतः उस भाग में समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें नदियों को पास-पास काटती हैं। इसके विपरीत नदी के क्रमशः ढाल वाले निचले भाग में जहाँ यह सपाट मैदान में से होकर बहती है समोच्चभूमिदर्शक रेखायें नदी के मार्ग को अधिक दूरी पर काटती हैं। इस प्रदेश में रेखाओं के बीच का अन्तर ऊपरी भाग की अपेक्षा अधिक है। 'य' और 'ख' बिन्दुओं के बीच नदी का जल केवल १०० फीट ऊँचे ढाल से होकर बहता है परन्तु सहायक नदी घाटी मे इ और ई बिन्दुओं के बीच नदी का जल ४०० फीट के ढाल से आता है।

'स' एक पर्वत शाखा है और अ तथा ब बिन्दुओं के बीच कई तटीय चट्टानें और शिलाखंड (Head Land) है। 'य र' सहायक नदी संकरी गहरी घाटी में से होकर बहती है। घाटी के दोनों पार्श्वों में समोच्चभूमिदर्शक रेखाओं की समीपता से यह विशेषता स्पष्ट हो जाती है।

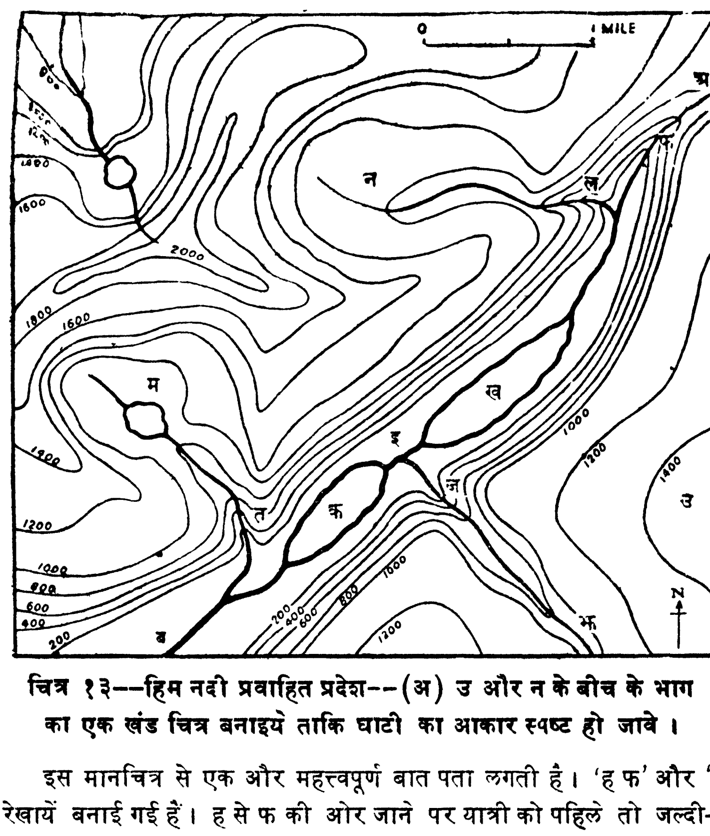

चित्र १३—हिम नदी प्रवाहित प्रदेश—(अ) उ और न के बीच के भाग का एक खंड चित्र बनाइये ताकि घाटी का आकार स्पष्ट हो जावे।

इस मानचित्र से एक और महत्त्वपूर्ण बात पता लगती है। 'ह फ' और 'ल म' दो रेखायें बनाई गई हैं। ह से फ की ओर जाने पर यात्री को पहिले तो जल्दी-जल्दी ऊपर की ओर जाना होगा और फिर धीरे-धीरे। यह बात चित्र १२ (ब) से स्पष्ट हो जाती

है। यह **उन्नतोदर ढाल** (Convex Slope) है। समोच्चभूमिदर्शक रेखायें (Contours) नीचे के तल पर तो पास-पास हैं पर ऊपर की ओर दूर-दूर हो जाती हैं। चित्र १२ (अ) से यह स्पष्ट है कि 'ह' बिन्दु से 'फ' बिन्दु को नहीं देखा जा सकता। इसके विपरीत यदि कोई 'ल' से 'म' तक जाये तो उसे पहिले धीरे-धीरे चढ़ना पड़ेगा और ऊपर पहुँच कर तेजी से। जैसा चित्र १२ (स) से स्पष्ट है यह नतोदर ढाल है। नीचे के तल में तो समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें दूर-दूर हैं परन्तु ऊँचाई पर उनके बीच का अन्तर बहुत कम हो जाता है। 'म' बिन्दु 'ल' से दिखाई पड़ेगा।

चित्र नं० १३ में हिम नदी प्रवाहित प्रदेश की कुछ प्रमुख विशेषतायें दिखलाई गई हैं। 'अ' से 'ब' तक एक लम्बी U आकार की घाटी है। इसकी दीवारें लम्बरूप और तीव्र तथा इसका आधारतल सपाट है। इस घाटी में दो लम्बी संकरी फीते जैसी झीलें हैं जो पहिले जुड़ी हुई थीं परन्तु बीच में मृत्तिकामय निक्षेप की एक पट्टी से अब अलग हो गई हैं। यह निक्षेप करने वाली सहायक नदी दक्षिणपूर्व से आती है। 'फ'

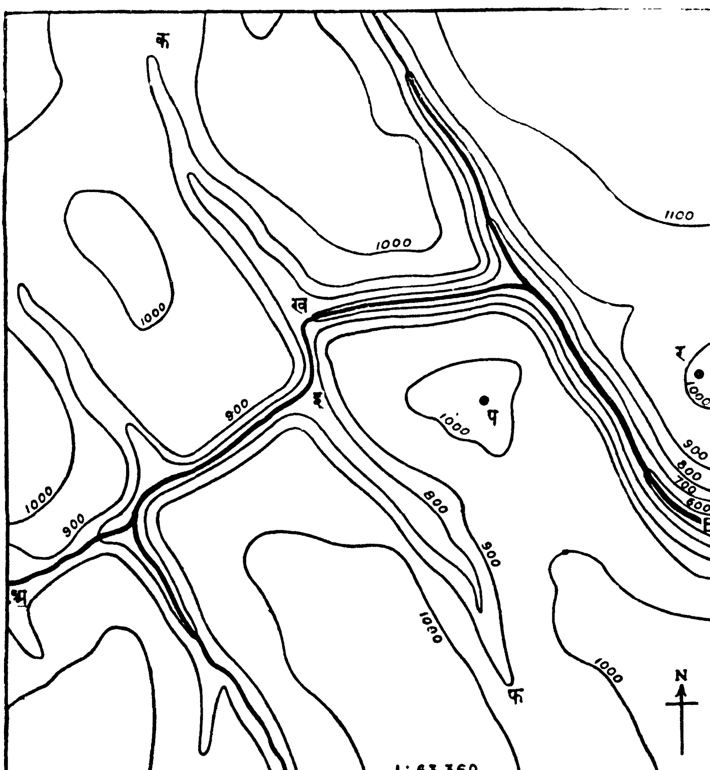

चित्र १४--चूने के पत्थर का पठार--प से र तक के प्रदेश का एक खंड चित्र खींचिये और चित्र १३ के खंड चित्र से इसकी तुलना कीजिये।

बिन्दु पर समोच्चभूमिदर्शक रेखायें इतनी पास-पास हैं कि थोड़ी दूर तक मुख्य नदी बहुत तेज़ी से गिरती है। घाटी के तल में इस प्रकार की सीढ़ी बहुत-सी हिम प्रवाहित घाटियों में पाई जाती है। १०० फीट वाली समोच्चभूमि-दर्शक रेखा के बाद घाटी की दीवारों का ढाल क्रमशः हो जाता है जिससे कि घाटी के पार्श्व कंधे जैसे मालूम पड़ने लगते हैं। सहायक घाटी 'ज झ' लटकती हुई है। ज और झ बिन्दुओं के बीच नदी की धारा धीमी गति से बहती है। परन्तु ज से उत्तर-पश्चिम में इसका बहाव तेज़ हो जाता है। इसके मार्ग में जलप्रपात बन जाते हैं और इस प्रकार यह मुख्य घाटी से जा मिलती है। इसी प्रकार के जलप्रपात अन्य उपधाराओं में क और ल स्थान पर भी हैं। 'म' एक पहाड़ी झील है जो एक गोलाकार सपाट तलवाले बेसिन में स्थित है। यह बेसिन **हिमागार** (Cirque) का उदाहरण है। इसी प्रकार का एक अन्य हिमागार 'न' स्थान पर भी है परन्तु उसमें पहाड़ी झील नहीं है। यहाँ पर नदी का तल काफी नीचा हो गया है जिससे कि झील का पानी निकलकर बह गया है। 'उ' प्रदेश में दूर-दूर स्थित समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें यह बतलाती हैं कि यहाँ के पर्वत का शिखर गोल है जैसा कि तभी सम्भव है जब उस पर हिम आवरण स्थित रहा हो।

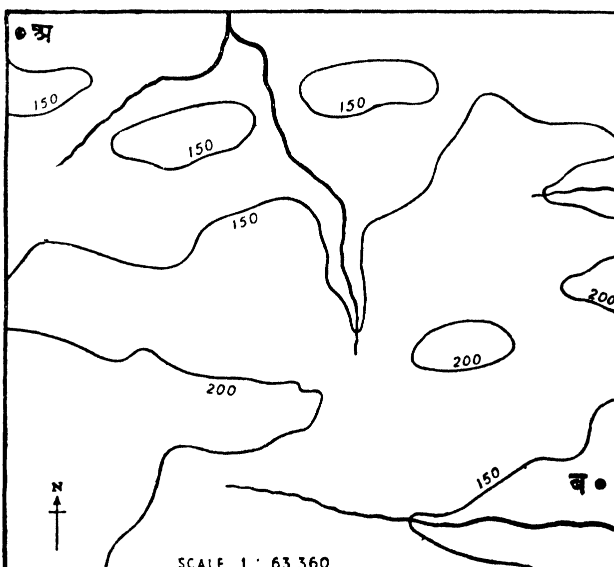

चित्र १५—ऊंचा नीचा मैदान—अ से ब तक एक खंड चित्र बनाइये। सतह की ऊंची नीची प्रकृति इससे स्पष्ट हो जायेगी।

चित्र नं० १४ में चूने के पत्थर के पठार की विशेषतायें स्पष्ट हो गई हैं जैसा कि दक्षिणी पेनाइन प्रदेश में पाया जाता है। इस समय अ और ब के बीच एक नदी प्रवाहित हो रही है। इसकी घाटी गहरी व संकरी है। यह घाटी हिमनदी घाटी से भिन्न है। इसका

तल सपाट नहीं है। सहायक धारायें भी गहरी घाटियों म से होकर बहती हैं। परन्तु कुछ सहायक घाटियों जैसे 'क ख' और 'इ फ' में जलधाराओं का अभाव है। ये शुष्क घाटियाँ हैं और चूने के पत्थर के प्रवेश्य होने के कारण ही इनका निर्माण हुआ है। ९०० फीट के बाद समोच्चभूमि दर्शक रेखायें दूर-दूर पर हैं और स्पष्ट है कि ढाल क्रमशः है। यह पठार है। चूँकि नदियों ने इसके बीच से घाटियाँ काट ली हैं, इसलिए इसे कटा-फटा पठार कहते हैं।

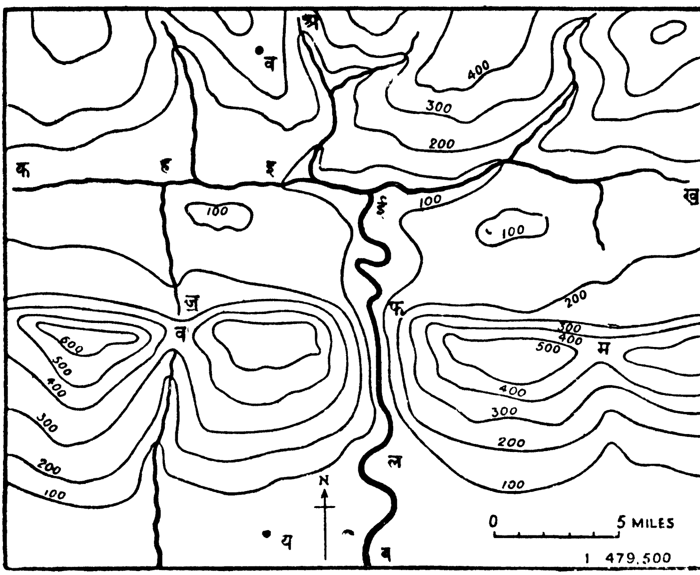

चित्र १६—उच्छृंगमय श्रेणी और चीका मिट्टी की घाटी—व य तक एक खंड चित्र बनाइये।

चित्र नं० १५ में निम्नभूमि की समोच्चदर्शक रेखायें दिखलाई गई हैं। इसमें न तो कोई तीव्र ढाल है और भूमि की सतह क्रमशः ऊँची-नीची है। ऊँचे नीचे मैदान के एक भाग का यह उदाहरण है। इसमें एक समानान्तर चौड़ी घाटी को चित्रित किया गया है। इसके उत्तर में पहाड़ी प्रदेश है और दक्षिण में उच्छृंगमय श्रेणी है। प्रधान नदी 'अ ब' उत्क्षेप अनुरूप (Consequent Stream) है। क इ और ख ई बाद में बनी सहायक नदियाँ (Subsequent streams) हैं। 'ज ह' एक छोटी नदी है। यह ढाल के विपरीत बहनेवाली उपधारा है। सम्पूर्ण जलप्रवाह नदीस्रोत-हरण (River Capture) प्रस्तुत करता है। 'व' स्थान पर शुष्क दर्रा है परन्तु श्रेणी के बीच 'फ ल' प्रदेश में वास्तविक जलपूर्ण दर्रा है। 'म' स्थान पर विभाजक पात्र (Col) या फैला हुआ गर्त (Saddle) है।

प्रश्नावली

निम्नलिखित विवरण को एक समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के मानचित्र में दिखलाइये और उपयुक्त मानदण्ड का प्रयोग कीजिये। उत्तर-दिशा को इंगित करनेवाला एक तीर भी बनाइये तथा समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं पर उचित संख्यायें डाल दीजिये:—

(१) एक नदी घाटी जिसमें एक सहायक नदी गिरती है।

(२) नदी घाटी जिसमें बहुत-सी सहायक नदियाँ आकर मिलती हों।

(३) पहाड़ी प्रदेशों से घिरी हुई झील जिसमें प्रदेश की सभी नदियाँ आकर गिरती हों।

(४) एक झील जिसकी लम्बाई पूर्व से पश्चिम तक है पहाड़ी प्रदेश के बीच में स्थित है। उत्तर, पूर्व और पश्चिम से आकर इसमें नदियाँ गिरती हैं। परन्तु दक्षिण में एक नदी झील से निकल कर बहती है। इसका निकास स्थान ३०० फीट की ऊँचाई पर है।

(५) एक पठार ४ मील लम्बा और २ मील चौड़ा है। इसकी औसत ऊँचाई १००० फीट है। उत्तर की ओर इसका ढाल तीव्र है और इससे उतर कर एक ऊँचा-नीचा मैदान है जो समुद्रतल से ३००० फीट ऊँचा है। दक्षिण की तरफ इसका ढाल क्रमशः तट की तरफ है।

(६) एक द्वीप उत्तर से दक्षिण की ओर ८ मील लम्बा और ६ मील चौड़ा है। इसके ऊपर दो चोटियाँ है। उत्तर की तरफ वाली चोटी १००० फीट ऊँची है और दक्षिण की तरफ वाली चोटी ७०० फीट ऊँची है। दक्षिण की तरफ समुद्र की ओर इस दूसरी चोटी का ढाल बड़ा ही तीव्र है। दोनों चोटियों के बीच मे स्थित विभाजक पात्र या दर्रा समुद्र तल से ३००—४०० फीट ऊँचा है। उत्तर-पश्चिम में दलदली भूमि है और उत्तर की पहाड़ी के पश्चिमी ढाल पर घने वन हैं। दक्षिण पश्चिम में 'क' नामक एक गाँव है जिसमें एक डाकखाना व गिरजाघर भी है। पूर्वी तट पर 'ख' नाम का दूसरा ग्राम है जिसमें एक तारघर तथा मीनार वाला एक गिरजा भी है। एक प्रकाश स्तम्भ भी है। ये दोनों ग्राम क और ख रेल व सड़क द्वारा मिले हुए हैं।

(७) समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं से युक्त एक रेखा-चित्र द्वारा निम्नलिखित भूखंड का एक मानचित्र बनाइये। यह भूखंड १५ मील लम्बा है, पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक २० मील चौड़ा है। पश्चिम से पूर्व तक पहाड़ियों की एक श्रेणी फैली हुई है। इस श्रेणी की चौड़ाई ५ मील है और औसत ऊँचाई ७०० फीट है। इसका तीव्र-उच्छ्रंग उत्तर की तरफ है। समुद्र की इस श्रेणी के बीच एक निम्नतटीय मैदान है जो पूर्व की तरफ धीरे-धीरे संकरा होता जाता है यहाँ तक कि पहाड़ियों का एक शिलाखंड के रूप में अन्त हो जाता है। इस श्रेणी के बीच एक जगह नदी की संकीर्ण घाटी है। इसमें से होकर एक नदी पूर्व से पश्चिम की ओर बहती है और इन पहाड़ियों को उत्तर में स्थित निचले पठार से अलग करती है। इस नदी का स्रोत पठार में है और यह तटीय मैदान में से होकर समुद्र में गिरती है।

(८) चित्र नं० १७ के प्रदेश का एक रेखा-चित्र बनाइये और ५० फीट के अन्तर पर समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें खींचिये ।

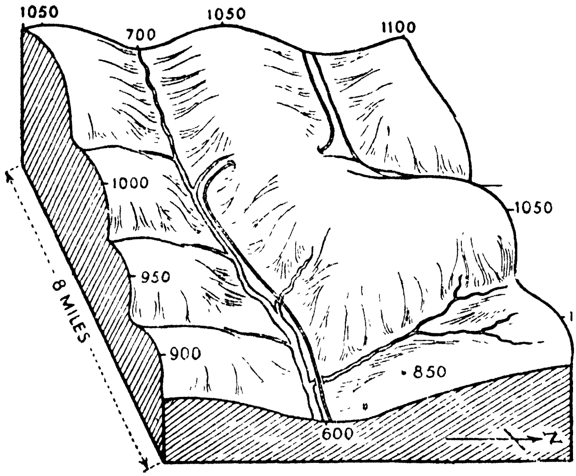

चित्र--१७

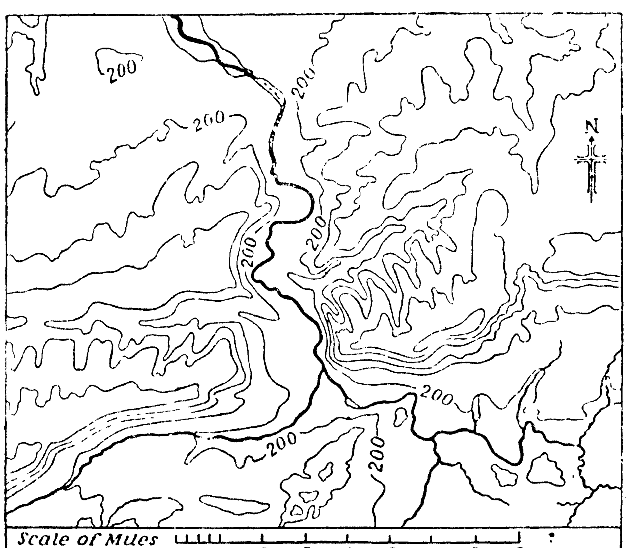

चित्र--१८

(९) चित्र नं० १८ मे दिये मानचित्र का अध्ययन कीजिये । इसमें समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें १०० फीट के अन्तर पर खींची गई हैं और सभी नदियों को चित्रित किया गया है ।

(अ) इस मानचित्र का क्षेत्रफल वर्गमील में निकालिए ।

(ब) समुद्रतल से ६०० फीट से अधिक ऊँचाई वाले भागों को छाया-ङ्कित कीजिये ।

(स) जहाँ-जहाँ हो वहाँ दर्रा, उच्छृंग और शुष्क घाटी लिखिये ।

(द) भूमि की प्राकृतिक बनावट की विशेषताओं का विवरण दीजिये ।

(इ) इस प्रदेश से होकर दो रेल-मार्ग जाते हैं । एक उत्तर से दक्षिण को और दूसरा पश्चिम से पूर्व को । उन्हें मानचित्र पर दिखलाइये ।

(१०) चित्र १८ में दिखलाई गई नदियों की मुख्य विशेषतायें बतलाइये और नदी-प्रवाह के विभिन्न स्थानों पर घाटी के रूप व प्रकृति की तुलना कीजिये ।

(११) चित्र नं० १८ मे दक्षिण-पूर्व की नदियों की दक्षिण-पश्चिम की नदियों से तुलना कीजिये और इस प्रदेश मे दिखलाई पड़नेवाले कुछ दृश्यों की तुलना कीजिये ।

(१२) चित्र नं० १८ मे बतलाइये कि कहाँ गाँव बस सकते हैं और कहाँ नही । नदी का ग्राम-स्थिति पर क्या हानिकारक प्रभाव पड़ सकता है उसे समझाइये । साथ-साथ यह भी बतलाइये कि मुख्य घाटी मे भूमि का किस प्रकार उपभोग किया जा सकता है ।

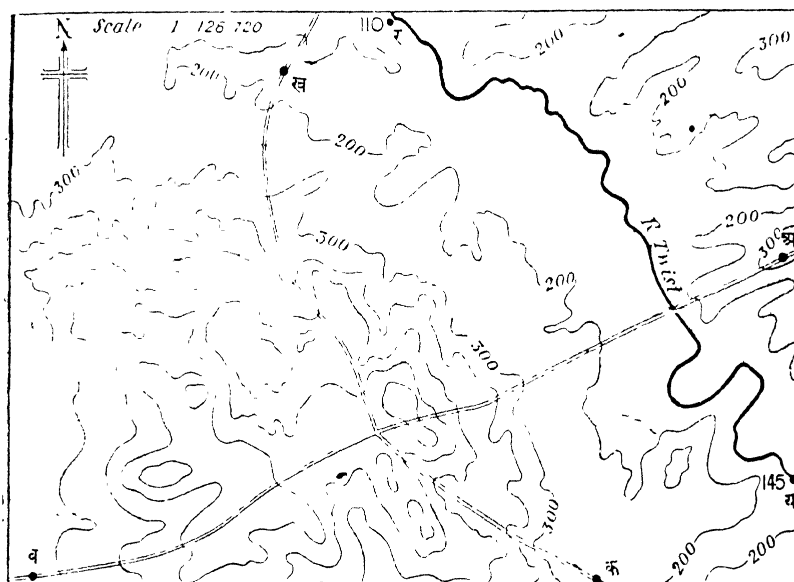

चित्र—१९

(१३) चित्र नं० १९ का अध्ययन कीजिये । समोच्च-भूमि-दर्शक रेखाओं के बीच का अन्तर १०० फीट है । 'य' 'र' के समीप अंकित संख्यायें नदी की ऊँचाई फीट में बतलाती हैं । इस प्रदेश के बीच से होकर दो सड़कें 'अ ब' और 'क ख' जाती हैं ।

(अ) ८०० फीट से ऊँचे भागों को नापिये।

(ब) 'य' और 'र' के बीच की दूरी को नदी द्वारा नापिये। नदी का औसत उतार इंच प्रतिमील में व्यक्त कीजिये।

(स) नदी के बहाव की सामान्य दिशा क्या है ?

(द) विस्तार से 'अ ब' सड़क का विवरण दीजिये और बतलाइये कि यह 'क ख' से किस प्रकार भिन्न है।

(१४) चित्र नं० १९ को देखिये और

(अ) प्राकृतिक बनावट का सामान्य विवरण दीजिये तथा प्रमुख प्राकृतिक विशेषताओं के बारे में विस्तार से लिखिये।

(ब) इस प्रदेश को मोटे तौर पर किन प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है ?

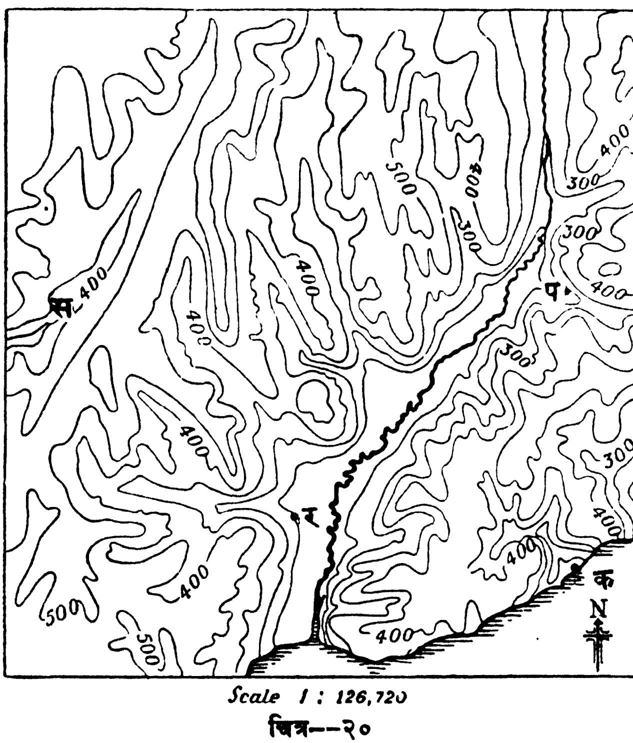

Scale 1 : 126,720

चित्र—२०

(१५) चित्र २० में इंगलैंड के दक्षिणी तटीय प्रदेश का कुछ भाग दिखलाया गया है। समुद्रतल से १०० फीट के अन्तर पर समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें खींची गई हैं। इन रेखाओं को ध्यान से देखिये और प, क, र, स स्थानों की स्थिति पर विचार प्रकट कीजिये।

(अ) ६०० फीट से अधिक ऊँचाई वाले भागों को रंगिये।

(ब) 'स' और 'प' को मिलाने वाली रेखा के आधार पर एक खंड-चित्र बनाइये।

(स) मुख्य नदी पर दाहिने किनारे की तरफ से आकर मिलने वाली दो सहायक नदियों को दिखलाइये।

(द) 'क' से 'र' होती हुई 'स' तक रेल का संभावित मार्ग दिखलाइये और सुरंगों पर चिह्न लगाइये।

(इ) मानचित्र के दक्षिण-पूर्वी सिरे पर ('प' के दक्षिण में) जल-विभाजक दिखलाइये।

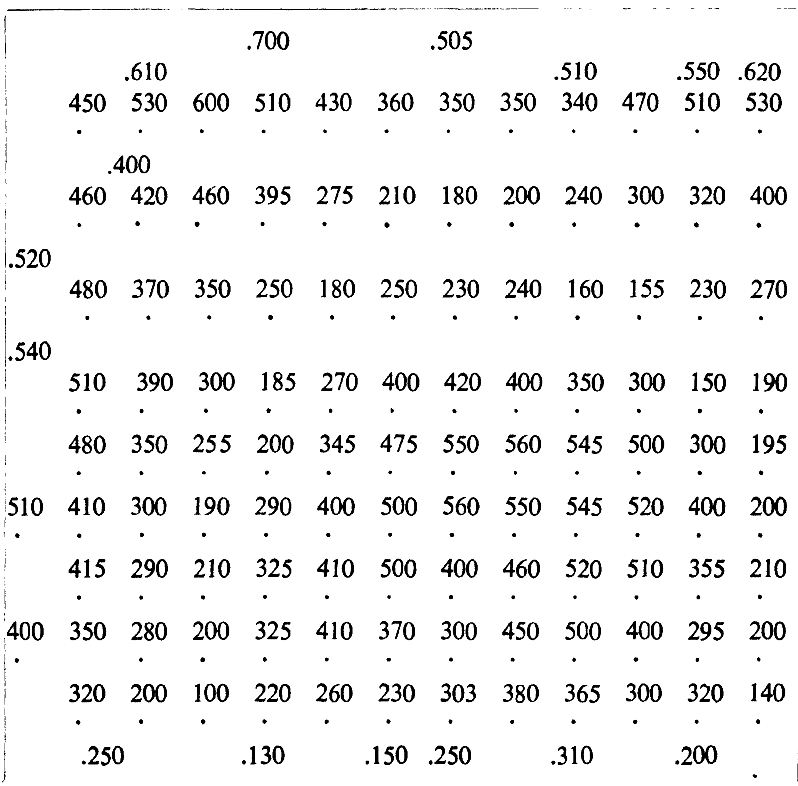

चित्र—२१

(१६) चित्र नं० २१ में दी हुई संख्यायें स्थिति या विशिष्ट ऊँचाइयाँ हैं। इनमें १०० फीट के अन्तर पर समोच्च-भूमि-दर्शक रेखायें बनाइये।

(ऐसे प्रश्न में उचित यही है कि सब से ऊँची समोच्च-भूमि-दर्शक रेखा से प्रारम्भ किया जाय।)

भूमिति चित्र का अध्ययन (Study of a Topographical Sheet)

भारत भूमिति चित्र नं० ६३ K।१२ के अन्तर्गत उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले को दिखलाया गया है। उत्तर की तरफ बनारस ज़िले और बनारस राज्य के कुछ अंश भी शामिल हैं। चित्र में दिखलाये गये क्षेत्र का क्षेत्रफल २७२ वर्गमील है। यह २५° उत्तरी अक्षांश से २५°१५° उत्तरी अक्षांश तक फैला हुआ है और ८२.३०° पूर्वी देशान्तर से ८२.४५° पूर्वी अक्षांश तक फैला हुआ है।

प्राकृतिक बनावट (Physical Features)—भूमिति चित्र को देखने से प्रदेश को दो प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है—(१) गंगा का मैदान और (२) विध्याचल का पठार। प्रदेश का दो-तिहाई भाग गंगा का मैदान है। इस मैदान की औसत ऊँचाई समुद्रतल से ३०० फीट से कम है परन्तु मिर्जापुर शहर के दक्षिण में और रोबर्टसगंज-मिर्जापुर रोड के पश्चिम मे थोड़े-से टीले पाये जाते हैं। इस मैदान के बीच से गंगा की धारा घुमावदार मार्ग से होकर बहती है। यह पूर्व-पश्चिम दिशा में बहती है और इसके दो घुमाव हैं। दक्षिणी किनारे पर कई सहायक धारायें आकर मिलती हैं। उत्तरी किनारे पर कई नाले आकर मिलते हैं। दक्षिण की ओर से आने वाली प्रधान धारायें—ओझाला नदी, खजूरी नदी और छत्तर नदी हैं। ये सभी नाले गर्मी में सूख जाते हैं और वर्षा ऋतु में इनमें बाढ़ आ जाती है।

विध्याचल का पठार इस प्रदेश का एक-तिहाई भाग घेरे हुए है। यह पठारी भाग कई जगह कटा-कटा है। इसकी औसत ऊँचाई समुद्रतल से ५०० फीट है। पठारी भाग के बीच मे देवफुलका, मुरली, राजघाट, शंकर पावा आदि नाम की अनेक छोटी-छोटी पहाड़ियाँ है। इन पहाडियों के बीच V आकार की घाटियाँ पाई जाती हैं। इनमें कई जलप्रपात भी पाये जाते हैं। हराई नदी (ओझाला नदी) पर प्रसिद्ध **टान्डा फाल्स** पाये जाते है जो ७० फीट ऊँचे हैं।

वनस्पति (Vegetation)—उत्तर के मैदान से तो प्राकृतिक वनस्पति को साफ कर दिया गया है। अधिकतर प्रदेश मे अब खेती की जाती है। पठार के आधार पर यहाँ भूमि बहुत टूटी-फूटी है तथा छत्तर और हराइ नदी की घाटियों में बंजर भूमि पाई जाती है। सम्पूर्ण मैदानी भाग में लगाये गए वृक्ष पाये जाते हैं। पठारी भाग पर जंगल पाये जाते हैं। नदियों के किनारों तथा दक्षिण की ओर जंगल काफी घने है।

बस्ती (Settlement)—निम्नलिखित प्रदेशों को छोड़ कर अन्य सब जगह गाँव बराबर से पाये जाते है। (१) विन्ध्याचल के सामने के प्रदेश का पश्चिमी किनारा, (२) गंगा के उत्तर में पूर्वी किनारे पर, (३) छतर घाटी में और (४) खजूरी व छतर नदी के बीच में रेलवे लाइन के दोनों तरफ गाँव नहीं मिलते हैं। गंगा नदी के घुमाव में बाढ़ के कारण आबादी कम है। पठार का अधिकतर भाग कम आबाद है। पठार पर जो बस्ती पाई जाती है वह तालाबों के किनारे पर होती है।

इस प्रदेश का सबसे प्रमुख नगर **मिर्जापुर** है जो नदी के पश्चिमी घुमाव के दक्षिणी किनारे पर स्थित है। यहाँ पर गंगा की धारा को आसानी से पार किया जा सकता है। नदी में काफी पानी है इसलिए नावें चल सकती हैं। मिर्जापुर की तरफ नदी का किनारा ऊँचा व ढालू है, इसलिए बाढ़ का डर नहीं रहता। प्रदेश विशेष के यातायात का मिर्जापुर ही केन्द्र है। फलतः मिर्जापुर में प्रदेश भर की वस्तुएँ इकट्ठी की जाती हैं और फिर उनका वितरण होता है।

इसके बाद **विन्ध्याचल** का स्थान है। जैसा कि मन्दिरों से स्पष्ट होता है, यह धार्मिक केन्द्र है। मिर्जापुर की तरह यह शहर भी गंगा और रेलमार्ग के बीच फैला हुआ है।

गंगा के उत्तर में **खमरिया** और **कछवा** नामक दो बाजार हैं। खमरिया में सोमवार और मंगल को बाजार लगता है, तथा एक छोटी-सी दरी-गलीचा बनाने की फैक्टरी भी है। कछवा में मंगलवार और शनिवार को बाजार लगता है। इससे चारों तरफ को सड़कें जाती हैं।

यातायात के साधन (Means of Communication)—इस प्रदेश से होकर दो रेल-मार्ग जाते हैं—**उत्तर रेल-मार्ग** जो पहारा, झिंगुरा, मिर्जापुर और विंध्याचल से होकर गुजरता है और **पूर्वोत्तर रेल-मार्ग** (छोटी लाइन) जो प्रदेश के उत्तरी भाग में पूर्व से पश्चिम को जाता है तथा बनारस-इलाहाबाद रेल-मार्ग का ही भाग है। इस प्रदेश में कोई २२ मील लम्बी रेलें हैं। इस प्रकार प्रति मील रेल-मार्ग पर १२ वर्गमील का औसत पड़ता है।

इस प्रदेश में सभी प्रकार की **सड़कें** पाई जाती हैं। पश्चिमी भाग में मोटर सड़कें हैं जो मिर्जापुर से सभी दिशाओं को जाती हैं। इनमें कुछ प्रमुख मोटर-सड़कों के नाम इस प्रकार हैं—(१) ग्रेट डेकन सड़क, (२) मिर्जापुर-राबर्ट्सगंज सड़क, (३) जौनपुर-मिर्जापुर सड़क, (४) चिल्ह-गोपीगंज सड़क, (५) मिर्जापुर-इलाहाबाद सड़क, (६) मिर्जापुर-भटौलीघाट सड़क। इन मुख्य सड़कों के अतिरिक्त कुछ और भी गौण मोटर सड़कें हैं। मिर्जापुर और चुनार, कछवा तथा महराजगंज के बीच बड़ी महत्त्वपूर्ण साधारण सड़कें पाई जाती हैं। कछवा से चुनार, राजा तलाब, छतेरी, मानपुर और महराजगंज को कच्ची सड़कें हैं। भूमिति चित्र को ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि सभी सड़कें मिर्जापुर पर केन्द्रित हैं। पठार की अपेक्षा गंगा की घाटी में सड़कों की अधिकता है। पूर्वी भाग की अपेक्षा पश्चिमी भाग में सड़कों का अच्छा प्रबन्ध है। पूर्वी भाग में पगडंडी के अलावा और कोई साधन नहीं है।

गंगा नदी स्वयं एक महत्त्वपूर्ण जलमार्ग है और उस पर छोटी-छोटी नावों द्वारा आया-जाया जाता है।

सिंचाई व पानी के साधन (Means of Irrigation and Water)—इस प्रदेश में नहरें नहीं हैं। सिंचाई और पीने के पानी के लिए केवल दो साधन हैं—कुएँ और तालाब। मैदानी भाग में तो कुएँ तथा पठारी भाग में तालाब

पाये जाते हैं जिनसे प्राप्त जल को पीने के लिए तथा खेती के लिए प्रयोग करते हैं। टण्डाधारी ताल और चन्देवा ताल विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। टण्डाधारी ताल टाण्डा जल-प्रपात के समीप स्थित है और मिर्जापुर नगर को पीने का पानी इसीसे प्राप्त होता है।

धंधे—गाँवों की अधिकता से स्पष्ट है कि इस प्रदेश का प्रधान धंधा खेती ही है। मैदानी भाग में दूर-दूर तक खेत-ही-खेत पाये जाते हैं। पठार पर कहीं-कहीं ही खेत दिखलाई पड़ते हैं। पठारी भाग में लकड़ी काटना, पशु व भेड़ चराना तथा पत्थर खोदना प्रधान धंधे हैं। पहाड़ी भोजपुर, उमरिया और मोहनपुर में पत्थर की विस्तृत खानें हैं।

इसके अलावा मिर्जापुर में एक कपड़ा बुनने की मिल है तथा खमरिया में दरी-गलीचों की एक फैक्टरी है।

अध्याय दो

पृथ्वी के सौर सम्बन्ध

(EARTH AS A PLANET)

ब्रह्माण्ड की रचना (The World in Space)

प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि पृथ्वी ब्रह्माण्ड का केन्द्र है और इसके चारों ओर सूर्य व तारे घूमते रहते है। धीरे-धीरे नक्षत्र-विज्ञान का ज्ञान जैसे बढ़ा, यह धारणा त्रुटिपूर्ण साबित हुई और लोग इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्माण्ड का केन्द्र सूर्य है। बहुत दिनों तक यही धारणा कायम रही परन्तु अब यह पता चल गया है कि सूर्य की तरह के अनेक सूर्य इस ब्रह्माण्ड में उपस्थित है। हमारा सूर्य सौरमंडल (Planetary System) का केन्द्र है। इसके चारों ओर कई नक्षत्र घूमते रहते है। इसी प्रकार के और भी सौरमंडल है। विभिन्न सौरमंडलों से मिलकर ब्रह्माण्ड बना है। साफ रात्रि में चमकने वाले सैकड़ों तारे और कुछ नहीं विभिन्न सौरमंडल है। दुग्धमार्ग (Milky Way) नामक तारासमूह से हजारों, लाखों मील दूर पर करोड़ों छोटे-छोटे तारासमूह हैं। नक्षत्र-विज्ञान के शास्त्री इनको नीहारिका (Nebulae) कहते हैं। प्रत्येक नीहारिका के अन्तर्गत एक तारा समूह होता है जिसमें करोड़ों सूर्य सम्मिलित होते हैं। इनमे से बहुत-से सूर्यो के चारों ओर उनके ग्रह व उपग्रह भ्रमण करते रहते हैं। सर आर्थर एडिन्गटन नामक प्रसिद्ध नक्षत्र-विज्ञानवेत्ता के अनुसार ब्रह्माण्ड में ११,००० करोड़ सूर्य है। इस खोज से स्पष्ट है कि हमारा सौरमंडल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक अंशमात्र है।

सौरमंडल (The Planetary System)

सौरमंडल में सूर्य और उसके चारों ओर भ्रमण करते हुए नव ग्रह सम्मिलित है। इनमें बहुत से ग्रहों के चारों ओर उनके उपग्रह—चाँद—भ्रमण किया करते है। पृथ्वी का एक उपग्रह चन्द्रमा है परन्तु बृहस्पति और शनि के नौ-नौ उपग्रह हैं।

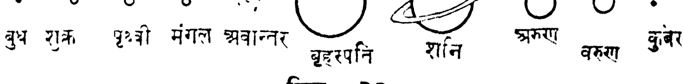

चित्र—२२

प्रत्येक ग्रह के भ्रमण को उसकी कक्षा कहते है। इसी पर वह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा किया करता है। बुध ग्रह सूर्य के सबसे अधिक समीप है। इसके बाद क्रमशः शुक्र, पृथ्वी, मंगल, अवान्तर, वृहस्पति, शनि, अरुण, वरुण और कुबेर का स्थान है। कुबेर ग्रह सबसे छोटा है और उसका पता सन् १९३० में लगा। यद्यपि हमारा सौरमंडल समस्त ब्रह्माण्ड का एक अंशमात्र है, हमारे विचारों के अनुसार ग्रहों के बीच तथा सूर्य से उनकी दूरी बहुत अधिक है। यदि हम एक बहुत तेज हवाई जहाज़ पर बैठ कर

पृथ्वी से सूर्य की ओर बढ़े तो हमें वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते लगभग २० वर्ष लग जायेंगे। इसी प्रकार के तेज हवाई जहाज में दिन-रात अथक यात्रा करते रहने पर कुबेर की कक्षा का पूरा चक्कर करीब ५,००० वर्षों में पूरा हो सकेगा। इससे सौरमण्डल का विस्तार व उसके सदस्यों के बीच की दूरी का अन्दाज किया जा सकता है। हमारी पृथ्वी जो हमें इतनी विशाल मालूम पड़ती है, सूर्य के सामने उसका एक अंशमात्र है। यदि हम पृथ्वी के विस्तार को टेनिस के एक गेंद द्वारा व्यक्त करें तो सूर्य का विस्तार सामान्य विस्तार के चार कमरों के बराबर होगा।

इस सौरमण्डल में सूर्य ही प्रकाश व ताप का देने वाला है। सूर्य की आकर्षण शक्ति के ही कारण विभिन्न ग्रह अपने-अपने कक्षा-तलों पर स्थित हैं। परन्तु प्रश्न यह होता है कि क्या अन्य ग्रहों पर भी उसी प्रकार के जीव-जन्तु व प्राणी पाये जाते हैं जैसे कि पृथ्वी पर। सच तो यह है कि बुध और शुक्र सूर्य के इतने समीप हैं कि वहाँ पर बहुत अधिक गर्मी रहती है। सूर्य से दूर स्थित ग्रह, इसके विपरीत, इतने ठंडे रहते हैं कि उन पर किसी प्रकार की जीवोत्पत्ति सम्भव नहीं है। मंगल ग्रह के विषय में जो खोज हुई है उससे पता चलता है कि वहाँ काफी ठंडक रहती है और जीवन के चिह्नों का अभाव है।

पृथ्वी का आकार (The Shape of the Earth)

प्राचीनकाल में पृथ्वी के सम्बन्ध में दूसरी गलत धारणा यह थी कि पृथ्वी का आकार चपटा है। आज हमें पता चल गया है कि पृथ्वी का आकार गोल है परन्तु इसके दोनों सिरे संतरे की तरह चपटे हैं। इससे अधिक सत्य तो यह होगा कि पृथ्वी के उत्तरी ध्रुव और दक्षिणी ध्रुव भागों का चपटा आकार नाशपाती की तरह है। इसीलिए पृथ्वी के आकार को नाशपाती सदृश बतलाते हैं। परन्तु पृथ्वी के दोनों सिरों पर यह चपटापन इतना कम है कि यदि हम १६ इंच व्यास का एक ग्लोब लें तो उस पर सिरों का चपटापन कागज के पृष्ठ की मोटाई के बराबर ही होगा। यही कारण है कि बहुधा पृथ्वी के आकार का वर्णन करते समय कहते हैं कि पृथ्वी का आकार पृथ्वी जैसा ही है।

पृथ्वी के आकार-सम्बन्धी प्रमाण

पृथ्वी वृत्ताकार है इस विश्वास के समर्थन में अनेकों प्रमाण उपस्थित किए जा सकते हैं :—

(१) अगर पृथ्वी चपटी होती तो सूर्योदय और सूर्यास्त संसार के सभी देशों में एक ही समय पर होता। परन्तु यह अच्छी तरह मालूम है कि संसार के विभिन्न भागों में सूर्योदय और सूर्यास्त अलग-अलग समय पर होता है। इसका कारण पृथ्वी का वृत्ताकार होना ही है।

(२) केवल वृत्ताकार वस्तुएँ ही गोल दिखलाई पड़ती हैं चाहे हम उन्हें किसी भी स्थान से देखें। सूर्य, चन्द्रमा, और अन्य सभी तारे गोल नजर आते हैं। इस आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सभी ग्रह, उपग्रह और तारे वृत्ताकार हैं। यदि ऐसा है तो पृथ्वी भी वृत्ताकार होनी चाहिए।

(३) ग्रहण के समय चन्द्रमा पर पड़नेवाली पृथ्वी की छाया सदैव गोल ही

रहती है। यदि पृथ्वी चपटी होती तो घुमाये जाने पर उसकी छाया लम्बी या अण्डाकार हो जाती।

(४) जहाज के डेक पर मे क्षितिज सदैव ही गोलाकार नजर आता है। यदि कोई पाल के डंडे पर चढ़कर समुद्र की ओर दृष्टि डाले तो समुद्र का अधिकाधिक भाग नजर आयेगा परन्तु क्षितिज फिर भी गोलाकार बना रहेगा।

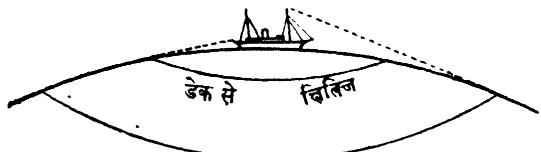

चित्र—२३

(५) समुद्र के किनारे स्थित चट्टान पर खड़ा निरीक्षक किनारे की तरफ आते हुए जहाज को पूरा-का-पूरा नही देख पाता। पहिले उसका धुआँ, फिर उसकी चिमनी और फिर उसका शरीर या ढाँचा नजर आता है। यदि पृथ्वी चपटी होती तो पूरा का पूरा जहाज एक ही बार में नजर आ जाता चाहे वह कितनी ही दूर पर क्यों न हो।

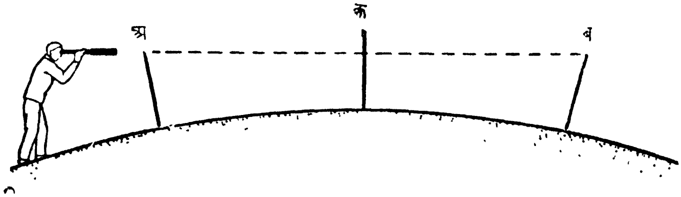

चित्र—२४

(६) वेडफोर्ड समतल नहर पर एक प्रयोग किया गया। इसके पानी की सतह को समतल समझा गया। नहर की तली में तीन-तीन मील के अन्तर पर तीन डण्डों को गाड़ दिया गया। इस बात का ध्यान रक्खा गया कि इन डण्डों की ऊँचाई जल के ऊपर बराबर रहे। फिर एक निरीक्षक ने दूरबीन की सहायता से इस प्रकार देखा कि 'अ' नामक खम्भ का सिरा 'ब' नामक खम्भ के सिरे के साथ एक तल में रहे। इस प्रकार बनी दृष्टिरेखा 'अ ब' 'क' नामक मध्यवर्ती खम्भ के बीच से गुजरती हुई मालूम पड़ी। यह 'स' खम्भ को जिस बिन्दु पर काटती हुई गुजरी वह ऊपरी सिरे से कोई ६ फीट नीचे था। यदि पृथ्वी चपटी होती तो ऐसा कभी नहीं होता।

(७) हम दुनिया की सम्पूर्ण परिक्रमा करके प्रस्थान बिन्दु पर वापस पहुँच सकते हैं। भूमंडल के किसी भी स्थान से हम किसी भी दिशा में प्रस्थान करें तो सम्पूर्ण भूमंडल की परिक्रमा भी हो जायेगी और हम फिर उसी स्थान पर आ पहुँचेंगे।

पृथ्वी का विस्तार और धरातल पर स्थान निश्चित करने की रीति

पृथ्वी की परिधि २५,००० मील है और इसका व्यास लगभग ८००० मील है। परन्तु वास्तव में पूर्व से पश्चिम वाला व्यास उत्तर से दक्षिण वाले व्यास से कुछ अधिक लम्बा है । उत्तरी व दक्षिणी ध्रुवों पर चपटी होने के कारण पृथ्वी का ध्रुवीय व्यास केवल ७९०० मील है जबकि उसका भूमध्यरेखीय व्यास ७९२०० मील है।

पृथ्वी की सतह पर स्थानों की स्थिति निश्चय करने के लिए कुछ काल्पनिक रेखाओं की योजना करते है। इन रेखाओं को अक्षांश व देशान्तर रेखायें कहते हैं। देशान्तर रेखायें उत्तर से दक्षिण की ओर चलती हैं और सम-क्षेत्रफल के पूर्ण वृत्त बनाती हैं जो उत्तर व दक्षिण ध्रुवों से होकर गुजरते हैं। अक्षांश रेखायें देशान्तर रेखाओं के साथ समकोण बनाती हैंऔर भूमध्य-रेखा के समानान्तर पूर्व से पश्चिम की ओर चलती है। भूमध्य-रेखा स्वयं एक अक्षांश है जो दोनों ध्रुवों के बीच पृथ्वी को दो बराबर भागों में बाँटती है। इसे ०° अक्षांश भी कहते हैं और अक्षांश रेखाओं को समानान्तर रेखायें भी कहते हैं।

भूमध्य-रेखा और सभी देशान्तर रेखायें पूर्ण वृत्त बनाती है। इन पूर्ण-वृत्तों की विशेषता यह है कि इनका केन्द्र और पृथ्वी का केन्द्र एक ही है। ये पूर्णवृत्त पृथ्वी को दो गोलार्द्धों में बाँटते है। परन्तु अक्षांश रेखायें पूर्णवृत्त नहीं बनातीं। इन पूर्णवृत्तों (दीर्घवृत्तों) की विशेषता यह है कि इनकी परिधि पर स्थित किन्ही दो बिन्दुओं के बीच की सबसे कम दूरी वृत्त की परिधि-अंश ही होती है।

(अ) **देशान्तर रेखाओं** (Longitudes) को मध्याह्न रेखा (Meridians) भी कहते है। मध्याह्न का अर्थ दिन का मध्यकाल होता है। एक मध्याह्न रेखा पर स्थित सभी स्थानों पर एक ही समय दोपहर होता है। दिये हुए चित्र में अ ब स द एक ऐसा वृत्त है जो दोनों ध्रुवों के बीच पृथ्वी को दो भागों में बाँटता है। यह वृत्त भूमध्य-रेखा कहलाता है और इस को ३६० अंशों में बाँटा जा सकता है। 'क' पृथ्वी का केन्द्र है और' व क स' कोण २०° का है। यदि 'न स म' देशान्तर रेखा ०° की है तो 'न व म' रेखा २०° देशान्तर होगी। चूँकि यह 'न स म' के पश्चिम में है इसे २०° पश्चिमी देशान्तर कहेंगे। इस प्रकार स्पष्ट है कि १° अंश के अन्तर पर ३६०° देशान्तर रेखायें खींची जा सकती है। प्रत्येक रेखा अर्द्धवृत्त बनाती है और

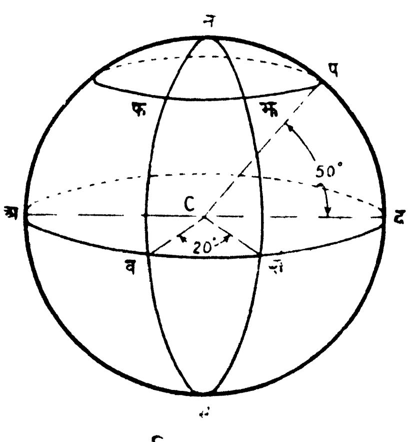

चित्र—२५

ध्रुव उसके सिरे होते हैं। जो देशान्तर रेखा ग्रीनविच से होकर गुजरती है उसे प्रधान मध्याह्न रेखा कहते हैं। इसको ० अंश कहते हैं। इसके विपरीत दुनिया की दूसरी तरफ

की देशान्तर रेखा को १८० अंश का कहते हैं। ० अंश देशान्तर रेखा से पूर्व व पश्चिम की ओर १८०° अंश तक देशान्तर रेखायें खींचते हैं। १८०° पूर्व और १८०° पश्चिम देशान्तर रेखायें एक ही हैं।

(ब) **अक्षांश रेखायें** (Latitudes) पृथ्वी के चारों ओर खींचे गये ऐसे वृत्त हैं जो भूमध्य-रेखा के समानान्तर रहते हैं। ऊपर दिये गये चित्र में प फ म एक अक्षांश वृत्त है। यदि 'प क द' कोण ५०° का है तो यह अक्षांश ५०° समानान्तर कहलायेगा। और 'प' बिन्दु भूमध्यरेखा से ५०° उत्तर में है। चूँकि वृत्तांश 'न स' पूर्ण वृत्त का एक चौथाई भाग है, इसमें ९० अंश होंगे। इस प्रकार भूमध्य-रेखा के समानान्तर और १° अंश के अन्तर पर ८९° अक्षांश रेखायें खींची जा सकती हैं। ९०° अंश का वृत्त बिन्दु मात्र होगा। उत्तरी ध्रुव ९०° उ० अक्षांश है। इसी प्रकार दक्षिणी ध्रुव ९०° दक्षिणी अक्षांश हैं। भूमध्य-रेखा ०° अक्षांश है।

देशान्तर व अक्षांश रेखाओं के सहारे पृथ्वी की सतह पर स्थित विभिन्न स्थानों की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। पीछे दिये हुए चित्र में बिन्दु 'फ' ५०° उत्तरी अक्षांश और २०° पश्चिमी देशान्तर के मिलन बिन्दु पर स्थित है। इसलिए 'फ' स्थान ५०° उत्तरी अक्षांश और २०° पश्चिमी देशान्तर में स्थित है।

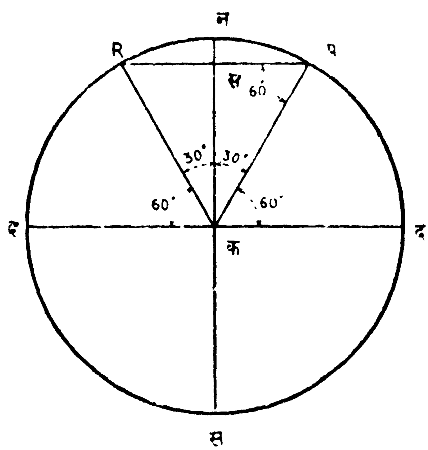

चित्र २६—६०° अक्षांश की लम्बाई भूमध्य-रेखा की आधी होती है।

उसी चित्र में 'म' स्थान ०° देशान्तर पर स्थित है और 'क' स्थान से २०° पूर्व की ओर है या 'म' की अपेक्षा 'क' २०° पश्चिम में स्थित है। 'क' और 'म' का अन्तर २०° है और 'व स' का अन्तर भी २०° है परन्तु 'व स' की अपेक्षा 'फ म' का विस्तार कम है। इसका कारण यह है कि विभिन्न देशान्तर रेखाओं के बीच की दूरी या अन्तर भूमध्य-रेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर क्रमशः कम होता जाता है। इस प्रकार किन्हीं दो देशान्तर रेखाओं के बीच का अन्तर भूमध्य-रेखा पर सबसे अधिक होता है। देशान्तर अंशों का विस्तार भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर जाने पर बराबर घटता जाता है। ६०° उत्तरी

अक्षांश पर देशान्तर के एक अंश का विस्तार भूमध्यरेखा पर एक अंश की अपेक्षा आधा ही रह जाता है।

मान लो कि 'प' ६०° उत्तरी अक्षांश पर एक विन्दु है।

ऐसी दशा में कोण प क द = ६०° और कोण र क इ = ६०°

इसलिए कोण र क प = १८०°—६०°—६०° = ६०°

चूंकि 'र प' रेखा 'इ द' रेखा के समानान्तर है और कोण 'र प क' = ६०°, कोण प र क = ६०°।

इसलिए 'र प क' समत्रिबाहु त्रिभुज है।

इसलिए र प = प क = क द = $\frac{१}{२}$ इ द (भूमध्यरेखा के आधे के) लेकिन 'र प' ६०° अक्षांश वृत्त का व्यास है और 'इ द' भूमध्य-रेखा के वृत्त का व्यास है। चूंकि व्यास 'र प' व्यास 'इ द' का आधा है, यह स्पष्ट है कि ६०° उत्तरी अक्षांश भूमध्य-रेखा के आधे के बराबर है। और ६०° उत्तरी अक्षांश पर १° अंश का विस्तार भूमध्य-रेखा पर १° अंश के विस्तार का आधा होगा।

अतएव देशान्तर को हम प्रधान मध्याह्न-रेखा से पूर्व या पश्चिम की ओर मीलों या गजों में नापी गई दूरी नही कह सकते। देशान्तर द्वारा कोणिक दूरी का भास होता है। कोण द्वारा नापी गई दूरी ही देशान्तर है। इसके विपरीत अक्षांश रेखाये करीब-करीब समान दूरी पर रहती है। चूँकि पूर्ण पृथ्वी की परिधि में ३६० अंश होते है और वास्तविक विस्तार २५००० मील है, इसलिए १° अक्षांश हर स्थान पर $\frac{२५०००}{३६०}$ मील होगा। दूसरे शब्दों में १ अंश अक्षांश ६९.४ मील के बराबर होता है।

प्रत्येक अंश में ६० मिनट और प्रत्येक मिनट मे ६० सैकण्ड होते है (इन मिनट व सैकण्ड का समय से कुछ भी सम्बन्ध नही है) इस प्रकार यदि कोई स्थान २४° ५०′ २०″ उत्तर मे है तो इसके अर्थ हुए कि वह स्थान भूमध्य-रेखा से २४ अंश ५० मिनट २० सैकण्ड उत्तर मे है।

पृथ्वी की गतियाँ और उनका प्रभाव

पृथ्वी की दो गतियाँ है। प्रथम तो यह अपनी धुरी पर घूमती रहती है और २४ घंटे में एक पूरा चक्कर कर लेती है। इस गति को पृथ्वी की दैनिक गति (Rotation) कहते हैं और इसके द्वारा दिन-रात होते है। दूसरी यह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा किया करती है और सूर्य के चारों ओर भ्रमण करने में इसे ३६५$\frac{१}{४}$ दिन लगते हैं। इसे पृथ्वी की **वार्षिक गति** कहते हैं और इसके भ्रमण पथ को इसकी कक्षा कहते हैं। जिस तल में पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है उसे पृथ्वी का कक्षा-तल कहते है। पृथ्वी की धुरी इस कक्षा तल पर समकोण नहीं बनाती, पृथ्वी की धुरी कक्षातल के साथ लम्ब-रूप न होकर, ६६$\frac{१}{२}$° के कोण पर झुकी हुई है। यही कारण है कि ग्लोब में भी उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव को मिलाने वाली रेखा लम्बरूप कभी भी नहीं होती। पृथ्वी की वार्षिक गति और उसकी धुरी के झुके रहने के कारण

(अ) कर्क, और मकर रेखायें तथा आर्कटिक व अन्टार्कटिक वृत्त निर्धारित होते हैं।

(ब) पृथ्वी पर मौसम या ऋतुओं का हेर-फेर होता रहता है।

(स) दिन व रात की अवधि कभी कम और कभी ज्यादा होती रहती है।

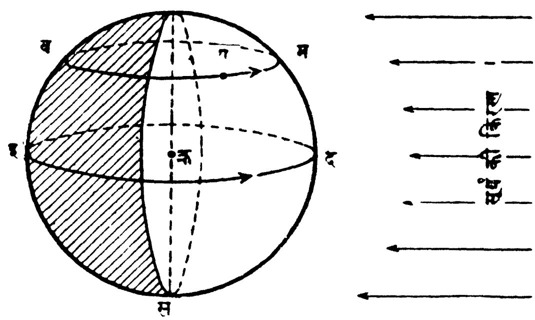

चित्र २७--दिन रात समरात्रि को पृथ्वी के हर स्थान पर दिन रात बराबर होते हैं।

पृथ्वी को दैनिक गति का प्रभाव

दिन-रात--ऊपर दिये हुए चित्र से स्पष्ट हो जाता है कि पृथ्वी के अपनी धुरी पर घूमते रहने से दिन-रात का प्रादुर्भाव किस प्रकार हो जाता है। पृथ्वी अपनी धुरी

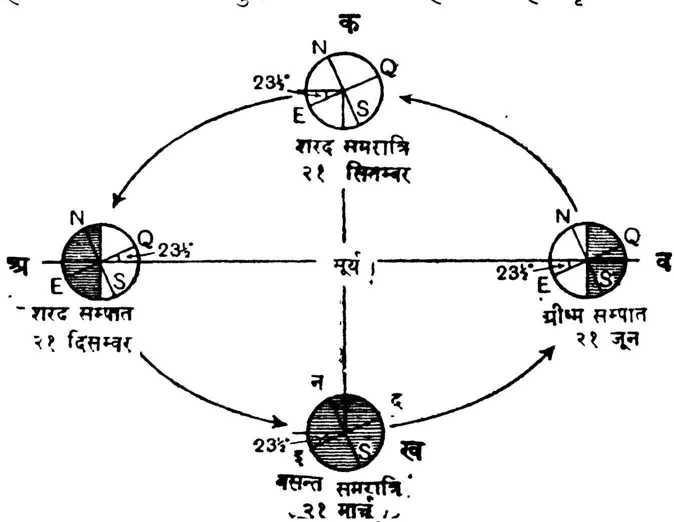

चित्र २८--मौसम

'न स' पर घूमती रहती है और इसका चक्कर पश्चिम से पूर्व को लगता रहता है। स्पष्ट है कि एक विशेष समय पर पृथ्वी के गोले का आधा ही भाग प्रकाश में रह सकता

है। और जब एक भाग प्रकाश में रहता है तो दूसरा आधा भाग अन्धेरा रहता है। 'प' नामक स्थान 'प म व' वृत्त में घूमता है और चित्र से स्पष्ट है कि इसके भ्रमण का कुछ भाग प्रकाश में होगा और कुछ अन्धकार में। अर्थ यह है कि इसके २४ घंटों का कुछ भाग दिन होगा और कुछ भाग रात।

पृथ्वी की वार्षिक गति (Revolution) के प्रभाव

(अ) अयन रेखाओं (Tropics) **का निर्धारण**—ऊपर दिये हुए चित्र से पृथ्वी की सूर्य के प्रति विभिन्न स्थितियाँ स्पष्ट हो जाती है। प्रयोग के वास्ते मेज के बीच में प्रकाश रक्खो और उसे सूरज मान लो। फिर चित्र में दिखलाये तरीके से विभिन्न स्थितियों में ग्लोब को रक्खो। एक धागे को लेकर उसे ग्लोब की प्रत्येक स्थिति में छूने दो। 'क' और 'ख' स्थितियों मे धागा भूमध्य-रेखा को सीधे छूता हुआ रहेगा। 'ब' में यह पृथ्वी को भूमध्य-रेखा से २३$\frac{1}{2}$° उत्तर की ओर छुयेगा और 'अ' में २३$\frac{1}{2}$° दक्षिण की ओर। अतः इन्हीं अक्षांशों में दी हुई तिथियों को सूर्य की किरणें लम्ब रूप में पड़ती रहती है।

इस प्रकार २१ सितम्बर और २१ मार्च के दिन दोपहर के समय भूमध्य-रेखा पर सूर्य की किरणें सीधी पड़ती रहती है। इन दिनों को **समरात्रियाँ** (Equinoxes)

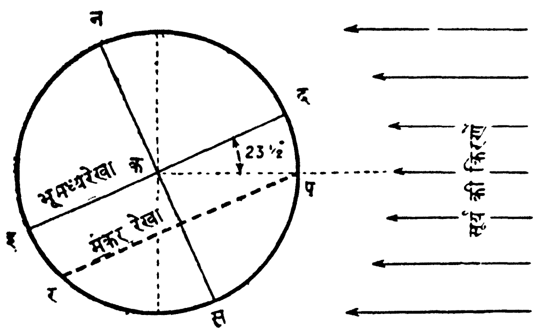

चित्र २९--मकर रेखा को निर्धारित करने की विधि। इस चित्र से पृथ्वी का सूर्य की किरणों के प्रति जनवरी महीने की स्थिति का पता चलता है।

कहते हैं, क्योंकि इस दिन संसार के सब भागों में दिन-रात बराबर होते हैं—१२ घंटे का दिन और १२ घंटे की रात। २१ दिसम्बर को जिसे **शीत सम्पात** (Winter Solstice) कहते हैं, सूर्य की किरणें भूमध्य-मेखा से २३$\frac{1}{2}$° दक्षिण की ओर सीधी पड़ती रहती हैं। २१ जून के दिन जिसे **ग्रीष्म सम्पात** (Summer Solstice) कहते हैं, सूर्य की लम्बरूप किरणें भूमध्य-रेखा से २३$\frac{1}{2}$° उत्तर की ओर पड़ती रहती है। दोनों **सम्पात** (Solstice) स्थितियों के बीच सूर्य की लम्बरूप किरणों में कुछ परिवर्त्तन आता रहता है परन्तु इन सीमाओं के बाहर कभी भी नहीं जा पाता।

२३$\frac{1}{2}$° उत्तर और दक्षिण अक्षांश भूमध्य-रेखा के दोनों तरफ सूर्य के प्रकाश की

गति की अन्तिम सीमा बनाते हैं और इन्हें अयन रेखायें कहते हैं। २३½ उत्तरी अक्षांश को कर्करेखा और २३½ दक्षिणी अक्षांश को मकररेखा कहते हैं।

चित्र २९ और ३० से यह स्पष्ट हो जाता है कि अयन रेखाओं को किस प्रकार निर्धारित किया जाता है। दोपहर के समय सूर्य की लम्बरूप किरणें इन दोनों रेखाओं से परे किसी भी स्थान पर कभी भी नहीं पड़तीं। इन दोनों रेखाओं से सीमित पृथ्वी के अंश में सूर्य की किरणें साल में दो बार लम्बरूप पड़ती हैं। एक तो उस समय जबकि सूर्य भूमध्य-रेखा से उत्तर में कर्करेखा की ओर जाता रहता है और दूसरे जब यह दक्षिण की ओर मकररेखा की तरफ चलता है।

(**ब**) **मौसम**—वसन्तु ऋतु, गर्मी, पतझड़ और सर्दी के मौसम में तापक्रम का अन्तर सूर्य की ऊँचाई की विभिन्नता पर निर्भर रहता है। पृथ्वी की धुरी के एक दिशा में झुके रहने के कारण साल के भीतर विभिन्न समय पर सूर्य की किरणों का झुकाव अलग-अलग होता है। यह तो स्पष्ट ही है कि सूर्य वसन्त और पतझड़ के समय यानी मार्च और सितम्बर में भूमध्य-रेखा पर लम्बरूप चमकता रहता है। उत्तरी गोलार्द्ध के जाड़े के दिनों में यानी दिसम्बर के समय सूर्य की किरणें मकर रेखा पर सीधी पड़ती रहती हैं।

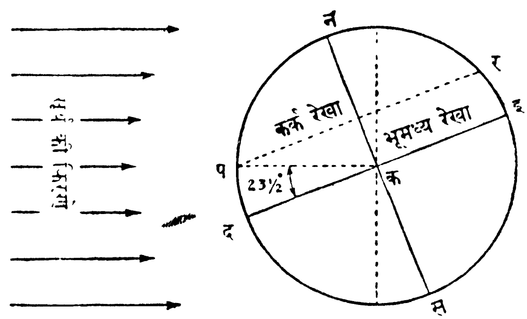

चित्र ३०—कर्क रेखा को निर्धारित करने की विधि जून में सूर्य की किरणें 'प' बिन्दु पर सीधी पड़ती है।

इसके विपरीत उत्तरी गोलार्द्ध के गर्मी के दिनों में यानी जून के समय सूर्य कर्क रेखा पर सीधा चमकता रहता है। चित्र नं० ३१ में क, ख और ग अंश क्रमशः जून, मार्च-सितम्बर, और दिसम्बर की दशाओं को स्पष्ट करते हैं।

चित्र ३१ **क** में जून की दशा का निरूपण है। इस समय सूर्य कर्करेखा पर सीधा चमक रहा है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित 'प' बिन्दु की दशा देखनी चाहिए। सूर्य की किरणें 'ण' पृथ्वी पर 'द' कोण से गिरती है और छायांकित प्रदेश 'अ' को गर्म करती हैं।

चित्र ३१ **ख** में मार्च व सितम्बर की दशा का निरूपण है। इस समय सूर्य की किरणों का पुंज 'व' जो मोटाई में 'ण' के बराबर ही है, पृथ्वी पर 'र' कोण से गिरता है और छायांकित प्रदेश 'ब' को गर्म करता है। 'ग' किरणें 'अ' प्रदेश को गर्मी पहुँचाती

हैं और 'व' किरणें 'ब' प्रदेश को परन्तु 'अ' प्रदेश 'ब' की अपेक्षा छोटा है । चूंकि दोनों को सूर्य से समान तापराशि मिलती है, स्पष्ट है कि 'प' बिन्दु गर्मी के मौसम में अधिक

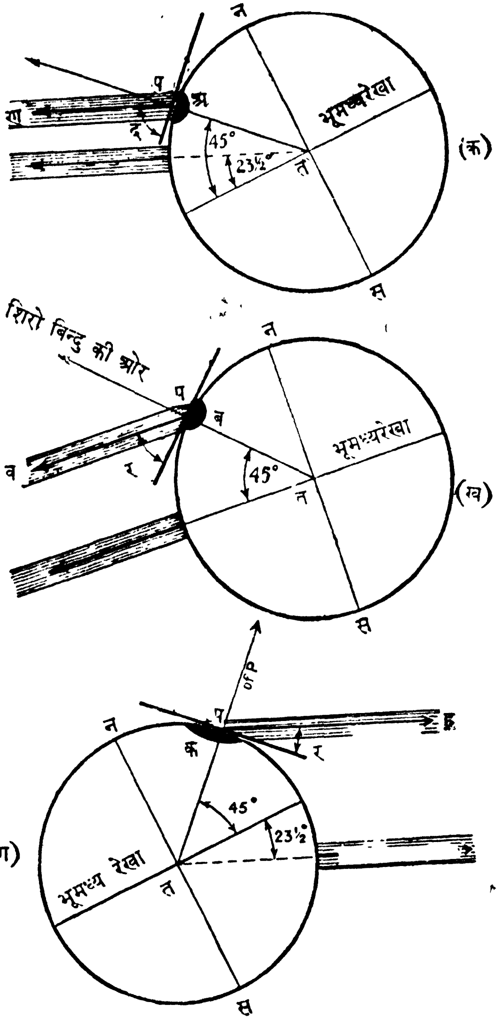

चित्र ३१ क ख ग—मौसम के अनुसार सूर्य का झुकाव बदलता रहता है और उसी के अनुसार स्थान विशेष का ताप-क्रम भी बदलता रहता है।

गर्म रहेगा और मार्च व सितम्बर के महीनों में अपेक्षाकृत बहुत कम । गर्मी के मौसम की अपेक्षा दूसरी दशा में सूर्य की किरणें अधिक तिरछी पड़ती है ।

चित्र ३१ ग में 'प' बिन्दु पर सूर्य की किरणों का 'ह' पुंज गिरता है परन्तु इसका कोण 'स', कोण 'र' से भी छोटा है। अर्थ यह है कि किरणें और भी अधिक तिरछी होकर आती हैं और उन्हें 'क' प्रदेश को गर्म करना होता है जो 'अ' तथा 'ब' की अपेक्षा कहीं अधिक बड़ा है। इसलिए 'प' में तापक्रम सबसे निम्न रहता है। यह दिसम्बर में होता है और उस समय जाड़े का मौसम होता है।

यदि हम 'प' बिन्दु को दक्षिणी गोलार्द्ध में मानकर चलें तो उपर्युक्त दशाओं के ठीक विपरीत देखने में आयेगा। मौसमों का क्रम भी उलट जायेगा। दक्षिणी गोलार्द्ध का गर्मी का मौसम दिसम्बर में होगा जब कि सूर्य मकर रेखा पर सीधा चमकता रहता है। जाड़े का मौसम जून में होता है जब सूर्य की किरणें कर्करेखा पर लम्बरूप पड़ती रहती हैं।

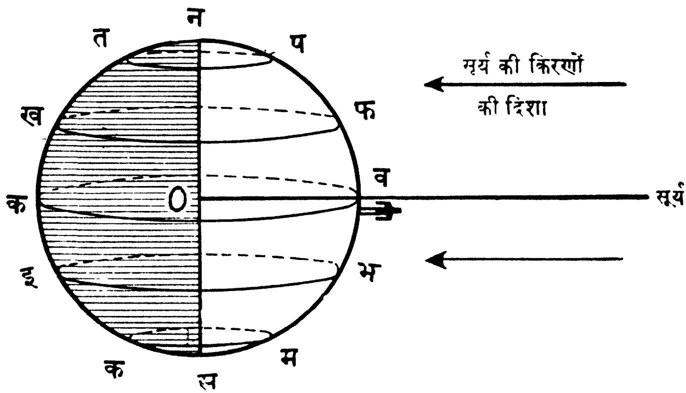

चित्र ३२—दिन और रात

(स) **दिन और रात की अवधि में हेर-फेर**—मौसम के अनुसार दिन-रात की अवधि में भी अन्तर हो जाता है। यद्यपि दिन-रात का प्रधान कारण पृथ्वी की दैनिक गति है, उन की अवधि में हेर-फेर पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण होता है। इस हेर-फेर का प्रधान उत्तरदायित्व पृथ्वी की धुरी के झुकाव पर है। मार्च और सितम्बर में दोपहर के समय सूर्य की किरणें सीधी भूमध्य-रेखा पर पड़ती हैं। सूर्य पृथ्वी से ९१,०००,००० मील दूर है और इस दूरी के कारण पृथ्वी पर सूर्य की किरणें समानान्तर होकर आती हैं। चित्र ३२ में सूर्य की किरणें भूमध्य-रेखा पर सीधी पड़ रही हैं और 'ब' बिन्दु पर खड़े मनुष्य के सिर के ठीक ऊपर सूर्य चमक रहा है। चूंकि पृथ्वी सदैव अपनी धुरी पर घूमती रहती है, बिन्दु 'फ' प्रकाश से अन्धकार में और फिर प्रकाश में ग्रम जायेगा। पृथ्वी के एक पूरे चक्कर में २४ घंटे लगते हैं। इसलिए स्पष्ट है कि सभी स्थान 'प फ ब भ म' घूम कर प्रकाश और अन्धकार में बराबर-बराबर समय तक रहेंगे। इस कार पृथ्वी पर सभी स्थानों में १२ घंटे का दिन और १२ घंटे की रात होगी।

चित्र ३३ में दिसम्बर महीने की दशाओं को दिखलाया गया है जबकि उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़ा और दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी पड़ती रहती है। इस समय सूरज की

किरणें 'ट' स्थान पर लम्बरूप पड़ती रहती हैं जो कि भूमध्य-रेखा से २३½° दक्षिण में हैं। 'इ द' रेखा भूमध्य-रेखा है और 'न स' पृथ्वी की धुरी है। छायांकित भाग अन्धकार में है। जैसा चित्र से स्पष्ट है कि जैसे-जैसे पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमेगी, कोई भी बिन्दु जो 'ज झ' से परे उत्तरी ध्रुव के समीप होगा वहाँ हमेशा अन्धकार बना रहेगा। इसके विपरीत 'य ल' से परे दक्षिणी ध्रुव से समीप कोई भी बिन्दु सदैव प्रकाश मे बना रहेगा। अब आओ 'क' और 'ट' बिन्दुओं की दशा देखें। जैसे पृथ्वी घूमती है 'क' बिन्दु केवल

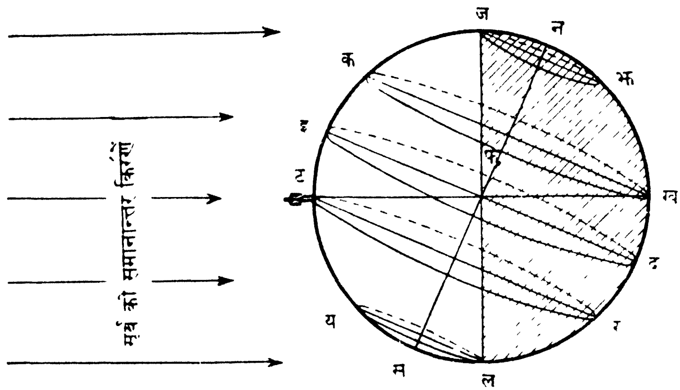

चित्र ३३—२१ दिसम्बर की स्थिति—उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े की ऋतु—छायांकित प्रदेश अंधकार में है।

प्रकाश की थोड़ी दूरी यानी 'क फ' तक ही प्रकाश में रह पायेगा। इसकी अपेक्षा 'फ ख' या अन्धकार का भाग अधिक रहेगा। अर्थ यह है कि उत्तरी गोलार्द्ध (Northern Hemisphere) के जाड़े में दिन छोटे होंगे और रातें लम्बी। इसके विपरीत 'ट' बिन्दु प्रकाश के अधिक भाग में से होकर घूमेगा और अन्धकार का भाग अपेक्षाकृत कम होगा। इस प्रकार दक्षिणी गोलार्द्ध मे गर्मी के मौसम मे दिन बड़े होंगे और रातें छोटी। 'इ' बिन्दु भूमध्य-रेखा पर है और वहाँ दिन-रात बराबर होंगे।

चित्र ३४ में जून मास की दशा का निरूपण है। इस समय उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी और दक्षिणी गोलार्द्ध में जाड़े की ऋतु होती है। इस समय सूर्य की किरणें कर्क रेखा या भूमध्यरेखा से २३½° उत्तर में लम्बरूप पड़ती रहती है। 'ट' पर खड़े व्यक्ति के सिर पर सूर्य सीधा चमकता होगा। पहले की तरह 'इ द' भूमध्य-रेखा है और छायांकित भाग अन्धकार में है। इस दिन कोई भी बिन्दु जो 'ज झ' से परे उत्तरी ध्रुव के समीप होगा वह सदैव प्रकाश पाता रहेगा। वहाँ बराबर दिन बना रहेगा। यही कारण है कि नार्वे के उत्तर के प्रदेशों को मध्यरात्रि के सूर्य का प्रदेश कहा जाता है। 'य ल' से परे और दक्षिणी ध्रुव के समीप का कोई भी बिन्दु निरन्तर अन्धकार में बना रहेगा, वहाँ बराबर रात बनी रहेगी। 'ज झ' और 'य ल' रेखायें क्रमशः ६६½° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश हैं जिन्हें आर्कटिक व अन्टार्कटिक वृत्त कहकर पुकारते हैं। ये अक्षांश वृत्त उत्तरी व

दक्षिणी ध्रुवीय प्रदेशों की सीमायें हैं जिनके भीतर सभी स्थानों पर साल में कम-से-कम एक दिन--२४ घंटे तक बराबर या तो अन्धकार बना रहता है या बराबर प्रकाश रहता है।

इस दशा में स्थान 'ख' प्रकाश की अपेक्षा अन्धकार के अधिक भाग से होकर गुजरेगा। 'ख फ', 'क फ' की अपेक्षा छोटा है। अर्थात् दक्षिणी गोलार्द्ध (Southern Hemisphere) में दिन छोटे होंगे और रातें बड़ी। उत्तरी गोलार्द्ध में रातों की अपेक्षा दिन बड़े होंगे क्योंकि 'ट' नामक स्थान अन्धकार की अपेक्षा प्रकाश में से होकर अधिक गुजरेगा। भूमध्य-रेखा पर स्थित 'इ' बिन्दु बराबर से प्रकाश व अन्धकार

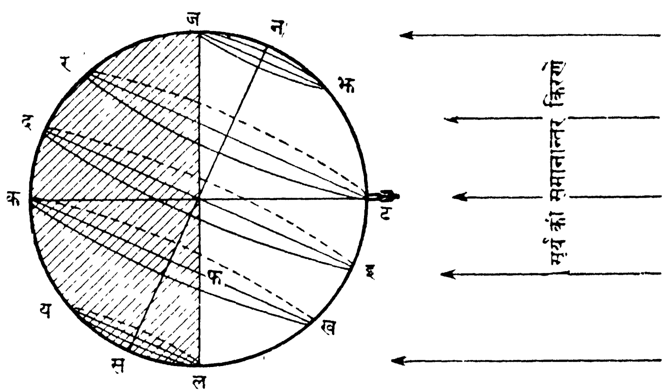

चित्र ३४—२१ जून की स्थिति--उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम--छायांकित प्रदेश अंधकार में है।

से होकर गुजरेगा। भूमध्य-रेखा पर साल के सभी महीनों व मौसम में दिन-रात १२-१२ घंटे के होते हैं। इसके अर्थ यह हैं कि सूर्य सदैव ६ बजे सुबह निकलता है और शाम को ६ बजे अस्त हो जाता है।

किसी विशेष स्थान पर किसी विशेष समय पर सूर्य की ऊँचाई और दिन की अवधि का पता लगाना—मान लो कि लन्दन में २१ जून के दिन दोपहर के बारह बजे सूर्य की ऊँचाई तथा दिन-रात की अवधि ज्ञात करना है। इसके लिए सबसे पहले यह जानना जरूरी है कि लन्दन किस अक्षांश में स्थित है। लन्दन का अक्षांश पता चला कि ५१$\frac{1}{2}$° उत्तर है। अब एक वृत्त बनाओ और उसमें 'न स' रेखा द्वारा ध्रुवीय व्यास को तथा 'इ द' द्वारा भूमध्य-रेखा को अंकित करो। 'क' पृथ्वी का केन्द्र है। परिधि पर एक बिन्दु 'फ' लगाओ। यही लन्दन की स्थिति है। इसलिए 'फ' बिन्दु बताने के लिए जरूरी यह है कि कोण 'फ क द' ५१$\frac{1}{2}$° का हो। 'क' बिन्दु पर अर्धव्यास 'क फ' को इस प्रकार बढ़ाओ कि 'फ ल' रेखा आकाश के सब से ऊपरी बिन्दु की ओर संकेत करे। 'फ' बिन्दु पर परिधि को छूती हुई एक रेखा 'फ त' खींचो जो क्षितिज की ओर संकेत

करे। अब अपने आप प्रश्न करो कि दोपहर का सूर्य कहाँ पर होगा। इस उदाहरण में सूर्य कर्करेखा या २३°½ उत्त ी अक्षांश पर लम्बरूप चमक रहा है। 'क ख' रेखा इस प्रकार खींचो कि कोण 'ख क द' २३°½ का हो। 'फ' बिन्दु से एक रेखा 'फ म' इस प्रकार खीचो कि वह 'क ख' के समानान्तर रहे। 'फ म' रेखा सूर्य की किरणों की द्योतक है और 'म फ त' कोण सूर्य की ऊँचाई बतलाता है।

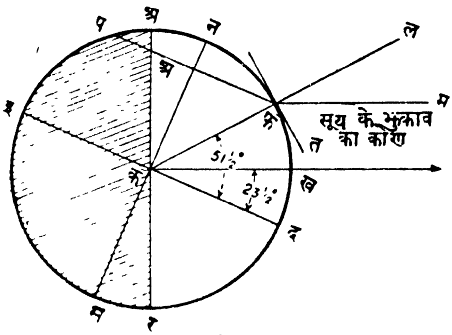

चित्र ३५—जन में किसी स्थान पर सूर्य की ऊँचाई निकालना।

चूँकि 'फ म' और 'क ख' रेखायें समानान्तर है और उन्हें 'क फ ल' रेखा काटती है।

इसलिए कोण 'ल फ म' = 'फ क ख' = ५१½°—२३½ = २८° परन्तु 'ल फ त' कोण समकोण है।

इसलिए कोण 'म फ त' = ९०°—२८° = ६२°

यही २१ जून के दिन लन्दन में दोपहर के समय सूर्य की ऊँचाई है।

'क' बिन्दु से एक रेखा 'य र' इस प्रकार खींचो कि वह 'क ख' के साथ समकोण बनाये। अब गोलार्द्ध 'य इ र' अन्धकार में होगा। पृथ्वी अपनी धुरी 'न स' पर घूमती है। इसलिए बिन्दु 'फ' 'फ अ प' रेखा पर घूमेगा। 'प अ' और 'फ अ' को अलग-अलग नाप कर दिन-रात की अवधि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस दशा मे 'फ अ' रेखा 'प अ' अंश की अपेक्षा बड़ी है। इसलिए दिन या प्रकाश की अवधि रा या अन्धकार की अवधि की अपेक्षा अधिक होगी। तात्पर्य यह है कि दिन की अपेक्षा रात छोटी होगी। 'प अ' अंश रात और 'फ अ' अंश दिन का द्योतक है। इनको नापने से २४ घटों में से दिन और रात का भाग स्पष्ट हो जायेगा।

उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव की दशा में कुछ विशेषतायें हैं जैसा कि ऊपर दिए हुए चित्र से स्पष्ट हो जावेगा। इस दशा में 'न' एक दिया हुआ स्थान है। 'न ल' शिरोबिन्दु की ओर खींची हुई रेखा है। 'न थ' क्षितिज की ओर खींची हुई रेखा है। मार्च और सितम्बर के महीने में सूर्य भूमध्यरेखा पर सीधा चमकता रहता है। ऐसी दशा में 'न' स्थान पर सूर्य की किरणें 'न स' दिशा से आती हैं जो कि 'न थ' दिशा से मिलता-जुलता है। सूर्य की यह स्थिति २४ घंटे बराबर बनी रहती है और इस समय के भीतर पृथ्वी एक चक्कर पूरा कर लेती है। जरा-सा विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि उत्तरी ध्रुव पर खड़ा व्यक्ति सारा दिन—पूरे २४ घंटे में—केवल आधा सूर्य ही देख पायेगा। यही भेद है कि जब कि और स्थानों पर आधे दिन तक पूरा सूर्य दिखलाई पड़ता रहता है, ध्रुवों पर पूरे २४ घंटे प्रकाश रहता है, परन्तु केवल आधा सूर्य ही दिखलाई पड़ता है।

गोधूलि और सूर्योदय प्रकाश (Twilight and Dawn)

जाड़े में सड़क की बत्तियों को जलाने का समय सूर्यास्त के ३० मिनट बाद होता है। शीतोष्ण कटिबंध में सूर्यास्त के बाद और रात्रि के अन्धकार से पहिले धुँधला प्रकाश फैला रहता है। इसे गोधूलि कहते हैं। इसी प्रकार की धुँधली रोशनी सूर्योदय से पहिले भी रहती है जिसे सूर्योदय प्रकाश कहते हैं। परन्तु भूमध्य-रेखा पर इस प्रकार के धुँधले प्रकाश का अभाव रहता है। सूर्यास्त के फौरन बाद ही अन्धकार छा जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सूर्य क्षितिज के नीचे से बिल्कुल सीधा लम्बरूप उठता है। इसके विपरीत शीतोष्ण कटिबंध में सूर्य तिरछा होकर निकलता है। जब सूर्य क्षितिज से थोड़ा नीचे रहता है उसका प्रकाश वातावरण में फैल कर आता है। जैसा कि चित्र से स्पष्ट है, इस धुँधले प्रकाश को अवधि 'क ख' में अधिक है और 'अ ब' में कम। यही बात सूर्यास्त के विषय में भी सच है।

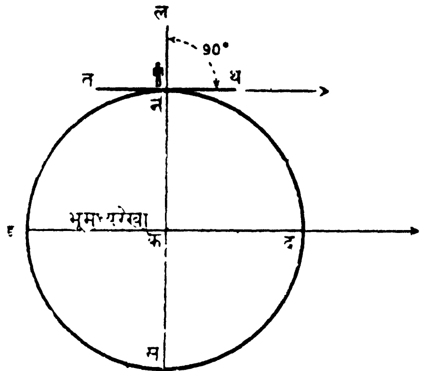

चित्र ३६—मार्च और सितम्बर में उत्तरी ध्रुव प्रदेश में सूर्य क्षितिज पर रहता है।

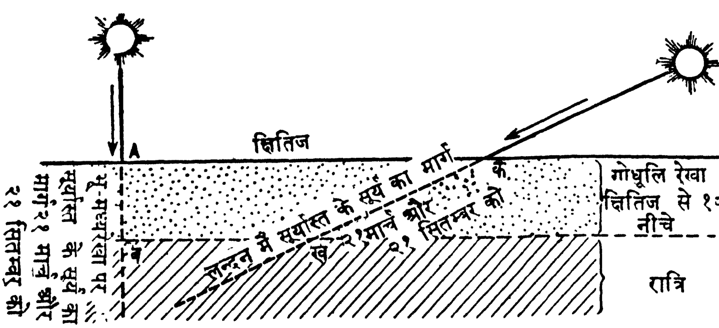

चित्र ३७—अक्षांशों की अपेक्षा भूमध्यरेखा पर सूर्योदय प्रकाश तथा गोधूलि की अवधि कम होती है।

गर्मी का समय

पीछे दिये हुए चित्र ३४ से स्पष्ट है कि दिन के प्रकाश की अवधि भूमध्यरेखा से उत्तरी ध्रुव की तरफ जाने पर उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। दूसरे शब्दों में भूमध्य-रेखा से उत्तरी ध्रुव की ओर चलने पर दिन की लम्बाई बराबर बढ़ती जाती है। २१ जून को भूमध्यरेखा पर दिन १२ घंटे का होता है परन्तु इंगलैण्ड में दिन का प्रकाश १७ घंटे तक बना रहता है और उत्तरी ध्रुव या आर्कटिक वृत्त पर २४ घंटे दिन रहता है।

विभिन्न यूरोपीय देशों में **ग्रीष्मकालिक समय** की योजना है। गर्मी की ऋतु में उन देशों की घड़ियाँ एक घंटा आगे कर दी जाती हैं। फलतः सूर्योदय और सूर्यास्त एक घंटा बाद होते हुए मालूम पड़ते हैं और चाय के समय तथा सूर्यास्त के बीच प्रकाश-काल कुछ अधिक मिल जाता है। इस प्रकार इंगलैण्ड में सूर्यास्त ८.३० के बजाय ९.३० पर होता है और उसके बाद गोधूलि प्रकाश रहता है। ग्रीष्मकालिक समय से अधिक उत्तरी अक्षांशों में तो कोई लाभ नहीं हो पाता क्योंकि वहाँ सूर्यास्त स्वभावतः देर से होता हैं, परन्तु शीतोष्ण कटिबंध के निम्न अक्षांशों में इस योजना से विशेष लाभ है। इसके यह अर्थ कदापि नही कि वहाँ के लोगों के लिए दिन की अवधि कुछ बढ़ जाती है बल्कि वहाँ के लोगों के रहन-सहन के समय में कुछ हेर-फेर हो जाता है ताकि वे कुछ अधिक समय तक जागते रहते हैं और अन्धकार के अधिक अंश को सो कर बिता सकते हैं।

समय की माप

जिस समय के अन्दर एक स्थान धुरी पर पूरा चक्कर लगा कर फिर उसी दशा में आ जाता है कि सूर्य उसके ऊपर चमकने लगे, उसे **सूर्य दिवस** (Solar Day) कहते हैं। परन्तु पृथ्वी की कक्षा या परिक्रमा पथ गोलाकार न होकर अण्डाकार है। दूसरी बात यह है कि इसके बीच सूर्य की स्थिति केन्द्रवर्ती नही है। फलतः एक समय पृथ्वी इसके बहुत समीप पहुँच जाती है और दूसरे समय इससे अधिक दूर। जब उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम होता है तब पृथ्वी सूर्य के अपेक्षाकृत समीप होती है। इसे Perihelion या दक्षिणायन कहते हैं। इसके विपरीत, जब उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी

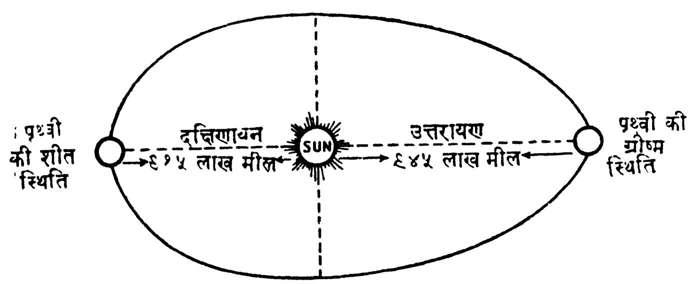

चित्र—३८

होती है तो पृथ्वी सूर्य से अपेक्षाकृत दूर होती है, इसे Aphelion या उत्तरायण कहते हैं। इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि मौसमों का हेर-फेर सूर्य से दूरी पर निर्भर नहीं होता। इसका सम्बन्ध सूर्य की ऊँचाई और उसकी ताप-शक्ति से होता है। जब पृथ्वी दक्षिणायन स्थिति में होती है तो इसकी परिक्रमा करने की चाल कुछ अधिक तेज हो जाती है। इसके विपरीत उत्तरायण में पृथ्वी अपनी कक्षा पर अपेक्षाकृत धीमी गति से चलती है। इस प्रकार **सूर्य दिवस** (Solar Day) की अवधि घटती-बढ़ती रहती है। इस घटने-बढ़ने के कारण समय की माप के दृष्टिकोण से सूर्य-दिवस

सुविधाजनक नहीं होते। सूर्य के द्वारा समय जानने के लिए **सूर्य घड़ी** (Sun Dial) का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार ज्ञात समय को वास्तविक समय नहीं मानते और इस प्रकार से निर्धारित दिनों की अवधि विभिन्न होती है। हाँ, यदि साल के सभी ऐसे दिनों की अवधि को जोड़ लिया जाय और फिर उनका औसत निकाल लिया जाय तो वास्तविक दिन की अवधि पता लगा जायेगी। इस प्रकार से प्राप्त दिवस को **मध्यम मान सूर्य-दिवस** कहते हैं। जिस समय को हम प्रयोग करते हैं वह **मध्यम मान सूर्य दिवस** पर आधारित होता है और हमारी घड़ियाँ इसी माध्यमिक समय के अनुसार चलती हैं। मध्यम-मान सूर्य दिवस की अपेक्षा साधारण सूर्य दिवस कभी तो लम्बे और कभी छोटे होते हैं। और उनके समय में अन्तर को Equation of Time कहते हैं और यह प्रायः नौ-सेना की जन्त्रियों में दिया रहता है।

देशान्तर और समय

नीचे दिये हुए चित्र में सूर्य 'अ' बिन्दु पर लम्बरूप चमक रहा है। 'अ' स्थान पर दोपहर है। चूँकि पृथ्वी पश्चिम से पूर्व की ओर अपनी धुरी पर घूमती है, स्पष्ट है कि 'ब' और 'क' स्थान लम्बरूप सूर्य की किरणों के नीचे पहिले ही आ चुके हैं और अब वहाँ दोपहर के बाद का समय है। परन्तु 'इ' और 'ड' पर अभी तक सूर्य शिरोबिन्दु

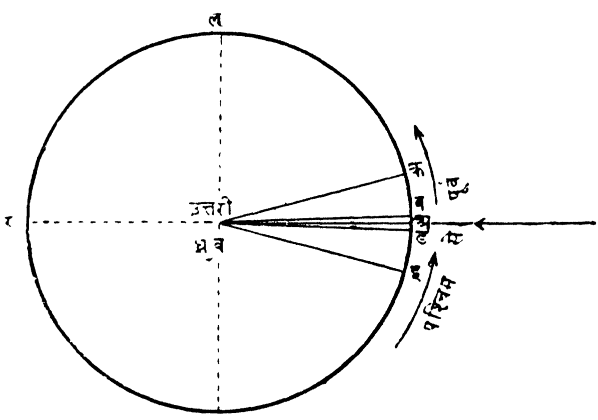

चित्र ३९—पृथ्वी का आवर्त्तन स्थानीय समय निर्धारित करता है।

पर नहीं पहुंच सका है। वहाँ अभी तक दोपहर नहीं हुई है और दोपहर से पहिले का समय है। पृथ्वी को एक पूरा चक्कर करने में २४ घंटे लगते हैं। तात्पर्य यह है कि पृथ्वी प्रत्येक २४ घंटों में ३६०° अंशों से गुजर जाती है। इसलिए एक घंटे में पृथ्वी १५ अंशों को पार कर जाती है। दूसरे शब्दों में १ अंश से गुजरने में पृथ्वी को ४ मिनट लगते हैं।

इसलिए १ अंश देशान्तर बराबर है ४ मिनट के। मान लो स्थान 'ब' स्थान

'अ' से १° पूर्व में स्थित है। इसके अर्थ यह हुए कि 'ब' स्थान पर सूर्य की लम्बरूप किरणें ४ मिनट पहिले पड़ रही थीं या यूं कहा जा सकता है कि 'अ' के स्थान से वर्त्तमान स्थिति में आने में 'ब' को ४ मिनट लगे। अतएव 'ब' स्थान पर समय १२ बज कर ४ मिनट हुए होंगे। यदि 'क' स्थान 'अ' से १५° पूर्व में है तो स्पष्ट है कि वहाँ एक घंटे पहिले सूर्य की किरणें लम्बरूप पड़ रही होंगी। अतएव वहाँ इस समय दोपहर के एक बजे होंगे। इसी प्रकार, यदि 'ड' स्थान 'अ' के १° पश्चिम में स्थित है, तो वहाँ सूर्य के ठीक सिर पर चमकने में अभी ४ मिनट की देर है। अतएव वहाँ पर १२ बजने में ४ मिनट कम होंगे। यदि 'इ' स्थान 'अ' से १५° पश्चिम में है, तो वहाँ पर दिन के ११ बजे होंगे। 'र' बिन्दु पर रात के बारह बजे हुए होंगे। बिन्दु 'ल' पर जो ९० पूर्व में है, शाम के ६ बजे होंगे और बिन्दु 'य' पर जो ९० पश्चिम मे है सुबह के ६ बजे होंगे।

वास्तव में एक देशान्तर रेखा पर स्थित सभी स्थानों पर सूर्य एक ही समय पर सिर के ऊपर आता है। दोपहर एक ही समय पर होती है। इसीलिए इन रेखाओं को मध्याह्न रेखायें कहते हैं। चूंकि सूर्य एक समय पर एक ही स्थान पर लम्बरूप चमक सकता है, दिन में सूर्य के शिरोबिन्दु पर पहुँचने के समय के आधार पर निर्धारित **स्थानीय समय** (Local Time) अलग-अलग जगहों पर अलग-अलग होता है। किसी स्थान का स्थानीय समय अपने पूर्व या पश्चिम मे २० मील की दूरी पर स्थित अन्य स्थानों से २ मिनट कम या ज्यादा होगा। अब आप खुद ही समझ सकते हैं कि स्थानीय समय के अनुसार काम करने में कितनी असुविधा है। एक जगह से दूसरी जगह पहुँचने पर घड़ी को बढ़ाना घटाना होगा।

इस असुविधा को दूर करने के लिए सम्पूर्ण भूमंडल को **प्रामाणिक समय** (Standard Time) के कटिबंधों में बाँट दिया गया है। ये कटिबंध १५° देशान्तर चौड़े हैं और इनके बीच १ घंटे समय का हेर-फेर रहता है। इंगलैण्ड मे ग्रीनविच से गुजरने वाले देशान्तर को ०° मानते है और इसे प्रधान मध्याह्न रेखा भी कहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समय निर्धारण में इस रेखा को ही आधार मान कर चलते हैं और ग्रीनविच माध्यिक समय के आधार पर ही **प्रामाणिक समय** निर्धारित करते है। विटेकर की जन्त्री में विभिन्न देशों के प्रामाणिक समय का ग्रीनविच के मध्याह्नकाल से सम्बन्ध स्पष्ट दिया होता है।

लम्बी सामुद्रिक यात्राओं में जहाज की स्थिति के अनुसार प्रतिदिन घड़ियों के समय में परिवर्त्तन किया जाता है। इस विषय में मनोरंजक बात तो यह है कि आस्ट्रेलिया से लन्दन में क्रिसमस के तीसरे पहर सुनी गई रेडियो वार्त्ता में, सच यह है कि आस्ट्रेलिया से बोलने वाला व्यक्ति क्रिस्टमस की सुबह को बोलता होता है।

सिडनी में होने वाले टेस्ट मैच का निर्णय इंगलैण्ड में उसी दिन सुबह को मिल जाता है। इसका कारण यह है कि जब सिडनी में शाम को ६ बजे खेल समाप्त होता है तो इंगलैण्ड में सुबह के ८ बजे रहते हैं। भारत और इंगलैण्ड के समय में भी ५½ घंटों

का अन्तर है। जब लन्दन में दिन के साढ़े बारह बजते हैं तो दिल्ली में शाम के ६ बज चुके होते हैं।

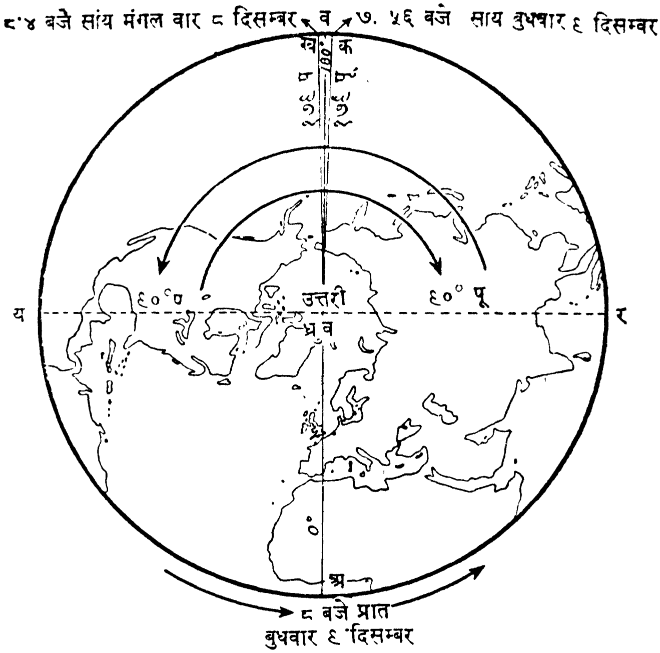

चित्र ४०——तिथि रेखा को पार करने पर एक दिन कम या ज्यादा हो जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा (International Date Line)

देशान्तर रेखा १८०° पर एक अजीब परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस एक रेखा को १८०° पूर्व व पश्चिम दोनों ही मानते हैं। उपर्युक्त चित्र में 'अ' स्थान प्रधान मध्याह्न रेखा पर स्थित है और वहाँ समय सुबह के ८ बजे है। दिन बुधवार, दिसम्बर की ९ तारीख है। इसके आधार पर समय निर्धारित करने से 'क' स्थान पर, जो १७९° पूर्व में है, शाम के ७.५६ बजे होंगे। दिन बुधवार, दिसम्बर की ९ तारीख ही होगी। परन्तु पश्चिम की ओर समय निकालने पर 'ख' स्थान में, जो १७९° पश्चिम में स्थित है, समय शाम के ८.४ मिनट होंगे पर दिन मंगलवार, दिसम्बर की ८ तारीख होगी। 'ख' से १° पश्चिम ओर 'क' से १° पूर्व की ओर 'ब' स्थान पर, जो १८०° पूर्व-पश्चिमी देशान्तर पर स्थित है समय कुछ अजीब ही होगा। वहाँ बुधवार, दिसम्बर ९ के शाम के ८ भी बजे होंगे और मंगलवार, दिसम्बर ८ के शाम के ८ भी। दिन, समय व तारीख की इस अव्यवस्था में सुधार होना जरूरी है।

एक जहाज पूर्व की ओर चलता हुआ 'अ र ब य' मार्ग से बुधवार को 'ब' बिन्दु पर पहुँचता है, परन्तु 'ब' बिन्दु को पार करने पर वहाँ मंगलवार ही होता है और उससे अगला दिन बुधवार माना जाता है। इस प्रकार पूर्व की ओर जाने वाले जहाजों के लिए एक दिन बढ़ जाता है और उनका सप्ताह ८ दिन का होता है। बुधवार के वाद वाला दिन भी बुधवार ही गिना जाता है। इसके विपरीत पश्चिम की ओर जाने वाला जहाज 'अ य ब र' मार्ग से होता हुआ 'ब' बिन्दु पर मंगलवार के दिन पहुँचेगा। परन्तु 'ब' बिन्दु को पार करने पर इसे बुधवार मिलता है। इसलिए उनके लिए एक दिन कम हो जाता है। उनका हफ्ता ६ दिन का ही होता है। मंगलवार के बाद वाले दिन को वे वृहस्पतिवार गिनते हैं।

इसे हेर-फेर से वायुयानों के समय पर बड़ा ही असर पड़ता है। एक हवाई जहाज, जो न्यूजीलैण्ड में आकलण्ड स्थान से मंगलवार को दिन के ३ बजे प्रस्थान करता है, होनोलूलू स्थान पर जो वहाँ से ४००० मील दूर है, उसी दिन १ बजे दिन मे पहुँच जाता है। दूसरी तरफ होनोलूलू से मंगलवार को दिन के तीन बजे छूटने वाला हवाई जहाज न्यूजीलैण्ड में आकलैण्ड स्थान पर वृहस्पतिवार को सुबह के ९ बजे पहुँचता है।

१८०° देशान्तर वह रेखा है जहाँ तिथि बदल जाती है। परन्तु यदि अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा १८०° देशान्तर को ही मान लिया जाय तो कई द्वीपों के प्रामाणिक समय में गड़बड़ी पैदा हो जायेगी क्योंकि यह कई द्वीपों से होकर जाती है। इसलिए मार्ग में पड़ने वाले द्वीपसमूहों को बचाने के वास्ते अन्तर्राष्ट्रीय तिथि रेखा टेढ़ी-मेढ़ी होकर चलती है, जैसा कि साथ दिये चित्र से स्पष्ट हो जायेगा।

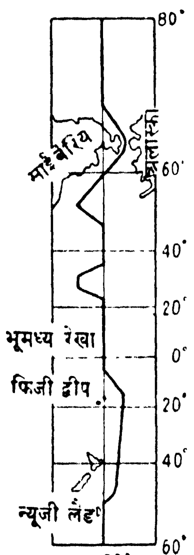

चित्र ४१—अन्तर्राष्ट्रीय तिथिरेखा

इसका सबसे पहिला मोड़ पूर्व की ओर है। साइबेरिया और अलास्का के बीच बरिंग जलडमरूमध्य मे यह १८०° देशान्तर से हटकर पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इससे थोड़ा दक्षिण में एलिशयन द्वीप-समूह को बचाने के लिए इस रेखा को पश्चिम की ओर मुड़ना पड़ता है। इस प्रकार साइबेरिया और अलास्का की तिथियों में भेद रहता है। यदि साईबेरिया में जुलाई की १४ तारीख है तो अलास्का में जुलाई की १३ तारीख ही होती है। १८०° देशान्तर फिजी द्वीपसमूह के एक द्वीप के बीच से होकर गुजरती है। इसलिए तिथिरेखा के द्वारा एक ही द्वीप के दो भागों के बीच समय में फरक होने के कारण काफी असुविधा हो सकती है। इसलिए दक्षिणी गोलार्द्ध में फिजी व टोन्गा द्वीपों को बचाने के वास्ते तिथिरेखा इनके चारों ओर घूम कर जाती है। इन द्वीपों में न्यूजीलैण्ड के समान ही तिथि पाई जाती है।

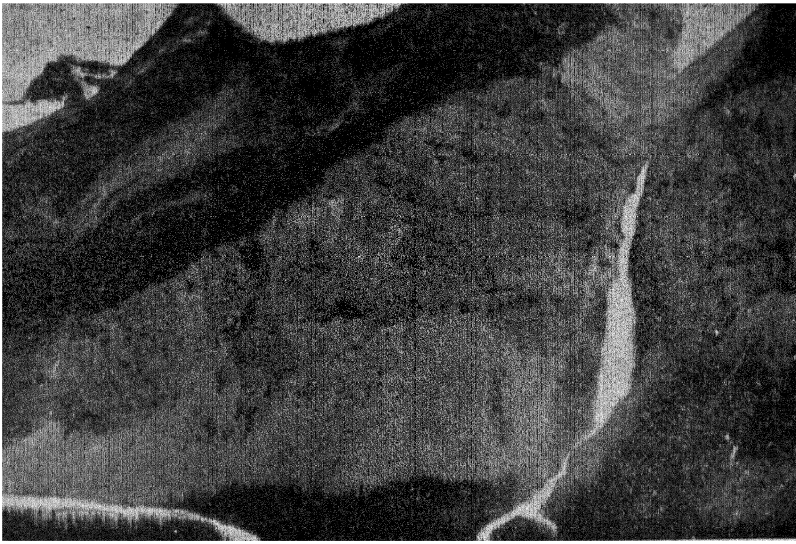

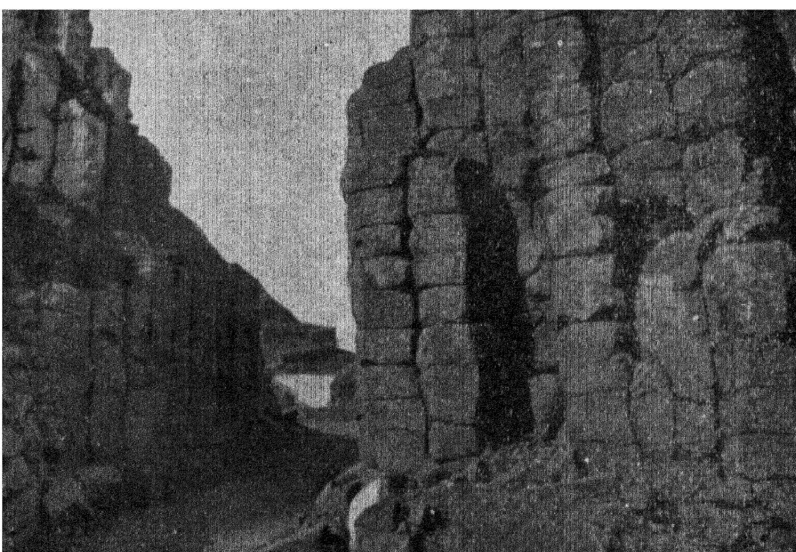

ऊपर : कनाडा के राकी पर्वत में तकावा जलप्रपात । पर्वत परतदार चट्टानों के बने हैं । चट्टानों के आधार पर सपांत का निक्षेप और मुख्य घाटी में गिरती हुई लटकती हुई घाटी देखने योग्य है ।

नीचे : उतरी आयरलैंड में जैन्स क्यासवे । बसाल्ट के ६ पहलु वाले खम्भे देखिये।

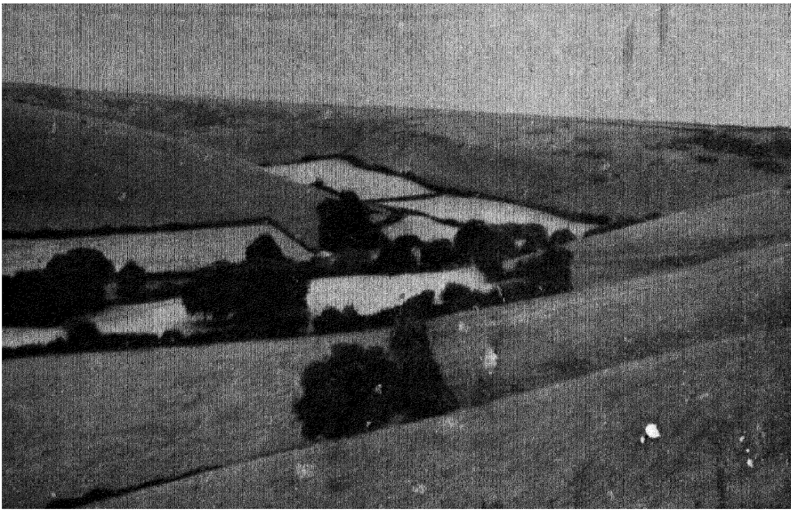

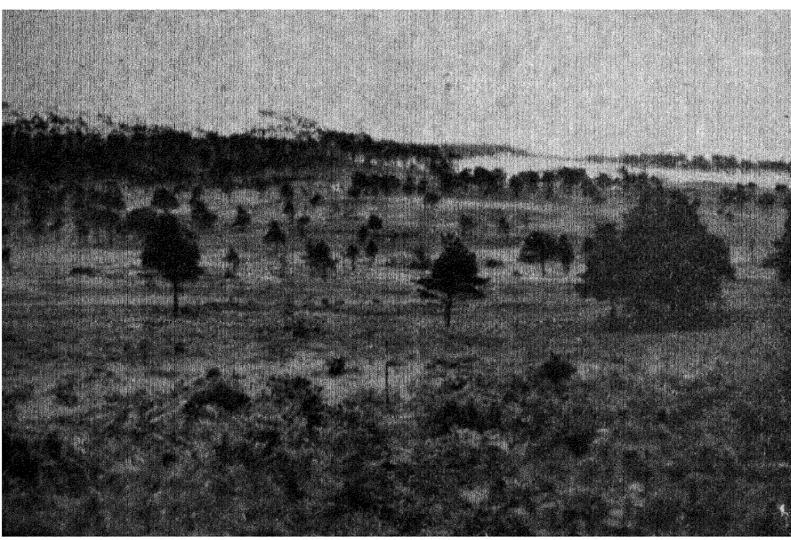

नीचे बिछी हुई चट्टानों का दृश्य और प्राकृतिक वनस्पति दोनों पर ही असर पड़ता है।

ऊपर : डारसेट में खड़िया मिट्टी का प्रदेश। इसमें स्थलरूप गोलाई लिए हुये है और शुष्क घाटी भी है।

नीचे : डारसेट में टर्नर पुड्ल के समीप बैगशॉट सैन्ड का प्रदेश। खेती के लिए यह सर्वथा बेकार है। इसका अधिकतर भाग दलदली झाड़ियों से घिरा है। इसमें अक्सर सैनिक शिक्षा दी जाती है।

अध्याय तीन

महाद्वीप निर्माण

(THE BUILDING OF CONTINENTS)

पृथ्वी का आवरण (The Earth's Covering)

हमारी पृथ्वी का बाहरी पपड़ा ४०–४५ मील मोटा है और इसके भीतर भूगर्भ का केन्द्र किसी अति ठोस पदार्थ का बना है और निश्चय ही बहुत गर्म है। आजकल ऐसा विश्वास है कि पृथ्वी का ऊपरी पपड़ा सब जगह एक समान नहीं है, बल्कि महाद्वीप कुछ हल्के पदार्थ के बने हुए हैं जिससे वे एक घनी तथा भारी निचली परत पर तैरते रहते हैं। यह भारी व घनी परत महाद्वीपों व सागरों दोनों के ही नीचे पाई जाती है, जैसा कि चित्र नं० ४२ को देखने से स्पष्ट हो जावेगा।

दुनिया के मानचित्र को ध्यान से देखने से एक और नई व अजीब बात का पता लगता है। वह यह कि उत्तरी व दक्षिणी आन्ध्र महासागरों के पूर्वी और पश्चिमी किनारे आपस में मिलते-जुलते हैं। इस भाँति यह सोचा जा सकता है कि यदि किसी प्रकार उत्तरी व दक्षिणी अमरीका को पूर्व की ओर ढकेला जा सके तो वे यूरोप और अफ्रीका की तट रेखा में बिल्कुल ठीक मिल जायेंगे। वे उसी प्रकार फिट कर जायेंगे जैसे दो आरियों के दराते। इस उदाहरण के अतिरिक्त समान तट-रेखा के और भी बहुत से नमूने मिल जायेंगे, विशेष रूप से कनाडा के उत्तर में स्थित द्वीपों तथा मैडागास्कर और पूर्वी अफ्रीका में। इन्हीं समानताओं के आधार पर वेगनर (Wegener) नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने महाद्वीपीय प्रवाह (Continental Drift) सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि इस सिद्धान्त के अनुसार वर्त्तमान महाद्वीप पहिले आपस में जुड़े हुए थे परन्तु अब खिसक कर वर्त्तमान स्थितियों में पहुँच गए हैं।

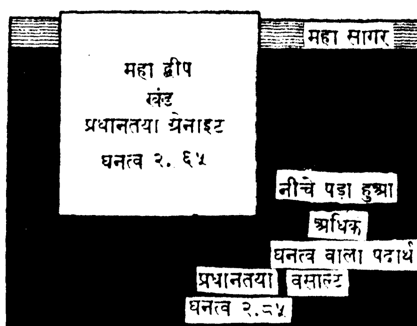

चित्र ४२——तैरते हुए महाद्वीपों के सिद्धान्त का चित्र

एक दूसरे सिद्धान्त के अनुसार उपर्युक्त चित्र में छायांकित प्रदेश एक दूसरे से सम्बद्ध थे और उनसे मिलकर बने प्रदेश को गोंडवाना लैंड कहते थे। कुछ भूगर्भवेत्ताओं का विश्वास है कि यह महाद्वीप टूट-फूट गया और इसके कुछ भाग समुद्र में विलीन

हो गये। फलस्वरूप बचे हुए भाग वर्त्तमान महाद्वीपों के रूप में रह गये। इस सिद्धान्त के विपरीत वेगनर का कहना है कि ये भूभाग जुड़े हुए तो अवश्य थे पर बाद में बह कर अलग हो गये।

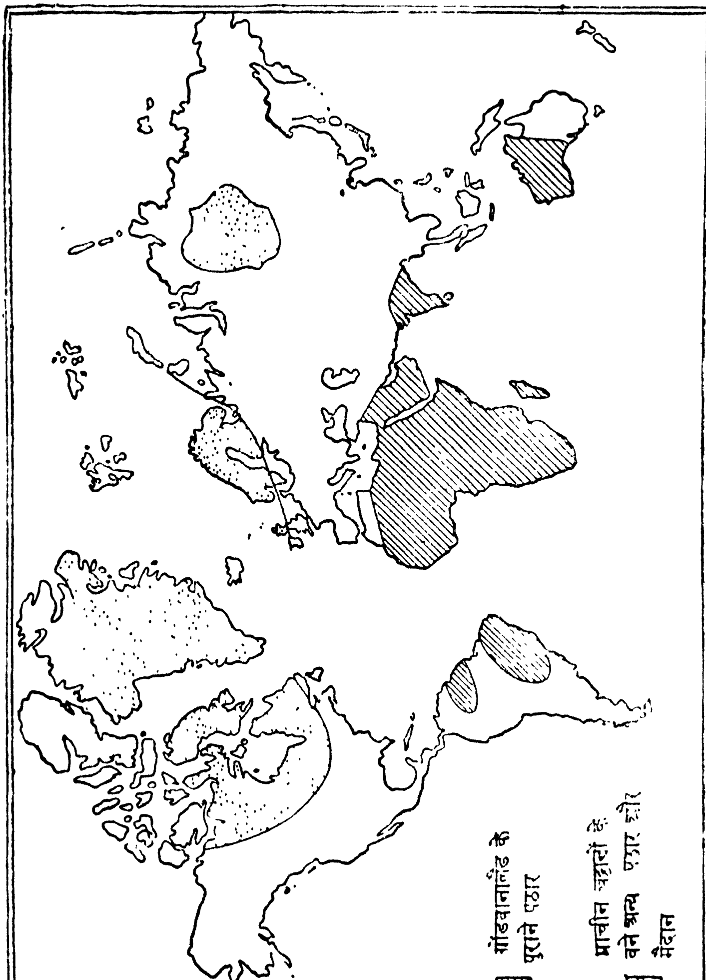

चित्र—४३

संक्षेप में मोटे तौर पर यूं कहा जा सकता है कि वेगनर के अनुसार पृथ्वी का पपड़ा दो प्रकार की चट्टानों से मिलकर बना है। भू-खंड या महाद्वीप तो अपेक्षाकृत हल्की चट्टान के बने हैं परन्तु महाद्वीपों का आधार तथा सागरतल अधिक घनी व भारी चट्टान के बने हैं। इन दो प्रकार की चट्टानों के अनेक भेद व उपभेद हैं परन्तु

सागरतल से नीचे की चट्टानों के नमूने प्राप्त करने में वैज्ञानिक अभी तक तो पूर्णतया असफल ही रहे हैं। हाँ, महाद्वीपों की चट्टानों के अध्ययन में भूगर्भवेत्ताओं ने अनेक प्रकार की चट्टानों के नमूने प्राप्त किये हैं और उनको कई भागों में बाँटा गया है।

चट्टानों के प्रमुख प्रकार

पृथ्वी का ऊपरी पपड़ा चट्टानों का बना है। चट्टान शब्द का यह अर्थ कदापि नहीं है कि उसके अन्तर्गत पहाड़ी व पथरीली स्थानों में उपलब्ध कठोर व ठोस पत्थरों को ही लिया जावे। इसके अन्तर्गत, उस ठोस राशि के टूटने-फूटने से बनी बालू व मिट्टी भी शामिल है। चट्टानों के अध्ययन को भूगर्भ-विज्ञान कहते है। इसीलिए भूगोल के अध्ययन में सामान्य भूगर्भ-विज्ञान के शब्दों तथा प्रमुख प्रकार की चट्टानों को समझना बहुत ही जरूरी है। निर्माण-विधि और उनकी आकृतिक विशेषताओं के आधार पर चट्टानों को निम्न प्रकार का कहा जा सकता है।

(१) परतदार चट्टाने (Sedimentary Rocks)

(२) बगैर परतदार चट्टानें। इसके दो उपभेद हैं :

(अ) आग्नेय चट्टाने (Igneous Rocks)

(ब) परिवर्तित चट्टाने (Metamorphic Rocks)।

परतदार चट्टानें (Sedimentary Rocks)

बाढ़ के दिनों में मिट्टी मिली होने के कारण नदी का जल गंदला हो जाता है। जब तक नदी की धारा तेज रहती है यह मिट्टी पानी मे घुली-मिली रहती है, परन्तु जैसे ही नदी की धारा धीमी होती है यह मिट्टी तली में जमने लगती है। नदी की धारा की गति सबसे अधिक धीमी उस स्थान पर होती है जहाँ वह समुद्र मे जा मिलती है। उस समय समुद्रतल पर मिट्टी की एक परत सी बिछ जाती है। धीरे-धीरे, जैसे समय बीतता जाता है, इस प्रकार बिछाई हुई मिट्टी की अनेकों परतें जम जाती है। एक परत के ऊपर दूसरी परत जमती रहती है और कालान्तर में एक मोटी तह बन जाती है। ऊपर की परतों के भार व दबाव से नीचे की परतें कठोर चट्टान मे बदल जाती है। परन्तु इन परतों का कठोर पड़ने का कारण केवल भार या दबाव कदापि नहीं है। बहुधा परतों के बीच कुछ ऐसा पदार्थ घुस जाता है जो सीमेन्ट का काम करता है और विभिन्न ढीले कणों को बाँध कर ठोस बना देता है। प्रायः सभी परतदार चट्टानें पानी के नीचे मिट्टी की परत जमा होते रहने से बनी हैं। इसकी विशेषता यह है कि इनमें परतें पाई जाती हैं। इनकी इन परतों को तह भी कहते हैं। इसी बनावट के आधार पर इन्हें परतदार चट्टानें कहते है। जब कभी रेल की पटरी बिछाने के लिए या खान बनाने के लिए खोदाई की जाती है तो चट्टानों की परतदार बनावट स्पष्ट दिखलाई देती है। इस प्रकार की चट्टानें पृथ्वी के निर्माण के साथ ही बनना शुरू हो गई थीं और वर्त्तमान परतदार चटटानें कोई ५००० लाख वर्ष से बनती रही हैं।

इस बड़े काल मे जो परतदार चट्टानें बनीं उनके अनेक भेद व उपभेद हैं।

जहाँ पर परतों में ज्यादा उलटफेर नहीं हुआ है वहाँ यह स्पष्ट है कि नीचे की परतें ऊपर की परतों की अपेक्षा पुरानी हैं। इस आधार पर भूगर्भवेत्ताओं ने परतदार चट्टानों को दो भागों में विभाजित किया है—पुरानी परतदार चट्टानें और नई परतदार चट्टानें। पृथ्वी के विशाल इतिहास में जल और थल के वितरण में बहुत से हेर-फेर हुए हैं। इस समय जो भू-भाग उच्च पर्वतशिखर बने हुए हैं वे किसी समय समुद्र की तली में थे। आल्प्स और राकी पर्वतशृंखला इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इसके विपरीत बहुत-से भूभाग जो पहिले शुष्क स्थल थे अब समुद्र में समा गये हैं। ग्रेट ब्रिटेन के चारों ओर का छिछला समुद्र पहिले शुष्क स्थल था। इन प्रदेशों की परतदार चट्टानों के अध्ययन से ही पृथ्वी के इतिहास का ज्ञान होता है।

प्रधानतया परतदार चट्टानें स्थल पर से बहाकर ले जाये गए कंकड़-पत्थर, रोड़े-मिट्टी से बनती हैं। इसके अन्तर्गत बलुहा पत्थर, चीका मिट्टी और शेल शामिल हैं। बलुहे पत्थर बालू के कणों के कठोर पड़ने से बनते हैं और शेल कठोर पड़ा हुआ दल-दल मात्र है। इसके अलावा दूसरी प्रकार की परतदार चट्टानें समुद्रतल पर समुद्री

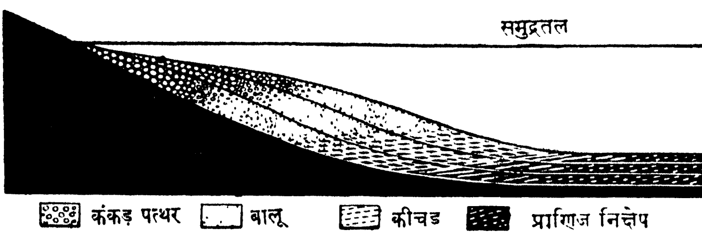

चित्र ४४—समुद्र की तली पर पृथ्वी पर से आया हुआ निक्षेप।

जीव-जन्तुओं के अस्थि अवशेष से बनती है। इन जीव-जन्तुओं के अन्दर समुद्र के जल से चूने के कारबोनेट प्राप्त करने की शक्ति होती है और उससे वे अपने अस्थिपिंजर का निर्माण करते हैं। आयस्टर, मुसल, कॉकल आदि भी इसी प्रकार अपने ऊपरी ढाँचे की रचना करते हैं। जब यह जीव-जन्तु मर जाते हैं तो उनका पिंजर धीरे-धीरे समुद्रतल में गिर जाता है। इस प्रकार निर्मित प्रधान चट्टानें खड़िया और चूने का पत्थर हैं। बहुत-से चूने के पत्थरों में छोटे-छोटे घोंघों के अवशेष स्पष्ट नजर आते हैं।

तीसरे प्रकार की परतदार चट्टानें समुद्र के नीचे वनाच्छादित प्रदेशों के धँस जाने से बनती हैं। समय बीतने पर इन वनाच्छादित जल-निमग्न भूभागों पर बालू, मिट्टी जमा होती जाती है और कालान्तर में दबदबाकर वनस्पति कोयले में बदल जाती है। ऊपर के भार और दबाव से वनस्पति अवशेष की आकृति और बनावट दोनों ही भिन्न हो जाती हैं। फलस्वरूप सम्पूर्ण वनस्पति एक काले पिण्ड में बदल जाती है जिसमें कारबन का अंश सबसे अधिक रहता है और पेड़-पौधे की जड़ें खाली आँखों से कदापि नहीं दिखलाई पड़तीं। कुछ लोगों का विचार है कि वनस्पति से कोयले बनने की प्रथम स्थिति पीट है और लिगनाइट या भूरा कोयला जो यूरोप और उत्तरी अमरीका

में खूब पाया जाता है उसके बाद की स्थिति है। निर्माण के समय यदि दबाव बहुत अधिक रहा तो एक प्रकार का खनिज कोयला बन जाता है। इसमें कारबन का प्रतिशत अंश बहुत अधिक रहता है और इसे अन्थ्रासाइट कोयला कहते हैं । इसमें धुआँ बिल्कुल नहीं उठता। यदि दबाव और भी अधिक रहा तो वनस्पति दबदबाकर ऐसे खनिज रूप को प्राप्त हो जाती है जिसमे सिवाय कारबन के और कुछ नहीं रहता। इसे 'ग्रेफ़ाइट' कहते है। इसे पेंसिल बनाने मे प्रयोग करते हैं। इसके अलावा अन्य बहुत-से उद्योगों में भी ग्रेफाइट का प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी चट्टानें है जो परतदार तो कहलाती हैं परन्तु उनका निर्माण जल के भीतर कदापि नही हुआ। इस प्रकार की चट्टानें मध्य इंगलैण्ड का बलुहा पत्थर और उत्तरी चीन की लोयस मिट्टी है। यह बलुहा पत्थर दबाई हुई रेगिस्तानी बालू का एक रूप है और लोयस मिट्टी, जो हजारों मील के क्षेत्रफल में फैली हुई है, वायु द्वारा मध्य एशिया के रेगिस्तानों से उड़ाकर लाई गई है।

बगैर परतदार चट्टानें (Non-Sedimentary Rocks)

जैसा नाम से प्रकट है, ये चट्टानें न तो मिट्टी के जमा होने से बनी है और न ही इनमे परतें पाई जाती हैं। ये चट्टानें भूगर्भ में इकट्ठी वस्तुओं से बनती है। और इनको दो प्रकार का कहा जा सकता है—

(१) आग्नेय चट्टानें, (२) परिवर्त्तित चट्टानें।

आग्नेय चट्टानों (Igneous Rocks) के अन्तर्गत वे सभी प्रकार की चट्टानें आ जाती है जो पिघली हुई चट्टानों के ठंडा पड़ने पर बनी हैं। जिनसे इन चट्टानों का प्रदुर्भाव हुआ है वह भूगर्भ मे पाया जाता है। ज्वालामुखी विस्फोट के समय यह लावा पृथ्वी के धरातल पर आ जाता है और जल्दी से ठंडा होकर जम जाता है। इस प्रकार ज्वालामुखी चट्टानो का निर्माण होता है । इस प्रकार की कुछ चट्टानें

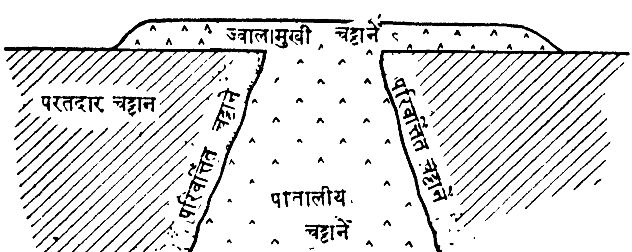

चित्र ४५

शीशे की भाँति होती है और कुछ बसाल्ट की तरह रवेदार। इसके दो प्रमुख उदाहरण बसाल्ट और एन्डेसाइट हैं । बसाल्ट की चट्टान को १२०° ताप देने पर उसके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और छः पहलू खम्भे से बन जाते हैं। पृथ्वी के नीचे कुछ गहराई पर लावा के ठंडे होकर जमने पर पातालीय (Plutonic) चट्टानों का निर्माण होता

है। इसका प्रमुख उदाहरण ग्रेनाइट है जिसमें धीरे-धीरे ठंडा होने के कारण बड़े-बड़े रफट पाये जाते है।

परिवर्तित चट्टानें (Metamorphic Rocks) वे है जो अपनी मूल स्थिति व दशा में दबाव या गर्मी के कारण बिल्कुल ही बदल गई हैं। मूल रूप में ये परिर्वत्तित चट्टाने या तो परतदार या आग्नेय चट्टानें थीं । गर्मी व दबाव के कारण परतदार चट्टाने बहुधा रवेदार हो जाती है और उनके तथा आग्नेय चट्टानों के बीच बहुत कम अन्तर रह जाता है। परिवर्त्तन के द्वारा खड़िया व चूने का पत्थर संगमरमर में बदल जाता है; चीका मिट्टी आर शेल स्लेट मे बदल जाते है; बलुहे पत्थर क्वार्टजाइट में और ग्रेनाइट नीस मे।

ब्रिटिश द्वीप समूह में पाई जाने वाली चट्टानें

निम्नलिखित तालिका मे ये स्पष्ट हो जायेंगी। इसमें विभिन्न चट्टानों की विशेषताओं और उनकी स्थिति की ओर भी इशारा कर दिया गया है। बग़ैर परतदार और पुरानी परतदार चट्टानें तालिका के नीचे दी हुई है । नवीनतम परतदार चट्टानें ऊपर की ओर दी गई है। सुविधा के दृष्टिकोण से परतदार चट्टानों को उनके युग के अनुसार पाँच वर्गों में बाँटा जा सकता है।

वर्ग	चट्टानों के प्रकार	जहाँ पाई जाती हैं
Quartenary नवोनतम युग की	मृत्तिका (नदी द्वारा बहा कर लाई) बोल्डर मिट्टी, पीट।	सोमरसेट, फ्रेन्स, नदियों के मुहाने और नदियों के मैदान में।
Tertiary तीसरे युग की	लन्दन की चीका मिट्टी	टेम्स की निचली घाटी में; हैम्पशायर में
Secondary दूसरे युग की	खड़िया, चीका मिट्टी, चूने का पत्थर, नवीन लाल बलुहा पत्थर।	टो नदी के दक्षिणपूर्व में और पेनाइन श्रेणी के चारों ओर के निम्न प्रदेश में।
Primary प्रथम युग की	कोयला, प्राचीन लाल बलुहा पत्थर, चूने का पत्थर, शेल और स्लेट	उत्तरी पश्चिमी पर्वतमाला, आयरलैण्ड, कार्नवाल, डेवनशायर, पैनाइन श्रेणी और स्काटलैण्ड।
Archaen पुरातन	अति पुरानी चट्टानें	उत्तरी पश्चिमी स्काटलैड।
आग्नेय और परिवर्त्तित चट्टानें।	ग्रेनाइट, बसाल्ट, नीस आदि।	स्काटलैण्ड के पहाड़, आयरलैण्ड के पश्चिमी पहाड़, लेक प्रदेश, वेल्स, डार्टमूर और कार्नवाल के मूर प्रदेश।

संसार के प्रमुख भू-आकार (Main Land Forms)

संसार के प्राकृतिक मानचित्र को देखने से पता चलेगा कि तीन विशिष्ट प्रकार के भू-आकार पाये जाते है जो कि निम्नलिखित हैं :—

(१) पहाड़, (२) पठार, (३) मैदान।

पृथ्वी का अधिकतर भूभाग इन तीनों श्रेणियों के अन्तर्गत आ जाता है।

(१) पहाड़

पहाड़ों को उनकी बनावट व निर्माण विधि के अनुसार कई प्रकार का कहा जा सकता है :—

(क) मोड़दार पर्वत, (ख) भूभागनिर्मित पर्वत, (ग) अवशिष्ट पर्वत, (घ) ज्वालामुखी पर्वत।

(क) **मोड़दार पर्वत** (Folded Mountains)—हिमालय, एण्डीस, आल्प्स और राकी पर्वतमालायें नवीन मोड़दार पर्वत कहलाते है। मोड़दार शब्द से इनकी निर्माण-विधि का भास होता है। लाखों करोडों वर्षो से पृथ्वी के धरातल पर अनेक प्रकार की हलचलें धीमे-धीमे अपना काम करती रही है और उन्ही के फलस्वरूप इन पर्वत मालाओं का निर्माण हुआ है। पर्वत निर्माणकारी ये हलचलें केवल धरातल को ऊँचा ही नही उठातीं, उनका आक्रमण नीचे से ऊपर की ओर ही नहीं था बल्कि ये हलचलें प्रधानतया भिचाँव से सम्बन्धित रही। इनका आक्रमण धरातल पर दाँये-बाँये से हुआ। फलस्वरूप इस धक्के के कारण पृथ्वी के पपड़े पर कई जगह झुर्रियाँ पड़ गई।

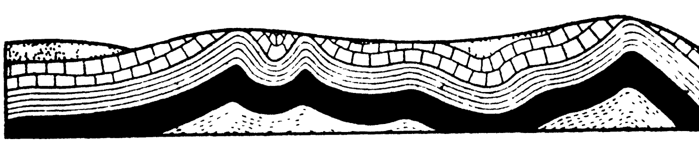

चित्र ४६—चट्टानों पर साधारण मोड़ पड़ना।

जिस प्रकार किसी मेजपोश को एक तरफ से समेटने पर सिकुड़नें पड़ जाती हैं उसी प्रकार पृथ्वी के धरातल पर घरेरे पड़ गए। घरेरे पड़ने पर कुछ भाग तो धनुषाकार होकर उठ गया और कुछ नांद की भाँति नीचे को धँस गया। उठे हुए भाग को प्रतिनति और धँसे हुए भाग को संनति कहते हैं। इन घरेरों का विस्तार विभिन्न होता है और बहुधा प्रतिनति का अधिक भाग काट-छाँट के कारण नष्ट हो जाता है और उसके अवशिष्ट भाग ही चोटी के रूप में खड़े रह जाते है।

पर्वत निर्माण का निश्चय ही कोई आन्तरिक कारण है। बहुत समय तक यह समझा जाता रहा कि पृथ्वी के ठंडा होकर सिकुड़ने से ही उसके पपड़े में घरेरे पड़ जाते हैं। पृथ्वी का ऊपरी पपड़ा ठंडा हो चुका है इसलिए वह सिकुड़ा हुआ है। परन्तु जब पृथ्वी के अन्दर का हिस्सा सिकुड़ता है तो उसके साथ-साथ ऊपर के पपड़े में और

झुरियाँ पड़ जाती हैं। इन्हीं झुरियों को घरेरे कहते हैं। इस सिद्धान्त के विषय में सबसे महान आपत्ति यह है कि हिमालय या आल्प्स पर्वत-श्रेणियों के घरेरे इतने महान् व विशाल है कि केवल पृथ्वी के भीतरी भाग का ठंडा पड़कर सिकुड़ना काफी नही समझ पड़ता।

इसके अतिरिक्त और भी बहुत-से सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। वेगनर के अनुमार महाद्वीपीय प्रवाह के कारण घरेरे पड़ गए। उनके अनुमार आल्प्स पर्वत-श्रेणी की रचना का प्रधान कारण अफ्रीका महाद्वीप का उत्तर की ओर खिसकना है। इस प्रवाह मे मध्य यूरोप की कठोर चट्टानों को जो टक्कर लगी उससे इस

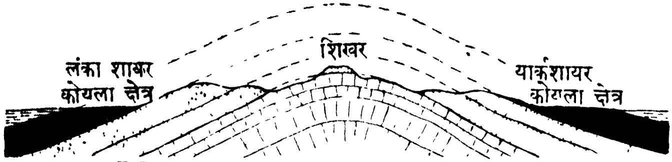

चित्र ४७--दक्षिणी पेनाइन श्रेणी का खंड चित्र--उर्ध्वप्रदेशीय मोड़।

घरेरेदार पर्वत की रचना हो गई। जैसे-जैसे अफ्रीका महाद्वीप उत्तर की ओर खिसका, बीच का यूरोपीय भूभाग संकरा होता गया और उसमें प्रतिनति व संनति का निर्माण हो गया। आल्प्स पर्वत-श्रेणी की रचना के साथ-साथ एक गहरा सागर भी बना, जिसका बचा हुआ भाग भूमध्यसागर है। इमी सिद्धान्त के आधार पर हिमालय की भी रचना हुई और उसके दक्षिण में सिन्धु गंगा का मैदान बना। इस दशा मे भी टक्कर दक्षिण से ही आई और इस रचना का प्रधान कारण दक्षिणी भारत का उत्तर की ओर खिमकना था।

पृथ्वी के धरातल के इतिहास को देखने से पता चलता है कि कुछ विशेष युगों में पर्वत निर्माण अधिक रहा। इसलिए पृथ्वी के मोड़दार पर्वत सब एक ही काल के नहीं है। सबसे नवीन मोड़दार पर्वत हिमालय, आल्प्स, राकी और एण्डीज पर्वत है। इसके पहिले कोयला युग (Carboniferous Period) में जो पर्वत निर्माण-कारी हलचल हुई उससे पेनाइन, अपलेशियन, दक्षिणी अफ्रीका की केप श्रेणी और आस्ट्रेलिया की प्रधान विभाजक श्रेणी का निर्माण हुआ। इससे भी पहिले एक और पर्वत निर्माणकारी हलचल हुई थी जिसने स्काटलैंड और नार्वे की पर्वतश्रेणियों को जन्म दिया। सबसे पहिले बनने के कारण इन पर्वतश्रेणियों का अब अवशेष मात्र रह गया है। प्राचीन मोड़दार पर्वतों की ऊँचाई और ऊबड़-खाबड़पन में बहुत कमी आ गई है क्योंकि अरबों वर्षों से उनके ऊपर अनावृत्तीकरण की शक्तियाँ वार करती आ रही हैं। फलतः प्राचीन मोड़दार पर्वत बहुत नीचे तथा कम ऊबड़-खाबड़ है।

नवीन मोड़दार पर्वत वे है जो अपेक्षाकृत हाल में ही बने हैं। परन्तु इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि वे कुछ हजार वर्ष पहिले ही बने है। ऐतिहासिक युग से कई लाख वर्ष पहिले इनका निर्माण हुआ था। वास्तव में सच तो यह है कि पर्वत निर्माण

धीरे-धीरे काफी अरसे तक होता रहता है और कुछ श्रेणियों जैसे एण्डीज और जापान के पर्वतों में तो यह निर्माणकारी गति अभी भी जारी है।

दक्षिणी-पूर्वी इंगलैण्ड के वील्ड प्रदेश को छोड़कर अन्य सभी नवीन मोड़दार पर्वतों में अनेक समानान्तर श्रेणियाँ पायी जाती है जिनकी औसत ऊँचाई १०,००० फीट से भी अधिक है। हिमालय की सबसे ऊँची चोटी २९,००० फीट से भी अधिक ऊँची है। एण्डीज की सबसे अधिक ऊँचाई २३,००० फीट है। राकी पर्वतमाला की २०,००० फीट और आल्प्स की सबसे ऊँची श्रेणी १५,००० फीट है। यद्यपि ये ऊँचाइयाँ देखने में बहुत अधिक मालूम पड़ती हैं, परन्तु पृथ्वी के विस्तार को देखते हुए ये कुछ भी नहीं है। संसार की सबसे ऊँची चोटी एवरेस्ट करीब ५ मील ऊँची है। १६ इंच व्यास के ग्लोब पर इसकी ऊँचाई ०.०१ इंच से अधिक नहीं होगी। इससे इनका आपेक्षिक विस्तार स्पष्ट है।

दूसरी विशेषता यह है, कि संसार के अधिकतर चैतन्य ज्वालामुखी मोड़दार पर्वतों के समीप ही पाये जाते है जहाँ अत्यधिक मुड़ाव के कारण स्तर भ्रंश हो गया है। प्रशान्त महासागर के चारों ओर चैतन्य व शान्त ज्वालामुखी की एक पट्टी-सी है। ये ज्वालामुखी न्यूजीलैण्ड, पूर्वी द्वीपसमूह, जापान, उत्तरी, मध्य व दक्षिणी अमरीका में पाये जाते हैं। चैतन्य ज्वालामुखी की दूसरी पेटी पश्चिम द्वीपसमूह के मोड़दार पर्वतों से सम्बन्ध रखती है।

इनकी तीसरी विशेषता यह है कि इस प्रकार के पर्वत बड़े ही ऊबड़-खाबड़ होते है। इनकी अपेक्षा प्राचीन मोड़दार पर्वत बड़े ही गोलाकार हो जाते है क्योंकि उनपर मौसमी क्षति व अनावृत्तिकरण की शक्तियाँ सतत प्रहार करती रहती हैं। स्काटलैण्ड और आल्प्स की श्रेणियों को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

पर्वत जलवायु पर बड़ा ही व्यापक प्रभाव डालते हैं। एक ही पर्वत-श्रेणी के इधर-उधर स्थित प्रदेशों की जलवायु में बड़ा अन्तर पाया जाता है। राकी पर्वत के पश्चिमी भाग में स्थित ब्रिटिश कोलम्बिया के तटीय प्रदेश की जलवायु सम तथा वर्षा से भरी-पूरी है। इसके विपरीत राकी पर्वत के पूर्वी भाग में स्थित प्रदेशों की जलवायु विषम है और वर्षा की मात्रा कम है। इसके अलावा पर्वतीय प्रदेशों की जलवायु समीपवर्त्ती निम्न प्रदेश से सर्वथा भिन्न होती है।

संसार की प्रधान पर्वतश्रेणियाँ खनिजों के लिए बड़ी ही विख्यात हैं और शीतोष्ण कटिबंध में इन पर्वत प्रदेशों का लकड़ी काटने के धंधे के दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। कुछ पर्वत प्रदेशों के बीच स्थित पठारों पर सिंचाई की सहायता से खेती-बारी की जाती है। शीतोष्ण कटिबंध में वन-प्रदेशों से ऊपर सुन्दर चरागाह पाये जाते हैं। पहाड़ों की तेज बहने वाली नदियाँ पन-बिजली का अच्छा साधन होती हैं। स्विट्जरलैंड और नार्वे में जहाँ कोयले की कमी है इस साधन की विशेष उपयोगिता है।

उत्तरी अमरीका के पश्चिमी कार्डलिरा में सोना, तांबा, जस्ता, चाँदी पायी जाती है। नेवादा और मोन्टाना की रियासतें इसके लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। एण्डीज के

बोलीविया राज्य में टीन, कोलम्बिया में सोना और प्लेटिनम तथा पीरू में चाँदी का भंडार है। पूर्वी आस्ट्रेलिया के पर्वतों में सोना व ताँबा पाया जाता है।

ब्रिटिश कोलम्बिया, वाशिंगटन और आरीगन राज्यों में मुलायम लकड़ी, मध्य अमरीका के पहाड़ों पर कठोर लकड़ी, हिमालय के ढालों पर साल और सागौन तथा स्कैन्डिनेविया के पहाड़ों पर मुलायम लकड़ी के जंगल है जिनमें लकड़ी काटने का धंधा होता है।

पहुँच के बाहर पर्वतीय प्रदेशों में बसी हुई खान खोदने वाली बस्ती के लिए भोजन का प्रबन्ध करने के लिए खेती का भी प्रबन्ध हुआ है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका और दक्षिणी अमरीका के बोलीविया राज्य में सिचाई की सहायता से पठारी भागों में थोड़ा-बहुत अनाज उगाया जाता है। स्विट्जरलैंड और स्कैन्डिनेविया में पहाड़ी चरागाहों का पशुपालन के लिए सबसे अधिक उपयोग किया गया है।

मध्य-एशिया का विशाल पठार अपनी विषम जलवायु तथा आवागमन की असुविधा के कारण अन्य प्रदेशों से इतना अलग-थलग है कि वहाँ पर किसी भी प्रकार की उन्नति नहीं हो पाई है। उच्च पर्वतश्रेणियाँ आवागमन के मार्ग में बाधायें उपस्थित करती है। इनके कारण जनसम्पर्क टूट जाता है। पर्वतों के आर-पार जाना दर्रों की उपस्थिति पर सीमित रहता है। ये दर्रे बहुधा इतनी अधिक ऊँचाई पर होते हैं कि जाड़े के मौसम में ये बर्फ से ढँक जाते है और आवागमन रुक जाता है। आल्प्स,

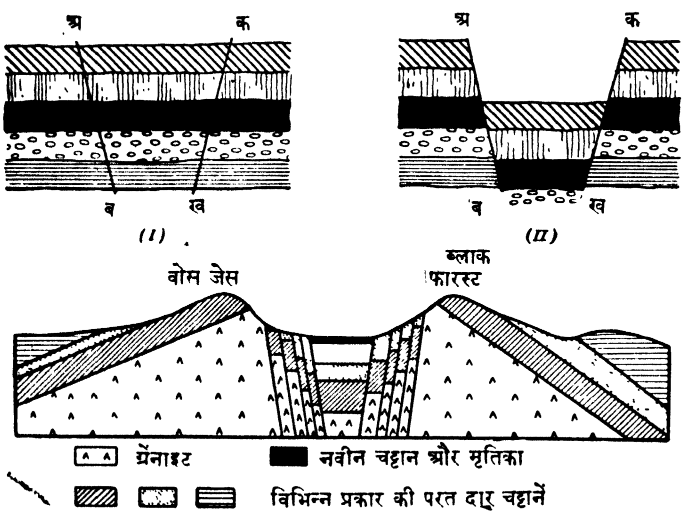

चित्र ४८—(i) और (ii) दरार घाटी का साधारण चित्र
(iii) राइन की दरार घाटी का खंड चित्र

एण्डीज और हिमालय जैसी पर्वतमालाओं को बड़ी कठिनाई से या बहुत अधिक खर्च के बाद बनाई गई सुरंगों द्वारा पार किया जा सकता है।

(ख) भूभाग-निर्मित पर्वत (Block Mountains)—कभी-कभी ऐसा होता है कि पृथ्वी के पपड़े की हलचल दरारों या भ्रंश स्तर पर होती है। इन हलचलों के कारण दो दरारों के बीच का भूभाग ऊपर को उठ जाता है या बीच के भूभाग के दोनों ओर का प्रदेश नीचे को धँस जाता है। इस प्रकार से बने उच्च प्रचेश को भूभाग निर्मित पर्वत कहते हैं। वासचेस और ब्लैक पर्वत इसके सर्वोच्च उदाहरण है।

इस प्रकार के पर्वतों का ढाल सामान्यतः तीव्र होता है और इनकी चोटियों का तल समान रहता है।

(ग) अवशिष्ट पर्वत (Residual Mountains)—अनावृत्तीकरण के साधनों और विशेषकर नदियो द्वारा जब कोई प्रदेश काँट-छाँट कर समतल व सपाट कर दिया जाता है तो उसके बीच जो उच्च प्रदेश खड़े रह जाते है उन्हे अवशिष्ट पर्वत कहते है। कभी-कभी इन्हें अनावृत्तीकरण के पर्वत भी कहते हैं। साधारणतया इस नाम का प्रयोग उन पर्वतश्रेणियों के लिए करते है जो पठारों की काँट-छाँट के बाद बनते है। इसके अन्तर्गत स्काटलैंड के पर्वत, मध्य स्पेन के सीयरा, पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मेसा (Mesa) और बूटे (Butte) शामिल है।

(घ) ज्वालामुखी पर्वत (Volcanoes)—ज्वालामुखी से निकले हुए पदार्थों के एकत्रित हो जाने से भी पर्वतों का निर्माण हो जाता है। इनका विवरण आगे दिया जायेगा।

(२) पठार (Plateaus)

समुद्रतल से निश्चित ऊँचाई पर स्थित सपाट उच्चप्रदेश को पठार कहते हैं। इसका ढाल चारों ओर होता है और इस पर से उतरने पर हम निम्नप्रदेश में पहुँचते है। संसार के कुछ पठार ऐसे है जिनके चारों ओर उच्च पहाड़ी चोटियाँ है। तिब्बत और बोलीविया के पठार ऐसे ही है। इन्हें पर्वत प्रान्ती (Intermontane Plateaus) पठार कहते है। कभी-कभी ये पर्वत प्रान्ती पठार पहाड़ों से ऐसा घिरे होते हैं कि समुद्र की ओर उनका निकास ही नही होता। किसी हद तक पठार को हम उच्चप्रदेशीय मैदान कह सकते है परन्तु मैदान और पठार के धरातल में काफी अन्तर होता है। चूंकि पठार ऊँचा होता है, उस पर से होकर बहने वाली नदियों का प्रवाह तेज होता है और उनकी घाटियाँ संकरी और गहरी होती हैं। इसके विपरीत मैदान की नदियाँ चौड़ी व खुली हुई घाटियाँ बनाती है। स्काटलैंड और वेल्स के समान बहुत से पठारी प्रदेश नदियों की घाटियों द्वारा कटे-फटे रहते है। इन्हें **कटफटे पठार** (Dissected Plateaus) कहते है। ऐसे प्रदेश के ऊपर पहुँचने पर निरीक्षक को सपाट शिखर वाली पहाड़ी श्रेणियों की शृंखला दिखाई पड़ती हैं। ये श्रेणियाँ प्रायः एक ही ऊँचाई की होती है। पठारों के अन्य श्रेष्ठ उदाहरण तिब्बत (एशिया), एक्वेडर और बोलीविया (दक्षिणी अमरीका) और अफ्रीका महाद्वीप है। भारत का दक्षिणी पठार ऐसा है कि उसका पश्चिमी किनारा पूर्वी किनारे की अपेक्षा कुछ अधिक ऊँचा है। इसीलिए भारतीय पठार का ढाल पूर्व की ओर है और सभी नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं।

इंगलैण्ड का 'सेलिसबारी मैदान' समीपवर्ती प्रदेश की अपेक्षा कुछ ऊँचा है। यह वास्तव में एक पठार है, मैदान नहीं।

अधिकतर दशाओं में उच्च पहाड़ी प्रदेशों के घिसते व कटते रहने से पठारों का निर्माण होता है। घिसते-घिसते ये प्रदेश बहुधा इतने नीचे हो जाते हैं कि इन्हें पेनी प्लेन कहते हैं क्योंकि इनकी रूप-रेखा मैदानों से बहुत कुछ मिलती-जुलती है।

लाखों वर्ष पहिले पृथ्वी के पपड़े की दरारों में से लावा प्रवाह हुआ था और यह लावा बहकर समीपवर्ती प्रदेश में फैल गया। कालान्तर में यह जमकर ठोस बसाल्ट का पठार बन गया। इस तरह के पठार उत्तरपूर्वी आयरलैण्ड और बम्बई के पूर्व में भारतीय दक्खन में है।

संसार के सबसे विस्तृत पठार बहुत पुरानी कड़ी चट्टानों के बने है। गायना के उच्च प्रदेश, अफ्रीका का अधिक भाग, अरब और दक्षिणी भारत का पठार तथा पश्चिमी आस्ट्रेलिया का पठार इसी प्रकार की पुरानी चट्टानों के बने है। ये प्राचीन पठार अपनी खनिज सम्पत्ति के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया में सोना, ब्राजील के पठार में लोहा व मैंगनीज, अफ्रीकी पठार में सोना, तांबा और हीरे और साईबेरिया के लेना पठार में सोना पाया जाता है।

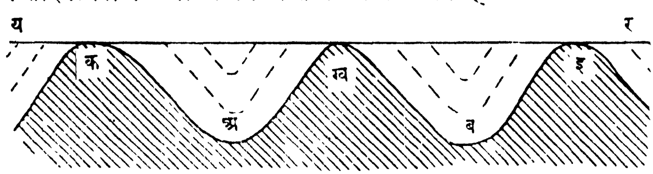

चित्र ४९—छायांकित प्रदेश भूखंड है। रेखाएँ घाटियों की उत्पत्ति दिखलाती हैं। इस प्रकार पठार कट फट जाता है।

उष्णकटिबंधीय प्रदेशों में जहाँ पठार पाये जाते हैं, उनका विशेष महत्त्व है क्योंकि समीपवर्ती मैदानी भागों की अपेक्षा ठंडे होने के कारण वहाँ पर योरोपीय लोगों को बसने की सुविधा है और इसी कारण उष्ण कटिबंधीय पठार बहुत उन्नति कर गये हैं। ब्राजील, कीनिया और टैन्गनाइका के पठार इस प्रकार के अच्छे उदाहरण हैं।

उष्णकटिबंधीय पठारों का अधिकतर भाग सैवाना घास के मैदान हैं। इनका अधिकतर भाग अभी भी अवनत है परन्तु वहाँ प्राणिज व वनस्पति उत्पादन को बढ़ाने की सम्यक् सम्भावनायें हैं। इसके लिए यातायात व गमनागमन की उन्नति तथा बस्तियों में वृद्धि होने की आवश्यकता है।

३. मैदान (Plains)

निम्न और बहुत कुछ समतल भूभाग को मैदान कहते हैं। इंगलैण्ड के केन्स, हालैण्ड का अधिकतर भाग और रूस के विस्तृत प्रदेश बिल्कुल ही सपाट हैं। परन्तु साधारणतया विस्तृत मैदान के अन्तर्गत चौड़ी और क्रमशः ढालवाली घाटियों के बीच छोटी-छोटी नीची पहाड़ियाँ भी शामिल रहती हैं। इस प्रकार के मैदान को लहरदार या

उतार-चढ़ाव वाला कहते हैं। बहुत-से ऊँचाई से देखे जाने पर बिल्कुल ही सपाट दिखलाई पड़ते हैं पर नीचे उतरने पर बहुत-से तीव्र ढाल दिखलाई पड़ते हैं जो कि मैदान के बीच से होकर बहने वाली नदियों की घाटी की दीवारें होती हैं।

सभी मैदान एक-से नहीं होते। प्रथम तो वे मैदान होते हैं जो ऊँचे भागों के घिसने से बनते हैं। इस तरह के मैदानों को पेनीप्लेन कहते हैं। फिनलैण्ड और हडसन की खाड़ी के चारों ओर के मैदान इसी प्रकार के हैं। दूसरे, जहाँ चट्टानों की परत पर घरेरे नहीं पड़े रहते बल्कि वे समानान्तर रहती हैं, वहाँ भी विस्तृत मैदान बन जाते हैं। संयुक्तराष्ट्र अमरीका के मध्यवर्ती मैदान और यूरोपीय रूस के विशाल मैदान इसी श्रेणी में आते हैं। तीसरे, नदियों द्वारा लाई हुई मिट्टी के इकट्ठा होते रहने से भी मैदान बन जाते हैं। इनको बहुधा **मृत्तिकामय मैदान** (Alluvial Plains) कहते हैं। उत्तरी चीन, सिन्धु-गंगा का मैदान, ईराक के मैदान और अमेजन की घाटी इसी श्रेणी के मैदान हैं। कुछ मैदान सूखी हुई झीलों की तलैटी हैं। वास्तव में जब कोई नदी झील में प्रवेश करती है तो वह अपने साथ बहाकर लाई हुई मिट्टी जमा कर देती है। यह मिट्टी पानी की गति के द्वारा झील की तली मे बिछ जाती है। इस तरह के मैदान बहुत विस्तृत तो नहीं होते परन्तु उपजाऊ खूब होते हैं। उत्तरी अमरीका के संयुक्तराष्ट्र में दक्षिणी मैनीटोबा के मैदान अगासिज़ झील की तलैटी है। हंगरी के उपजाऊ मैदान भी इसी प्रकार बने हैं। अन्त में, कुछ मैदान महाद्वीपों के तटीय भाग के समुद्रों की तली ऊपर उठ जाने से बन जाते हैं। संयुक्तराष्ट्र अमरीका मे चीपसेक खाड़ी से फ्लोरिडा तक के तटीय मैदान इसी प्रकार बने हैं।

संसार के मैदान सबसे अधिक उन्नत व घने आबाद हैं। मैदानों में आसानी से खेती हो सकती है और उनकी मिट्टी गहरी व उपजाऊ होती है। इसलिए केवल वनाच्छादित या ऊसर भागों को छोड़कर संसार के सभी मैदान महत्त्वपूर्ण खेतिहर प्रदेश हैं। कुछ मैदान जैसे कि मध्य एशिया और मरे-डार्लिंग के बेसिन की जलवायु शुष्क होने से वहाँ खेती होना असंभव है। जब तक सिंचाई का प्रबन्ध नहीं किया जाता इस प्रकार के मैदान केवल पशुपालन के केन्द्र ही बने रहेंगे। पशुपालन करने वाले किसानों को भी जल का प्रबन्ध करने के वास्ते कुँयें खोदने पड़ते हैं विशेष कर हंगरी और आस्ट्रेलिया में। जहाँ कहीं मैदानों के समीप कोयला पाया जाता है, वहाँ पर घने आबाद औद्योगिक केन्द्र बन गए हैं। उत्तरी मध्य संयुक्तराष्ट्र अमरीका इसका जागृत उदाहरण है। मैदानों पर सभी दिशाओं में आना-जाना हो सकता है। नदियाँ धीमी व नाव्य होती हैं। इसलिए उन्हें आवागमन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में मिसीसिपी और उसकी सहायक नदियों का यातायात व्यवस्था में बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

जल-थल का वितरण

पृथ्वी पर जल और थल का समान विकास नहीं है। थल की अपेक्षा जल का विस्तार दूने से भी अधिक है। पृथ्वी के ७१ प्रतिशत भाग में जल और २९ प्रतिशत भाग

मे थल है। परन्तु उतरी गोलार्द्ध में जल-थल का विस्तार बराबर है। दक्षिणी गोलार्द्ध में थल की अपेक्षा जल का विस्तार १५ गुना अधिक है।

ग्लोब को ध्यानपूर्वक देखने से जल-थल वितरण सम्बन्धी निम्नलिखित बातें स्पष्ट हो जाती हैः—

(१) प्रत्येक दशा में यदि ग्लोब के एक ओर भूमि है तो उसके बिल्कुल विपरीत

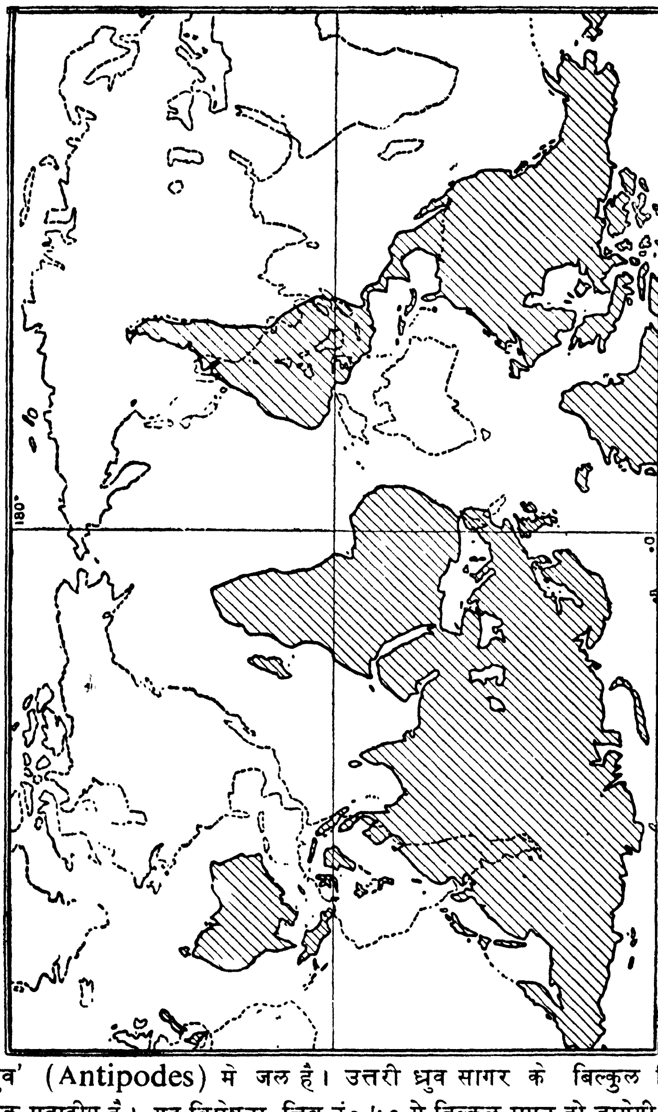

चित्र ५०—जल और थल का प्रतिध्रुव विन्यास

'प्रतिध्रुव' (Antipodes) मे जल है। उत्तरी ध्रुव सागर के बिल्कुल विपरीत अन्टार्टिक महाद्वीप है। यह विशेषता चित्र नं० ५० से बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी।

(२) उत्तरी गोलार्द्ध के शीतोष्ण कटिबंध में भूखंड और महाद्वीपों की एक शृंखला-सी है।

(३) दक्षिणी गोलार्द्ध के भूखंड सबसे अधिक संकरे है।

(४) अन्टार्टिक भूखंड के तीन हिस्से उत्तर की ओर निकले हुए है :—एक दक्षिणी अमरीका की ओर, दूसरा दक्षिणी अफ्रीका की ओर और तीसरा आस्ट्रेलिया की ओर।

कुछ वैज्ञानिकों ने इस व्यवस्था को Tetrahedral या चतुष्फलक सिद्धान्त द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है। परन्तु यह सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं है। इस सिद्धान्त का आधार यह है कि जब एक वृत्त टूटता है या सिकुड़ता है तो वह चतुष्फलक का रूप धारण कर लेता है। वास्तव मे चतुष्फलक एक ऐसी ठोस आकृति है जो चार समत्रिबाहु त्रिभुजों को मिलाने से उत्पन्न होती है। यह एक त्रिकोण व त्रिभुजाकार पिरामिड है जो एक त्रिभुजाकार आधार पर स्थित रहता है। यदि यह धारणा ठीक है तो जल-थल का वितरण वैसा होगा जैसा चित्र ५१ में दिखलाया गया है। चतुष्फलक के कोनों पर तो महाद्वीप है और उनकी रेखाओं मे महासागर है।

जल और थल के वितरण की विशेषताओं मे निम्नलिखित तथ्यों की उत्पत्ति होती —है

(१) उत्तरी गोलार्द्ध मे यातायात शृंखला सी उत्पन्न हो गई है। उत्तरी आन्ध्र महासागर का समुद्री मार्ग, उत्तरी अमरीका का महाद्वीपीय रेल-मार्ग, उत्तरी प्रशान्त महासागर के मार्ग और ट्रान्स साइबेरियन रेल मार्ग इसी जल-थल विन्यास की देन है।

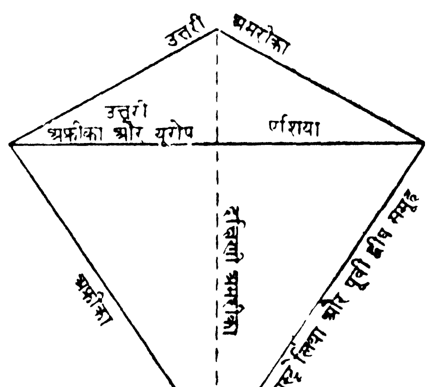

चित्र—५१ चतुष्फलक सिद्धान्त और जल-थल वितरण

(२) उत्तरी गोलार्द्ध मे यातायात के सभी मार्ग पूर्व से पश्चिम की ओर जाते है, जबकि दक्षिणी गोलार्द्ध के मार्ग उत्तर से दक्षिण की ओर जाते है। दक्षिणी अमरीका, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया मे कोई भी महत्त्वपूर्ण मार्ग पूर्व से पश्चिम को नही जाता।

(३) दक्षिणी गोलार्द्ध के भूखंड, विशेषकर आस्ट्रेलिया, उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीपों की अपेक्षा कहीं अधिक अलग-थलग हैं।

(४) दक्षिणी गोलार्द्ध की अपेक्षा उत्तरी गोलार्द्ध में अन्तर्राष्ट्रीय वायुमार्गों का विकास अधिक सुविधाजनक है।

(५) उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीपों का विस्तार इतना अधिक है कि उनके आन्तरिक भागों में काफी विषम जलवायु पायी जाती है। गर्मी और जाड़े के ताप के बीच काफी अन्तर रहता है। इसके विपरीत दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीपों की जलवायु बहुत सम है।

(६) चूंकि ५५° दक्षिणी अक्षांश के बाद किसी भी दक्षिणी महाद्वीप का विस्तार नहीं है, इसलिए दक्षिणी महाद्वीपों और अन्टार्टिक के बीच सागर का विन्यास एक पूर्ण वृत्त बनाता है।

(७) शीतोष्ण कटिबंध (Temperate Zone) में स्थित महाद्वीपों के भाग का विस्तार व चौड़ाई उत्तरी गोलार्द्ध की अपेक्षा दक्षिणी गोलार्द्ध में बहुत कम है। इसलिए श्वेतवर्ण की जातियों के लिए बसने की सुविधायें दक्षिणी महाद्वीपों में बहुत सीमित हैं। वहाँ उनके लिए उपयुक्त भूभाग बहुत थोड़ा ही है।

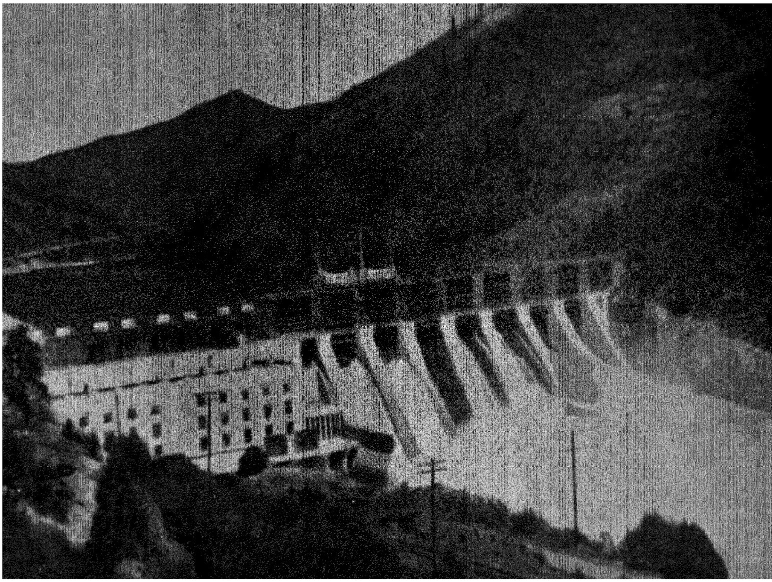

ऊपर : ब्रिटिश कोलम्बिया में जलविद्युत उत्पादन के लिए बनाया गया एक बांध जो कूटने (Kootenay) नदी पर नेलसन और कासलगर के बीच में स्थित है।

नीचे : स्विजरलैंड में जंगफ्राउ (Jungfrau)। घास और पहाड़ी फूल ध्यान देने योग्य हैं।

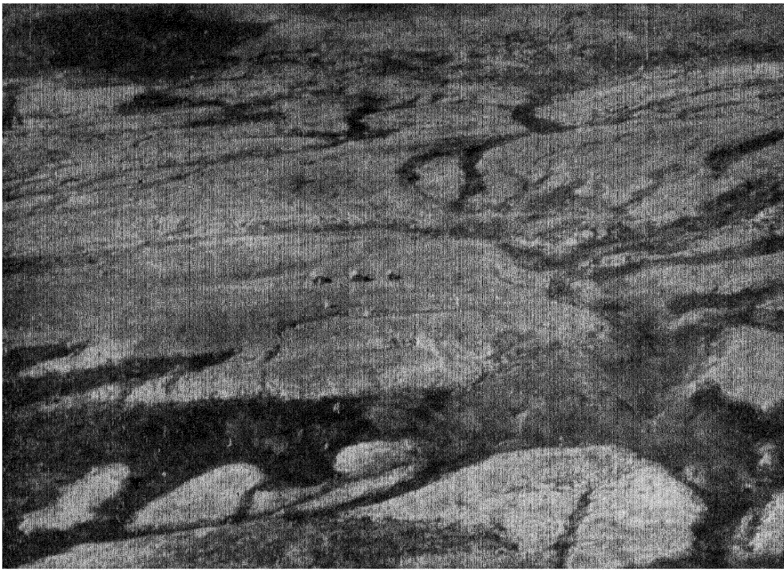

ऊपर : पुरानी कठोर चट्टान का पेनीप्लेन—यह कनाडा की पुरानी ढाल का भाग है।
नीचे : एस्सेक्स के मैदान का एक भाग।

अध्याय चार

महासागर

(OCEANS)

सागर तल (The Ocean Floor)

समुद्रतल से नीचे जितने गड्ढे पृथ्वी पर पाये जाते हैं उन सब में सागर स्थित हैं। इसके अन्तर्गत भूखंड से घिरी कुछ निम्न भूमियों को नहीं लेते। कैस्पियन सागर के चारों तरफ की भूमि, हालैण्ड के वोल्डर्स और जार्डन नदी की घाटी इसी प्रकार के भाग हैं। जब समुद्र से बाहर भूभाग की औसत ऊचाई २७५० फीट है, सागर की गहराई का औसत १२,३०० फीट है। अब तक ज्ञात समुद्र की सबसे अधिक गहराई ३५,६०० फीट है जो कि आम द्वीप के दक्षिण-पश्चिम में मैरीता गर्त में पायी जाती है। १६ इंच व्यास के ग्लोब मे यह गहरा गर्त केवल १०० इंच गहरे निशान द्वारा चित्रित किया जायेगा। इस बात से जाहिर है कि पृथ्वी की गोलाकार आकृति में ऊँचे पर्वत व गहरे सागरों का बहुत कम असर पड़ता है। हमारी पृथ्वी पर इन ऊँचाइयों और गहराइयों का आकार वैसा ही है जैसा कि एक नारंगी पर पायी जाने वाली असमानता।

सागरतल को बहुधा चार भागों में बाँटते है :—

(अ) **महाद्वीपीय सागर** (Continental Shelf)—महाद्वीपों के चारों ओर पाया जाने वाला छिछला समुद्र महाद्वीपीय सागर कहलाता है। इसकी गहराई ६०० फीट या १०० फैदम से कभी भी अधिक नहीं होती। महाद्वीपीय सागर की बाहरी सीमा महाद्वीपीय किनारा कहलाता है।

(ब) **महाद्वीपीय ढाल** (Continental Slope)—वह भाग है जहाँ महाद्वीपीय किनारा एकदम से ढालू होकर अगाध सागरीय तल में चला जाता है।

(स) **अगाध सागर तल** (Deep Sea Plains) के अन्तर्गत सागरतल का अधिकतर भाग सम्मिलित है। यह बहुत कुछ सपाट भाग समुद्रतल से २ मील के करीब गहरा है। कहीं-कहीं इस सागरीय मैदान में बड़े गहरे गड्ढे पाये जाते हैं। इन्हें महासागरीय गर्त कहते हैं।

(द) **महासागरीय गर्त** (Ocean Deeps)—लम्बे संकरे और नाँद की भाँति के गड्ढे है जो कहीं-कहीं पाये जाते हैं और जिनमें सागर की गहराई बहुत अधिक हो जाती है।

ये चारों भाग चित्र ५२ में स्पष्ट दिखलाये गए हैं।

आन्ध्र महासागर (Atlantic Ocean)

आकृति में आन्ध्र-महासागर बहुत कुछ अंग्रेजी भाषा के S अक्षर से मिलता है। अमरीका और यूरोप-अफ्रीका महाद्वीपों की तट-रेखा बहुत कुछ समानान्तर है। उत्तर में जहाँ विस्तृत मैदान समुद्र तक फैले हुए हैं विस्तृत महाद्वीपीय सागर पाये जाते हैं ये महाद्वीपीय सागर पूर्वी व पश्चिमी दोनों किनारों पर पाये जाते है। इनका सबसे अधिक विस्तार ब्रिटिश द्वीपसमूह के चारों ओर और न्यूफाउण्डलैण्ड तथा उत्तरी पूर्वी संयुक्त राष्ट्र के समीप बहुत अधिक है। इसके विपरीत, दक्षिणी आन्ध्र महासागर में महाद्वीपीय सागर बहुत संकरा है, विशेषकर उन प्रदेशों में जहाँ अफ्रीका और ब्राजील के पठार किनारे के साथ तेजी से उठे हुए हैं।

आन्ध्र-महासागर के मध्य में दोनों भूभागों के बीचोंबीच दक्षिण की ओर फैली हुई एक जलनिमग्न श्रेणी है जो महाद्वीपों के किनारों के समानान्तर चली गई है। इस श्रेणी को उत्तरी आन्ध्र-महासागर में डाल्फिन श्रेणी और दक्षिणी आन्ध्र-महासागर में चैलेन्जर श्रेणी कहते है। कहीं-कहीं इसका कुछ भाग समुद्र-तल से ऊपर भी आ गया है। जहाँ पर ऐसा है वहाँ इसने द्वीपों का रूप धारण कर लिया है, जैसे एजोर, सेंटपाल, ऐसन्सन और ट्रिस्टन ड कुन्हा। ये द्वीप या ऐसे द्वीप महासागरीय द्वीप कहलाते हैं क्योंकि वे बहुत गहरे समुद्रों में पाये जाते है। इसके विपरीत न्यूफाउण्डलैण्ड और ब्रिटिश द्वीपसमूह छिछले पानी में पाये जाते हैं और उन्हे महाद्वीपीय द्वीप कहते है।

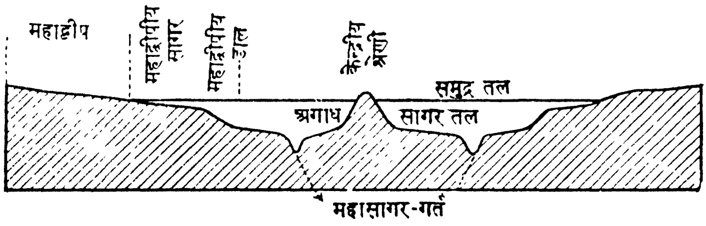

चित्र ५२—आन्ध्र महासागर का खंड चित्र

इस केन्द्रीय श्रेणी के दोनों तरफ विशाल गर्त पाये जाते हैं परन्तु सबसे गहरा गर्त पोर्टोरिकों के ठीक उत्तर में नारेस गर्त है और इसकी गहराई २७,९७२ फीट हैं।

प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean)

आन्ध्र-महासागर से भिन्न प्रशान्त महासागर प्रायः सभी ओर से उच्च पर्वतीय श्रेणियों द्वारा घिरा हुआ है। इसके चारों ओर या तो एण्डीज जैसी उच्च पर्वत-श्रेणियाँ हैं या जापान जैसे ज्वालामुखी प्रधान द्वीप। इस व्यवस्था से दो बातें निकलती हैं—

(१) अपेक्षाकृत महाद्वीपीय सागर बहुत कम चौड़ा है।

(२) महाद्वीपों के किनारों से सागर तल एकदम गहरा हो जाता है। फलतः विशाल सागरगर्त महासागर के पूर्वी और पश्चिमी किनारों के बहुत समीप है। टसकरारोरा गर्त पूर्वी जापान की तरफ है, मिन्डानाओ गर्त फिलीपाइन के समीप और रसेल गर्त चिली के तट के समीप है।

जापान से दक्षिण की ओर लाड्रोन, मार्शल, टोन्गा और करमाडेक द्वीपों से पूर्व महामागरीय गर्तों की एक श्रृंखला-सी है। ये द्वीप वास्तव में २०००–४००० फीट गहरे चबूनरे की बाहिरी सीमा मालूम पड़ते हैं। यह चबूतरा एशिया और आस्ट्रेलिया में पूर्व की ओर फैला हुआ है। इसी प्रकार का चबूतरा दक्षिणी और मध्य अमरीका से पश्चिम की ओर फैला हुआ है। इन दोनों चबूतरों के बीच अगाध सागर तल स्थित है। इन प्रशान्त महासागरीय निमग्न चबूतरों से पठार सदृश भाग उठे हुए हैं और उनके शिखर ज्वालामुखी तथा मूँगे के द्वीप बनाते हैं।

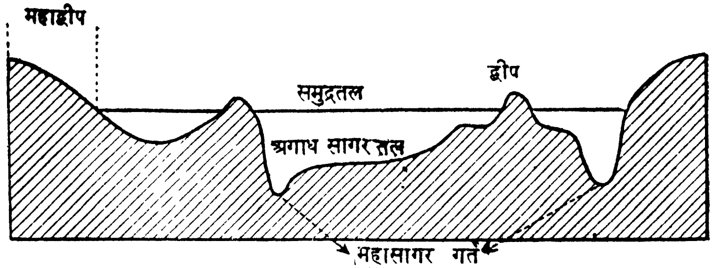

चित्र ५३—प्रशान्त महासागर का खंड चित्र

सागर तल के निक्षेप (Covering of the Ocean Floor)

सागरतल में पंक, ऊज और चीका मिट्टी का निक्षेप मिलता है। पंक और चीका मिट्टी भूभाग से प्राप्त होते हैं और इन्हें भूभाग सम्बन्धी निक्षेप (Terragenons Deposits) कहते हैं। ऊज़ छोटे-छोटे समुद्री कीटाणुओं के अस्थि-पिंजर के जमा होते रहने से बनते हैं और उन्हें महामागरीय निक्षेप (Oceanic Deposits) कहते हैं।

(१) **पंक** (Muds)—के अन्तर्गत बजरी, बालू और मिट्टी पायी जाती है। यह पदार्थ या तो नदियों द्वारा बहाकर लाये जाते हैं या लहरें समुद्र-तटों से तोड़-फोड़ कर लाती हैं। इसका रंग हल्का नीला होता है और यह महाद्वीपों के चारों ओर स्थित छिछले पानी में पाया जाता है। जहाँ पर नदी की धारा बहुत तेज़ है वहाँ यह नीला पंक भूखंड से ४००–५०० मील दूरी तक भी पाया जाता है परन्तु सामान्यतः यह २००–३०० मील तक पाया जाता है। महाद्वीपीय ढालों पर यह पंक महीन कणों का बना होता है और इसका रंग हरा या लाल होता है। इसकी रासायनिक रचना के अनुसार इसका रंग अलग-अलग होता है।

(२) **ऊज** (Ooze)—महासागर के जल में लाखों करोड़ों किस्म के छोटे-छोटे कीटाणु पाये जाते हैं। अधिकतर दशा में ये जल के बीच तैरते रहते हैं। जब ये कीटाणु मर जाते हैं तो ये सागरतल में बैठ जाते हैं और इस प्रकार सागरतल की ओर इनकी मृतदेह की वर्षा-सी होती रहती है। बहुत समय तक ऐसा होता रहने पर इनके अस्थि-पिंजर के एकत्रित होने पर एक विशेष प्रकार का निक्षेप बन जाता है। इस प्रकार का निक्षेप बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। इन्हें ऊज़ कहते हैं और महाद्वीपों से बहुत

दूर सागरतल में पाये जाते हैं। इनका साधारण रंग स्लेट जैसा होता है। सूखने पर ऊज़ की बनावट आटे जैसी हो जाती है। प्रायः ४ प्रधान तरह के ऊज़ होते हैं :—

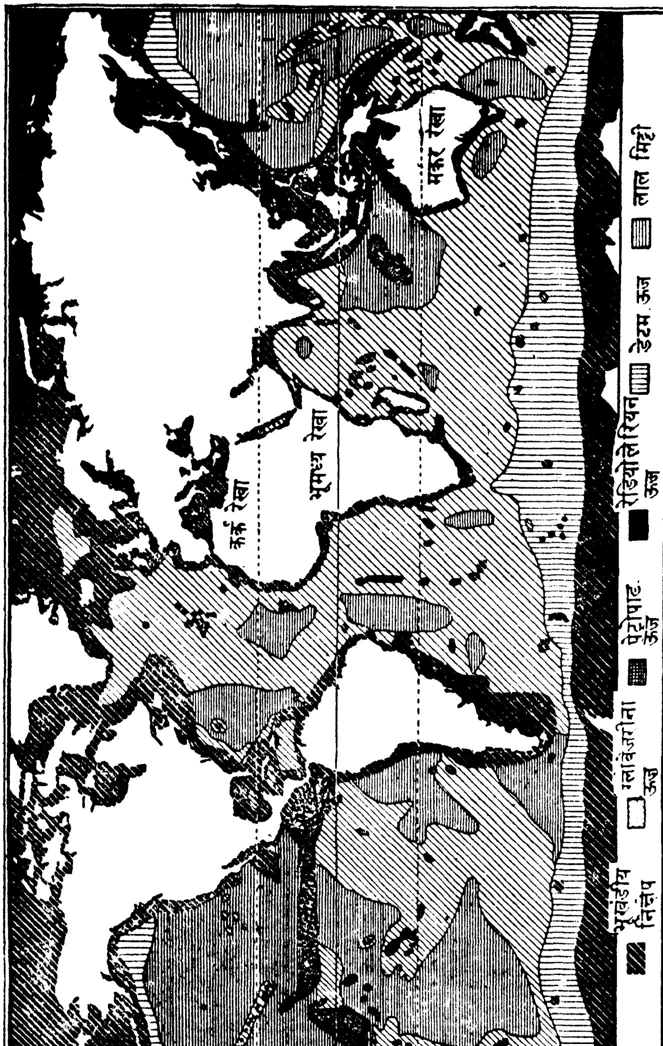

चित्र ५४—महा सागरीय निक्षेप

(क) ग्लोबीजेरीना
(ख) प्टेरोपाड ऊज़ } चूने के कारबोनेट की बहुलता होती है;

(ग) डेटम
(घ) रेडिओ लेरियन } सिलिका की प्रधानता होती है।

ग्लोबीजेरीना ऊज़ (Globigerina Ooze) बहुत विस्तार से पाई जाती है। आंध्र महासागर, प्रशान्त महासागर के दक्षिणी भाग और हिन्द महासागर में सागरतल इसी से ढका हुआ है।

प्टेरोपाड ऊज़ (Petropod Ooze) केवल गर्म सागरों में पाई जाती है। चूँकि पेटरोपाड जाति के कीड़े अगाध सागरतल तक पहुँचते-पहुँचते गल जाते हैं, प्टेरोपाड ऊज़ केवल छिछले समुद्रों में पाई जाती है। प्रायः १००० फीट से अधिक गहराई पर यह ऊज़ नहीं मिलती। इसलिए यह ऊज़ आंध्र महासागरीय श्रेणी पर कहीं-कहीं और प्रशान्त महासागरीय चबूतरों पर मिलती है। उष्ण कटिबन्धीय समुद्र में इसकी प्रधानता है।

डेटम (Daitom) नामक कीड़े ठंडे सागरों में पायेजाते है। इसलिए डेटम ऊज़ के निक्षेप की एक चौड़ी पट्टी अन्टार्टिका के चारों ओर पायी जाती है।

रेडियो लेरियन (Rodiolarians) कीड़े गर्भ जल में पाये जाते हैं। चूँकि सिलिका प्रधान अस्थि-पिजर आसानी से घुल नहीं पाते, रेडियो लेरियन ऊज़ बहुत अधिक गहराई पर पायी जाती है और हिन्द तथा मध्य प्रशान्त सागरों के उष्ण कटिबंधीय क्षत्र इसके प्रधान क्षेत्र है।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि समुद्री कीटाणुओं के अवशेष महाद्वीपों के समीप भी पाये जाते है पर वहाँ भूखंड से प्राप्त पदार्थो के साथ वह इतना मिल जाते है कि उनमें ऊज़ का अंश बहुत कम रह जाता है।

(३) **लाल मिट्टी** (Red Clay)—यह एक कठोर भूरे व लाल रंग की मिट्टी है जो प्रशान्त महासागर के बहुत विस्तृत भाग में पायी जाती है। यह मिट्टी आन्ध्र और हिन्द महासागर मे भी बहुत गहराई पर मिलती है। खड़िया और सिलिका प्रधान समुद्री कीटाणुओं के अवशेष अधिक गहराई तक पहुँचने के पहिले ही घुल जाते हैं, इसलिए ऊज़ों का अभाव है। यह लाल मिट्टी सम्भवतः धूल के उन कणों का निक्षेप है जो ज्वालामुखी विस्फोट के बाद समुद्र की ओर उड़ा कर ले जाये जाते है। चूँकि ये धूल के कण पानी में घुल नही सकते, ये धीरे-धीरे समुद्र की तली में बैठ जाते है। इस लाल मिट्टी का निक्षेप धीरे-धीरे तैयार होता है। इस प्रकार के कण छिछले समुद्रों में पहुँचते है परन्तु वहाँ पर अन्य प्रकार के ऊज़ों की बहुलता रहती है।

महासागरों का खारापन (Salinity of the Oceans)

प्रत्येक १०० पौंड समुद्री जल में ३.५ पौंड नमक का अंश होता है। दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते है कि प्रत्येक १००० अंश पानी में ३५ अंश नमक होता है। इसमें सबसे अधिक अंश साधारण नमक का होता है। २७ अंश साधारण नमक होता है और शेष में मैगनीशियम, पोटाशियम और कैल्शियम का मिश्रण होता है। वर्षा का जल जब धरातल पर से होकर या मिट्टी में सोख कर चट्टानों के छिद्रों व दरारों से होता हुआ झरने के रूप में फिर से प्रकट होता है तो उसमें कुछ खनिज घुले मिले रहते हैं। नदी के जल में घुले-मिले खनिज नमक समुद्र में पहुँच जाते हैं परन्तु समुद्र का जल नदी के जल से बहुत भिन्न होता है। उदाहरण के लिए चूने के कारबोनेट का समुद्री जल में

अभाव होता है क्योंकि समुद्री जीव-जन्तु व कीटाणु अपने शरीर की रचना के लिए इस खनिज को सदैव ग्रहण करते रहते हैं।

समुद्र का खारापन सदैव व सब जगह एक-सा नहीं होता। यह निम्नलिखित दो बातों पर निर्भर रहता है :—

(१) नदियों व वर्षा द्वारा ताजे पानी का प्रबन्ध,

(२) वाष्पीभवन (Evaporation) की तीव्रता व मात्रा।

भूखंड से घिरे कुछ समुद्रों को छोड़कर संसार के सभी महासागर प्रदेशों में खारापन भूमध्यरेखा से उत्तर और दक्षिण की ओर अयन रेखाओं तक जाने पर खारापन क्रमशः बढ़ता जाता है। खारेपन की विभिन्न मात्राओं की पेटियाँ पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई हैं। चूँकि ठंडे पानी की अपेक्षा गर्म जल में नमक घुलाने की शक्ति अधिक होती है इसलिए अनुमान होता है कि भूमध्यरेखा के निकट के प्रदेशों में खारापन सबसे अधिक होगा। परन्तु ऐसा नहीं है।

(अ) भूमध्यरेखीय प्रदेशों में वर्षा काफी होती है और प्रायः रोज ही होती रहती है। वायुमण्डल में आपेक्षिक या सापेक्ष आर्द्रता इतनी अधिक होती है कि वाष्पीभवन क्रिया नगण्य होती है। इसके अतिरिक्त कान्गो और अमेजन जैसी विशाल नदियाँ बह कर समुद्र में गिरती हैं और निरन्तर ताजा पानी लाती रहती हैं। फलतः खारापन अधिक नहीं होता। ३५ अंश प्रति हजार से भी कम रहता है। अमेजन के मुहाने की ओर समुद्र से पहुँचने पर मुहाने के आस-पास अपेक्षाकृत ताजे पानी का विस्तृत प्रसार रहता है।

(ब) भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण में व्यापारिक हवाओं की पेटियाँ हैं। व्यापारिक हवायें शुष्कता उत्पन्न करने वाली हवायें हैं। अतएव भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण २०° और ३०° अक्षांश के बीच वाष्पीभवन बहुत तेजी से होता रहता है। इन्हीं अक्षांशों के बीच भूखंड पर विस्तृत मरुस्थल हैं। इसलिए ताजे पानी लाने वाली नदियाँ अपेक्षाकृत कम हैं। यही कारण है कि खारेपन की मात्रा ३७ प्रति हजार या इससे भी अधिक है। इन अक्षांशों में जैसा कि चित्र नं० ५५ से स्पष्ट है गर्म मरुस्थल और खारेपन की पेटियाँ समानान्तर रूप से पृथ्वी के चारों ओर फैली हुई हैं। हाँ, जहाँ बड़ी-बड़ी नदियाँ प्रवेश करती हैं, वहाँ खारापन कम है। जम्बेसी, गंगा, मिसीसिपी और इन्डो-चीन की नदियाँ इस दिशा में काफी प्रभाव डालती हैं।

(स) व्यापारिक हवाओं की पेटियों से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर खारापन क्रमशः घटता जाता है और आर्कटिक सागर के ध्रुवीय प्रदेशों में खारापन २०—३० प्रति हजार से अधिक नहीं है। यहाँ पर वाष्पीभवन कम, वर्षा अधिक, नदियाँ अपेक्षाकृत ज्यादा और बर्फ के पिघलने पर ताजे पानी का अधिक आगम होता है।

अपेक्षाकृत घिरे हुए समुद्रों का खारापन—भूमध्यसागर के जल का खारापन सबसे अधिक है—एक हजार अंश जल में ४० अंश। भूखंडों द्वारा घिरे हुए होने के कारण, इसका जल खुले सागर की भाँति आजादी से गतिमान् नहीं हो पाता, फिर यह तीक्ष्ण

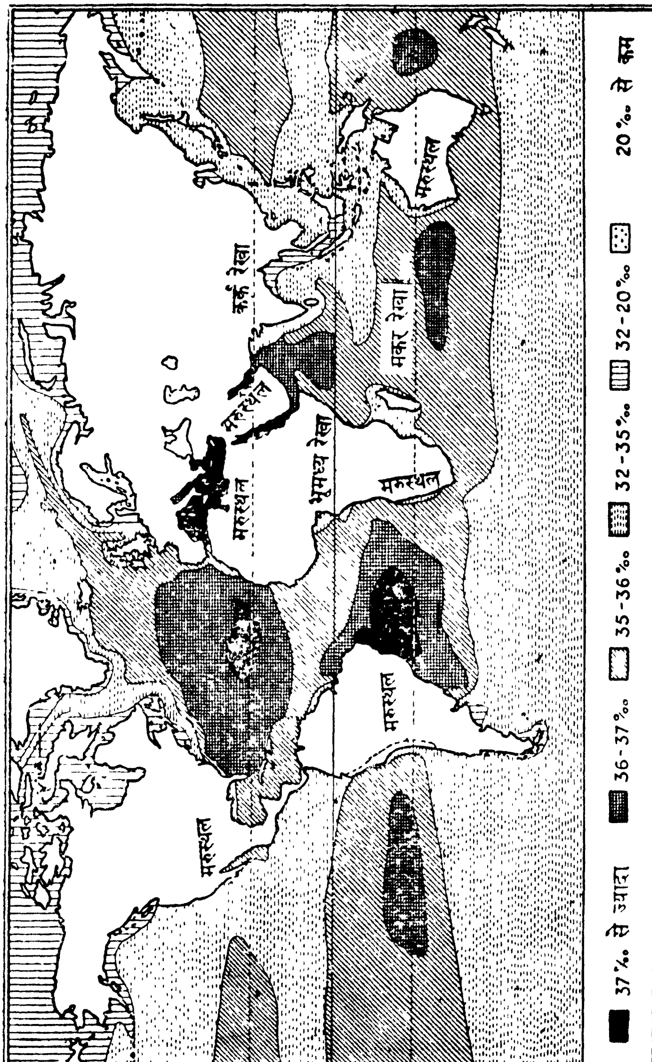

चित्र ५५—महासागर की सतह पर खारापन का वितरण—देखिये उष्ण मरुस्थल और अधिकतम खारेपन के सागर एक ही अक्षांश में स्थित हैं

वाष्पीभवन के प्रदेश में स्थित है और गर्मी के मौसम में इसमें बहकर आने वाली बहुत-सी नदियाँ सूख जाती हैं। इसमें बहकर आने वाली सबसे बड़ी नदी नील है और उसमे से इतनी अधिक नहरें निकाल ली गई हैं कि उसके द्वारा लाया गया ताजा पानी दिन पर दिन कम होता जा रहा है। इन्हीं कारणों से लाल सागर और फारस की खाड़ी में भी खारापन अधिक है।

इसकी विपरीत दशा बाल्टिक सागर में है। यह भी सब ओर से भूखंड द्वारा

घिरा हुआ है परन्तु ठंडे प्रदेश में स्थित होने के कारण यहाँ वाष्पीभवन कम होता है। ओडर और विच्युला जैसी बड़ी नदियों और स्कैंडिनेविया के पहाड़ों की छोटी-छोटी धारायें बहकर इसमें गिरती हैं और ताजे पानी को इसमें मिलाती रहती हैं। फलस्वरूप खारापन केवल २ प्रति हजार है और इसका जल बहुत मीठा है। इसी कारण बाल्टिक सागर सर्दी में जम जाता है।

काला सागर और कैस्पियन सागर में रूसी मैदानों से होकर आने वाली बड़ी-बड़ी नदियाँ गिरती हैं। इसलिए उनका खारापन भी कम है। इसके विपरीत मृतसागर में खारापन २४० अंश प्रतिहजार है। इसके कई कारण हैं जिनमें से निम्नलिखित प्रमुख हैं :—

(१) मृतसागर प्रदेश में तापक्रम उच्च रहता है।
(२) वर्षा की मात्रा और आर्द्रता कम है।
(३) केवल एक छोटे-से प्रवाह क्षेत्र का पानी ही बहकर इस झील में आता है।
(४) वाष्पीभवन तीव्र गति से होता रहता है।

महासागर का तापक्रम

महासागर के जल की सतह का तापक्रम भूमध्यरेखा पर सब से अधिक—९०° फा० रहता है। इससे उत्तर या दक्षिण की ओर चलने पर तापक्रम कम होता जाता है और ध्रुवीय प्रदेशों में जल बर्फ के समान ठंडा रहता है।

ठंडी व गर्म जलधाराओं के कारण ध्रुवों की ओर बढ़ने पर तापक्रम में कमी कोई निश्चित नहीं है। उत्तरी आन्ध्र महासागर में ३०° उत्तरी अक्षांश के समीप पश्चिमी

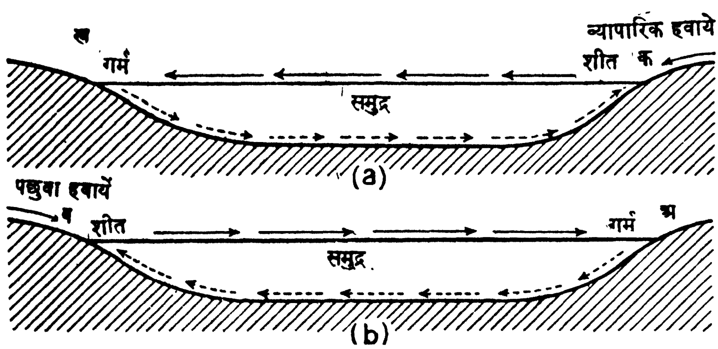

चित्र—५६

(अ) ३०° उत्तरी अक्षांश में महासागर के तापक्रम पर वायु का प्रभाव
(ब) ५०° उत्तरी अक्षांश में महासागर के तापक्रम पर वायु का प्रभाव

किनारे पर जल का तापक्रम पूर्वी किनारे की अपेक्षा अधिक रहता है। इसका प्रधान कारण यह है कि पश्चिमी किनारे पर गर्म जलधारा गल्फ स्ट्रीम बहती है और पूर्वी किनारे पर

ठंडी जलधारा। और अधिक उत्तर में, ब्रिटिश द्वीपसमूह के अक्षांश में, दशायें बिल्कुल विपरीत हैं क्योंकि पश्चिमी किनारे पर ठंडी जलधारा लैब्रेडर धारा और पूर्व में उत्तरी

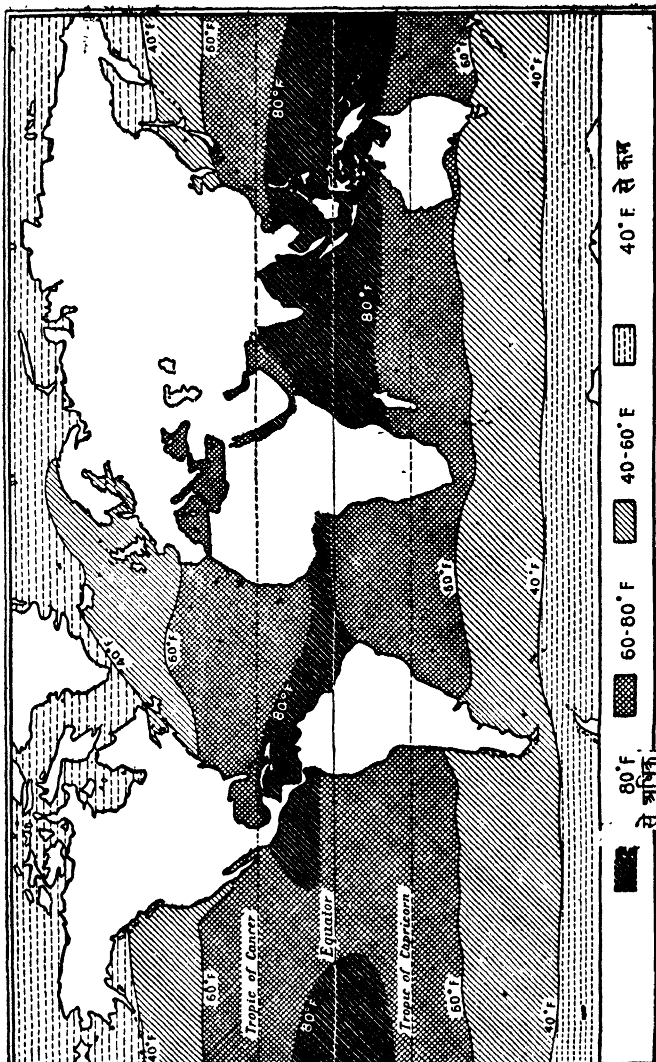

चित्र ५७—महासागर की सतह के जल का औसत वार्षिक तापक्रम

अटलान्टिक ड्रिफ्ट गर्म जलधारा प्रवाहित होती है। एक ही महासागर के पूर्वी और पश्चिमी भागों के जल के तापक्रम में अन्तर का कारण प्रचलित वायु व जलधारायें दोनों ही हैं।

जैसे-जैसे जल की गहराई बढ़ती जाती है तापक्रम कम होता जाता है। पानी की ऊपरी सतह पर तापक्रम नीचे की ओर जाने पर तेजी से घटता जाता है। परन्तु एक निश्चित गहराई के बाद तापक्रम का घटाव क्रमशः हो जाता है। उदाहरण के लिए जल की ऊपरी परतों में तापांश का घटाव प्रति १०० फैदम पर १० फा० हो जाता है परन्तु १००० फैदम की गहराई के बाद घटाव की गति १ फा० प्रति १०० फैदम से भी कम हो जाती है। महासागर गर्त में जल का तापक्रम सदैव हिमांक से थोड़ा ऊपर ही रहता है। २००० फैदम से अधिक गहराई पर तापांक सदैव ३२ फा० से थोड़ा ऊपर रहता है।

जलनिमग्न श्रेणियाँ (Submarine Sill) जल की गति में अवरोध उत्पन्न करती हैं और फलतः जल के तापक्रम के वितरण में हेर-फेर उत्पन्न हो जाता है। भूमध्य-सागर के सब से नीचे का जल आन्ध्र महासागर के १४,००० फीट की गहराई के तापांश की अपेक्षा २०° अधिक गर्म रहता है। इसका प्रधान कारण यह है कि उत्तरी अफ्रीका और जिब्राल्टर के बीच में जलनिमग्न श्रेणी आन्ध्र महासागर के ठंडे जल को भूमध्य-सागर में नही आने देती।

विव विली—टामसन श्रेणी जो ग्रीनलैण्ड को उत्तरी स्काटलैंड से मिलाती है, और आर्कटिक तथा आन्ध्र सागरों के बीच जलमग्न अवरोधक का काम करती है, उसका भी यही असर होता है। आर्कटिक सागर की तरफ श्रेणी के शिखर के नीचे का जल आन्ध्र महासागर के समान गहराई वाले जल की अपेक्षा १५° फा० ठंडा है।

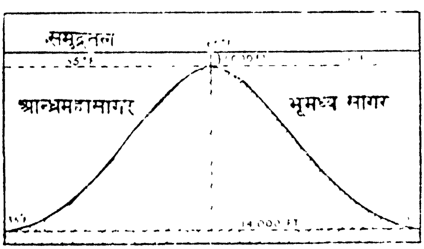

चित्र ५८—भूमध्य सागर के जल के तापक्रम पर जल निमग्न श्रेणी का प्रभाव

लाल सागर भी इसी प्रकार के अवरोधक द्वारा हिन्द महासागर से अलग है। इस श्रेणी का शिखर समुद्र-तल से कोई २०० फैदम गहराई पर है। इस गहराई पर हिन्द महासागर के जल का तापक्रम ७०° फा० है। परन्तु यह अवरोधक श्रेणी इससे अधिक ठंडे पानी को लालसागर में नही आने देती। फलतः लालसागर का जल बहुत अधिक गर्म रहता है और १००० फैदम की गहराई पर भी तापक्रम ७०° फा० ही रहता है। इसी प्रकार के अन्य बहुत-से उदाहरण हैं। भूखंड से घिरे हुए समुद्रो मे जल का तापक्रम वही रहता है जो अवरोधक श्रेणी के शिखर पर स्थिर जल का।

महासागर के जल में गति—धारायें (Currents) और ज्वार भाटा (Tides)

महासागर के एक हिस्से में दूसरे हिस्से की ओर जल की व्यवस्थित गति को "महासागरीय जलधारा" कहते हैं। ये जलधारायें निम्नलिखित चार कारणों से उत्पन्न होती हैं यद्यपि उनके महत्त्व के विषय में अनेक मतभेद हैं।

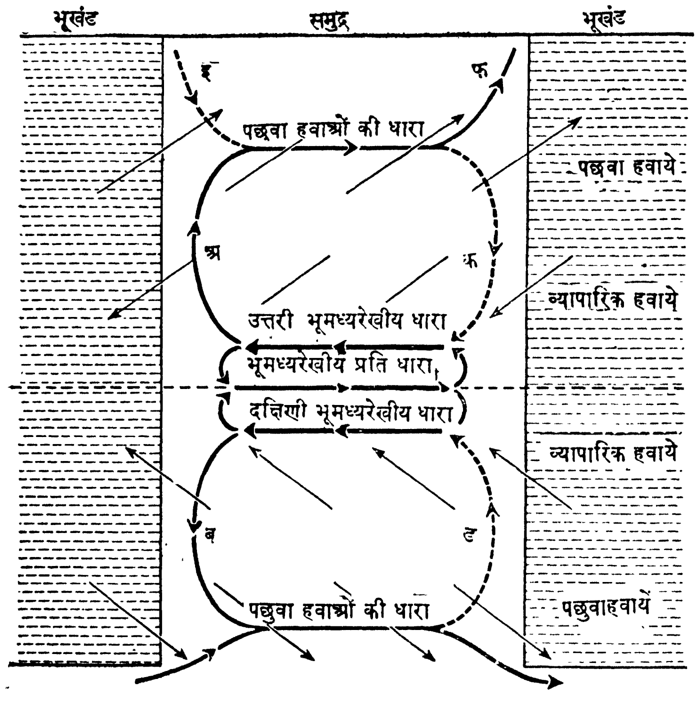

चित्र ५९—महासागरीय जल-धाराओं का रेखाचित्र

(१) तापान्तर और संवाहन विधि। (२) हवायें। (३) भूखंडों की आकृति। (४) पृथ्वी का आवर्त्तन। ये चारों तथ्य आपस में इतने सम्बद्ध हैं कि इनको अलग नहीं किया जा सकता। परन्तु चित्र नं० ५९ से यह स्पष्ट हो जाता है कि किन परिस्थितियों में कौन-सा तथ्य विशेष रूप से प्रधान हो जाता है।

भूमध्यरेखा पर जल अधिक गर्म और कम घना होता है। अतएव महासागर में संवाहन धारायें उत्पन्न हो जाती है। फल यह होता है कि गर्म हल्का सतह का जल भूमध्यरेखा से ध्रुवों की तरफ प्रवाहित होने लगता है। और उसका स्थान लेने के लिए ध्रुवीय प्रदेशों का ठंडा भारी पानी समुद्र की सतह से नीचे-नीचे भूमध्यरेखा की ओर खिसकने लगता है। ये संवाहन धारायें उसी प्रकार उत्पन्न होती है जैसे कि वायुमण्डल में। जिस प्रकार पृथ्वी के आवर्त्तन से हवायें अपने बायें या दायें को घूम जाती हैं वैसे ही महासागर की धारायें भी घूम कर बहने लगती हैं।

भूमध्यरेखीय अक्षांशों में व्यापारिक हवायें चलती है और काफी व्यवस्थित रूप से चलती रहती हैं। इनकी गति के प्रभाव से सतह का गर्म पानी धारा के रूप में आगे बढ़ने लगता है। इसकी गति पूर्व से पश्चिम की तरफ होती है। इन दोनों के

बीच पूर्व दिशा की तरफ बहने वाली एक प्रतिधारा पायी जाती है। इस प्रकार आन्ध्र, प्रशान्त और हिन्द महासागरों में उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा, दक्षिणी भूमध्यरेखीय धारा और भूमध्यरेखीय प्रतिधारा पायी जाती है। महासागर के पश्चिमी किनारे पर पहुँचने पर गर्म भूमध्यरेखीय जल का अधिकांश भाग भूखंडों द्वारा उत्तर व दक्षिण की ओर घूम जाता है। इस प्रकार 'अ' और 'ब' जलधारायें बन जाती हैं।

४०° उत्तरी अक्षांश के समीप 'अ' धारा में दक्षिण की ओर बहने वाली 'इ' धारा आकर मिल जाती है और इस प्रकार गर्म जलधारा का तापक्रम नीचा हो जाता है। अतएव जल न तो बहुत गर्म ही रहता है और न ही बहुत ठंडा। पछुवा हवायें इस समताप जलराशि को महासागर की सतह पर उत्तर-पूर्व की तरफ ढकेलती हैं। भूखंड के समीप पहुँचने पर इसका कुछ भाग तो 'क' धारा के रूप मे उत्तर की ओर मुड़ जाता है और कुछ अंश दक्षिण की ओर 'क' धारा के रूप में प्रवाहित होने लगता है। 'क' धारा उत्तरी भूमध्यरेखीय धारा से मिलकर भूमध्यरेखा से उत्तर की ओर के सागर में घड़ी की सुइयों की भाँति गति उत्पन्न हो जाती है। चूँकि 'फ' जलधारा गर्म शीतोष्ण कटिबंध का जल ठंडे प्रदेशों में ले जाती है इसलिए पास के जल प्रदेश की अपेक्षा इसका तापक्रम ऊँचा रहता है। इसके विपरीत 'क' धारा मध्य अक्षांशों का जल गर्म जलप्रदेश की ओर लाती है और फलस्वरूप आस-पास के प्रदेश की अपेक्षा ठंडी होती है। यही कारण है कि इसे ठंडी जलधारा कहते हैं यद्यपि इसके जल का तापक्रम गर्म जलधारा की अपेक्षा अधिक क्यों न हो। महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि 'क' और 'फ' धाराओं के जल का तापक्रम पास के समुद्र के जल की अपेक्षा भिन्न है।

इन जलधाराओं से बने चक्र के बीच में जल गतिहीन रहता है और वहाँ समुद्री घास इकट्ठा हो जाती है। इन्हें 'सारगोसा सागर" (Sargosa Sea) कहते हैं यद्यपि इस नाम का प्रयोग केवल उत्तरी आन्ध्र महासागर के लिए ही किया जाना चाहिए।

भूमध्यरेखा के दक्षिण में भी इसी प्रकार की जलधारायें पायी जाती हैं। 'ब' गर्म धारा है और 'ड' ठंडी जलधारा। जल की साधारण गति घडी की सुइयों के विपरीत दिशा में होती है और इनकी दिशा उत्तरी गोलार्द्ध की धाराओं के विपरीत होती है। इस दिशा में एक विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात यह है कि भूमध्य रेखा के दक्षिण में भूखंड का विस्तार उतना अधिक नहीं है जितना कि उत्तरी गोलार्द्ध में। फलतः ठंडी ध्रुवीय धाराओं का बहुत कम असर पड़ता है और दक्षिणी महासागर में पछुवाँ हवाओं द्वारा उत्पन्न ड्रिफ्ट जलधारा पश्चिम से पूर्व की ओर बहती रहती है। उत्तरी गोलार्द्ध की 'ई' और 'फ' जलधारा के समान कोई भी जलधारा दक्षिणी गोलार्द्ध में नहीं है।

चित्र ५९ में दिये गए आधार पर किसी भी महासागर में जलधाराओं का विन्यास समझा जा सकता है। हाँ, प्रत्येक महासागर में स्थित भूखंडों के आकार व तटरेखा के अनुसार जलधाराओं की दिशा व मार्ग में परिवर्तन हो जाता है। चित्र में दिखलाई गई 'ड' जलधारा ठंडी हमबोल्ड या पीरूवियन जलधारा है जो दक्षिणी प्रशान्त महा-

सागर में से होकर बहती है। ऐसी ही जलधारायें दक्षिणी आन्ध्र महासागर में ठंडी वेनेजुला धारा और दक्षिणी हिन्द महासागर में ठंडी वेस्ट्रेलियन धारा है।

हिन्द महासागर की धारायें प्रशान्त और आन्ध्र महासागर की धाराओं से कुछ भिन्न हैं। हिन्द महासागर में भूमध्यरेखा के दक्षिण में जल की गति घड़ी की सुइयों से विपरीत वैसी ही है जैसी कि दक्षिणी प्रशान्त और दक्षिणी आन्ध्र महासागर में। भूमध्य रेखा के उत्तर में, भूमध्यरेखा और दक्षिणी एशिया के बीच में, जलधाराओं की गति व दिशा मानसूनी हवाओं द्वारा निश्चित की जाती है। गर्मी के मौसम में जब दक्षिणी पश्चिमी मौसमी हवायें चलती रहती हैं तो भूमध्यरेखा के उत्तर में धारायें घड़ी की सुइयों की दिशा मे चलती रहती है। इसके विपरीत, जाड़े में उत्तरी पश्चिमी मौसमी हवायें चलती रहती हैं तो भूमध्यरेखा के उत्तर में जलधाराओं की गति उलट जाती है और वे घड़ी की सुइयों की विपरीत दिशा में चलने लगती है। फल यह होता है कि जाड़े में उत्तरी भूमध्यरेखीय जलधारा विलीन हो जाती है और जल का अधिकांश भाग भूमध्यरेखीय प्रतिधारा द्वारा पूर्व की ओर ले जाया जाता है।

ज्वारभाटा (Tides)

यदि एक महीने की छुट्टी लेकर कोई समुद्र के किनारे जाकर रहे तो उसे प्रतीत होगा कि समुद्र का तल दिन-प्रति-दिन और हफ्ते-हफ्ते बदलता रहता है। दिन में दो बार समुद्र का तल ऊँचा उठता है और ज्वार प्रवेश करता है: दिन में दो बार समुद्र का तल

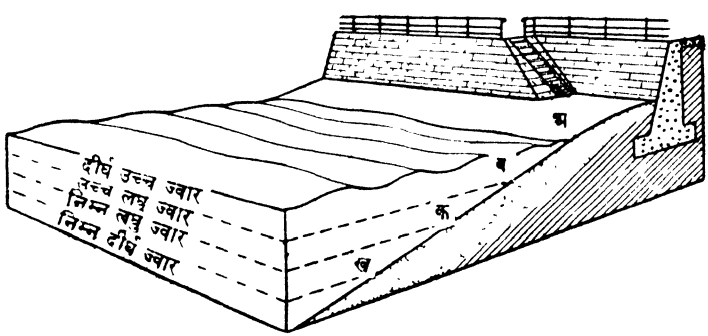

चित्र ६०—उच्च ज्वार और निम्न ज्वार के तलों का तुलनात्मक चित्र

गिरता है और ज्वार वापस होता है। परन्तु समुद्र के जल का उतार-चढ़ाव सदैव एक-सा नहीं रहता। जिन दिनों यह सबसे ऊँचा उठता है उन्हीं दिनों यह सबसे नीचे उतरता भी है। मान लीजिये कि प्रथम दिन जल 'अ' बिन्दु तक चढ़ा और 'ख' बिंदु तक उतरा तो प्रत्येक बाद वाले दिन कभी-कभी 'अ' बिन्दु तक नहीं चढ़ पायेगा और न ही 'ख' बिन्दु तक उतरेगा। तात्पर्य यह है कि उच्च और निम्न जल-बिन्दुओं के बीच का अन्तर धीरे-धीरे कम होता जायेगा। एक हफ्ते के बाद उच्च ज्वार 'ब' बिन्दु तक उठेगा और 'फ' बिन्दु तक उतरेगा! अगले हफ्ते में उच्च ज्वार की ऊँचाई बढ़ने लगेगी और निम्न ज्वार घटने लगेगा। घटने

और बढ़ते-बढ़ते एक स्थिति ऐसी आवेगी जब उच्च व निम्न ज्वार क्रमशः 'अ' तथा 'ख' तक पहुँच जायेगा। इसके बाद ज्वार फिर 'द' और 'क' स्थितिओं को पहुँच जावेगा। इससे यह स्पष्ट है कि करीब-करीब हर पन्द्रह दिन में एक बार ज्वार ऊँचा उठता है और फिर सबसे निम्न तल को प्राप्त हो जाता है। इसे **बृहत् या दीर्घ ज्वार** कहते (Spring Tide) हैं। मध्यवर्ती सप्ताहों में ज्वार का उतार-चढ़ाव इतना अधिक नही होता। इस प्रकार के ज्वार को **लघु ज्वार** (Neap Tide) कहते हैं। एक हफ्ते में यदि दीर्घ ज्वार हुआ है तो दूसरे हफ्ते में लघु ज्वार होगा और यही क्रम बराबर चलता रहता है। इस विषय में ध्यान देने योग्य बात यह है कि ज्वारभाटे मे समुद्र का जल ऊँचा उठता या नीचा उतरता है। जल की गति लम्बरूप होती है। इसलिए यह समझ बैठना कि जल समानान्तर गति से आगे बढ़ता या पीछे हटता है, भूल होगी।

उच्च ज्वार व निम्न ज्वार के तल के बीच के अन्तर को ज्वारीय अनुपात कहते है। खुले सागर मे यह अनुपात या अन्तर केवल २–३ फीट होता है। फलतः महासागरीय द्वीपों जैसे अजोर, मारीशस, हवाई इत्यादि मे ज्वार-भाटे का उतार-चढाव बहुत कम होता है। इसके विपरीत उन द्वीपों में जो महाद्वीपीय सागर में स्थित है जल के छिछले होने के कारण उच्च ज्वार आते है। ज्वारीय लहर जब इन छिछले समुद्रों मे पहुँचती है तो लहर का निचला भाग रगड़ के कारण पिछड़ जाता है और जल की एक ऊँची दीवार-सी बन जाती है। इस उच्च ज्वार के कारण ही नदी के खुले मुहाने पर स्थित बन्दरगाहों का इतना महत्त्व है। खाड़ियों मे और संकरे मुहानों मे ज्वार की उच्चता और भी अधिक होती है।

आन्ध्र महासागर की महासागरीय ज्वारीय लहर (Tidal Wave) ब्रिटिश द्वीप समूह की तरफ दक्षिण-पश्चिम से आती है। फलतः हम जैसे-जैसे दक्षिणी तट पर पूर्व की ओर और पश्चिमी किनारे पर उत्तर की ओर बढ़ते हैं, ज्वार की ऊँचाई घटती जाती है। ब्रिटिश द्वीपसमूह के चारों ओर के समुद्र में ज्वारीय अनुपात का औसत १० से २० फीट तक होता है परन्तु ब्रिस्टल की खाड़ी में इसकी ऊँचाई ३० फीट तक होती है।

छिछले समुद्रों में ज्वार-भाटा जैसे उतरता व चढ़ता है, विशाल और शक्तिशाली ज्वारीय धाराओं का सूत्रपात हो जाता है। ये धारायें नदियों के खुले मुहानो में से मिट्टी बालू आदि को बहा ले जाती हैं। मछुओं के लिए इनका विशेष महत्त्व है। ये मछली पकड़ने वाले नाविक समुद्र में चले जाते है और बाद में ज्वार के सहारे वापस हो आते हैं। जहाजों के संचालन के दृष्टिकोण से इन ज्वारीय धाराओं का विशेष महत्त्व है। उच्च ज्वार के समय जहाज पोताश्रय में आ जा सकते है।

प्रायः छिछले महाद्वीपीय सागर में गिरने वाली नदियों का मुहाना खुला रहता है। परन्तु जिन समुद्रों में शक्तिशाली ज्वारीय धारायें नहीं पायी जातीं वहाँ नदियों द्वारा बहा कर लाई हुई मिट्टी और बालू जमा होती रहती है और डेल्टा बन जाते हैं। राइन, एब्रो, रोन, पो और नील नदियाँ इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जब ज्वारीय धारा किसी संकरी खाड़ी में से होकर प्रवाहित होती है तो इसकी गति बहुत तीव्र हो जाती

है और तब इसे "दौड़" (Race) कहते हैं। उत्तरी स्काटलैंड और आर्कनी द्वीपसमूह के बीच इसे प्रेन्टलैण्ड दौड़ कहते हैं। इसी प्रकार के अन्य उदाहरण आल्डरनी दौड़ और मेलस्टार्म हैं। मेलस्टार्म नार्वे के पश्चिमी किनारे से दूर लोफटन द्वीपसमूह के बीच प्रवाहित होती है।

ज्वार भाटा के कारण

यह बहुत पुराना विश्वास है कि ज्वार-भाटे और चन्द्रमा की विभिन्न कलाओं के बीच एक निश्चित सम्बन्ध है। इसका प्रमाण यह है कि दुइज और अष्टमी के चाँद के समय तो लघु ज्वार आते हैं और पूर्णमासी के चाँद के समय दीर्घ ज्वार आता है।

यह नितान्त सत्य है कि नक्षत्र व ग्रह एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। चूँकि सूर्य बहुत बड़ा है, इसीलिए उसकी आकर्षण शक्ति भी सबसे अधिक है। यही कारण है कि चन्द्रमा की अपेक्षा सूर्य का पृथ्वी पर आकर्षण अधिक है। परन्तु आकर्षण की मात्रा निर्धारित करने के लिए ग्रह विशेष का विस्तार तथा पृथ्वी से दूरी को भी देखना पड़ता है। यद्यपि चन्द्रमा सूर्य की अपेक्षा बहुत छोटा है परन्तु पृथ्वी के समीप होने के कारण इसका आकर्षण पृथ्वी पर सूर्य की अपेक्षा अधिक रहता है।

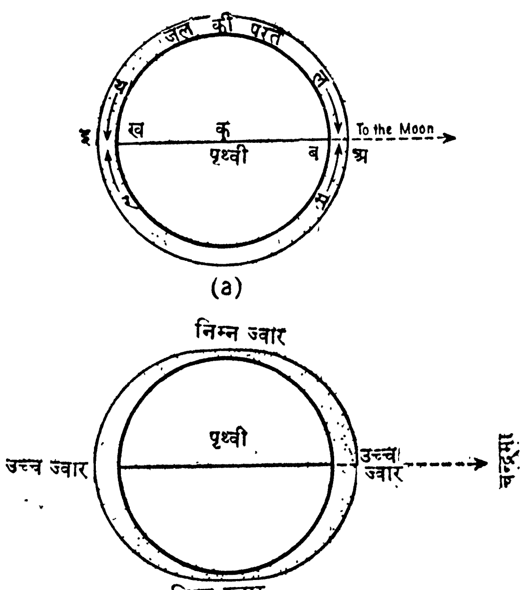

चित्र ६१—पृथ्वी के विपरीत बिन्दुओं पर उच्च ज्वार क्यों होता है

चित्र नं० ६१ में चन्द्रमा का आकर्षण 'अ' बिन्दु पर है। चूँकि 'ब' स्थान की अपेक्षा 'अ' बिन्दु चन्द्रमा के निकट है, 'अ' पर आकर्षण अधिक है। चूँकि जल तरल पदार्थ है इसलिए उसपर आकर्षण शक्ति का असर सबसे अधिक पड़ता है और फलस्वरूप 'ल म' मार्ग पर चलता हुआ यह जल 'अ' बिन्दु पर इकट्ठा हो जाता है। 'ख' बिन्दु की अपेक्षा 'ब' बिन्दु पर चन्द्रमा का आकर्षण अधिक है और 'इ' की अपेक्षा 'ख' बिन्दु पर आकर्षण अधिक रहता है। फल यह होता है कि 'इ' बिन्दु पर पानी पीछे रह जाता है और इसलिए 'य र' मार्ग व दिशा पर जल फिर से इकट्ठा होता है। फल यह होता है कि इन दोनों बिन्दुओं पर दो उच्च ज्वार आते हैं। चन्द्रमा के आकर्षण से पृथ्वी के

विपरीत बिन्दुओं पर दो उच्च ज्वार आते हैं और इनके बीच के दो विपरीत बिन्दुओं पर निम्न ज्वार आते हैं।

सूर्य पृथ्वी से बहुत दूर है परन्तु इतनी अधिक दूरी पर भी सूर्य पृथ्वी पर आकर्षण करता है परन्तु सूर्य द्वारा उत्पन्न ज्वार बहुत छोटे होते हैं। अमावस्या और पूर्णमासी के दिन जब सूर्य, चन्द्रमा और पृथ्वी एक सीधी रेखा में रहते हैं तो ज्वार की ऊँचाई साधारण ज्वार से अधिक होती है और दीर्घ ज्वार आते हैं। उस समय सूर्य और चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न ज्वार मिल जाते हैं और फलतः बड़े होते हैं। नीचे दिये हुए चित्र में अ और ब बिन्दु पर दीर्घ ज्वार आते हैं और क तथा ख बिन्दु पर लघु ज्वार।

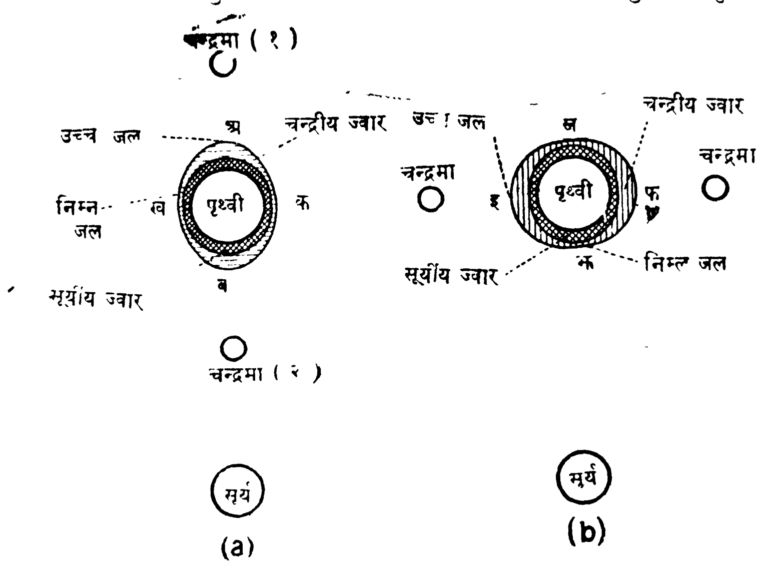

चित्र ६२—(अ) दीर्घ ज्वार—चन्द्रमा (१) पूर्णमासी के दिन सूर्य। पृथ्वी और चन्द्रमा की स्थिति। और चन्द्रमा (२) अमावस्या के दिन की स्थिति। (ब) दुइज और अष्टमी के दिन को लघु ज्वार।

इसके विपरीत अष्टमी और द्वितीया के दिन चन्द्रमा और सूर्य का पृथ्वी के प्रति आकर्षण एक समकोण पर स्थित होता है। फलतः लघु ज्वार उत्पन्न होता है। उस समय सूर्य और चन्द्रमा द्वारा उत्पन्न ज्वार एक दूसरे को शक्तिहीन कर देते हैं। फल यह होता है कि इ और फ बिन्दुओं पर उच्च ज्वार अवश्य आते हैं परन्तु वे इतने ऊँचे नहीं होते जितने कि अ और ब बिन्दुओं पर। ज और झ बिन्दुओं पर निम्न ज्वार क और ख बिन्दुओं पर आने वाले ज्वार की अपेक्षा अधिक निम्नतर होते हैं। इन्हें लघु ज्वार कहते हैं।

उच्च ज्वार एक व्यवस्थित रूप से प्रति बारह घंटे के बाद नहीं आते। दो उच्च ज्वार के बीच १२ घंटे २६ मिनट का अन्तर रहता है। तात्पर्य यह है कि यदि ९ बजे सुबह उच्च ज्वार आया है तो दूसरा उच्च ज्वार रात के ९ बज कर २६ मिनट पर

आवेगा। और इससे अगला दूसरे दिन सुबह ९.५२ मिनट पर। इसका प्रधान कारण यह है कि पृथ्वी के आवर्त्तन के साथ-साथ उसी दिशा में पृथ्वी के चारों ओर चन्द्रमा भी घूमता रहता है।

मान लो चन्द्रमा की 'अ' स्थिति के कारण 'य' बिन्दु पर उच्च ज्वार आता है। 'य' बिन्दु को घूम कर फिर अपनी पहली स्थिति में आने के लिए २५ घंटे चाहिएं। परन्तु इसी बीच में चन्द्रमा 'अ' बिन्दु से हट कर 'ब' बिन्दु पर पहुँच जाता है। अतएव 'य' बिन्दु को थोड़ा और घूम कर 'र' स्थिति में पहुँचना पड़ता है ताकि चन्द्रमा उस पर अपनी पूरी आकर्षण शक्ति लगा सके और वहाँ फिर से उच्च ज्वार आ सके।

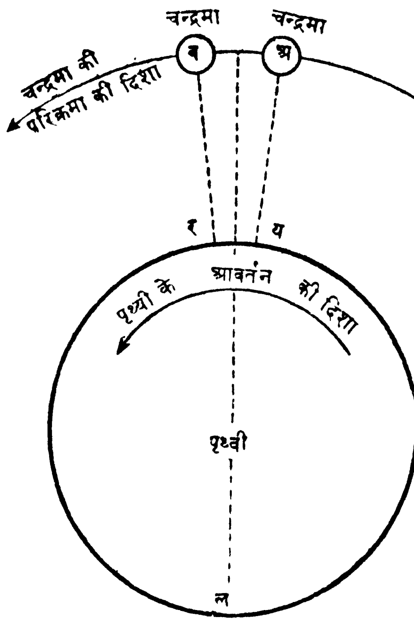

चित्र ६३—दो ज्वार के बीच का समयान्तर १२ घंटा २६ मिनट होता है।

पृथ्वी का एक चक्कर लगाने में चन्द्रमा को २८ दिन लगते हैं। इसलिए 'र य' दूरी पृथ्वी की परिधि का $\frac{१}{२८}$ वाँ भाग हुआ। यदि 'य' बिन्दु को पूरा चक्कर लगाने मे २४ घंटे लगते हैं तो १/२८ वाँ भाग पूरा करने में इसे $\frac{२४ \times ६०}{२८}$ मिनट $=$ ५२ मिनट लगेंगे। परन्तु एक आवर्त्तन मे 'य' नामक स्थान पर एक उच्च ज्वार और आवेगा जिसका प्रभाव चन्द्रमा से दूर, विपरीत स्थिति मे 'ल' बिन्दु पर होगा। यह उच्च ज्वार २४ घंटे ५२ मिनट के आधे समय में होगा यानी १२ घंटा २६ मिनट बाद।

पिछले कुछ दिनों में ज्वार-भाटे के कारणों के विषय में विशेष खोज-बीन की गई है। अब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई है कि यद्यपि ज्वार-भाटों का प्रधान कारण सूर्य और चन्द्रमा की आकर्षण शक्ति ही है, निम्नलिखित तथ्यों का भी बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है :—

(१) पृथ्वी का आवर्त्तन, (२) किनारे के समीप समुद्र की तली का ढाल (३) पृथ्वी के हरएक जल भाग का हिलने या चलायमान होने का अपना एक अलग स्वाभाविक समय होता है। बहुत-सी विशेष दशाओं में इन बातों को ध्यान में रखकर ज्वार-भाटे का निर्धारण करना पड़ता है।

बहुत पहिले उन स्थानों के बारे में जहाँ उच्च और निम्न ज्वार के बीच अन्तर

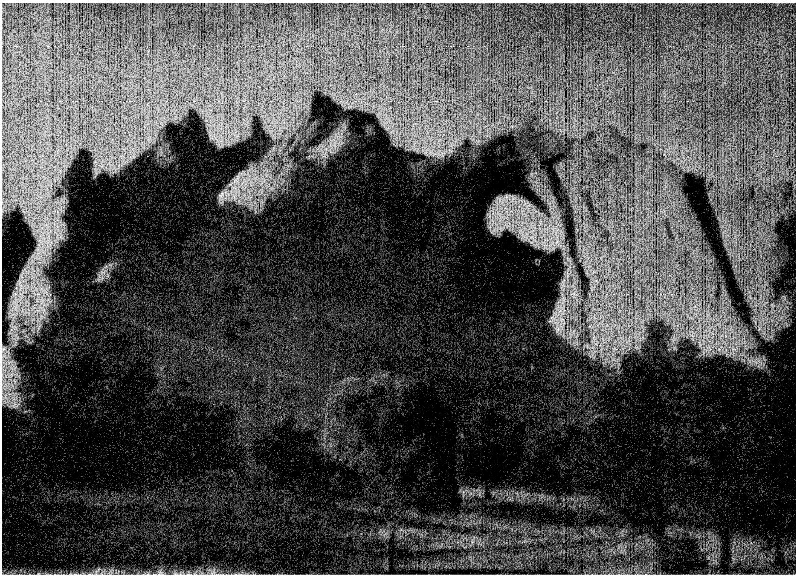

ऊपर : ऐरीजोना में वायु द्वारा काटी हुई चट्टानें ।

नीचे : ऐरीजोना में ली फेरी के पास कोलैरैडो नदी । चट्टानों की परत समानातर है । जल की कमी के कारण घाटियों के पार्श्व अधिक कट-छंट नहीं पाये हैं ।

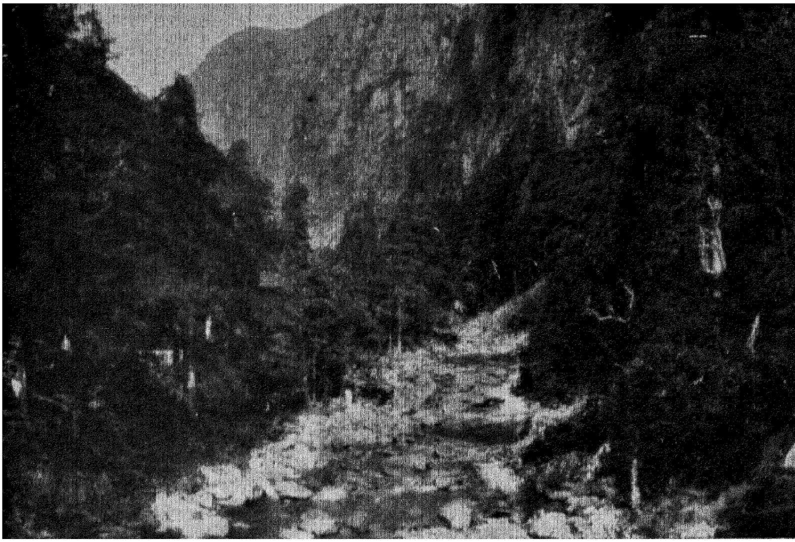

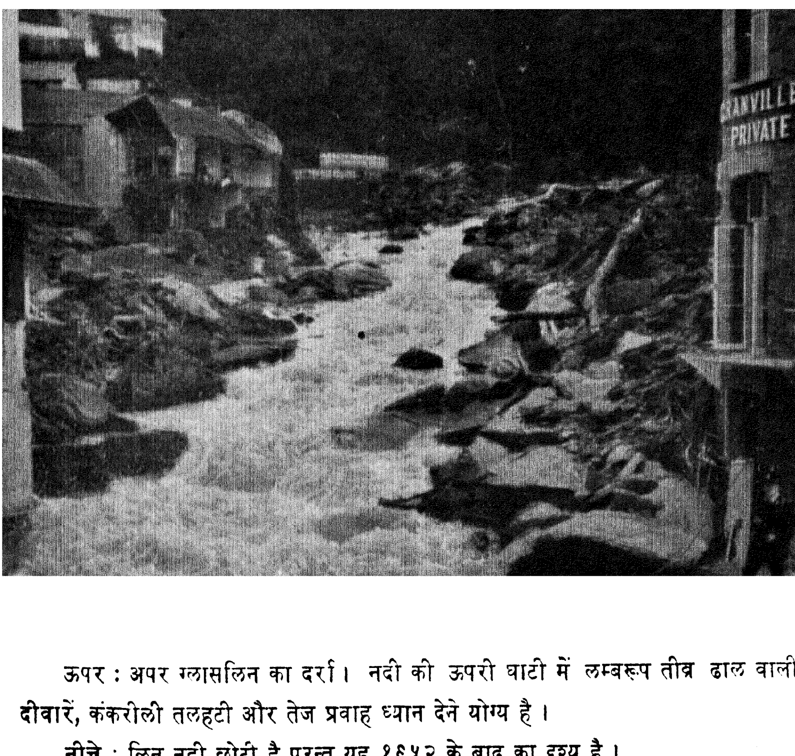

ऊपर : अपर ग्लासलिन का दर्रा। नदी की ऊपरी घाटी में लम्बरूप तीव्र ढाल वाली दीवारें, कंकरीली तलहटी और तेज प्रवाह ध्यान देने योग्य है।

नीचे : लिन नदी छोटी है परन्तु यह १९५२ के बाढ़ का दृश्य है।

अध्याय पाँच

अनावृत्तीकरण के साधन और भू-आकार

(THE AGENTS OF EROSION AND LANDFORMS)

भूमिका

अध्याय तीन में कुछ प्रमुख भू-आकारों (Land Forms) का जिक्र किया जा चुका है। पठार, मैदान और पहाड़ संसार के प्रमुख भू-आकार है। प्राकृतिक साधनों ने इन्हें विभिन्न प्रकार से काट-छाँट कर अनेक प्रकार के दृश्यों को जन्म दिया है। इन्हीं से गौण भू-आकारों का प्रादुर्भाव हुआ है। प्राकृतिक साधनों और नीचे बिछी हुई चट्टानों के स्वभाव के अनुसार प्राकृतिक दृश्य अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग होते हैं। पृथ्वी के धरातल पर काट-छाँट करने वाले प्राकृतिक साधन निम्नलिखित हैं :—

(१) ऋतु या मौसम, (२) बहता हुआ जल, (३) भू-गर्भवर्ती जल, (४) हिम, (५) वायु, (६) समुद्र।

उपर्युक्त साधन तीन प्रकार के काम करते है :—(अ) वे धरातल को घिसकर नष्ट करते रहते है। (ब) इस प्रकार घर्षण द्वारा तोड़े हुए कंकड़-पत्थर को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते है। (स) किसी अन्य स्थान पर इस चट्टान राशि को जमा कर देते है। दूसरे शब्दों में इन क्रियाओं को क्रमशः अनावृत्तीकरण, अपनयन (Transportation) और निक्षेप (Deposition) कह सकते हैं। अनावृत्तीकरण से भूमि या भूतल आवरण-हीन हो जाता है। जब अनावृत्तीकरण ऋतु-सम्बन्धी दशाओं के द्वारा होता है तो उसे **मौसमी क्षति** (Weathering) कहते है।

मौसमी क्षति (Weathering)

वर्षा, तापमान के परिवर्त्तन, पाले और अन्य सम्बन्धित दशाओं के द्वारा चट्टानों का टूटना या नष्ट होना मौसमी क्षति कहलाता है। मौसमी क्षति के द्वारा खुली हुई चट्टानों का तल टूट या चटख कर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। इस प्रकार बहते हुए जल, वायु आदि के द्वारा अपनयन के लिए सामग्री या चट्टान राशि तैयार हो जाती है। चट्टानों की मौसमी क्षति से ही मिट्टी भी तैयार होती है।

(क) **वर्षा** का काम अंशतः रासायनिक होता है। जल चट्टानों के घुलनशील तत्त्वों को घुला डालता है और अघुलनशील तत्त्वों के कणों को ढीला करके बहा ले जाता है। वर्षा का जल सामग्री को स्थानान्तरित भी करता है और भूमि को काट कर उसमें छोटी घाटियाँ व नालियाँ बना देता है। वर्षा के जल का यह कार्य खनिज प्रदेश में बने ढेरों पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। खान से निकाली हुई मिट्टी के ढेर पर वनस्पति

उगने से बहुत पहिले ही वर्षा की प्रत्येक बौछार कुछ नालियाँ बना देती है। जैसे-जैसे समय बीतता है ये नालियाँ गहरी होती जाती हैं।

इस प्रकार बहा कर ले जाई गई सामग्री ढाल के बिल्कुल नीचे इकट्ठा हो जाती है। सामग्री का नीचे की ओर अपनयन स्वयं गुरुत्वाकर्षण से और जल के बहाव द्वारा होता रहता है। बहुत से ज्वालामुखी पर्वतों के पार्श्वों में भी इसी प्रकार की नालियाँ बन जाती हैं और पर्वत के शिखर से नीचे तथा बाहर की ओर फैली हुई उसी प्रकार मालूम पड़ती हैं जैसे कि साइकिल के पहिये की तीलियाँ। इसका प्रधान कारण यह है कि बराबर लावा प्रवाह से पर्वत के ढाल पर वनस्पति तो उग नही पाती। अतएव वर्षा का जल स्वच्छद रूप से काट-छाँट करने में सफल होता है।

वर्षा के जल के द्वारा अनावृत्तीकरण का सबसे स्पष्ट नमूना भूखम्भ (Earth Pillars) है। ये भूखम्भ मुलायम मिट्टी या चिकनी मिट्टी के उन क्षेत्रों में पाये जाते हैं जहाँ चट्टानों के खंड छितरे रहते हैं। वर्षा का जल मुलायम मिट्टी के कणो को तो बहा ले जाता है, परन्तु जहाँ कही चट्टान खंड आ जाता है, वर्षा के जल की क्रिया रुक जाती है। इस चट्टान खंड के नीचे की मिट्टी पर जल का कोई भी असर नहीं होता है। फलतः भूखम्भ का निर्माण हो जाता है। प्रत्येक भूखम्भ के सिरे पर शुरू-शुरू में चट्टान खंड स्थित रहता है जैसे कि टोपी पहनाई गई हो। कालान्तर मे यह चट्टान खंड ढुलक कर गिर जाता है और इस प्रकार निकले हुए मुलायम मिट्टी के खम्भ को वर्षा का जल काट-छाँट कर नष्ट कर देता है। उत्तरी इटली में बोलजानों प्रदेश के समीप भूखम्भ के सबसे अच्छे उदाहरण मिलते हैं।

वर्षा के जल मे कारबन डाइ आक्सॉइड गैस मिली रहती है। वास्तव में वर्षा का जल वायुमण्डल से होकर गुजरते समय इस गैस को ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार वर्षा का जल कुछ-कुछ क्षार हो जाता है और इसमें चूने का पत्थर, संगमरमर, खड़िया मिट्टी आदि को घुलाने की पर्याप्त शक्ति रहती है। चूने के पत्थर वाले प्रदेशों में वर्षा का यही जल संधों से प्रवेश कर नीचे पहुँच जाता है और धीरे-धीरे घुला कर विस्तृत कन्दरायें बना देता है।

ग्रेनाइट के बने क्षेत्रों में फेल्स्फार पर वर्षा के जल की रासायनिक क्रिया द्वारा ही चीनी मिट्टी या क्योलिन (Kaolin) बन जाती है।

(ख) **सर्दी और गर्मी** का उलट-फेर मरुस्थलों में विशेष रूप से दिखाई पड़ता है। वहाँ पर दिन और रात के तापमान के बीच बहुत अन्तर रहता है। दिन की घोर गर्मी के बाद रातें अत्यधिक ठंडी हो जाती हैं।

दिन के समय सूर्य की प्रचण्ड गर्मी के कारण आवरणरहित चट्टानें तेजी से गर्म हो जाती हैं परन्तु रात में तापक्रम हिमांक तक पहुँच जाता है। इस प्रकार प्रत्येक दिन चट्टानें फैलती हैं और रात में ठंडी होने पर एकदम सिकुड़ जाती हैं। इस फैलाव व संकुचन से चट्टानों में दरारें पड़ जाती हैं और वे फट जाती हैं। फटते समय कभी-कभी तो बन्दूक दागने जैसी आवाज होती है। इस प्रकार विखंडित चट्टानों के टुकड़े

नुकीले तथा कोणिक आकृति के होते हैं। चट्टान विखंडन की क्रिया मरुस्थलों में बराबर होती रहती है, यहाँ तक कि चट्टानें टूट कर छोटे कणों वाली बालू में बदल जाती हैं।

पर्वतीय प्रदेशों में इस प्रकार टूटी हुई खंड राशि पर्वत के नीचे इकट्ठी हो जाती है और इस प्रकार टीले-खंडों की राशि को संपात (Scrces) कहते हैं।

(ग) **पाला** (Frost)—यदि किसी चट्टान की दरारों मे पानी इकट्ठा हो जाये और फिर जम जाये तो उसमें जो फैलाव उत्पन्न होगा उससे दरारें चौड़ी होती जायेंगी। वास्तव में जल का गुण यह है कि यह ठंडा होने पर सिकुड़ता है। ४° सेन्टीग्रेड या ३९.२° फार्नहायट तापक्रम पर जल सिकुड़ता है परन्तु ०° सेन्टीग्रेड या ३२° फार्नहायट तापक्रम पहुँचने पर जल में फैलाव होता है। इस प्रकार बढ़ी हुई दरारो में अधिक जल रखने की शक्ति आ जाती है और अगले पाले मे वे और भी अधिक चौड़ी हो जाती हैं। यह क्रिया उसी प्रकार होती है जैसे कि फटन में। अन्त में चट्टान चटख कर फट जाती है। इस प्रकार पाले से विखंडित चट्टान के टुकड़े भी नुकीले होते हैं और पेनाइन के मिलस्टोन ग्रिट क्षेत्र में इसका सर्वोच्च उदाहरण मिलता है।

(घ) **वायुमण्डल** द्वारा मौसमी क्षति दो प्रकार से होती है। प्रथम तो यह कि जब हवा नम रहती है तो आक्सीजन और कारबन डाइ आक्साइड जैसे चट्टानों के तत्त्वों के साथ मिलकर आक्साइड, हाइड्रेट और कार्बोनेट बनाते हैं। ये मूल चट्टान की अपेक्षा मुलायम होते हैं और आसानी से घुल जाते हैं। रासायनिक प्रतिक्रिया से भी चट्टानें नष्ट-भ्रष्ट होती हैं।.इस प्रकार की क्षति पुराने मकबरों और इमारतों में दृष्टिगोचर होती है।

दूसरे, वायुमण्डल मे गति या हवा के कारण विखंडन भी होता रहता है। जब हवा महीन बालू के कणों को चट्टानों के प्रति टकराती है, अजीब प्रकार की क्षति नजर आने लगती है। धूल से लदी हवा बालू के झोंके के सदृश काम करती है और चट्टानों की कठोरता में कमी या अधिकता के अनुसार कहीं कम और कहीं ज्यादा काटती-छाँटती रहती है। बलुहे प्रदेशो में यह प्रतिक्रिया विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका के पश्चिमी किनारे के कुछ नगरों में किनारे की तरफ की खिड़कियाँ इतनी घिस गई हैं कि वे पाले मारे हुए शीशे की तरह मालूम पड़ती हैं। मरुस्थल प्रदेशों से होकर जानेवाली रेलगाड़ियों के डिब्बों को अक्सर रंगना पड़ता है क्योंकि धूल से लदी आँधियाँ उन्हें खराब कर डालती हैं। मिश्र की उच्च महान् मूर्ति Sphinx में यह प्रभाव विशेष रूप से दिखलाई देता है। उसका ऊपरी भाग तो घिस कर चिकना सपाट हो गया है परन्तु उसके नीचे का भाग जो बालू के नीचे सदियों से दबा चला आ रहा है, अभी भी वैसा ही है। बहुत-से समुद्री प्रदेशों में चट्टानों के अनेक रूप बन जाते हैं।

(ङ) **पौधे और जानवर** भी चट्टानों के तोड़-फोड़ में सहायता करते हैं। पेड़ों की जड़ें चट्टानों की दरारों में प्रवेश कर जाती हैं। जैसे-जैसे ये जड़ें बढ़ती हैं

वे दरार को चौड़ी करती जाती है और मूल चट्टान से छोटे-छोटे टुकड़े टूटकर अलग होने लगते हैं। जमीन खोदने वाले जानवर और मिट्टी के कीड़े भी भूमि को ढीला करते हैं। इसके विपरीत वनस्पति या घास से घिरी भूमि पर अनावृत्तीकरण नगण्य-सा होता है। वायु द्वारा अनावृत्तीकरण तो हो ही नहीं पाता।

(२) बहता हुआ जल और उसका कार्य

भूमि के धरातल के रूप में हेर-फेर करने वाले सभी प्रकार के साधनों में नदियों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। उनका कार्य दो प्रकार का होता है। प्रथम तो वे भूमि को घिसती हैं और तत्पश्चात् वे टूटी हुई सामग्री को बहाकर ले जाती हैं तथा दूसरी जगह जमा करती है। नदी के प्रवाह क्षेत्र में उसके द्वारा आवरण क्षय कार्य की तीव्रता नदी में जल की मात्रा और उसके प्रवाह की गति पर निर्भर रहती है। नदी जल की गति नदी की तलैटी के ढाल पर आश्रित रहती है। जब नदी तेजी से बहती है, तो इसका प्रधान कार्य आवरणक्षय होता है। परन्तु जहाँ इसकी गति धीमी पड़ जाती है वहाँ यह निक्षेप करने लगती है। बाढ के समय नदियों की गति विशेष तेज हो जाती है। अतएव आवरणक्षय तीव्रगति में होता है ओर बाढ़ से जन-धन की विशेष हानि होती है।

बाढ़ के समय नदी का जल गंदला या मटमैला हो जाता है। इसमें मिट्टी के सूक्ष्म कण घुले-मिले रहते है। इन कणों को बाढ का पानी अपने किनारों और तलैटी से काट कर लाता है। जब तक नदी का प्रवाह तेज रहता है, ये महीन कण घुले-मिले बहते रहते है परन्तु जब नदी की गति धीमी पड़ती है इस मिट्टी का कुछ भाग जमा रह जाता है।

समुद्र तक पहुंचने पर बहाव की गति और भी धीमी पड जाती है और बहा कर लाई हुई मिट्टी समुद्र की तली में जमा हो जाती है। इस प्रकार नदियाँ सतत रूप से भूमि के आवरण को हटाती रहती हैं और उसके धरातल को नीचा करती रहती है। जो मिट्टी-बालू समुद्र में इकट्ठा होती रहती है उससे समुद्र छिछला होता जाता है। यह दशा मेक्सिको की खाड़ी और एड्रियाटिक सागर के ऊपरी भाग में विशेष रूप से पाई जाती है। अनुमान यह है कि मिसीसीपी और उसकी सहायक नदियाँ प्रति दिन १० लाख टन मिटटी बहाकर मेक्सिको की खाड़ी में जमा करती रहती है। इस रीति से ६ हजार वर्षों में मिसीसीपी का प्रवाह क्षेत्र वर्त्तमान स्थिति से एक फुट नीचा हो जायेगा।

अधिकतर नदियों के तीन खंड होते है :—

(क) ऊपरी घाटी या तेज प्रवाह-क्षेत्र जहाँ पर ढाल प्रति मील में ५० फीट या उससे भी अधिक होता है।

(ख) मध्य घाटी-क्षेत्र जहाँ पर ढाल प्रति मील में १० फीट तक होता है।

(ग) निम्न घाटी या मैदानी क्षेत्र जहाँ पर ढाल एक मील में एक फीट से भी कम होता है।

इन विभागों का पारस्परिक विस्तार सब नदियों में एक-सा नहीं होता। नार्वे और स्काटलैण्ड की नदियों के समान कुछ तो समुद्र तक तेज बहने वाली होती हैं। उनका बहुत थोड़ा हिस्सा मैदान मे होकर बहता है और जल-विद्युत के उत्पादन में उनका विशेष महत्त्व है। परन्तु यातायात और खेती के दृष्टिकोण से उनका स्थान नगण्य-सा है। अमेजन, गंगा, मिसीसीपी, टेम्स, सीन, एल्ब आदि नदियों का प्रवाह अधिकांश रूप

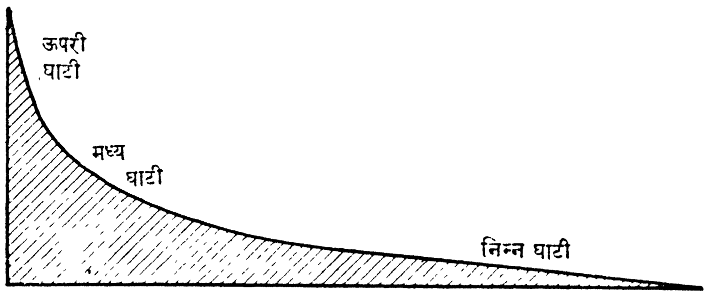

चित्र ६४—नदी घाटी का खंड चित्र और उसके तीन विभाग

मे मैदानों मे होकर है। उनकी ऊपरी घाटी का विस्तार अपेक्षाकृत कम है। उनका अधिकतर भाग विस्तृत मैदानी भाग मे होकर है। प्रायः सभी नदियों में धीरे-धीरे ऊपरी घाटी का विस्तार कम हो जाता है और मैदानी भाग का विस्तार बढ जाता है।

नदी की ऊपरी घाटी में नदी का प्रधान कार्य आवरणक्षय या काटना-छाँटना होता है। नदी की धारा का तेज प्रवाह और इसमे प्रवाहित बड़े-बड़े कंकड़-पत्थर नदी की तलैटी को बराबर घिसते रहते हैं। फलस्वरूप घाटी बराबर गहरी होती जाती है और अपेक्षाकृत उसकी चौड़ाई इतनी नहीं बढ़ पाती। अतएव ऊपरी घाटी संकीर्ण तथा तीव्र ढाल वाली होती है। सहायक नदियाँ बहुत कम होती हैं और जो होती भी है वे छोटी तथा तेज बहने वाली होती है। कुछ घाटियों की दीवाल बिल्कुल लम्बरूप होती है। इनमें न तो यातायात हो सकता है और न ही खेती का धन्धा। पर, हाँ, जलविद्युत खूब उत्पन्न की जा सकती है। स्विटजरलैण्ड, नार्वे, स्काटलैण्ड और वेल्स की नदियाँ इसका सर्वोच्च उदाहरण है।

नदी की मध्य घाटी ऊपरी और निम्न घाटियों के बीच मे होती है और इस विभाग में नदी तोड़-फोड़ व निर्माण दोनों ही कार्य करती है। चूंकि बहाव की गति धीमी होती है आवरणक्षय की गति अधिक तीव्र नही होती परन्तु कंकड़ पत्थरों की रगड़ से तलैटी बराबर नीची होती जाती है। ये कंकड़-पत्थर नदी के जल में तलैटी के साथ-साथ लुढ़कते चलते हैं। नदी के किनारों पर कुछ निक्षेप भी होता है विशेषकर उन भागों में जहाँ नदी की धारा धीमी है। बाढ़ के समय नदी के दोनों किनारों पर मृत्तिका या मिट्टी की हल्की सी परत बिछ जाती है। सीधे न बहकर नदी घुमावदार मार्ग से होकर बहने लगती है। नदी की घाटी गहरी व चौड़ी रहती है और उसकी सहायक

नदियाँ लम्बी व धीमे बहने वाली होती हैं। मध्य घाटी की दीवारें ऊपरी घाटी के सदृश ढालू या लम्बरूप नहीं होती। नदी और घाटी की दीवार के बीच में मपाट चबूतरे से पाये जाते हैं। अतएव इस प्रकार की मध्य घाटियों का मुख्य धंधा खेती है। शीतोष्ण कटिबंध में मपाट बाढ़ के मैदान में तो खेती की जाती है और पहाड़ी ढालों पर जानवर चराये जाते हैं।

नदी की निम्न घाटी में नदी का प्रधान कार्य निर्माण होना है। नदी चौड़े मैदानों में इधर-उधर घूमती हुई धीरे-धीरे बहती है। सहायक नदियाँ भी लम्बी और धीरे बहने वाली होती है। घाटी की दीवारें मुख्य भाग से इतनी दूर होती हैं कि घाटी के आकार को समझना मुश्किल होता है। बाढ़ आने पर दूर-दूर तक मिट्टी जम जाती है। इस विभाग की मिट्टी महीन, खूब मिली हुई, कंकड़रहित और अति उपजाऊ होती है। यही कारण है कि निम्न घाटी मे खेती का धधा बहुत अधिक उन्नति कर गया है। गंगा, ह्वांग हो और मिसीसीपी की निम्न घाटियाँ प्रसिद्ध खेतिहर क्षेत्र हैं इस विभाग में नदियाँ यातायात के उपयुक्त होती हैं और शुष्क प्रदेशों में उनसे सिंचाई की जाती है। मपाट मैदानों पर सिंचाई के लिए जल आसानी से फैलाया जा सकता है।

नदी के किनारों और तली में धारा मध्य से अधिक धीमी होती है। भूमि के साथ रगड़ खाने से धारा की तेजी कम हो जाती है। निम्न घाटी में धारा की गति जरा-सी भी कम हो जाने से निक्षेप होने लगता है और बहुत-सी नदियों में किनारों व तली पर मिट्टी जमा होती जाती है।

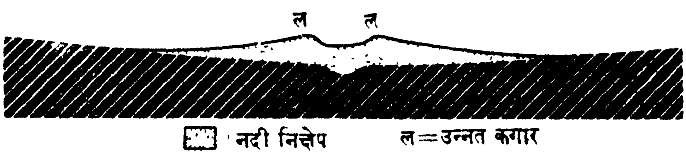

चित्र ६५—नदी की तली का आस-पास के प्रदेश से ऊंचा उठना।

बहुत दिनों तक इस प्रकार निक्षेप होते रहने पर नदी की तली ऊँची उठ जाती है और नदी की धारा उठे हुए किनारों के बीच से होकर बहने लगती है। इसकी तली आस-पास के मैदान की अपेक्षा अधिक ऊँची होती है। इस प्रकार के उठे किनारों को **उन्नत कगार** (Levees) कहते हैं और ये मिसीसीपी, पो, ह्वांगहो, यांगटीसीक्यांग की निम्न घाटियों में खूब पाये जाते हैं। ये उन्नत कगार मुलायम मिट्टी के बने होते हैं। इसलिए ये बाढ़ के पानी को रोकने मे असफल रहते हैं। बाढ़ के दिनों में ये बहुधा टूट जाते हैं और बाढ़ का पानी समीपवर्ती मैदानों में फैल जाता है जिससे जन-धन की विस्तृत हानि होती है। इन बाढ़ों को रोकने के लिए अक्सर इन उन्नत कगारों को पक्का कर दिया जाता है। मिसीसीपी में ऐसा ही किया गया है परन्तु फिर भी बाढें आती ही हैं।

निम्न घाटी की एक और विशेषता **घुमावदार मार्ग** (Meanders) का निर्माण है। जब कोई नदी की धारा विस्तृत मोडों में से होकर लहराती हुई बहने लगती है

ऊपर : ३ सितम्बर १९३६ को स्ठोनबेंच और मिन्सटरवर्थ के बीच सेवर्न नदी में जल-भित्ति का दृश्य। उस समय इस नदी का जल १० फीट ऊँचा उठ गया था।

नीचे : राइन-मास का डेल्टा। नदी की उपधाराओं से कटे-फटे छोटे-छोटे बहुत से सपाट बलुहे द्वीप और ताल देखिये।

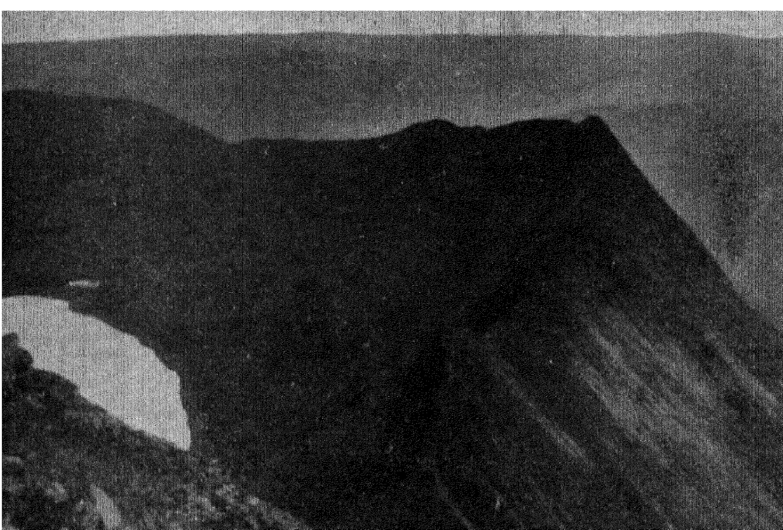

गोलाई लिए हुये हैं। हिम पिघलने के बाद नदी द्वारा आवरणक्षय भी ध्यान देने योग्य है।

नीचे : हेलवेलयन में स्ट्राइडइंग एज।

तो उसकी धारा कभी एक किनारे पर टक्कर मारती है तो कभी दूसरे पर। फलतः प्रथम 'य' बिन्दु पर आवरणक्षय होता है और इस प्रकार काटी हुई मिट्टी बहाकर 'व' बिन्दु पर जमा कर दी जाती है जहाँ नदी की धारा का वेग कम है। यही कारण है कि 'य' बिन्दु वाले किनारे या नदी के बाह्य तट अधिक ढालू होते हैं। इसके विपरीत 'व' बिन्दु वाले किनारे या आन्तरिक तट नीचे तथा हल्के कटावदार होते हैं। धीरे-धीरे 'य' बिन्दु पर तट कटता जाता है और मोड़ और अधिक बढता जाता है। अब नदी की धारा केवल 'य' बिन्दु पर ही नही काटती बल्कि 'ल' बिन्दु पर भी काटना शुरू कर देती है। धीरे-धीरे $ल_1$ और $ल_2$ के बीच की पतली पट्टी इतनी संकीर्ण हो जाती है कि नदी उसको तोड़ कर बहने लगती है और घुमाव का मोड़ 'म' नदी के मार्ग से अलग हो जाता है। घोड़े की नाल के आकार का जलपूर्ण यह घुमाव **धनुषाकार झील** (Oxbow lake) कहलाता है। इस प्रकार की झीले मिसीसीपी और मरे नदियों के प्रवाह-क्षेत्र में विशेष रूप से पायी जाती है। नदी के घुमाव के प्रदेश में बराबर मिट्टी के जमा होते रहने से उनका विस्तार बढता जाता है और मृत्तिकामय मैदान का निर्माण हो जाता है।

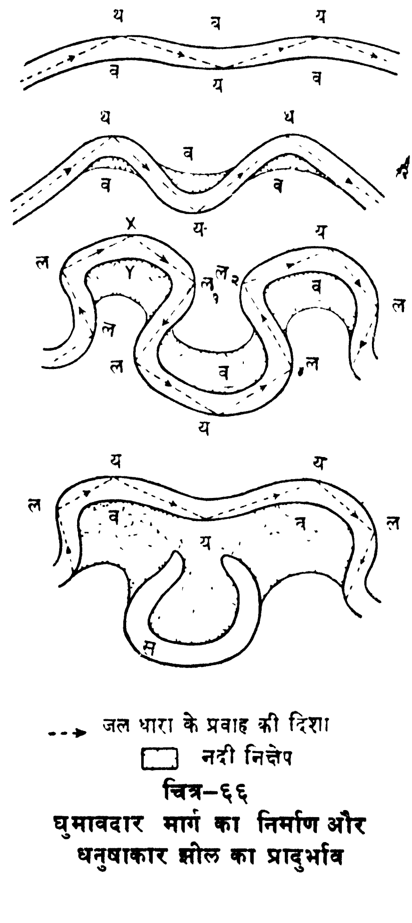

चित्र—६६
घुमावदार मार्ग का निर्माण और धनुषाकार झील का प्रादुर्भाव

डेल्टा

यह तो पहिले ही बतलाया जा चुका है कि नदियाँ समुद्र मे बहा कर लाई हुई मिट्टी-बालू इकट्ठा करती रहती है। इस निक्षेप को डेल्टा कहते है। अधिकतर डेल्टा त्रिकोण के आकार के होते है और यूनानी भाषा के डेल्टा शब्द से बहुत कुछ मिलते-जुलते है। इसीलिए इन्हें डेल्टा कहते है। जब नदियाँ झीलों में प्रवेश करती हैं तब भी डेल्टा बन जाते है। परन्तु नदी के जल के लिए झीलें छलनी का काम करती है और झील से निकनेवाली नदियों का जल, उसमें प्रवेश करने वाली नदियों के जल की अपेक्षा कहीं अधिक साफ होता है। ये विशेषता रोन नदी के जेनीवा झील में प्रवेश करने और बाहर निकलने में स्पष्टतया दृष्टिगोचर होती है।

डेल्टा निर्माण के लिए निम्नलिखित दशाओं का होना अत्यन्त आवश्यक है :—

(१) नदी की ऊपरी घाटी पहाड़ी प्रदेशों मे स्थित होनी चाहिए जहाँ आवरण-क्षय तेजी से हो। नदी में डेल्टा निर्माण की क्षमता और भी बढ़ जाती है यदि उसकी सहायक नदियाँ बहुत अधिक मिट्टी-बालू बहाकर लावे।

(२) नदी के मुहाने मे शक्तिमान ज्वारीय धाराये नही होनी चाहिएँ क्योंकि धाराये नदी के मुहाने पर से मिट्टी के निक्षेप को काटकर बहा ले जाती है। जो नदियाँ उन छिछले समुद्रों में गिरती है जहाँ ज्वारीय अनुपात अधिक होता है उनमे डेल्टा कदापि नही बनते। ऐसी दशा मे डेल्टा तभी बन सकते है जब कोई विशेष परिस्थितियाँ हो। इसके विपरीत भूमध्यसागर जैसे ज्वारहीन समुद्रों मे गिरने वाली नदियाँ अपने मुहाने पर डेल्टा बनाती है।

(३) नदी के प्रवाह के बीच मे यदि विशाल झीले हो तो इसकी धारा समुद्र तक पहुँचने के पहिले ही धीमी पड़ जायेगी। और इसके द्वारा बहाकर लाई हुई मिट्टी बालू रास्ते मे ही रुक जायेगी।

(४) नदी की निम्न घाटी विस्तृत मैदान मे होकर जानी चाहिए ताकि इसकी धारा समुद्र तक पहुँचने के पहिले ही धीमी पड़ जाये। जहाँ निम्न घाटी का ढाल इतना अधिक होता है कि नदी की धारा तेज हो जाती है तो उसके साथ मे बहकर मिट्टी बालू दूर समुद्र में पहुँच जाती है और डेल्टा नही बन पाता।

फ्रांस की रोन नदी की ऊपरी घाटी आल्पस पर्वत प्रदेश मे स्थित है, परन्तु जिनेवा झील नदी द्वारा बहाकर लाई हुई समस्त मिट्टी बालू को हर लेती है। फिर भी रोन का डेल्टा बहुत ही विस्तृत है। इसका कारण यह है कि जिनेवा झील को छोड़ने के बाद इसमें कई बड़ी-बड़ी सहायक नदियाँ आकर मिलती है और अपने साथ बहाकर बहुत-सी मिट्टी-बालू लाती है। रोन की निचली घाटी मे इसकी चाल धीमी पड़ जाती है और फिर जिस समुद्र में यह गिरती है उसमे ज्वारीय धाराओ का अभाव है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका की मिसीसीपी नदी किसी पर्वतीय प्रदेश से नही निकलती। इसका उद्गम मध्यवर्त्ती अमरीकी मैदान मे बडी झीलो के पश्चिम से है। इसकी सबसे बड़ी सहायक नदियाँ मिसौरी, चीने, प्लाट, अर्कनास आदि राकी पर्वतमाला से निकलती हैं। तेज बहने के कारण ये डेल्टा निर्माण के उपयुक्त मिट्टी बालू इकट्ठा कर लेती हैं। इसकी निम्न घाटी विस्तृत है और नदी का प्रवाह धीमा है। मेक्सिको की खाड़ी में जहाँ यह नदी गिरती है ज्वारीय धाराओं का अभाव है। अधिकांश डेल्टा से भिन्न मिसीसीपी का डेल्टा त्रिकोण नही है। इसका आकार पक्षी के पैरों जैसा है। किसी खाड़ी के सिरे पर जब कोई डेल्टा बनता है तो उसका आकार तट रेखा के अनुरूप ही होता है। कैलीफोर्निया की खाड़ी मे कोलोरैडो नदी का डेल्टा भी इसी प्रकार का है। इंग्लैण्ड के फैन प्रदेश का कुछ भाग डेल्टा था। ईराक के मैदान दजला फरात नदियों के डेल्टा ही है। इसी प्रकार इटली का उत्तरी मैदान पो नदी का डेल्टा ही है।

मिट्टी-बालू के निक्षेप के अनुसार ही डेल्टा निर्माण जल्दी या देर में होता है। राइन का डेल्टा सौ वर्ष में एक मील की दर से बढ़ रहा है। पो नदी के डेल्टा प्रदेश में स्थित एड्रिया शहर अब समुद्र से १२ मील दूर है परन्तु रोमन साम्राज्यकाल में यह शहर बन्दरगाह था।

डेल्टा का धरातल बिल्कुल सपाट होता है और इसके आर-पार बहुत-सी छोटी-छोटी धारायें बहती रहती हैं जिससे कि प्रवाह प्रणाली बड़ी ही अव्यवस्थित रहती है। इन धाराओं को उपसहायक नदियां कहते हैं।

डेल्टा प्रदेश की मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ होती है। इसके कण महीन, इसकी बनावट विभिन्न और इसमें वनस्पति अवशेषांश अधिक होता है। शीतोष्ण कटिबंध विशेष कर हालैंड में डेल्टा प्रदेश को सुखा कर तथा खेती योग्य बनाकर विशेष आर्थिक प्रगति की गई है। उष्ण प्रदेशों में डेल्टाओं पर चावल की उत्तम खेती होती है। नील, यागटीसी, मीकाग और इरावदी के डेल्टा इसके उदाहरण हैं। गंगा के डेल्टा में पटसन की खेती की जाती है।

नदी घाटियाँ और उनके आकार विभिन्न प्रकार के होते हैं। नदी घाटी का आकार निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है :—

(१) नदी के प्रवाह, प्रदेश के विभाग जिनको मिलाकर नदी-घाटी बनाती है,
(२) नदी की अवस्था,
(३) चट्टानों का स्वभाव,
(४) जलवायु और विशेष रूप से वर्षा की मात्रा
(५) अनावृत्तीकरण के साधन।

(१) नदी घाटी का आकार ऊपरी, मध्य और निम्न विभागों में अलग-अलग होता है। जहाँ चौड़ा करने की अपेक्षा गहरा करने की क्रिया अधिक प्रखर होती है वहाँ नदी घाटी की दीवार लम्बरूप होती है और घाटी का आकार अंग्रेजी वर्णमाला के V अक्षर के समान होता है। नदी घाटी के मध्य विभाग में नदी को चौड़ा करने की क्रिया अधिक तेजी से होती रहती है। इसलिए V आकार चपटा हो जाता है जैसा कि चित्र में क क$_१$ द्वारा चित्रित किया गया है। नदी घाटी के निम्न विभाग में यह आकार इतना अधिक चौड़ा होकर फैल जाता है कि उसे पहिचानना तक कठिन हो जाता है। चित्र में 'ख ख$_१$' इस स्थिति के सूचक है।

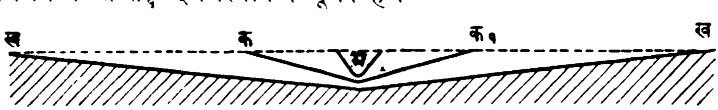

चित्र ६७—नदी घाटी के विभाग

(२) नवीन अवस्था में घाटी संकरी होती है और उसकी दीवारें तीव्र ढाल-वाली होती हैं। जैसे-जैसे नदी की तली नीची होती जाती है, लम्ब रूप आवरणक्षय (Vertical Cutting) या गहरे करने की क्रिया कम होती जाती है और घाटी

चौड़ाई में बढ़ने लगती है। प्रौढ़ अवस्था में (Middle Stage) घाटी चौड़ी और सपाट हो जाती है। स्पष्ट है कि नवीन अवस्था (Young Age) से प्रौढ़ावस्था तक नदी घाटी का विकास उसी प्रकार का होता है जैसा कि नदी की ऊपरी घाटी से निम्न घाटी विभाग मे।

(३) जहाँ पर चट्टान इतनी कठोर है कि घाटी और अधिक चौड़ी नही हो सकती और जहाँ नदी की तीव्र धारा घाटी को गहरी ही करती जाती है, ऐसी दशा मे जो घाटी बनती है उसकी दीवारें जल के किनारे से सीधे ऊपर को खड़ी रहती हैं। इन्हें संकीर्ण नदी घाटी (Gorge) कहते है। चूने के पत्थर से बने प्रदेशो मे घाटियो की दीवार काफी ढालू तथा कभी-कभी लम्बरूप स्थित होती है। नदी घाटी को चौड़ा करने का कार्य तो अधिकतर वर्षा के जल द्वारा ही होता है। वर्षा का जल घाटी की दीवारों को घिस कर उनके ढाल को खत्म कर देता है। चूँकि चूने का पत्थर प्रवेश्य चट्टान है, इसलिए वर्षा का जल उसमे प्रवेश कर जाता है और सतह पर प्रवाहित नही होता। यही कारण है कि चूने के पत्थर वाले प्रदेशों मे घाटियो की चौडाई बहुत धीरे-धीरे बढती है और फलस्वरूप घाटी की दीवारे तीव्र ढाल वाली होती है।

(४) शुष्क प्रदेशो मे वर्षा की कमी के कारण घाटियों की चौड़ाई बढ़ नही पाती और नदियों द्वारा पठारों के बीच गहरी संकरी घाटियाँ बन जाती है जिन्हे कैनयन (Canyon) कहते है। संसार का सबसे प्रसिद्ध कैनयन संयुक्तराष्ट्र अमेरिका मे कोलैरैडो नदी का है। करीब २०० मील तक तो यह एक मील गहरा है। दक्षिणी अफ्रीका के पठार से होकर बहने वाली आरेंज नदी भी इसी प्रकार का कैनयन बनाती है। इस दृष्टिकोण मे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि कैनयन केवल पठारी भागो मे ही बनते है। इसका कारण यह है कि नदी अपनी तली को समुद्रतल तक ही काट सकती है। अतएव ५,००० फीट ऊँचे पठार पर से होकर बहने वाली नदी ५,००० फीट गहरी घाटी बना सकती है और १०० फीट ऊँचे मैदान मे बहनेवाली नदी केवल १०० फीट गहरी घाटी ही बना सकती है।

(५) यदि किसी नदी घाटी में से होकर कोई हिमनदी प्रवाहित हो जाये तो नदी घाटी का आकार V से U जैसा हो जाता है।

दरार घाटी (Rift Valley)—भूगर्भवर्ती शक्तियों की हलचल के फलस्वरूप बनती है। इसलिए उसका रूप-रंग और विशेषतायें अनावृत्तीकरण के साधनों द्वारा निर्मित घाटियों से बिल्कुल भिन्न होती है। नदी घाटियों से दरार घाटी बहुत भिन्न होती है। उनके बीच नदियाँ बहती हों पर घाटी का नदी की अवस्था से बहुत कम सम्बन्ध प्रतीत होता है। इन दरार घाटियों के बीच से बहुधा कई नदियाँ बहती है और उनका निकास किसी भी समुद्र में नहीं होता। उनकी तली समुद्रतल से बहुत अधिक ऊँचाई पर होती है।

बहुत दिनों तक ऐसा विश्वास था कि दरार घाटी का निर्माण दो समानान्तर दरारों के बीच धरातल के धँस जाने से होता है। यह दो कारणों से हो सकता है।

या तो दो दरारों के बीच का भूभाग अपेक्षाकृत नीचा हो जाये या समीपवर्ती भूखंड कुछ ऊँचा हो जाय और या ये दोनों ही बातें साथ-साथ हों। वेगनर के अनुसार दरार घाटी निर्माण भूखंडों के प्रवाह से हुआ। उनके अनुसार पृथ्वी तल की दरारें भूखण्डों के प्रवाहित होने पर और अधिक चौड़ी हो गई और दरार घाटी का रूप धारण कर लिया।

दरार घाटी का सर्वोत्तम उदाहरण अफ्रीका में है। यह विशाल दरार घाटी टारस पर्वत से दक्षिण की ओर जार्डन की घाटी और लाल सागर के बेसिन से होती हुई जम्बेसी नदी तक फैली हुई है। दरार घाटी के अन्य नमूने स्काटलैण्ड के मध्यवर्ती मैदान, राइन घाटी और दक्षिणी आस्ट्रेलिया की टारेन्स झील तथा स्पेन्सर खाड़ी में मिलते हैं।

इन घाटियों की तली सदैव सपाट नहीं होती। पूर्वी अफ्रीका की दरार घाटी में बहुत-सी गहरी झीलें पायी जाती हैं। अक्सर दरार घाटी की तली की ऊबड़-खाबड़ बनावट मृत्तिका की मोटी तहों के नीचे दबी रहती है। राइन की दरार घाटी में यही दशा है। अफ्रीका की दरार घाटी की दीवारें बड़ी सीधी हैं। इसका कारण यह है कि ये अपेक्षाकृत नवीन हैं। परन्तु अन्य पुरानी दरार घाटियों के ढाल को अनावृत्तीकरण और मौसमी क्षति के साधनों ने घिस-घिसा कर क्रमशः कर डाला है।

भूगर्भवर्ती जल (Underground Water) और उसके कार्य

वर्षा के जल का कुछ अंश तो भूमि की सतह पर बहकर नदी-नालों का रूप धारण कर लेता है। कुछ अंश पुनः भाप बनकर उड़ जाता है और कुछ भूमि में सोख जाता है। इसे भूगर्भवर्ती जल कहते हैं। भूगर्भवर्ती जल की मात्रा स्थान-स्थान पर भिन्न होती है और चूने के पत्थर जैसे प्रवेश्य चट्टानों के प्रदेश में इसकी मात्रा विशेष रूप से अधिक होती है। चीका मिट्टी जैसी अप्रवेश्य चट्टान में भूगवर्भवर्ती जल की मात्रा बहुत कम होती है।

यह भूगर्भवर्ती जल स्रोतों, कुओं और झरनों के रूप में धरातल पर प्रकट होता है। इसीके कारण भूमि का कुछ अंश ढाल पर से खिसक जाता है। चूने के पत्थर से बने भागों म यही जल विशाल कन्दरायें तथा अन्य स्थल रूप बना देता है।

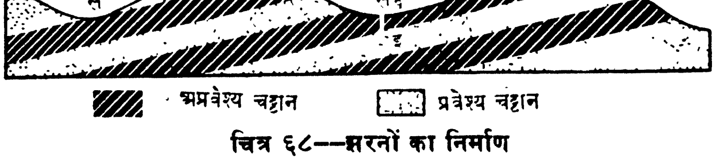

चित्र ६८—झरनों का निर्माण

झरने (Springs) से भूगर्भवर्ती जल बाहर आता है। ऊपर दिये हुए चित्र में झरनों के दो स्वरूपों को दिखलाया गया है :—

(१) 'ब' चट्टान प्रवेश्य है। उस पर पड़नेवाली वर्षा का जल अन्दर प्रवेश करता हुआ 'क' नामक अप्रवेश्य सतह पर पहुँचता है। चूँकि यह और आगे प्रवेश नहीं कर सकता इसलिए अप्रवेश्य चट्टान की सतह पर घूमने लगता है। घूमते-घूमते जब यह धरातल के 'स' बिन्दु पर पहुँचता है तो झरने के रूप में प्रवाहित होने लगता है।

(२) 'ख' नामक प्रवेश्य चट्टान के सिरे पर पड़ने वाला वर्षा का जल उसी सतह से होता हुआ किसी दरार या संध तक पहुँच जाता है। इस दरार या संध से होकर यह धरातल पर 'स$_1$' स्थान पर निकल पड़ता है। ख और ड़ के बीच में इकट्ठा जल ऊपर से दबाव डालता है। फलतः स$_1$ स्थान पर झरना फूट निकलता है। परन्तु यह झरना तभी तक प्रवाहित होगा जब तक ख प्रवेश्य परत में जल का तल स$_1$ से ऊँचा रहे।

कुछ झरने गर्म होते हैं। इनमें गर्म जल निकलने का प्रधान कारण यह है कि यह जल गर्म चट्टानों पर से होकर आता है। ज्वालामुखी प्रदेशों में **गर्म जलस्रोत** (Hot Springs) आमतौर से पाये जाते हैं। ये गर्म जल स्रोत उन प्रदेशों में भी पाये जाते हैं जहाँ ज्वालामुखी विस्फोट अब नहीं होते। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के यलोस्टोन पार्क और न्यूजीलैण्ड के उत्तरी द्वीप में इस प्रकार के गर्म जलस्रोत विशेष रूप से पाये जाते हैं।

झरनों के पानी में खनिज तत्त्व घुले पाये जाते हैं। जब किसी झरने में खनिज तत्त्वों का अंश बहुत अधिक होता है या उनमें कोई विशेष तत्त्व घुला पाया जाता है तो उन्हें **खनिज जल स्रोत** (Mineral Springs) कहते हैं। इस प्रकार के झरनों के जल में ओषधि के गुण पाये जाते हैं और वहाँ दूर-दूर से रोगी जल पीने के लिए आते हैं। जर्मनी में कार्ल्सबाद, इंग्लैण्ड में बक्सटन और हैरोगेट तथा दक्षिणी फ्रांस में लेडिएम इसी प्रकार के केन्द्र हैं।

धमाके के साथ जल फेंकने वाले गर्म जल स्रोतों को **गेसर** (Geyser) कहते हैं। गेसर आइसलैण्ड, यलोस्टोन पार्क और उत्तरी न्यूजीलैण्ड में मिलते हैं—विशेषकर वहाँ जहाँ अभी भी ज्वालामुखी विस्फोट होते रहते हैं। गेसर से थोड़ी-थोड़ी देर बाद गर्म जल का एक ऊंचा स्तम्भ-सा उठा करता है। दो विस्फोटों के बीच की अवधि बहुत कुछ नियमित सी होती है। यलोस्टोन पार्क का Old Faithful गेसर प्रति एक घण्टे के बाद फूट पड़ता है और Minute Man में तो प्रति एक मिनट बाद जल स्तम्भ विस्फोट के साथ निकलता रहता है।

विश्वास है कि गेसर निम्नलिखित रीति से बनते हैं। भूमि के धरातल पर एक छेद होता है जिसका सम्बन्ध बहुत अधिक गहराई तक रहता है। भूगर्भवर्ती जल इस छिद्र से इकट्ठा हो जाता है और चट्टानों की गर्मी के कारण इसका तापक्रम २१२° फा० तक पहुँच जाता है। यद्यपि समुद्रतल पर पानी का उबलने का तापांक २१२° फा० ही है परन्तु पृथ्वी के नीचे ऊपर के दबाव के कारण जल को उबलने के लिए अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। संवाहन धाराओं द्वारा अत्यन्त गर्म पानी ऊपर को उठने

लगता है। साथ-साथ भार के कम पड़ने से भाप बन जाता है और यह भाप अपने ऊपर के पानी को ढकेलती है। इस प्रकार उछले हुए पानी का कुछ अंश वापस आ जाता है और फिर वही क्रिया चलने लगती है। गेसर के सिरे पर एक छोटा-सा टीला बना होता है जिसका मध्यभाग अन्दर को धंसा रहता है। गर्म जल द्वारा निक्षिप्त खनिज तत्त्वों से ही यह टीला बनता है। जब नीचे की चट्टानें ठंडी पड़ जाती हैं तो गेसर से जल का उछल कर निकलना बन्द हो जाता है।

पाताल फोड़ कुएं (Artesian Wells)—एक विशेष प्रकार के झरने के रूप मे वर्णित किये जा सकते हैं। इसमे छिद्र मनुष्य द्वारा बनाया जाता है। पातालफोड़ कुएँ वहीं पाये जाते हैं जहाँ निम्नलिखित दशाएँ उपस्थित होती हैं :

(१) चट्टानो की बनावट धनुष के समान होनी चाहिए।

(२) ऊपर नीचे की कठोर चट्टानो के बीच मुलायम प्रवेश्य चट्टान की एक परत होनी चाहिए।

(३) प्रवेश्य चट्टानों की परत धरातल पर निकली रहनी चाहिए।

(४) भूगर्भवर्ती जल की पर्याप्त मात्रा रखने के लिए वर्षा की मात्रा काफी होनी चाहिए।

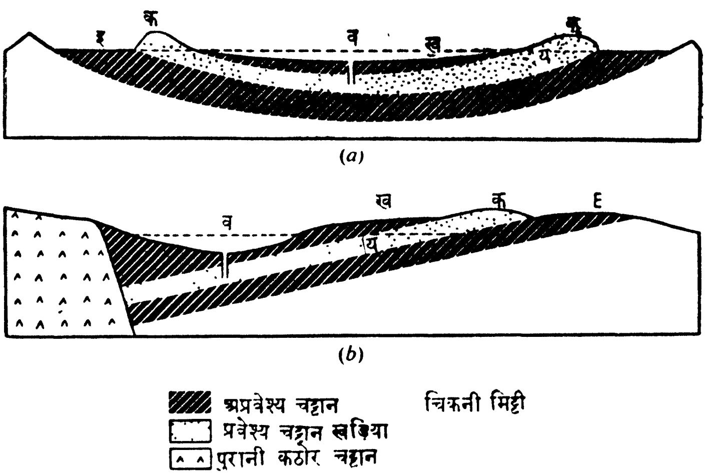

चित्र ६९—— पातालफोड़ कुयें

'क' बिन्दु पर गिरने वाला जल प्रवेश्य चट्टान की परत में से होकर नीचे पहुँच जाता है। यह जल 'इ' नामक अप्रवेश्य चट्टान के भीतर से नही जा सकता और ऊपर की 'ख' अप्रवेश्य चट्टान जल को ऊपर भी नहीं जाने देती। इसलिए यदि 'व' स्थान पर एक छेद कर दिया जाय तो जल धड़ाके के साथ बाहर निकल पड़ता है। यह तभी सम्भव है जब प्रवेश्य चट्टान की परत में भूगवर्भवर्ती जल का तल छेद के सिरे से ऊंचा हो। ऐसी दशा में भूगर्भवर्ती जल का भार जल को ढकेल कर ऊपर फेंक देगा।

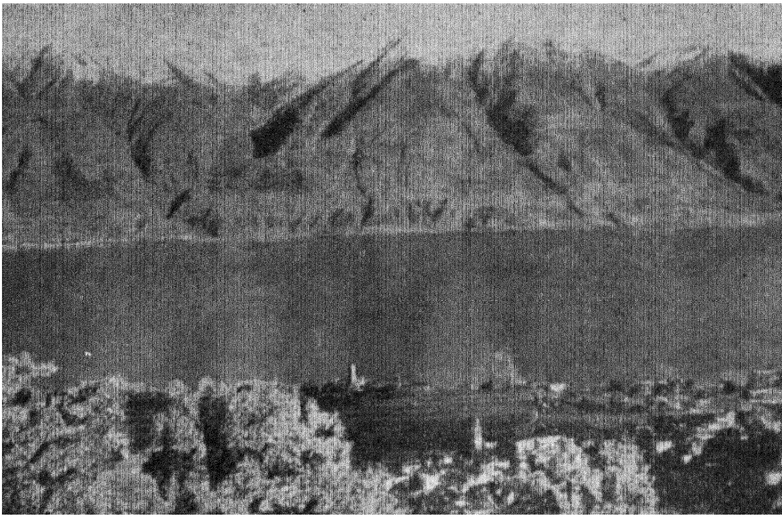

ऊपर : स्विटजरलैंड की मैगर झील।

नीचे : लाक एनित्र। यह यथार्थ हिमनदी प्रवाहित प्रदेश है। मुख्य घाटी की दीवारें लम्बरूप और उसकी तलहटी सपाट है। सहायक घाटियाँ लटकती हुई हैं। ऊपर मध्य में हिमागार है।

इस प्रकार के जल की बूंद जब कन्दरा की छत से लगी टपकती होती है तो उसके जल का कुछ भाग भाप बन कर उड़ जाता है और चूने का अंश छत से लगा रह जाता है। बूंद का बाकी हिस्सा कन्दरा के फर्श पर गिर जाता है। यह गिरी हुई बूंद भी भाप बन कर उड़ जाती है और चूने की हल्की-सी परत अवशेष रह जाती है। यह क्रिया हजारों वर्ष तक होती रहती है और धीरे-धीरे ऊपर से लटकते हुए तथा नीचे से उठे हुए खम्भे मे बन जाते हैं। ऊपर से लटकते हुए खम्भों को स्टैलक्टाइट और नीचे से उठे हुए खम्भों को स्टैलग्माइट कहते हैं। इनके बढ़ने का क्रम अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न होता है। कुछ तो एक हजार वर्ष में केवल १ इंच बढ़ते हैं और कुछ अधिक तेजी से बढ़े होते जाते हैं।

स्टैलक्टाइट प्राय: लम्बे और पतले होते हैं। लेकिन स्टैलग्माइट चौड़े व छोटे होते हैं। कभी-कभी ये दोनों मिल जाते हैं और फर्श तथा छत के बीच एक पूरा खम्भा-सा बन जाता है।

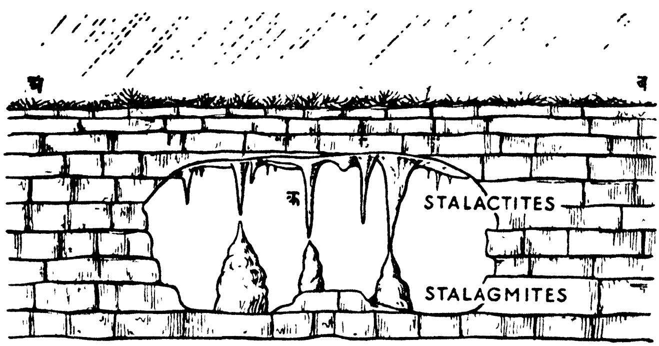

चित्र ७०—स्टैलग्माइट और स्टैलक्टाइट का निर्माण

(ग) **भूमिगत जलप्रवाह** (Subterranean Drainage)—चूने के पत्थर के प्रदेशों में बहुधा नदियाँ धरातल पर से गायब हो जाती हैं। मार्ग में कोई विशाल गर्त आ जाने से नदियों का जल उसमें से होता हुआ भूमि के अन्दर समा जाता है। भूमि के अन्दर पहुँचने पर यह नदी भूमिगत कन्दराओं और सुरंगों से होकर बहने लगती है। उचित स्थल पर अक्सर यह नदी फिर से धरातल पर प्रकट हो जाती है। यार्कशायर में विशाल गर्त ३६५ फीट गहरा है और इसमें से होकर फेल वेक नदी का पानी प्रवाहित होता हैं।

(घ) **शुष्क घाटी** (Dry Valley)—जब नदियों का जल गर्त में से होकर भूमि के नीचे कन्दराओं और सुरंगों में से होकर बहने लगता है तो धरातल पर की घाटी सूखी पड़ी रह जाती है। इन शुष्क घाटियों में कोई भी धारा नही रहती। हाँ, वर्षा के समय इनमें एक जलधारा का सूत्रपात हो जाता है क्योंकि वर्षा के समय का सारा पानी गर्त में नहीं समा पाता। इंगलैण्ड के काट्सवोल्ड और चिल्टर्न में इस प्रकार की

अनेक शुष्क घाटियाँ पाई जाती हैं। चूने के पत्थर के प्रदेश में घाटियाँ गहरी व संकरी होती हैं।

(ङ) **भूमि धंसना** (Subsidence)—भूगर्भवर्ती सुरंग की छत जब टूट जाती है तो एक लम्बी संकरी घाटी-सी बन जाती है। चेद्दर संकरी घाटी इसी प्रकार बनी। भूमि के धँसने से गड्ढा सा बन जाता है। इसकी तली मे मौसमी क्षति के कारण चिकनी मिट्टी इकट्ठा हो जाती है। इस प्रकार के गड्ढो को '**डोलाइन**' (Doline) कहते है। ये काफी विस्तृत होते हे और खेती के लिए बहुत ही उपयुक्त होते हैं। चूने के पत्थर के प्रदेश में और सब जगह तो [illegible] घास पाई जाती है और पशुपालन होता है। यूगोस्लाविया के पर्वतों मे 'डोलाइन' मे खेती का धंधा किया जाता है। इन्ही डोलाइन मे गाँव स्थित हे।

डोलोमाइट के पहाड़ों का चूने का पत्थर एक विशेष प्रकार का होता है। मौसमी क्षति के कारण इसके अनेक रूप बन जाते हे जो टूटे हुए खम्भे तथा किले जैसे लगते हे। मौसमी क्षति के प्रभाव स्वरूप चूने के पत्थर पर आरपार कटान व बाँसुरी-दार श्रेणियाँ बन जाती है। इन्हे किल्ट कहते हैं।

उत्तरी एड्रियाटिक सागर के पूर्व के पर्वत चूने के पत्थर के बने हुए है और वहाँ सभी विशेषतायें पाई जाती है। इस प्रदेश को कार्स्ट कहते है और समान विशेषतावाले सभी चूने के पत्थर वाले प्रदेशों को इसी नाम से पुकारते है। इंग्लैण्ड के दक्षिणी पेनाइन, पश्चिमी आयरलैण्ड, फ्रांस के मध्यवर्ती पठार का पश्चिमी किनारा, आस्ट्रेलिया के नील पर्वत और आपलेशियन पर्वत के पश्चिमी ढाल इसी प्रकार के अन्य प्रदेश है।

(४) हिम कार्य

इस समय हिम द्वारा आवरणक्षय का कार्य उच्च पर्वतीय प्रदेशों तथा ध्रुवीय प्रदेशों तक सीमित है परन्तु पृथ्वी के इतिहास मे कई ऐसे युग थे जिनमे पृथ्वी का अधिकांश भाग हिमाच्छादित रहा। सबसे बाद वाले इस प्रकार के युग को हिमयुग कहते है। इस युग में कनाडा तथा उत्तरी संयुक्तराष्ट्र अमरीका और उत्तरी यूरोप तथा ब्रिटिश द्वीपसमूह पर हिम का एक मोटा आवरण पड़ा हुआ था। कई जगह तो इस आवरण की मोटाई एक मील से भी अधिक थी। इस हिमराशि को हिमावरण या महाद्वीपीय हिमनदी कहते हैं। इस प्रकार के हिम आवरण अब केवल आर्कटिक व अन्टाटिक प्रदेशों में ही स्थित हैं। आल्प्स, राकी और हिमालय पर्वत प्रदेशों में पाये जानेवाली हिमनदियों को **घाटी हिमनदी** (Valley Glacier) कहते है।

उच्च अक्षांशों और अधिक ऊँचाइयों पर वर्षा के नाम पर हिमपात होता है। जिस रेखा के ऊपर ठंडक इतनी अधिक होती है कि गर्मी में भी बर्फ नहीं पिघलती, उसे **हिमरेखा** (Snowline) कहते हैं। ध्रुवीय प्रदेशों में हिमरेखा समुद्रतल पर ही होती है। पेरीनीज में हिमरेखा ६,५०० फीट की ऊँचाई पर पायी जाती है। भूमध्यरेखा के समीप एण्डीज में हिमरेखा १८,००० फीट की ऊँचाई पर पाई जाती है।

हिमरेखा से ऊपर की ओर हिमाच्छादित भू-भाग स्थित रहता है। इन हिम प्रदेशों को 'नेवे' (Neve) कहते हैं। हिम के इकट्ठा होते रहने के कारण नीचे की सतहों पर इस कदर दबाव पड़ता है कि हिम बर्फ में बदल जाता है और अपने गुरुत्वाकर्षण से यह धीरे-धीरे ढाल पर नीचे की ओर सरकने लगता है। पठारी भागों में यह सभी

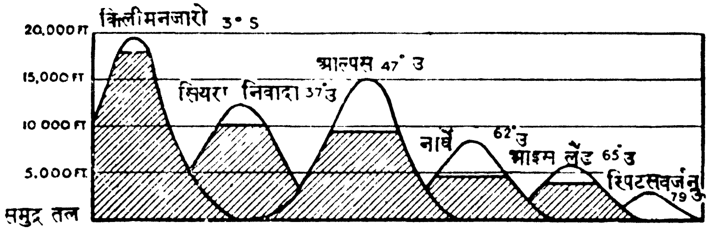

चित्र ७१—भूमध्य रेखा से स्पिट बरजन तक हिम रेखा की ऊंचाई में परिवर्तन

दिशाओं में फैलता है और हिम आवरण का रूप धारण कर लेता है। परन्तु यदि हिम-प्रदेश घाटी के ऊपरी सिरे पर स्थित हो तो बर्फ घाटी में हिम-नदी की तरह चलने

चित्र ७२—उच्च प्रदेश में हिमाच्छादन का प्रभाव—ऊपर का चित्र हिम प्रवाह से पहले का है और नीचे वाला उसके बाद का

लगता है। शीतोष्ण और गर्म देशों में हिम नदियाँ नीचे पहुँचने पर पिघलने लगती हैं और हिमरेखा से थोड़ा नीचे ही जल में बदल जाती है। इस प्रकार ये पिघलती हुई हिमनदियाँ नदी का स्रोत बन जाती है। राइन और गंगा इसी प्रकार की हिमनदियों से निकलती है। परन्तु शीत प्रदेशों मे हिम बहता हुआ समुद्र तक पहुँच जाता है और वहाँ इसके बड़े-बड़े टुकड़े टूट कर समुद्र के जल में बहने लगते है। इन्हें **हिमखंड** (Iceberg) कहते है। ग्रीनलैण्ड की कुछ हिमनदियाँ एक दिन मे ५० फीट तक चलती हैं। परन्तु आल्पस प्रदेश की हिम नदियाँ बहुत धीरे चलती है—दिन में केवल २० इंच तक।

नदियों की तरह हिम का कार्य भी दो प्रकार का होता है—

(अ) जिस भूमि पर से होकर हिम नदियाँ प्रवाहित होती हैं उसे घिस डालती हैं।

(ब) काट-छाँट से प्राप्त पदार्थ को फिर से जमा कर देती हैं।

जैसे-जैसे हिम नदी धीरे-धीरे आगे बढ़ती है यह अपने साथ चट्टान के टुकड़ों को बहा ले जाती है और अपने नीचे की चट्टान के उभरे हुए भागों को घिस कर नष्ट कर देती है। इस प्रकार प्राप्त चट्टान खंड हिमनदी की तली में जमे रहते है और उसके घिसाव कार्य मे सहायक होते है। हिमनदी द्वारा घिसाव की बालू के कागज या रेगमाल से तुलना कर सकते है। फलत: पर्वत गोलाकार हो जाते है, घाटियाँ गहरी हो जाती है और उनकी चौड़ाई बढ़ जाती है। उच्च प्रदेश की ऊबड़-खाबड़ बनावट के स्थान पर वृत्ताकार सपाट रेखाये बन जाती है। स्थलरूप नुकीले न रहकर गोलाई प्राप्त कर लेते है। यदि घाटी मे से होकर हिमनदी प्रवाहित हो रही है तो उसके ऊपर की चोटियाँ और भी नुकीली हो जायेंगी क्योंकि घाटी मे स्थित चोटी के पार्श्वों को हिम खोखला करता जायेगा।

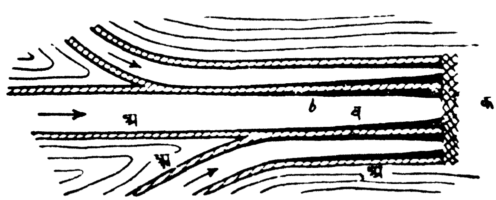

चित्र ७३—हिमनदी और उसकी सहायक शाखायें

→ प्रवाह की दिशा, —— उच्च भूमि दर्शक रेखाये

घाटी की हिमनदी घाटी की दीवारों को नीचे की तरफ से काटती है और चट्टान के टुकड़े हिमनदी के दोनों तरफ गिरते रहते है। फलत: चट्टानी टुकड़ों की एक श्रेणी-सी हिमनदी के दोनों किनारों पर बन जाती है। इसे **पार्श्वी मोरेन** (Lateral moraines) कहते है। जब दो घाटी-हिम नदी आपस मे मिल जाती हैं तो उनके पार्श्वी मोरेन भी मिल जाते है और इस प्रकार बने मोरेन श्रेणी को **मध्यवर्ती मोरेन** (medial moraines) कहते हैं।

बर्फ के नीचे घिसटती हुई चट्टान राशि को **स्थलीय मोरेन** (Ground Moraine) कहते हैं। इसमें हिम दरारों से होकर आने वाली चट्टान राशि भी रहती है। हिमनदी के अन्त में, चट्टान खडों की राशि को अन्तिम मोरेन (Terminal Moraine) कहते है। हिम आवरण के द्वारा इकट्ठा स्थलीय व अन्तिम मोरेन विशेष विस्तृत होते हैं। जब पिघलने पर हिम नदी पीछे को हटने लगती है तो मोरेन सामग्री इधर-उधर छितरी हुई धरातल पर फैल जाती है।

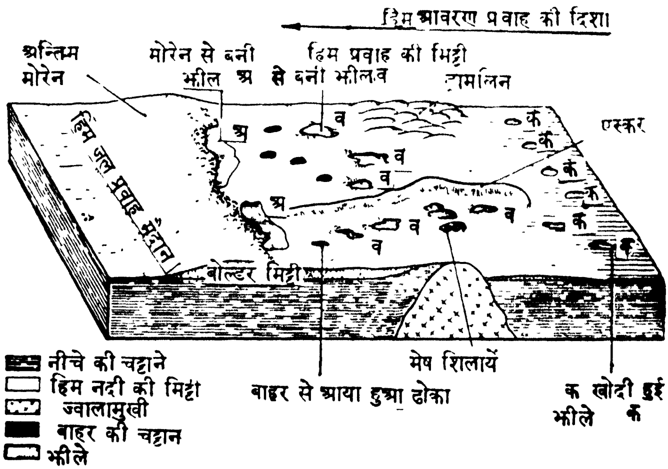

चित्र ७४—मैदानी प्रदेश में हिम प्रवाह का प्रभाव

मोरेन सामग्री से आच्छादित प्रदेश में टीले व पहाड़ियाँ पायी जाती हैं। इनकी रेखाकृति सपाट व गोलाई लिये हुए होती है। सारे स्थल की आकृति **कुबड़ी-सी** मालूम पड़ती है। धरातल के ऊबड़-खाबड़ होने से गड्ढों में पानी एकत्रित हो जाता है और तालाब, झीलें तथा दलदल बन जाते हैं। इस प्रकार के दृश्य पूर्वी एशिया और जर्मनी में बाल्टिक सागर के दक्षिण के मैदान में खूब देखने को मिलते हैं। मोरेन से ढके ए प्रदेश में अति चूर्ण मिट्टी पायी जाती है और इस मिट्टी में बड़े-बड़े पत्थर व ढोके मिले रहते हैं। हिम द्वारा आवरणक्षय के कारण ये सभी पत्थर व ढोके गोल आकृति के होते हैं और विभिन्न प्रदेशों व चट्टानों से प्राप्त होने के कारण उनकी बनावट बड़ी ही विचित्र होती है। इस प्रकार के मोरेन निक्षेप को **बोल्डर मिट्टी** (Boulder clay) कहते हैं।

घाटी में होकर प्रवाहित होने वाली हिमनदी घाटी को गहरा व चौड़ा कर देती है। इस प्रकार V-आकार वाली घाटी U-आकार की हो जाती है। चित्र नं० ७६ में 'ब' और 'ख' विन्दु हिम की अत्यधिक ऊँचाई दिखाते है।

मुख्य घाटी में से प्रवाहित होनेवाली हिमनदियों में आवरणक्षय की शक्ति विशेष अधिक होती है। सहायक शाखाओं में इतनी शक्ति नहीं होती। इसका फल यह

होता है कि जब हिम पिघल जाता है तो सहायक घाटियों के निचले सिरे मुख्य घाटी की अपेक्षा कुछ ऊँचे रहते है। इस प्रकार की घाटियों को लटकती हुई घाटी कहते हैं। इनमें से सहायक धाराये मुख्य घाटी में जलप्रपात (Water Fall) के समान गिरती हैं। उत्तरी वेल्स में लटकती हुई घाटियों (Hanging Valleys) का एक क्रम-सा है।

हिमाच्छादित या हिमप्रवाहित घाटी की दूसरी विशेषता यह है कि हिमागार (Cirque) बन जाते हैं। इन्हे स्काटलैण्ड मे कारी और वेल्स मे वचम कहते है। हिमागार अर्द्ध चन्द्राकार बेसिन होते है जो कि पर्वत मे ऊँचे स्थान पर स्थित होते है। इनके पार्श्व बहुत तीव्र ढालू होते हैं और उनमे बहुधा झील पाई जाती हैं। हिम द्वारा आवरण क्षय इन्हे नीचे से काटकर खोखला करता जाता है और घाटी की दीवारों से पीछे की ओर कटाव होता जाता है। जब इस प्रकार का कटाव किसी पार्श्व के दोनों ओर से होता रहता है, तो बीच मे एक बड़ी नुकीली व संकीर्ण श्रेणी सी बन जाती है। इसका आकार सीग जैसा होता है और इसे शृंग (Horn) कहते है। हिमाच्छादित पर्वत प्रदेश के विशिष्ट स्थलरूपो को चित्र नं० ७७ मे दिखलाया गया है।

हिमनदी और हिम आवरण की सतह पर स्थित बहुधा चट्टान के बड़े-बड़े खड आगे बढ़ते रहते हैं। जब बर्फ पिघलती है तो ये जमे रह जाते है। चेशायर मे बालू और चीका मिट्टी की ही प्रधान चट्टाने है। इनके बीच में यहाँ-वहाँ बड़े-बड़े गोलाकार शिलाखंड पाये जाते हैं। ग्रेनाइट के ये शिलाखंड झील प्रदेश या दक्षिणी स्काटलैण्ड से आये हुए मालूम पड़ते है। इन्हे **विदेशीय शिलाखंड** (Erratic Blocks) कहते हैं। जिन चट्टानो पर से होकर हिम प्रवाह होता है, उनका रूप-रंग चिकना तथा सपाट होजाता है। उनकी चिकनी सतह पर खरोंच की समानान्तर धारियाँ पड़ी रहतीहै। ये खरोच के निशान हिम के आधार में फसें शिलाखंडों की रगड़ से पड़ जाते है। इन धारियों से प्रवाह की दिशा का पता चलता है।

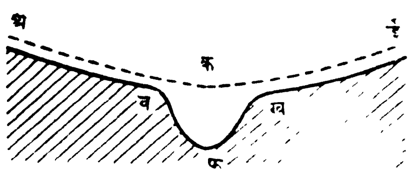

अकई मूल नदी घाटी
बफख हिमाच्छादित घाटी
बख घाटी के पार्श्व

चित्र ७५—घाटी पर हिम द्वारा आवरण क्षय का प्रभाव

साधारणतया हिम प्रवाहित प्रदेश उतना ऊबड़-खाबड़ नही होता जितना कि वह जहाँ हिम नदी का प्रवाह हुआ ही नही है। इसीलिए हिमप्रवाहित प्रदेश में सड़कों और रेलों का बनाना आसान होता है। ढाल की तीव्रता कम हो जाने से खेती के उपयुक्त भूमि में वृद्धि हो जाती है। पर तीव्र ढाल वाली U आकार की घाटियों पर चढ़ना कठिन होता है। यह कठिनाई स्विट्जरलैण्ड में घाटी के मैदानों से ऊँचे पर स्थित चरागाहों तक जाने मे होती है। कभी-कभी हिमनदियों द्वारा निक्षेप की हुई मिट्टी बड़ी ही उपजाऊ होती है। पूर्वी एंगलिया और उत्तरी अमरीका के गेहूँ प्रदेश की मिट्टी बड़ी ही उपजाऊ है। परन्तु उत्तरी जर्मनी के टीलों की भूमि बड़ी ही अनुपजाऊ है।

वास्तव में मिट्टी का उपजाऊपन हिमनदी द्वारा बहा कर लाई हुई चट्टान राशि के स्रोत व उत्पत्तिस्थान पर निर्भर रहता है।

हिमनदियों द्वारा बनाये गए जलप्रपातों और झीलों का भी मनुष्य के लिए विशेष महत्त्व है। जलप्रपातों से तो पनबिजली प्राप्त होती है और झीलों से जल तथा यातायात की व्यवस्था होती है।

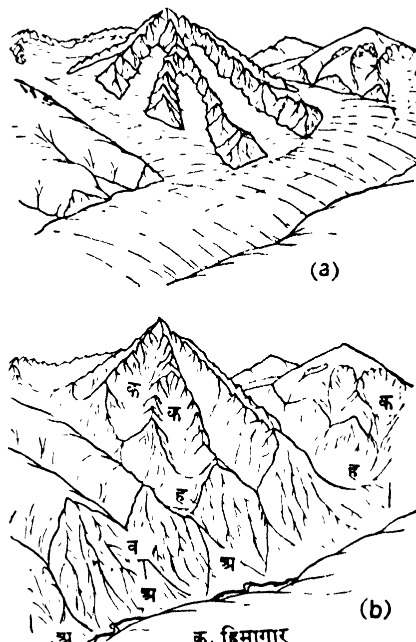

चित्र ७६—पर्वतीय प्रदेश में हिम नदी द्वारा आवरण क्षय का प्रभाव

(५) वायु का कार्य

मौसमी क्षति के विवरण के सिलसिले में वायु के कार्य का हवाला दिया जा चुका है। इसके अतिरिक्त वायु अपने साथ धूल व बालू के कण उड़ा ले जाती है और जहाँ इसकी गति धीमी पड़ती है वहाँ इसे जमा कर देती है। बलुहे रेगिस्तानों मे वायु के कार्य का यह रूप विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। समुद्र के तट पर बालू के टीलों का निर्माण भी वायु ही करती है। हवा द्वारा उड़ा कर लाई हुई बालू के टीले व श्रेणियों को बालुका-स्तूप कहते है। वायु के मार्ग में जरा-सी रुकावट आ जाने से चाहे कोई घास का झुरमुट हो या बड़ा रोड़ा, वायु का प्रवाह रुक जाता है और बालू इकट्ठी हो जाती है। सहारा के एर्ग प्रदेश मे बालुका-स्तूप सैकड़ो फीट ऊँचे होते हैं। ये बालुका स्तूप साधारणतया स्थायी नहीं होते। हवा की तरफ वाले पार्श्व में बालुका-स्तूप का ढाल क्रमशः होता है और इस पर बालू बराबर गिरती रहती है। ये बालू तीव्र वायु-अभिमुख (Leeward) ढाल पर गिरती रहती है। इस प्रकार बालुका-स्तूप (Sand Dune) बराबर आगे को बढ़ता रहता है। चूंकि बालुका-स्तूप के किनारे उसके केन्द्र की अपेक्षा नीचे होते हैं, फलतः केन्द्रीय भाग की अपेक्षा किनारे अधिक तेजी से आगे बढ़ते है।

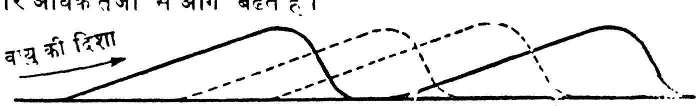

चित्र ७७—बालुका स्तूपों का स्थानान्तरण

इसके फलस्वरूप अर्द्धचन्द्राकार बालुका स्तूप बन जाते है। इन्हें 'बारखन (Barchan) कहते है और चिली तथा फारस के रेगिस्तान मे बहुत पाये जाते है।

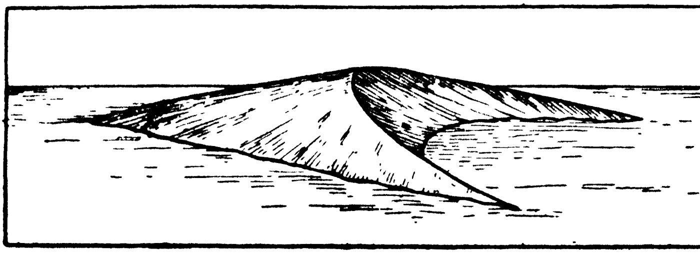

चित्र ७८—बारखन

कुछ तटीय प्रदेशों मे इन बालूका स्तूपों के अन्दर की तरफ स्थानान्तरण से इतनी हानि होती है कि धास तथा झाड़ियाँ लगाकर इनकी बालू को जमा देने का प्रयत्न किया जा रहा है। फ्रांस के दक्षिणी-पश्चिमी भाग मे बोर्डो के दक्षिण मे बालुका-स्तूपों पर विस्तृत रूप मे पेड़-पौधे लगा दिये गए हैं। इनमे चीड़ और फर के पेड़ मुख्य है और इन वनों मे फ्रांसीसी सरकार को काफी आय होती है।

हवा मे उडाई गई बालू से अक्सर बडी असुविधा तथा हानि होती है। बहुत से मरुस्थलों मे रेल की लाइन के बराबर आगे को झुके हुए सायबान लगाये जाते है ताकि हवा के द्वारा उड़ाई गई बालू इस के ऊपर से होती हुई दूसरी तरफ जा गिरे और रेल की पटरियों को कोई हानि न पहुँचे। मध्य एशिया के मरूस्थलों में स्थित बहुत से प्राचीन नगर अब बालू की मोटी तह के नीचे दब गये हैं। पिछली शताब्दी के साठ वर्षों में उत्तरी-पूर्वी जर्मनी के बलुहे किनारे पर स्थित एक गिरजा बालू के नीचे दब गया और कुछ सालों के बाद वह बालू आगे की ओर उड़ा ले जायी गई तथा गिरजा के खंडहर बाहर दिखलाई पड़ने लगे।

हवा द्वारा उड़ा ले जाई गई धूल और बालू के दूबारा निक्षेप को 'लोयस' कहते हैं।

मनुष्य का कार्य

यद्यपि मनुष्य का कार्य कृत्रिम ही कहा जायेगा परन्तु उसके द्वारा होने वाले महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों पर ध्यान देना जरूरी है। मनुष्य भूमि को काटता है, उस पर बाँध बनाता है, बड़ी-बड़ी खानें खोदता है और खोदकर मिट्टी का विस्तृत ढेर लगा देता है। यह सभी तो हम सब अच्छी तरह जानते है और देखा भी है परन्तु कुछ अन्य प्रकार से भी मनुष्य स्थल-रूपों को प्रभावित करता है। बाँधों के द्वारा बड़ी-बड़ी झीलें बन जाती है। इस प्रकार बनी हुई कुछ झीलें तो १०० मील लम्बी होती है। समुद्र से घिरे हुए विस्तृत भूभाग को मनुष्य ने सुखा कर अपने काम में ले लिया है जैसे कि नीदरलैण्ड में। नदियों की धारा को घुमा दिया गया है और नहरों का निर्माण हो गया है।

अन्य स्थानों में जंगलों को काटकर गिरा देने से तथा उपोष्ण प्रदेशों के घास के मैदानों में खेती के लिए हल चला देने से आधरणक्षय की क्रिया बहुत कुछ तीव्रतर हो

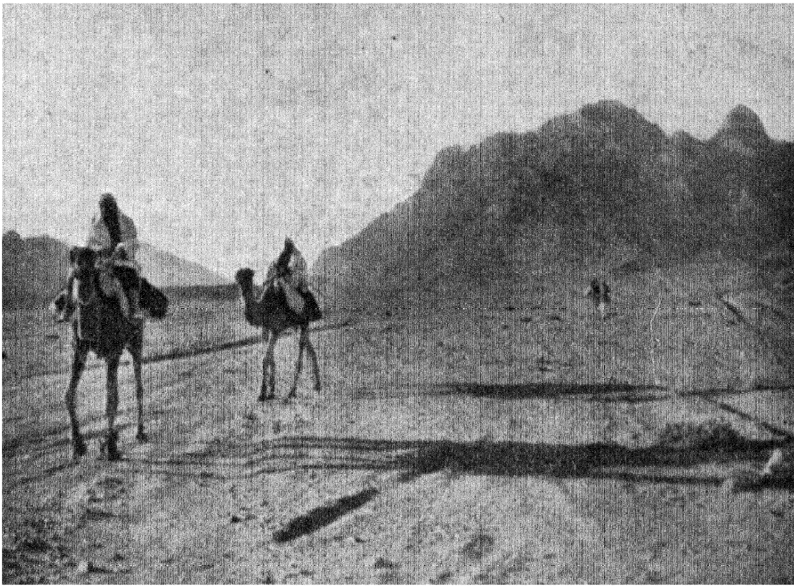

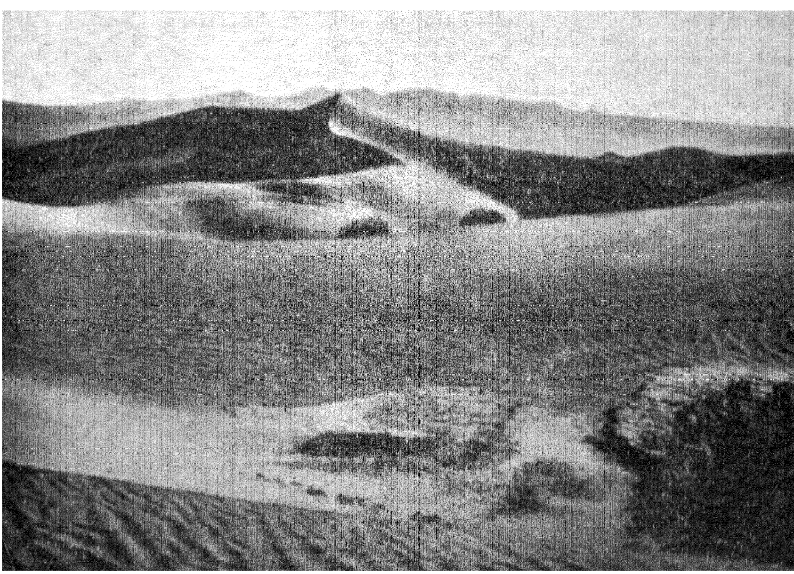

ऊपर : पथरीला मरुस्थल—सिनाई ।

नीचे : बलुहा मरुस्थल—कैलीफोर्निया की मृत्यु घाटी ।

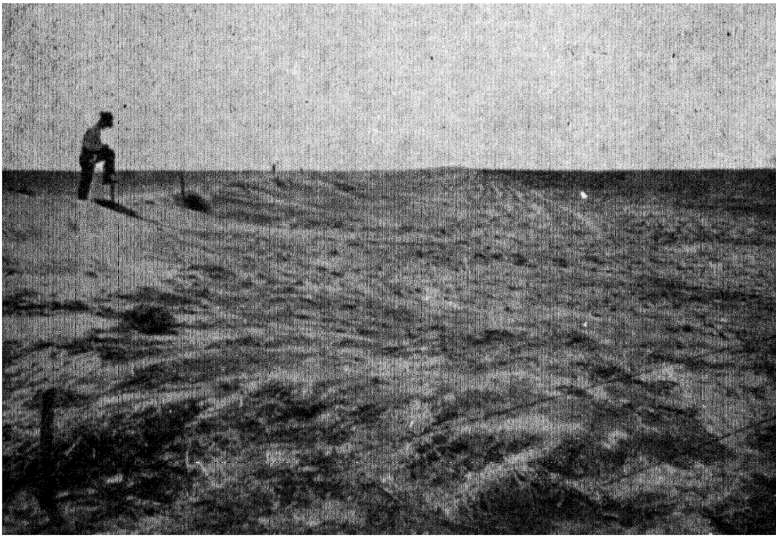

ऊपर : कैलीफोर्निया में लम्बे शुष्क मौसम के बाद चलने वाली तेज हवाओं ने ऊपर की हल्की मिट्टी को उड़ा लेजाकर गेहूँ के खेतों को बरबाद कर दिया है।

नीचे : न्यू मेक्सिको में खेतिहर भूमि जो मरुस्थल में सिंचाई द्वारा प्राप्त की गई है।

गई है। वास्तव में वायु तथा वर्षा के जल के द्वारा भूमि का कटाव खेती के लिए एक बड़ी समस्या बन गया है। ऐसा अनुमान है कि संयुक्तराष्ट्र अमरीका में ऊपर की मिट्टी का अष्टमांश इस प्रकार नष्ट हो गया है। अन्य देशो मे भी इसका बड़ा असर पड़ा है। घुमावदार तरीके से जुताई करके, पट्टियों में खेती करके, छायादार वृक्षों को लगाकर तथा अन्य तरीको से इस समस्या का हल निकाला जा रहा है। ग्रेटब्रिटेन मे भूमि के कटाव की समस्या बहुत अधिक विकट नहीं है परन्तु शुष्क गर्मी के मौसम में फेन प्रदेश मे कभी-कभी धूल की आँधियाँ आती है, जो ऊपर की सूखी चूर्ण मिट्टी को उड़ा ले जाती है।

अध्याय छः

झीलें (LAKES)

झीलों का निर्माण (Formation of Lakes)

पृथ्वी के धरातल पर गड्ढो में जब जल भरकर जलाशय बन जाते हैं तो उन्हें झील कहते हैं। जब झीलों से नदियाँ निकलती हैं तो उनका पानी मीठा बना रहता है। इसके विपरीत जिन झीलों के जल का कोई निकास नहीं होता उनका पानी खारा होता है। मृतसागर, अरल सागर आदि इसी प्रकार की झीलें हैं। झीलें, निम्न-लिखित कारणों से बन जाती है——(१) जब नदियों के मार्ग में आरपार कोई रुकावट आ जाती है। (२) जब भूगर्भ की हलचल आती है। (३) जब ज्वालामुखी विस्फोट होता है, और (४) जब हिम द्वारा अनावृत्तीकरण कार्य होता है।

नदियों के मार्ग में अवरोध (Barriers across a river) **और झीलें**—— नदी के प्रवाह में दोनों किनारों के बीच अवरोध के आ जाने से पानी रुक जाता है और झील बन जाती है। इस प्रकार के अवरोध कई तरह के होते हैं:——

(अ) नदी की घाटी में मनुष्य सीमेन्ट कांक्रीट और पत्थर से बाँध बनाते है, और इस प्रकार पानी को रोक कर बनाये हुए जलाशय से बड़े शहरों में पीने के पानी की समस्या का हल करते हैं। लिवरपूल की विरनवी झील इसी प्रकार की है।

(आ) बहुधा नदी घाटी में आर-पार कोई हिमनदी मोरेन का टीला-सा बना देती है और नदी का पानी एक जलाशय के रूप में इकट्ठा हो जाता है। इंगलैण्ड के लेक प्रदेश की झीलें और स्काटलैण्ड की बहुत-सी झीलें इसी प्रकार की है।

(इ) ढालू प्रदेशों में भूमि खिसक जाती है और नीचे आकर घाटी में स्थित हो जाती है। परन्तु इस प्रकार से बना अवरोध अधिक समय तक नही रह पाता क्योंकि नदी का जल कालान्तर में उसे तोड़ कर बहा देता है। सन् १८९२ मे ऊपरी गंगा घाटी में इसी प्रकार की एक झील बनी थी परन्तु दो साल के बाद बाढ़ में अवरोध बह गया और झील का अस्तित्व मिट गया।

(ई) नदी के बाढ़ के मैदान में नदी के मोड़ों के निक्षेप द्वारा कट जाने पर धनुषा-कार झीलों का निर्माण हो जाता है। नदी के मोड़ के दोनों सिरों पर मिट्टी बालू जमती रहती है और कालान्तर मे नदी की धारा उस मोड़ को छोड़ कर दूसरे मार्ग से बहने लगती है। इस प्रकार की झीलें आस्ट्रेलिया मे मरे के प्रवाह क्षेत्र मे और निचली मिसीसीपी के बाढ़ के मैदान मे तथा गंगा के मध्य व निम्न घाटी मे पायी जाती है।

(उ) कभी लावा प्रवाह भी नदी घाटी के आर-पार एक बाँध-सा बना देता है। इस प्रकार की झील का सर्वोत्तम उदाहरण न्यूजीलैण्ड में टापो झील है।

(ऊ) कभी-कभी नदियों के विस्तृत खुले मुहानों में मिट्टी बालू का निक्षेप उनके अंश या भाग को भर देता है। जो हिस्से इस प्रकार नही भरते, उनमें छिछले लैगून बन जाते है। डेल्टा प्रदेश मे इस प्रकार की झीले खूब पायी जाती हैं। नारफॉक ब्रॉड्स (Norfolk Broads) पुराने नदी मुहाने के ही भाग है। हुगली और नील के डेल्टा में भी ऐसी झीलें पायी जाती है।

(ए) मिट्टी-बालू से लदी कोई नदी जब किसी झील मे प्रवेश करती है तो इसकी चाल धीमी पड़ जाती है और झील के आर-पार एक डेल्टा-सा बन जाता है जिससे झील के दो भाग हो जाते है। इस प्रकार के उदाहरण इंगलैण्ड के लेक प्रदेश और स्विट्जरलैण्ड मे अधिक मिलते है। केसविक और इन्टरलेकन इसी प्रकार के डेल्टाओं में स्थित है।

(ऐ) कभी-कभी समुद्र की लहरों द्वारा एकत्रित बालू और रोड़ों के निक्षेप से समुद्र का कुछ भाग अलग हो जाता है और एक छिछली झील बन जाती है। जर्मनी के बाल्टिक तट पर इस प्रकार की लैगून झीलों को हैफ कहते है।

भौगर्भिक हलचले (Earth movement) **और झील**—भौगर्भिक शक्तियों की क्रिया से उत्पन्न हलचलों से जब पृथ्वी का कोई भाग नीचे को धँस जाता है तो उसमें जल भर जाने से झीलें बन जाती है। इस प्रकार की झीलों का सर्वोत्तम उदाहरण रिफ्ट या दरार घाटियों मे मिलता है। मृतसागर अफ्रीका की न्यासा और टैन्गानाइका झीलें तथा आस्ट्रेलिया की टारेन्स झील इसी प्रकार की है। ये लम्बी, संकरी और बहुत गहरी होती है। इंगलैण्ड के चेशायर मे भूगर्भ मे स्थित नमक की तहों के गल जाने से धरातल धँस गया है और वीवर घाटी के जलाशय बन गये है।

पृथ्वी पर जब घरेरे इस प्रकार पड़ते है कि वे नदी रेखा के समानान्तर हों तो अक्सर नदी का कुछ भाग अवरोधित हो जाता है और झील बन जाती है। स्विट्जरलैण्ड की जेनेवा और कान्सटैन्स झीले इसी प्रकार बनी है और किसी भी भौतिक मानचित्र को देखने से मोड़ पड़ने वाली हलचलों का इन झीलों से सम्बन्ध स्पष्ट हो जायेगा।

जहाँ मैदान के विस्तृत भाग समुद्रतल से नीचे होते है वहाँ पर उनमें बड़ी-बड़ी छिछली झीलें बन जाती हैं। एशियाई रूस का अरल सागर, हंगरी की बालाटन झील और आस्ट्रेलिया की इरी झील इसी प्रकार बनी है।

हिमनदियाँ (Glaciers) **और झीलें**—घाटी में बहने वाली हिमनदियों की रगड़ से बहुधा धरातल के बड़े-बड़े टुकड़े नुच कर अलग हो जाते है। उनके स्थान पर बड़े-बड़े गड्ढे बन जाते है। उत्तरी वेल्स और स्काटलैण्ड की कौरी झीलें इसी प्रकार बनी है।

हिमाच्छादित मैदानी भागों मे हिम नदी निक्षेप के अव्यवस्थित रूप से इकट्ठा होने से उनके बीच गड्ढे बन जाते है और उनमें झीलों का निर्माण हो जाता है। पूर्वी जर्मनी में इस प्रकार की अनेक झीलें पायी जाती है।

ज्वालामुखी की झीलें—बहुधा ज्वालामुखी-विस्फोट से धरातल का कुछ भाग नीचे धँस जाता है और उसमें झीलें बन जाती है। उत्तरी आयरलैण्ड में नीयाध लो झील इसी प्रकार की है। शान्त ज्वालामुखी पर्वतों के मुख में जल भर आने से

भी गोलाकार झीलों का निर्माण हो जाता है। जर्मनी के एफल प्रदेश की लाचरीम झील इसका सर्वोत्तम उदाहरण है।

झीलों का महत्त्व (Value of lakes)

मनुष्य को झीलों से अनेक लाभ हैं। जब बहुत-सी झीलें एक-दूसरे से सम्बद्ध रहती हैं तो उनके द्वारा यातायात की बड़ी सुविधा रहती है। भारी वस्तुओं के यातायात के लिए इस प्रकार के जलमार्ग बड़े ही महत्त्वपूर्ण होते हैं। अमरीका की विशाल झीलें इसका सर्वोच्च उदाहरण हैं।

झीलें नदियों के प्रवाह को नियमित करती हैं। जो नदियाँ झीलों में से होकर बहती हैं उनमें न तो कभी हानिकारक बाढ़ ही आती है और न ही पानी की कमी होती है। इस प्रकार नदी के मार्ग में पड़ने वाली झीलों से यातायात, जल प्राप्ति और सिंचाई की सुविधा रहती है।

सिंचाई की प्रायः सभी विशाल योजनाओं में नदी के पानी को बाँध बनाकर रोकना पड़ता है जिससे कि एक विशाल जलाशय या झील बन जाये। इस झील के जल से उष्ण व शुष्क मौसम में भी जल का प्रबन्ध बना रहता है। इसके अतिरिक्त जल-विद्युत के उत्पादन के लिए जल का अच्छा स्रोत मिल जाता है। वोल्गा नदी पर सिंचाई की योजना में २००–३०० मील लम्बी तथा २० मील तक चौड़ी कई झीलें बनाई गई हैं।

बड़ी-बड़ी झीलें आस-पास के प्रदेश की जलवायु को सम बनाने में बड़ी सहायक होती हैं। अमरीका की मिशीगन झील से चलने वाली पछवा मन्द पवन पूर्वी किनारे के जाड़े के तापक्रम को ऊँचा कर देता है और इसी कारण फल की खेती वहाँ का एक महत्त्वपूर्ण उद्यम है। वहाँ पर फसल को पाले का डर नहीं रहता। इसके विपरीत पश्चिमी किनारे वाले भाग फल की खेती के लिए इतने उपयुक्त नहीं हैं।

बड़े-बड़े शहरों में पीने के पानी की समस्या का हल झीलों द्वारा ही होता है। इसके अलावा झीलों से प्रकृति के सौन्दर्य में वृद्धि होती है और उनके द्वारा आकर्षित यात्रियों से देश की आय काफी बढ़ जाती है।

पुरानी झीलों की तली का खेती के दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। झीलों की तली की मिट्टी गहरी, उपजाऊ और कंकड़-पत्थर रहित होती है। यार्कशायर में पिकरिंग की घाटी पुरानी झील की तली है। कनाड़ा में विनीपेग झील के आस-पास का मैदान भी इसी प्रकार का है और वर्त्तमान विनीपेग झील एक बहुत बड़ी पुरानी झील का अवशेष मात्र है।

अध्याय सात

ज्वालामुखी और उनका क्रियाकलाप

(VOLCANOES AND VOLCANIC ACTION)

ज्वालामुखी और उनके विस्फोट (Eruptions)

ज्वालामुखी पृथ्वी के धरातल मे उस छिद्र का नाम है जिसके मुँह से गर्म चट्टान, राख, लावा, भाप, दलदल, कीचड़ तथा बहुत-सी गैसें निकलती हैं। इस प्रकार के मुँह या छेद वहाँ पाये जाते हैं जहाँ पर पृथ्वी का ऊपरी पपड़ा पतला या कमजोर होता है। ज्वालामुखी के छेद से बाहर को फेंकी गई वस्तुयें ज्वालामुखी के चारों ओर गिरकर इकट्ठी होती रहती हैं और कालान्तर में शंकु के आकार का पर्वत बन जाता है। इसे ज्वालामुखी पर्वत कहते हैं। इसके शिखर पर ज्वालामुख होता है।

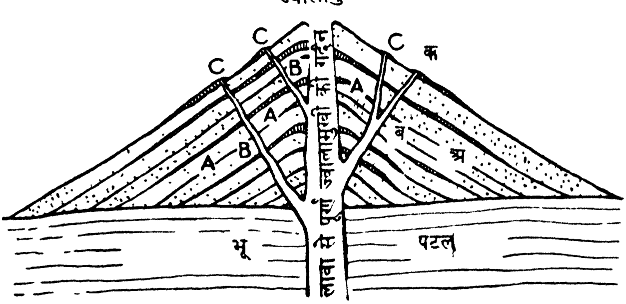

चित्र ७९—ज्वालामुखी का खंड चित्र—(a) ज्वालामुखी द्वारा फेंकी हुई सामग्री का निक्षेप, (b) लावा प्रवाह की गौण धारायें, (c) गौण ज्वालामुख या दरार

इस प्रकार के पर्वतों के उदाहरण जापान में फ्यूजीयामा, इटली में विसुवियस, एण्डीस में चिमब्रोराजो और कोटोफक्सी है। ऊँचे शंक्वाकार ज्वालामुखी पर्वत प्रायः राख के बने होते हैं और उनके केन्द्र में स्थित छिद्र या ज्वालामुख लावा से भरा रहता है। यदि इस प्रकार के ज्वालामुखी पर्वत बहुत समय तक शान्त रहते हैं तो चारों तरफ की मुलायम राख कट-छँट कर नष्ट हो जाती है और केवल बीच का कठोर लावा खम्भ अवशेष रह जाता है। केवल लावा से बने ज्वालामुखी पर्वत गुम्बजाकार होते हैं।

जब ज्वालामुखी पर्वत में अक्सर ही विस्फोट आया करते हैं तो उसे **चैतन्य** (Active) कहते हैं। यदि बहुत समय से कोई विस्फोट नहीं हुआ है तो उस ज्वा-ला

मुखी पर्वत को **सुषुप्त** (Dormant) कहते हैं। यदि युगों से विस्फोट नहीं हुआ है और न होने की भविष्य में संभावना ही है तो उसे **शान्त ज्वालामुखी** (Extinct Volcanoes) कहते हैं। विसुवियस ज्वालामुखी को शान्त समझा जाता था और यही हाल क्राकाटोआ का भी था परन्तु ज्ञात समय के भीतर ही उनमें फिर से विस्फोट होने लगे।

अधिकतर विस्फोटों के पहिले पृथ्वी में हाल्काडोला-सा आने लगता है। समस्त पृथ्वी हिलने लगती है और इसे भूकम्प कहते हैं। इसके पश्चात् भाप और अन्य गैस निकल पड़ती हैं। उठती हुई भाप से ज्वालामुखी के ऊपर बादल से बन जाते हैं। इन बादलों से बहुधा गरज के साथ वर्षा होती है। साथ में बिजली भी कड़कती है। इसके बाद अक्सर विस्फोट होता है और गर्म चट्टान हवा में ऊपर को फेंक दी जाती है। ज्वालामुख से लावा उभड़-उभड़ कर पर्वत के ढालों पर बहने लगता है। ज्वालामुखी से निकली हुई गर्म धूलि पर जब वर्षा का जल पड़ता है तो गर्म कीचड़ की नदियाँ बहने लगती हैं और बहते हुए गर्म लावा के समान ही जन-धन की हानि करती है।

कभी-कभी ज्वालामुखी विस्फोट शान्त प्रकृति के होते हैं। उनमे धमाका नहीं होता। ज्वालामुख के अन्दर लावा उबलता रहता है और धीरे-धीरे पर्वत केपाश्वों पर बहता रहता है। इस प्रकार के ज्वालामुखी पर्वत हवाई द्वीप में पाये जाते हैं। नाम मौना लोआ और मौना किया है। इनमें लावा करीब ५० मील तक बहता रहता है और तब कहीं ठंडा होकर जमता है।

भूमध्यसागर क्षेत्र में स्ट्रामबोली ज्वालामुखी सदैव सामान्य रूप से सक्रिय रहता है। परन्तु इसमें से लावा प्रवाह नहीं होता। इसके ज्वालामुख में सदैव चमक बनी रहती है और इसीलिए इसे भूमध्यसागर का प्रकाशगृह कहते हैं।

धमाके के साथ विस्फोटक ज्वालामुखी का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण क्राकाटोआ है। यह पूर्वी द्वीपसमूह में एक छोटा-सा द्वीप है। सन् १८८३ में इतने जोर का धमाका हुआ कि द्वीप का अधिकतर भाग उड़ गया और आज वहाँ १००० फीट गहरा समुद्र लहरें मारता है। विस्फोट से निकली धूल हवा में २० मील ऊपर तक गई और धमाके की आवाज कोई २,००० मील से अधिक दूर आस्ट्रेलिया में भी सुनाई पड़ी। धमाके से उत्पन्न भूकम्प से १०० मील दूर स्थित बटाविया के मकानों की खिड़कियाँ तक उड़ गईं। समुद्र में विशाल लहरें उठने लगीं और उनकी ऊँचाई ५० फीट से भी अधिक थी। फल यह हुआ कि हजारों आदमी नष्ट हो गये। करीब ३६,००० आदमी मरे। वायुमण्डल में इतनी अधिक धूल समा गई कि आगामी तीन वर्षों में एशिया और पृथ्वी के अन्य भागों में स्पष्ट सूर्यास्त उत्पन्न हुआ।

ज्वालामुखी का वितरण

सक्रिय ज्वालामुखी पर्वतों का वितरण निश्चित है। अधिकतर पर्वतीय प्रदेश में स्थित हैं और उनका केन्द्र नवीन मोड़दार पर्वतीय प्रदेश है। बहुत-से ज्वालामुखी पर्वत समुद्र के समीप भी पाये जाते है। ये जलनिमग्न श्रेणियों के शिखर हैं और पश्चिमी द्वीप समूह तथा हवाई द्वीप में विशेष रूप से पाये जाते हैं। इसके विपरीत कुछ

ज्वालामुखी पर्वत पहाड़ी प्रदेश में नहीं पाये जाते और कुछ समुद्र से दूर भी हैं, जैसे अफ्रीका का किलिमनजारो।

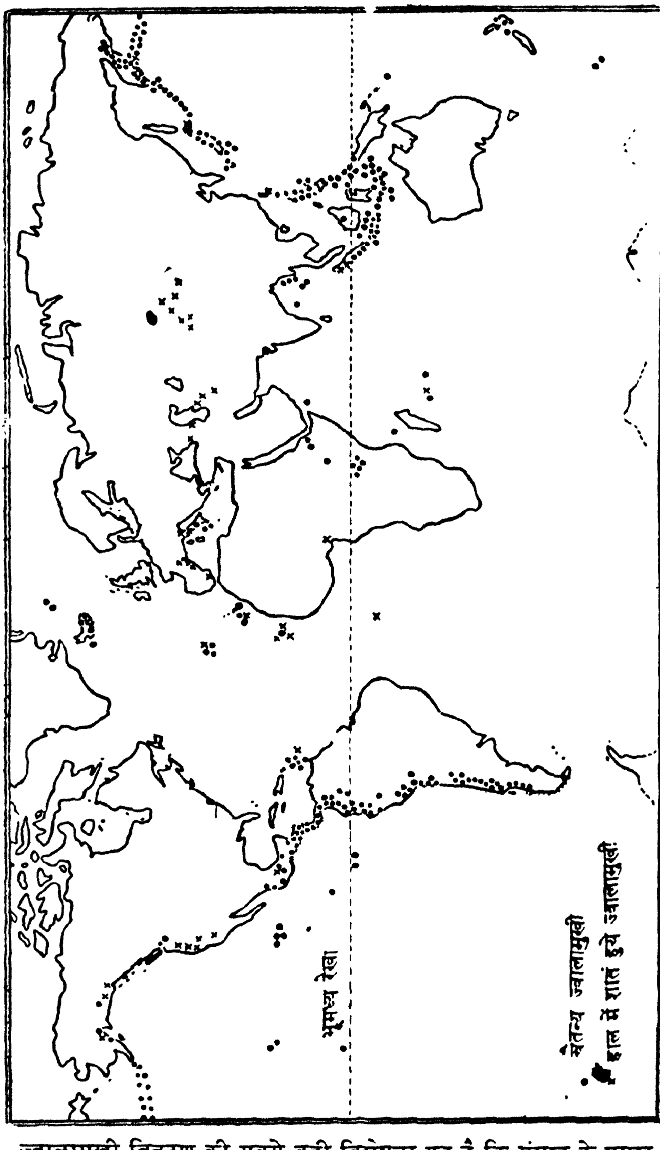

चित्र ८०—ज्वालामुखी पर्वत का वितरण

ज्वालामुखी वितरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि संसार के प्रमुख ज्वालामुखी पर्वत एक पेटी में पाये जाते है जो प्रशान्त महासागर को घेरे हुए हैं। यह पेटी अन्टार्टिका के माउण्ट एरीबस से शुरू होकर एण्डीज पर्वत से होती हुई उत्तरी अमरीका

के पश्चिमी कार्डीलिरा तक जाती है। वहाँ से यही पेटी एलीशियन द्वीपसमूह, कमचटका, जापान, इण्डोनेशिया होती हुई न्यूजीलैण्ड में समाप्त हो जाती है। इस पेटी को अक्सर प्रशान्त महासागर की ज्वालामय अंगूठी भी कहते हैं।

इस वृत्त के बाहर सक्रिय ज्वालामुखी पश्चिमी द्वीपसमूह और अफ्रीका की दरार घाटी में भी पाये जाते हैं। एशिया की मध्यवर्ती पर्वतमाला में बहुत-से शान्त शंकु भी पाये जाते हैं। कुछ ज्वालामुखी द्वीपों पर पाये जाते हैं, जैसे कि आइसलैण्ड में माउण्ट हेकला।

ज्वालामुखी की उत्पत्ति

पहले यह समझा जाता था कि ज्वालामुखी का सम्बन्ध पृथ्वी के गर्म द्रवीय अन्तर से है। परन्तु अब यह विश्वास झूठा साबित होगया है। खानों में निरीक्षण द्वारा यह स्पष्ट होगया है कि भूमि में नीचे जाने पर तापक्रम बढ़ता जाता है, और ६० मील की गहराई पर तापक्रम इतना अधिक हो जायेगा कि चट्टानें तक पिघल जायेंगी। परन्तु पृथ्वी की ऊपरी सतहों का भार पिघलने के तापांक को बढ़ा देता है और ऐसा सम्भव है कि इतनी गहराई पर भी चट्टाने ठोस बनी रहें। अतएव निम्नलिखित दो तथ्य स्पष्ट हैं—(१) पृथ्वी का आन्तरिक प्रदेश ठोस व बहुत गर्म है। पृथ्वी का ऊपरी पपड़ा ठंडा और ठोस है। इन दोनों के बीच तरल पदार्थों की एक पर्त है। (२) भूगर्भ में गर्मी का प्रधान कारण चट्टानों में घेरे पड़ना तथा उनके तत्वों में रासायनिक परिवर्त्तन ही है। इस गर्मी से चट्टानें पिघल जाती हैं। हल्का लावा ठोस चट्टान के ऊपर उठता है और धरातल तक आ जाता है। धरातल के समीप पहुँच जाने पर भिचाव के कारण यह कमजोर जगहों से फूट निकलता है। उत्तरी आयरलैण्ड और उत्तरी, पश्चिमी, दक्षिण भारत में हुए दरार विस्फोट और हवाई द्वीप के शान्त विस्फोट सम्भवतः इसी कारण से उत्पन्न होते हैं।

इसके विपरीत पृथ्वी के भीतर भाप तथा अन्य गैसों के फैलकर धमाका करने से विसुवियस किस्म के बृहत् विस्फोट होते हैं।

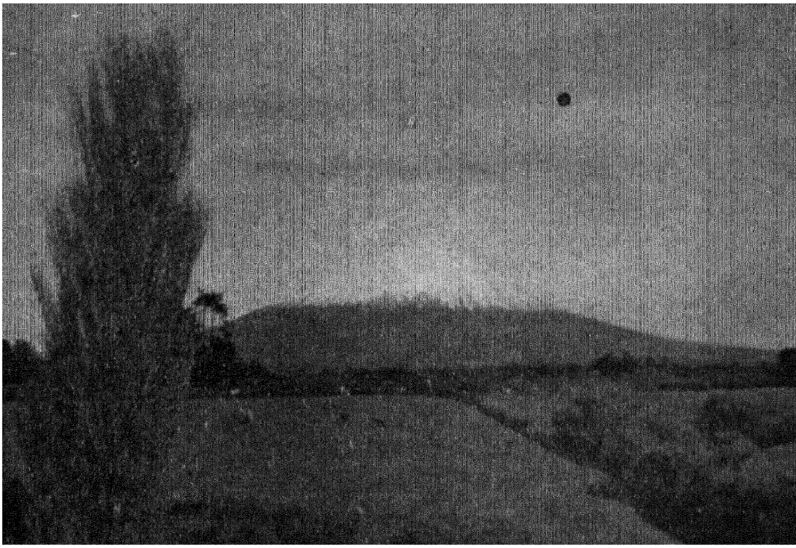

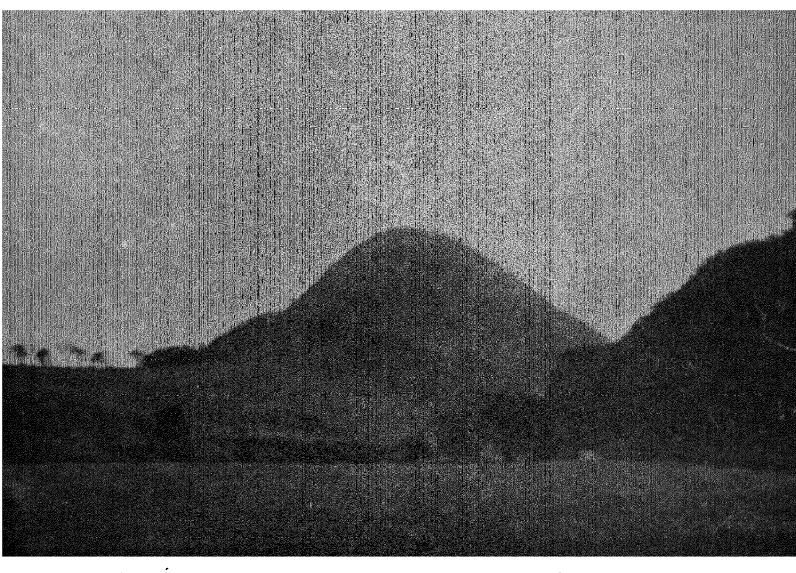

ऊपर माउन्ट एगमान्ट—एक शक्वांकार ज्वालामुखी पर्वत। इसके ढाल पर गौण शंकु देखिये।

नीचे : नार्थ बरविक लॉ—ज्वालामुख में भरे लावा अवरोध का अवशेषांश। आवरणक्षय से बाहर के मुलायम निक्षेप नष्ट हो गया है।

अध्याय आठ

तट और द्वीप

(COASTS AND ISLANDS)

तट के प्रकार (Coastal Types)

वह रेखा जहाँ थल और समुद्र मिलते हैं उसे तट-रेखा कहते हैं। तट-रेखा का सामान्य रूप और उसकी प्रधान विशेषतायें निम्नलिखित तथ्यों पर निर्भर रहती है--(अ) स्थल की बनावट और पहाड़ों की दिशा, (ब) स्थलखंड उत्क्षेप या निमज्जन से बना है। तट पर पायी जाने वाली गौण विशेषतायें जैसे कोव और स्टाक चट्टान के स्वभाव तथा समुद्र की आवरणक्षय शक्ति के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

समुद्र द्वारा आवरणक्षय का प्रभाव (Sea erosion and its effects)

तट से सदैव लहरें टकराती रहती है और उनके साथ बहाकर लाये हुए कंकड़-पत्थर आँधियों के समय तट के खिलाफ आकर गिरते है और इन दोनों की रगड़ से तट घिसता जाता है। वह घिसाव उन तटों पर विशेष प्रखर होता है जहाँ या तो मुलायम चट्टाने पायी जाती है या कमज़ोर सधे व दरारे होती है। इस प्रकार के घिसाव से चौड़ी खाड़ियाँ और तीव्र ढाल वाली चट्टान खंड बन जाते है। जैसा कि सामने के चित्र से स्पष्ट हो जायेगा। यहाँ तट के ऊपर कम ज्यादा कठोरता की चट्टाने एक के ऊपर एक लम्बरूप स्थित हैं। इग्लैण्ड के दक्षिणी किनारे पर डारसेट में, समुद्र जल ने इसी प्रकार की खाड़ियों और शिलाखंड का क्रम स्थापित कर दिया है। यहाँ चट्टानों की पट्टी तट-रेखा के समानान्तर स्थित है।

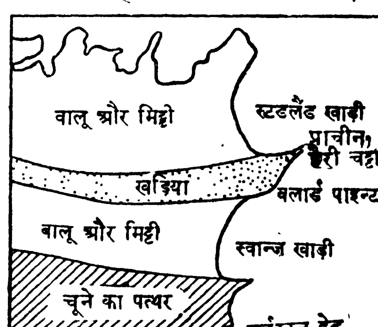

चित्र ८१--तट की विशेषताओं पर कठोर और नरम चट्टानों की एक के ऊपर एक पट्टियों का प्रभाव।

इस चित्र में तट के बराबर 'अ' नामक चूने के पत्थर की पट्टी है। उसके पीछे 'ब' और 'क' नामक क्रमशः चीका मिट्टी और खड़िया की पट्टी है। समुद्र की शक्ति से चूने के पत्थर की दीवार टूट गई और 'ख' स्थान पर समुद्र की लहरें टक्कर मार-मार कर गहरा छेद करने लगीं, परन्तु पीछे चीका मिट्टी की परत होने की वजह से यह आवरण-

क्षय और भी तीव्र हो गया। अन्दर की तरफ स्थित कठोर खड़िया की पट्टी लहरों को और अधिक भीतर तक काटने से रोकती है। अतः अण्डाकार खाड़ी बन जाती है, जिसे कोव्र कहते है। जब दो कोव्र आपस में मिल जाते हैं तो बाहर की तरफ की चूने के पत्थर की दीवाल तट से अलग रह जाती है। इसका कटा-फटा रूप द्वीपों जैसा हो जाता है। चित्र मे 'इ' द्वीप इसी प्रकार के है।

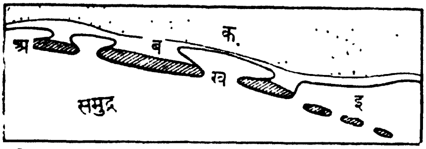

चित्र ८२—तट रेखा के समानान्तर चट्टानों की कठोर व मुलायम पट्टी के विन्यास का समुद्र द्वारा आवरणक्षय से सम्बन्ध।

परन्तु समुद्र द्वारा आवरणक्षय से बनी तटीय खाड़ियों की भी एक हद होती है। जैसे-जैसे लहरें खाडी के सिरे पर पहुँचती है उनकी तेजी कम हो जाती है और उनके द्वारा काट-छाँट करने की शक्ति भी कम हो जाती है। अतएव स्पष्ट है कि समुद्र की लहरों के थपेड़े मे बनी खाडियों की एक आन्तरिक हद होती है। परन्तु खाड़ियों के मुख पर लहरे बराबर आघात करती रहती है और चट्टानों को काटती जाती है। फलतः तट का ऊबड़-खाबड़पन धीरे-धीरे कम होता जाता है और तटरेखा सीधी व सपाट बनती जाती है। यह बात स्काटलैण्ड और आयरलैंड की खाडियों को देखने से स्पष्ट हो जाती है।

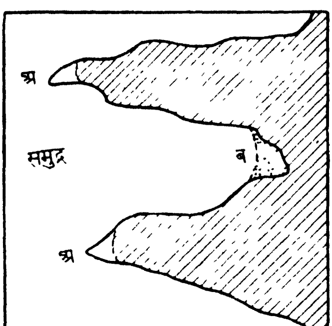

चित्र ८३—समुद्र द्वारा आवरण-क्षय का प्रभाव।

सामने के चित्र मे लहरों के थपेड़ों से 'अ' स्थान की चट्टान कटती जाती है, परन्तु 'ब' स्थान पर समुद्र की शक्ति कम हो चुकी होती है और इसलिए वहाँ निक्षेप होता रहता है। चट्टानों को कटने-छटने से प्राप्त कंकड़ पत्थर और बालू इकट्ठा होती रहती है। इस सामग्री को वहाँ तक पहुँचाने का काम समुद्री धारायें करती हैं। इस प्रकार तटरेखा का ऊबड़-खाबड़पन क्रमशः कम होता जाता है।

समुद्र का निक्षेपात्मक कार्य (Depositional Work by the Sea)

समुद्र अपनी ही लहरों द्वारा काटी हुई बालू-मिट्टी के निक्षेप से बालू के टीले और तट बनाता है। ये बालुका भित्तियां नदी के मुहानों के आर-पार बनती है। पूर्वी एशिया में तट के बाहर की तरफ बालू के द्वीप और टीलों की एक पंक्ति-सी दिखलाई पड़ती है। यही दशा संयुक्तराज्य अमरीका के पूर्वी और दक्षिणी किनारों, फ्रांस में रोन डेल्टा के पश्चिम में दक्षिणी तट पर और दक्षिणी अमरीका के पूर्वी तट पर भी पाई जाती है।

इंग्लैण्ड में बजरी और कंकड़ों का बना चेसिल तट इस प्रकार के निक्षेपात्मक कार्य का उत्कृष्ट नमूना है। कार्डिगन खाड़ी में बहकर गिरने वाली नदियों के खुले मुहानों में बालुका भित्त उत्तर की तरफ को निकली हुई फैली है और मुहानें के समुद्र की तरफ वाले हिस्से को कुछ-कुछ रोके हुए है। इनके कारण नदी का मार्ग कुछ उत्तर की तरफ हो गया है।

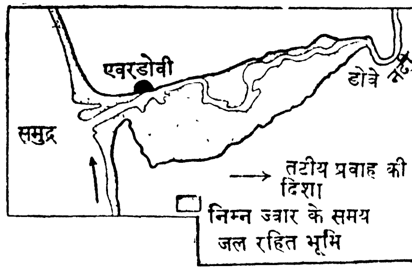

चित्र ८४—तट पर समुद्री प्रवाह का प्रभाव

डोवें, मावडग और बहुत-सी छोटी नदियों के मुहाने में यह बात विशेष रूप से पायी जाती है। ये बालुका भित्ति समुद्री प्रवाह से बन जाती है। वास्तव में समुद्र की लहरें किनारे की तरफ टेढ़ी होकर जाती है और इसलिए बालू और बजरी को तट के समानान्तर बहा ले जाती है। इसे समुद्री प्रवाह कहते है। कार्डिगन खाडी में समुद्री प्रवाह उत्तर की तरफ है परन्तु पूर्वी तट पर इसकी दिशा दक्षिण की तरफ है और येर, आल्दे तथा स्टूर नदियो के मुहाने में बालुका भित्त दक्षिण की ओर फैली हुई है।

प्रमुख तटरूप (Major Coastal Features)

ऊपर वर्णित तट रूप इतने गौण है कि वे केवल विस्तृत मानचित्रों में ही पाये जाते हैं। मानचित्रावली के नक्शों में तटरेखा के केवल प्रमुख रूप ही दिखलाई पड़ते हैं। ये रूप समुद्र द्वारा आवरणक्षय के अतिरिक्त अन्य कारणों से भी उत्पन्न होते हैं। परन्तु इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि इन तटरूपों में आवरणक्षय का कोई भी हाथ नहीं है। वास्तव में प्रत्येक प्रकार की तटरेखा के निर्माण में आवरणक्षय का महत्वपूर्ण भाग रहता है।

प्रमुख प्रकार के तट निम्नलिखित हैं :—

(१) फियार्ड तटरेखा (Fiord coastline),
(२) निमग्न घाटी या रिया तटरेखा (Ria coastline),
(३) डालमेशियन तटरेखा (Dalmatian coastline),
(४) हैफ तटरेखा (Haff coastline)।

(१) **फियार्ड तटरेखा** (Fiord coastline)—नार्वे और पश्चिमी स्काटलैंड में पाई जाती है। इस प्रकार के तट में लम्बी व संकरी अनेक खाड़ियों का कटान पाया जाता है। इनकी दीवारों का ढाल बड़ा ही तीव्र होता है। इन्हें **फियार्ड** कहते हैं। इनका समुद्र की तरफ वाला सिरा उथला होता है परन्तु भूमि की तरफ वाला सिरा अपेक्षाकृत गहरा होता है। ये कटान और खाड़ियाँ भूमि के निमज्जन के फलस्वरूप बन गई हैं और निचली घाटियों में समुद्र का जल भर गया। इस तरह ये एक

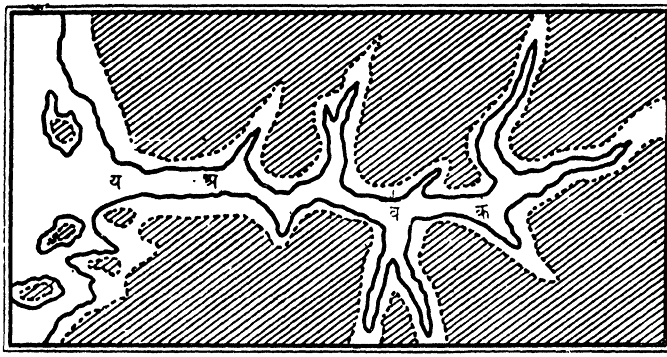

चित्र ८५--एक फियार्ड--इसके किनारों के समीप उच्च भूमि है। 'य' स्थान अ, ब और क की अपेक्षा छिछला है।

प्रकार की निमग्न घाटी है। इनके पार्श्वों का ढाल हिम द्वारा आवरणक्षय के कारण या पृथ्वी में दरार पड़ने के कारण तीव्र है।

इन फियार्ड में अच्छे सुरक्षित पोताश्रय बनते हैं। परन्तु इनके पार्श्वों का ढाल तीव्र होने के कारण अंदर से यातायात सम्बन्ध कठिन है। चूँकि इनके पीछे का भाग अधिक उपजाऊ नही है, इसलिए इन तटों पर कोई बहुत बन्दरगाह नही है।

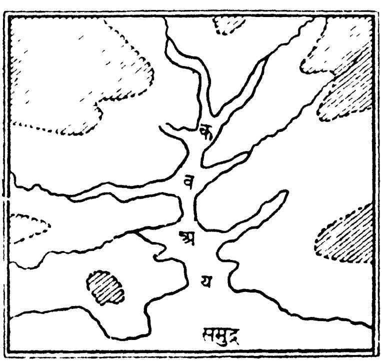

चित्र ८६—एक रिया—निमग्न घाटी। तट से काफी दूर पर पीछे की उच्च भूमि है। सहायक नदियों की घाटियों का समुद्र तट से सम्बन्ध अध्ययन कीजिए। 'य' स्थान अ ब और क की अपेक्षा गहरा है।

(२) **निमग्न घाटी या रिया तटरेखा** (Ria coastline) भी घाटियों के निमग्न होने से बनती है परन्तु हिम प्रवाहित न होने के कारण इनके पार्श्वों का ढाल अधिक क्रमशः और इनका अन्तरप्रदेश से यातायात सम्बन्ध अधिक सुविधाजनक होता है। दक्षिणी-पश्चिमी आयरलैण्ड का किनारा इसी प्रकार का है। प्लाइमथ साउण्ड और फालमथ पोताश्रय इसी प्रकार की निमग्न घाटियाँ है। सहायक घाटियाँ जलनिमग्न हो गई हैं। मुख्य घाटी भी जलनिमग्न है। इसलिए तटरेखा शाखापूर्ण हो गई है।

(३) **डालमेशियन तटरेखा** (Dalmatian coastline) में स्थलखंड का प्रभाव प्रमुख रहता है। इस प्रकार की तटरेखा का सब से अच्छा उदाहरण एड्रियाटिक सागर का पूर्वी तट है। यहाँ की पर्वतश्रेणियाँ उत्तर-पश्चिम–दक्षिणपूर्व दिशा में फैली

हुई है और किनारे के समानान्तर स्थित हैं। यह प्रदेश जलनिमग्न हो गया है। फलतः समुद्र की तरफ खाड़ियों का मुँह संकरा है, पर अन्दर पहुँच कर ये कटान चौड़ी हो गई है। इनकी आकृति तट के समानान्तर है। तट से दूर पर स्थित द्वीप वास्तव में जलनिमग्न शिखर है। ये द्वीप पहाड़ी, लम्बे और संकरे हैं। ये तट के समानान्तर स्थित हैं।

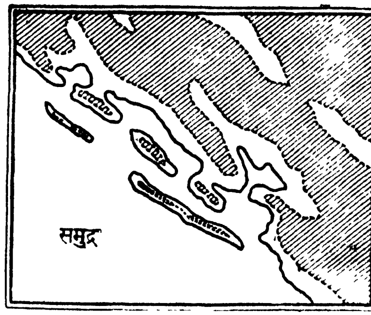

चित्र ८७—डालमेशियन तट—कटानों का आकार, द्वीप और उच्च भूमि का तट से सम्बन्ध अध्ययन कीजिये।

(४) **हैफ तटरेखा** (Haff coast-line) नीची और सपाट होती है। पूर्वी एशिया की तटरेखा में तट के समानान्तर स्थित कई संकरी भूमि पट्टियाँ सम्मिलित हैं। यह पट्टियाँ वास्तव में विशाल बालुका स्तूप हैं और इनके पीछे उथले लैगून स्थित हैं जिन्हें हैफ कहते हैं।

कालान्तर में ये लैगून हवा या नदियों द्वारा लाई हुई बालू मिट्टी से बिल्कुल भर जाते हैं। अतएव फ्रांस के गरोन तट या सोमरसेटशायर तट के समान तटरेखा बन जाती है। कुछ किनारों पर जैसे उत्तरी हालैण्ड के तट से दूर बलुहे द्वीपों की एक पंक्ति तट के समानान्तर रहती है। ये द्वीप लम्बे और संकरे होते हैं। इनका धरातल काफी नीचा होता है। इस प्रकार की तटरेखा पोताश्रयों के लिए अच्छी नहीं होती। परन्तु इनका पृष्ठप्रदेश विशेष उपजाऊ है और यातायात की सम्यक सुविधा रहती है।

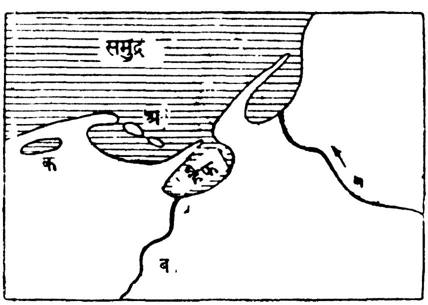

चित्र ८८—बालुका स्तूप किनारा—(अ) बालुका द्वीप (ब) मिट्टी बहा कर लाने वाली नदियाँ (क) लैगून

द्वीप (Islands)

प्रायः द्वीप दो प्रकार के होते हैं: (अ) महाद्वीपीय (continental) और (ब) महासागरीय (Oceanic)।

महाद्वीपीय द्वीप (Continental Island) वे होते हैं, जो (१) महाद्वीपों के समीप स्थित होते हैं, (२) जिनकी चट्टाने और प्राकृतिक बनावट महाद्वीप के ही समान होती है, (३) जो महाद्वीपों से छिछले समुद्र द्वारा अलग किये होते हैं। यह समुद्र ६०० फीट से कम गहरा होता है।

अधिकतर महाद्वीपीय द्वीप महाद्वीपीय सागर से उठे होते हैं। ब्रिटिश द्वीप-समूह और न्यूफाउण्डलैण्ड इसके अच्छे उदाहरण हैं। कुछ द्वीप गहरे सागर में तो जरूर

स्थित होते हैं, परन्तु उनकी प्राकृतिक बनावट महाद्वीप से सम्बन्धित है। पूर्वी द्वीपसमूह में एशियाई मोड़दार पर्वतों का ही क्रम मिलता है। सिसली के पर्वत यूरोपीय मोड़दार पर्वतों के ही भाग हैं।

सामान्यतः यह अन्दाजा लगाया जा सकता है कि इतिहास के किसी-न-किसी युग में ये महाद्वीपीय द्वीप मुख्य स्थलखंड के भाग अवश्य रहे होंगे। मैडागास्कर द्वीप बहुत समय से अफ्रीका महाद्वीप से अलग ही है और दोनों के बीच में स्थित मोजम्बिक जलडमरूमध्य बहुत चौड़ा व गहरा है। परन्तु वहाँ की चट्टानों की बनावट और जीव-जन्तुओं से यह पता चलता है कि यह किसी समय अफ्रीका का ही भाग था।

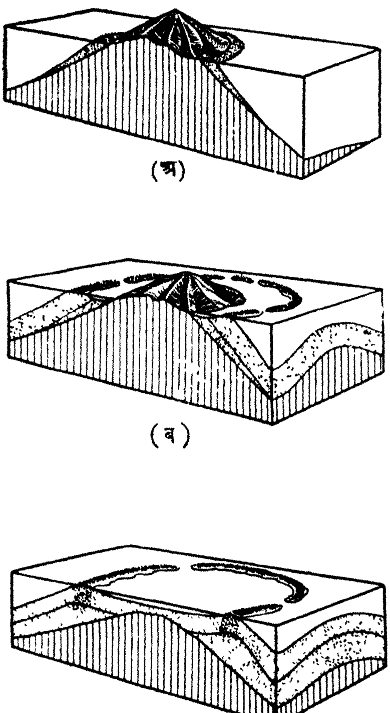

चित्र ८९—प्रवाल द्वीप—(अ) अनुतटीय प्रवाल श्रेणी (ब) परातटीय प्रवाल श्रेणी और (स) धनुषाकार प्रवाल श्रेणी

महासागरीय द्वीप (Oceanic Island) खुले महासागर में महाद्वीपों से बहुत दूर स्थित होते हैं। उनकी प्राकृतिक बनावट का महाद्वीपों की प्राकृतिक बनावट से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता। ये द्वीप महासागरों की गहराई में से उठे हुए होते हैं। जलनिमग्न श्रेणियों के शिखर ही ये द्वीप होते हैं। मध्यवर्ती अटलांटिक श्रेणी के भाग ही असशन और फरनानडो पो द्वीप के रूप में जल के ऊपर प्रगट हो गये हैं।

एक अन्य प्रकार के महासागरीय द्वीप वे होते हैं जो प्रबाल चट्टानों (Coral) से बनते हैं। यह प्रवाल एक प्रकार का चूनाप्रधान निक्षेप है जो कि एक प्रकार के कीड़ों के मरने पर उनके अस्थि-पिंजर के इकट्ठा होने से बन जाता है। ये कीड़े अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं।

श्रेणी बनाने वाले प्रवाल कीड़ों का विस्तार सीमित होता है। यह कीड़ा केवल निम्नलिखित परिस्थितियों में ही पनप सकता है:

(१) समुद्र जल का तापक्रम ७०° फा. होना चाहिए। इस प्रकार का तापक्रम ३०° उत्तरी और ३०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच में ही पाया जाता है। इन सीमाओं के भीतर भी पश्चिमी तटों की अपेक्षा पूर्वी तट पर तापक्रम कुछ अधिक रहता है। अतः प्रवाल द्वीप उष्णकटिबंध में महाद्वीपों के पूर्वी तट की ओर पाये जाते हैं।

(२) चूंकि जल का तापक्रम गहराई के साथ कम होता जाता है, अत: प्रबाल कीड़े १५० फीट से अधिक गहराई पर नहीं रह सकते। प्रबाल द्वीप तट के समीप के उथले पानी में ही पाये जाते हैं।

(३) प्रबाल कीड़े ताजे पानी मे नहीं पनप पाते। नदियों के द्वारा लाये हुए जल में वे वस्तुये नहीं होती जिनके ऊपर इस प्रकार के कीड़ों का जीवन निर्भर रहता है। यही कारण है कि ये कीड़े नदियों के मुहानों के पास नहीं पाये जाते।

(४) मिट्टी मिले हुए गंदले जल मे ये कीड़े नही रह पाते। इसी कारण नदियों द्वारा बहाकर लाये हुए जल मे इन कीड़ों का पनपना मुश्किल होता है।

नीचे वृत्ताकार प्रबाल द्वीपों को धनुषाकार प्रबाल श्रेणी (Atoll) कहते हैं। इसके मध्य में उथले जल का एक लैगून होता है और उसके चारों ओर नीचे तल की वृत्ताकार प्रबाल श्रेणी स्थित होती है। इस प्रकार के द्वीपों की उत्पत्ति के विषय मे अनेक सिद्धान्त व विचार है। चार्ल्स डारविन का सिद्धान्त सबसे अधिक मान्य है। डारविन के अनुसार एक द्वीप के चारो ओर प्रबाल श्रेणी बनने लगी। कालान्तर मे द्वीप जलनिमग्न हो गया और प्रबाल श्रेणी के बीच उथला लैगून बना रह गया। तट के समीप बनी प्रबाल श्रेणी को **अनुतटीय श्रेणी** (Fringing Reef) कहते हैं। द्वीप तो जल-निमग्न हो गया परन्तु प्रवाल श्रेणी बराबर ऊपर को बढ़ती रही यहाँ तक कि द्वीप और श्रेणी के बीच एक लैगून स्थित हो गया। इस प्रकार की श्रेणी को **परातटीय प्रबाल श्रेणी** (Barner Reef) कहते है। और अधिक निमज्जन से द्वीप बिल्कुल ही गायब हो गया और **एक धनुषाकार प्रबाल श्रेणी** (Atoll) मात्र ही रह गई।

इस प्रकार के द्वीप समुद्रतट से कुछ ही फीट ऊँचे होते है। कालान्तर में मौसमी क्षति मे चूने का पत्थर मिट्टी में बदल जाता है और पक्षियों द्वारा लाये हुए बीज जम जाते है। फलत: इन द्वीपों पर स्थायी वनस्पति का प्रादुर्भाव हो जाता है। नारियल का वृक्ष इसमे सबसे प्रधान होता है।

परन्तु डारविन के सिद्धान्त को सभी वैज्ञानिक नही मानते। इस सिद्धान्त से उन धनुषाकार प्रबाल श्रेणियों के विषय मे कुछ भी पता नही चलता जो वहाँ पायी जाती है, जहाँ निमज्जन हुआ ही नही है। इन स्थानों पर हो सकता है कि जलनिमग्न पर्वत या पठार के शिखर पर से प्रबाल निक्षेप हुआ हो जिससे कि चोटियों के स्थान पर लैगून रह गया और चारों ओर प्रबाल श्रेणी बन गई।

अध्याय नौ

जलवायु के तत्व

(CLIMATIC FACTORS)

१—तापक्रम (Temperature)

विषय प्रवेश (Introductory)

जलवायु (Climate) और ऋतु (Weather) में बहुत भेद है। किसी स्थान विशेष की जलवायु के अर्थ होते हैं वहाँ की तापक्रम, वर्षा, आर्द्रता, वायु, रोशनी तथा मेघाच्छन्नता सम्बन्धी दशाओं का औसत मध्यमान। इसके विपरीत किसी स्थान पर एक विशेष समय पर पाये जाने वाली तापक्रम, वर्षा आदि दशाओं की औसत से भिन्नता तथा उस समय मौसम की दशा को ऋतु कहते हैं। शीतोष्ण कटिबंध में औसत से भिन्नता या ऋतु परिवर्तन बहुत पाया जाता है।

जलवायु के अध्ययन में निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाना चाहिए—(१) औसत तापक्रम, (२) वार्षिक तापान्तर, (३) वार्षिक वर्षा, (४) वर्षा का मौसम के अनुसार वितरण, (५) प्रचलित हवायें, (६) सूर्य की रोशनी और मेघाच्छन्नता।

तापक्रम थर्मामीटर यन्त्र द्वारा नापा जाता है। ऋतु निरीक्षण में प्रायः फार्नहैट थर्मामीटर प्रयोग में लाते हैं। इसका हिमांक ३२° और उबलने का अंक २१२° है। सेन्टीग्रेड थर्मामीटर में हिमांक ०° और उबलने का अंक १००° होता है। परन्तु इसे अन्य वैज्ञानिक उपयोग में लाते है।

तापक्रम की माप

उचित थर्मामीटरों को एक पर्दे के अन्दर रखते हैं। इसे स्टीवंसन स्क्रीन कहते हैं। यह इस प्रकार बना होता है कि थर्मामीटर के चारों ओर हवा आसानी से आ जा सकती है परन्तु सूर्य की सीधी किरणों से बचाव रहता है। इस प्रकार वायु का छाया मे तापक्रम ज्ञात हो जाता है।

उच्च तापमान थर्मामीटर दिन का उच्चतम तापमान बतलाता है और निम्न तापमान थर्मामीटर से दिन का निम्नतम तापांश पता चलता है। इन दोनों आँकड़ों का मध्यममान या औसत निकालने मे उस दिन का औसत तापक्रम पता चल जाता है। यह क्रिया साल के दिन प्रति दिन दुहराई जाती है और दैनिक आँकड़ों का औसत निकाल लिया जाता है। यही विशेष वर्ष का औसत तापक्रम होता है, चाहे वह वर्ष अत्यधिक गर्म या ठंडा क्यों न रहा हो। इस प्रकार ये वार्षिक आंकड़े ३०–४० वर्ष तक बराबर निकाले जाते रहते हैं और फिर उनका औसत निकाल लिया जाता

है। यही उस स्थान का मध्यममान वार्षिक तापमान होता है। इस प्रकार आँकड़े एकत्रित करने में निश्चय ही बहुत समय लगता है और काफी परिश्रम भी करना पड़ता है।

जुलाई मास का मध्यममान तापक्रम जुलाई के प्रत्येक दिन के उच्चतम और निम्नतम तापांश का औसत होता है। इस प्रकार प्रत्येक वर्ष के जुलाई महीने के विषय में यही आँकड़े इकट्ठे किये जाते हैं और उनका औसत निकाल लिया जाता है। जनवरी का मध्यममान तापमान भी इसी प्रकार निकाला जाता है।

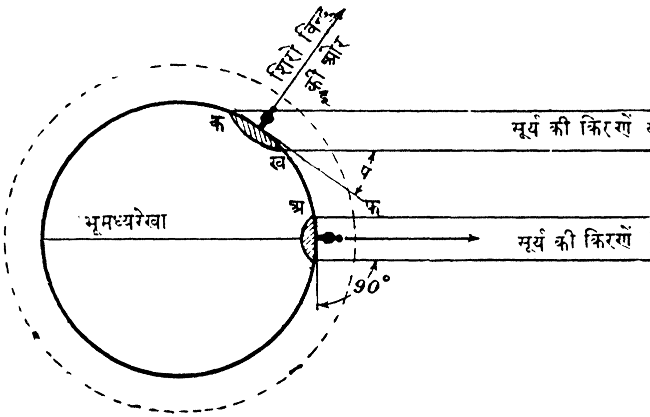

चित्र ९०—बिन्दु रेखा पृथ्वी पर वायुमण्डल का विस्तार दिखलाती है।

तापक्रम को निर्धारित करनेवाले तत्व

किसी स्थान का तापक्रम निम्नलिखित बातों पर निर्भर रहता है :— (१) अक्षांश, (२) समुद्रतल से ऊँचाई, (३) समुद्र से दूरी, (४) प्रचलित हवायें, (५) महासागरीय धारायें, (६) बादल और वर्षा, (७) भूमि का ढाल।

(१) **अक्षांश**—सामान्य रूप से जैसे-जैसे हम भूमध्यरेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ते हैं तापक्रम बराबर घटता जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि जैसे-जैसे हम ध्रुवों के निकट पहुँचते जाते हैं सूर्य की किरणें धरातल पर टेढ़ी होकर पड़ती हैं, जैसा कि ऊपर दिये चित्र से स्पष्ट है। मान लीजिए 'य' और 'र' सूर्य की किरणों की दो बराबर राशि हैं, जो कि पृथ्वी पर समान तापशक्ति के साथ मार्च या सितम्बर के महीने में पड़ रही हैं। 'य' नामक किरणपुंज भूमध्यरेखा पर लम्बवत् पड़ रहा है, पर 'र' नामक किरणपुंज पृथ्वी के 'क ख' भाग पर बहुत तिरछा होकर आ रहा है।

'य' किरणपुंज से 'अ ब' छायांकित प्रदेश को ताप मिलता है, परन्तु 'र' किरणपुंज को छायांकित प्रदेश 'क ख' को ताप प्रदान करना पड़ता है। 'अ ब' का विस्तार 'क ख' की अपेक्षा कहीं कम है, परन्तु दोनों ही दशा में ताप की मात्रा

समान है। अतः स्पष्ट है कि भूमध्यरेखा के समीप का क्षेत्र 'अ ब' ध्रुव के समीप के 'क ख' क्षेत्र की अपेक्षा गर्म होगा।

दूसरी बात यह है कि 'र' किरणपुंज तिरछा होकर पृथ्वी पर आता है और इसीलिए इसे वायुमण्डल के अधिक भाग में से होकर गुजरना पड़ता है। 'इ क' दूरी 'अ फ' दूरी से अधिक है। स्पष्ट है कि सूर्य की किरणों की अधिकतर शक्ति जलवाष्प तथा धूल आदि में सोख जाती है। फलतः जब 'र' किरणपुंज पृथ्वी पर पहुँचता है, तो उसकी तापशक्ति काफी क्षीण हो चुकी होती है और वह उतनी गर्मी कदापि नहीं दे सकता जितनी कि 'य' किरणपुंज से प्राप्त होती है। यही सिद्धान्त सूर्य की तापशक्ति के बारे में मध्याह्न, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय भी रहता है। सुबह और शाम की अपेक्षा मध्याह्न के समय सूर्य की किरणें कम तिरछी रहती है। दूसरी बात यह है कि जब सूर्य आकाश मे नीचा रहता है, तो उसकी किरणों को अधिक वायुप्रसार से होकर गुजरना पड़ता है। अतः सुबह और शाम को सूर्य की किरणों को मध्याह्न की अपेक्षा अधिक लम्बा रास्ता तय करना पडता है।

(२) **समुद्रतल से ऊँचाई**—हम जैसे-जैसे पृथ्वी से ऊपर की ओर जाते है, तापक्रम घटता जाता है। प्रायः यह घटाव प्रत्येक ३०० फीट पर १° फार्नहैट की दर से होता है। उदाहरण के लिए ३,६०० फीट ऊँचे पर्वत का शिखर उसके आधार की अपेक्षा १२° अधिक ठंडा होगा। मैदानों पर बरफ का नाम निशान भी नही होता परन्तु पर्वत के शिखर पर सदैव बर्फ जमी रहती है। शायद ऐसा सोचा जाय कि चूँकि पर्वत शिखर सूर्य के बहुत समीप है इसलिए वह अधिक गर्म हो परन्तु सूर्य की किरणें वायुमण्डल को सीधे-सीधे गर्म नही करतीं। सूर्य की किरणें पृथ्वी को गर्म करती है और इस प्रकार गर्म पृथ्वी वायुमण्डल को गर्म करती है।

पृथ्वी द्वारा प्राप्त गर्मी वायुमण्डल मे विकीर्ण होती रहती है और भार जितना ही कम होगा ताप-विकिरण उतनी ही अधिक तेजी से होगा। चूकि पर्वत के ऊपर चढ़ने मे वायुभार कम होता जाता है, इसलिए पर्वत की सतह द्वारा प्राप्त गर्मी शीघ्र ही खतम भी हो जाती है। फलतः उसके सम्पर्क में वायुमण्डल ठंडा ही बना रहता है।

कभी-कभी ताप विलोमता (Inversion of Temperature) भी हो जाता है। ताप विलोमता जाड़े की ऋतु में विशेष रूप से होते है। सूर्य जब नीचा रहता है, तो भूमि से ताप विकिरण तेजी से होता है, और उसके पास वाली वायु परत ठंडी होने लगती है। सुबह होते-होते वायु की परतें सैकड़ों फीट की ऊँचाई तक ठंडी हो जाती है, और उनकी अपेक्षा उनके ऊपर की परतें गर्म बनी रहती है। इस दशा में तापक्रम ऊँचाई के साथ बढ़ता जाता है, परन्तु एक सीमा तक ही। चूँकि ठंडी भारी वायुपरत तली मे होती है, इसलिए संवाहन धारायें उत्पन्न ही नहीं होतीं। धुआँ ऊपर की तरफ नहीं उठ पाता बल्कि समानान्तर रूप में फैल जाता है और धरातल के समीप ही बना रहता है।

(३) **समुद्र से दूरी**—गर्मी के मौसम में सूर्य की किरणे थल और जल दोनों को ही गर्म कर देती हैं। परन्तु जल इतना अधिक गर्म नहीं हो पाता जितना कि थल। इसलिए

यदि कोई स्थान समुद्र के निकट है तो समुद्र की तरफ से आने वाली ठंडी हवा गर्मी में थल के तापक्रम को कम कर देगी। फलतः समुद्र से दूर स्थित स्थान अपेक्षाकृत गर्म होगा।

जाड़े के मौसम में थल बहुत जल्दी ठंडा हो जाता है परन्तु जल इतनी जल्दी अपनी गर्मी खतम नहीं कर पाता। इसलिए जाड़ों में जल की अपेक्षा थल अधिक ठंडा हो जाता है या यूँ कहिये कि थल की अपेक्षा जल गर्म रहता है। इसलिए जाड़े के मौसम मे समुद्री पवन समुद्र तटीय प्रदेशों के तापक्रम को ऊँचा कर देता है। परन्तु महाद्वीपों के अन्दर की तरफ स्थित स्थान बहुत ठंडे बने रहते हैं।

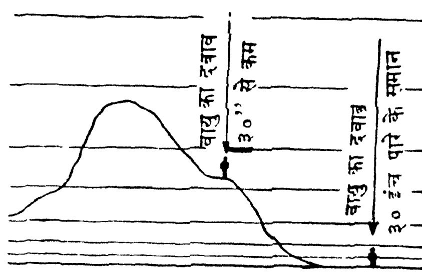

चित्र ९१—ऊपर चढ़ने पर वायुमण्डल कम घना होता जाता है।

दक्षिणी-पश्चिमी आयरलैण्ड में वेलेंशिया का गर्मी का तापक्रम ५०° फा० रहता है और जाड़े मे तापक्रम ४४° फा० रहता है। इसके विपरीत मध्य साईबेरिया में टोमस्क स्थान पर जो कि करीब-करीब उसी अक्षांश में स्थित है जिसमें वैलेंशिया, गर्मी का तापक्रम ६६° फा० और जाड़े का तापक्रम ३०° फा० रहता है। जाड़े का तापक्रम हिमांक से ३०° कम रहता है। वैलेंशिया मे तापांतर १५° फा० रहता है जबकि टोमस्क में तापान्तर ६९° फा० रहता है। वैलेंशिया के जलवायु को हम **सम, तटीय, समुद्री या द्वीपीय** (Equable Insular or Maritime) कहते है, परन्तु टोमस्क की जलवायु **विषम या महाद्वीपीय** (Extreme or Continental) कहलाता है।

द्वीपीय जलवायु द्वीपों मे पाई जाती है और उन तटीय प्रदेशो में पायी जाती जहाँ पर प्रचलित हवायें समुद्र की ओर से आती हैं। इस प्रकार की जलवायु में वर्षा काफी मात्रा में साल भर लगातार होती रहती है। शीतोष्ण कटिबंध में समुद्र से दूर स्थित स्थानों पर विषम महाद्वीपीय जलवायु पायी जाती है। जिन तटीय प्रदेशों में वायु स्थलखंड की तरफ से आती है, वहाँ भी विषम जलवायु ही पाई जाती है। इन प्रदेशों में वर्षा की मात्रा कम होती है और प्रधानतः गर्मी के मौसम में होती है।

(४) **प्रचलित हवायें**—किसी स्थान के तापक्रम पर प्रचलित हवाओं का प्रभाव उनके प्रवाहित होने की दिशा पर निर्भर रहता है। समुद्र की तरफ से आने वाली हवा गर्मी के तापक्रम को कम कर देती है और जाड़े के तापक्रम को बढ़ा देती है। ब्रिटिश द्वीपसमूह की पछुवाँ हवायें इसका उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इसके विपरीत थल की तरफ आने वाली हवा जाड़े के तापक्रम को और भी कम कर देती है और गर्मी के तापक्रम को बढ़ा देती है। इसी कारण मन्चूकों में सर्दी का मौसम बहुत ठंडा होता है, क्योंकि जाड़े की प्रचलित हवायें मध्य एशिया से आती हैं।

(५) **महासागरीय धारायें** अपने ऊपर से होकर आने वाली हवाओं के तापक्रम में अन्तर उत्पन्न कर देती हैं। जो हवा गर्म जलधारा के ऊपर से होकर आती है, उसका तापक्रम ऊँचा हो जाता है। इसके विपरीत जो हवा ठंडी जलधारा के ऊपर से होकर आती है, उसका तापक्रम और गिर जाता है। यह समझना कि गर्म जलधारायें भूखंड के तापक्रम को ऊँचा कर देती हैं और ठंडी जलधारायें भूखंड के तापक्रम को नीचा कर देती हैं, सर्वथा भूल है। तापक्रम पर जलधाराओं का प्रभाव प्रचलित हवाओं की दिशा पर निर्भर रहता है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका के पूर्वी किनारे पर से होकर गर्म जलधारा गल्फ स्ट्रीम प्रवाहित होती है। गर्मी के मौसम में जब हवायें समुद्र की ओर से स्थलखंड की ओर चला करती हैं, जलधारा के फलस्वरूप तापक्रम कुछ बढ़ जाता है और वर्षा की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। परन्तु जाड़े के मौसम में जब हवाये स्थल से जल की ओर चला करती हैं, जलधारा का तापक्रम पर कोई विशेष प्रभाव नही पड़ता। इसी प्रकार, लैब्रेडर में ठंडी जलधारा का जाड़े में कोई विशेष असर नही पड़ता है। उस समय हवायें थल से जल की ओर चलती रहती हैं। परन्तु गर्मी के मौसम मे जब हवाओं का रुख जल से थल की ओर होता है, ठंडक बढ़ जाती है और वर्षा की मात्रा कम हो जाती है। ये सामान्य सिद्धान्त जलधाराओं के समीपवर्ती स्थलखंडों के जलवायु पर प्रभाव ज्ञात करने के लिए हर जगह लगाये जा सकते हैं।

(६) **बादल और वर्षा**—जब भारी वर्षा होती है, तो आसमान में बादल छा जाते हैं, सूर्य छिप जाता है, और तापक्रम कम हो जाता है। इसके विपरीत, जिन प्रदेशों मे बादल कम रहते हैं और ताप विकिरण अच्छी तरह होता है, दिन का तापक्रम बहुत अधिक रहता है जैसे कि रेगिस्तानों मे। मरूस्थलों में बादल न होने के कारण आसमान साफ रहता है और पृथ्वी से ताप विकिरण तेजी से होता है। फलतः रात का तापक्रम तेजी से गिरता है और इन प्रदेशों में दैनिक तापान्तर काफी होता है।

(७) **भूमि का ढाल**—साधारणतया दक्षिण की तरफ वाले ढाल उत्तर की तरफ वाले ढालों की अपेक्षा गर्म रहते हैं: इसके दो कारण हैं: प्रथम तो यह कि उत्तरी ढाल पर सर्द हवायें आती रहती है, और दक्षिण ढाल इनसे बचे रहते हैं। दूसरे यह कि

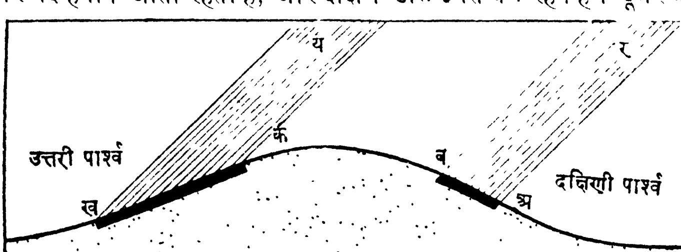

चित्र ९२—सूर्य की तरफ वाले ढाल सबसे अधिक गर्म रहते हैं।

सूर्य की किरणें दक्षिण के ढालों पर तिरछी पड़ती है, परन्तु उत्तरी ढाल पर वे इतनी तिरछी नहीं होतीं।

पृष्ठ १२४ पर दिये चित्र में 'अ ब' एक छोटा-सा प्रदेश है परन्तु उसे उतनी ही गर्मी प्राप्त होती है जितनी कि 'क ख' को। इसका प्रधान कारण पृथ्वी के ढाल और सूर्य की किरणों के बीच का कोण है। या दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि सूर्य की किरणों का पृथ्वी के ढाल पर झुकाव ही इस तथ्य को निर्धारित करता है।

सम तापदर्शक (Isotherm) मानचित्र

जैसा हमने अभी देखा, किसी स्थान का वास्तविक तापक्रम बहुत कुछ उस स्थान की समुद्रतल से ऊँचाई पर निर्भर रहता है। यदि हम और तथ्यों का प्रभाव समझना चाहे तो हमें इस ऊँचाई वाले प्रश्न को हटाना होगा। इसलिए हम प्रत्येक स्थान के तापक्रम को इस प्रकार परिणत करते है, जैसे कि वह समुद्र तल पर ही स्थित हो। इसके लिए निरीक्षण द्वारा प्राप्त तापक्रम में प्रति ३०० फीट ऊँचाई के लिए १° फा० तापक्रम बढ़ाते जाते है। इस तापक्रम को यदि हम एक मानचित्र पर अंकित कर दे और फिर समान तापक्रमवाले सभी स्थानों को मिला दे तो जो रेखाये हमे प्राप्त होगी उन्हें हम **समतापदर्शक रेखायें** (Isotherms) कहते है।

तापान्तर (Range of Temperature) सम्बन्धी तत्व

वर्ष के सबसे गर्म महीने के औसत तापक्रम और सबसे ठंडे महीने के औसत तापक्रम का अन्तर **मध्य मान वार्षिक तापान्तर** कहलाता है। उदाहरण के लिए लन्दन का जुलाई मास का मध्यमान तापक्रम ६४° फा० है और जनवरी का मध्यमान तापक्रम ३८° फा० है। इसलिए लन्दन का मध्य मान वार्षिक तापान्तर हुआ: ६४°—३८° = २६° फा०।

किसी एक दिन के उच्चतम और निम्नतम तापक्रम के अन्तर को दैनिक तापान्तर (Daily Range of Temperature) कहते है। दिन का सबसे गर्म भाग दोपहर के बाद सामान्यतः १ बजे और २ बजे के बीच होता है। दिन का सबसे ठंडा भाग सूर्योदय से आधा घंटे पहिले होता है।

मध्यमान वार्षिक तापान्तर को प्रभावित करने वाले प्रमुख तत्व निम्नलिखित है :—(१) अक्षांश (२) समुद्र से दूरी, (३) प्रचलित हवायें, (४) महासागरीय जलधाराये, (५) मेघाच्छन्नता।

(१) **अक्षांश**—वार्षिक तापान्तर भूमध्यरेखा से दूरी के साथ-साथ बढ़ता जाता है। जैसे-जैसे हम भूमध्यरेखा से ध्रुवों की तरफ बढ़ते जाते है, वार्षिक तापान्तर बढ़ता जाता है। इसका प्रधान कारण यह है कि भूमध्यरेखा पर सदैव ही गर्मी पड़ती है। सूर्य की किरणें जाड़े और गरमी दोनों ही मौसम में लम्बवत् पड़ती हैं। इसके विपरीत ध्रुवों पर जाड़े और गर्मी के तापक्रम के बीच सबसे अधिक अन्तर रहता है। जाड़े और गर्मी के मौसम का तापान्तर भूमध्यरेखा पर सबसे कम और ध्रुवों पर सबसे ज्यादा रहता है। ध्रुवों पर ६ महीने सूर्य निकला रहता है और ६ महीने सूर्य अस्त रहता है। इसलिए जाड़े और गर्मी के ताप में बड़ा अन्तर पाया जाना चाहिये। तापान्तर अधिक होना चाहिये।

परन्तु कुछ अन्य तत्वों के कारण सबसे अधिक तापान्तर ध्रुवों पर न होकर शीत शीतोष्ण कटिबंध में ६०° उत्तरी अक्षांश में पाया जाता है। चूँकि ध्रुवीय प्रदेश सदैव हिमाच्छादित रहते हैं, इसलिए सूर्य की अधिकतर शक्ति बर्फ को पिघलाने में लग जाती है। इस प्रकार निरन्तर रहने वाला हिम आवरण गर्मी के तापमान को ऊँचा नही उठने देता। इसीलिए तापान्तर उतना अधिक नहीं हो पाता जितना होना चाहिए।

(२) **समुद्र से दूरी**—जल या समुद्र की अपेक्षा थल बहुत जल्दी गर्म हो जाता है। जल की अपेक्षा थल ठंडा भी अधिक जल्दी हो जाता है। इसी कारण समुद्र के समीपवाले स्थान गर्मी में कम गर्म और जाड़े में कम ठंडे रहते हैं। अतएव वार्षिक तापान्तर कम हो जाता है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि द्वीपों का तापान्तर कम होता है और उसी अक्षांश में स्थित महाद्वीप के आन्तरिक भागों का तापान्तर अपेक्षाकृत कही अधिक होता है। शीतोष्ण कटिबंध में सबसे कम तापान्तर ब्रिटिश द्वीप-समूह में है परन्तु यह भी भूमध्यरेखा के समीप स्थित अमेजन बेसिन के सबसे अधिक तापान्तर से ज्यादा है। यह बात विशेषरूप से ध्यान देने योग्य है।

महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की अपेक्षा तटीय प्रदेशों का तापान्तर कम होता है। फैरो द्वीपसमूह में स्थित थारशैवेन का वार्षिक तापान्तर १४° फा० है, परन्तु उसी अक्षांश में स्थित मध्यएशिया के याकुटस्क स्थान का वार्षिक तापान्तर ११०° फा० है। किसी एक अक्षांश पर समुद्रतट से भीतर की ओर बढ़ने पर तापान्तर किस प्रकार बढ़ता जाता है, यह ध्यान देने योग्य बात है।

निम्नलिखित स्थान भूमध्यरेखा से उत्तर में करीब-करीब एक ही अक्षांश में स्थित है परन्तु प्रत्येक बारी-बारी से क्रमशः आन्ध्र महासागर से दूर है। जैसे-जैसे समुद्र से दूरी बढ़ती जाती है, गर्मी का तापक्रम भी बढ़ता जाता है और जाड़े का तापक्रम घटता जाता है। फलतः क्रमशः तापान्तर बढ़ता जाता है।

स्थान		गर्मी का तापक्रम	जाड़े का तापक्रम	तापान्तर
वैलेंशिया	...	५९° फा०	४४° फा०	१५° फा०
कैम्ब्रिज	...	६२° फा०	३७° फा०	२५° फा०
हैनोवर	...	६३° फा०	३३° फा०	३०° फा०
बर्लिन	...	६५° फा०	३१° फा०	३४° फा०
वारसॉ	...	६६° फा०	२६° फा०	४०° फा०
ओरेनबर्ग	...	७१° फा०	३° फा०	६८° फा०

जाड़ों के तापक्रम में कमी की अपेक्षा गर्मी के तापक्रम में बढ़ोत्तरी क्रमशः है। इससे स्पष्ट है कि समुद्र का समकारी प्रभाव गर्मी की अपेक्षा जाड़े में अधिक होता है।

(३) तापान्तर पर प्रभाव डालने वाली अन्य दशायें—प्रचलित हवायें, महासागरीय धारायें और मेघाच्छन्नता का तापान्तर पर वहीं तक प्रभाव पड़ता है, जहाँ तक उनका किसी स्थान के तापक्रम पर असर रहता है। ब्रिटिश कोलम्बिया में सालभर लगातार

समुद्री पवन बहा करता है। इसलिए लैब्रेडर की अपेक्षा उसका तापान्तर कम रहता है। लैब्रेडर में गर्मी के मौसम में तो समुद्री हवायें चलती है, परन्तु जाडे में हवाओं का रूख ठंडे थल की ओर से हो जाता है।

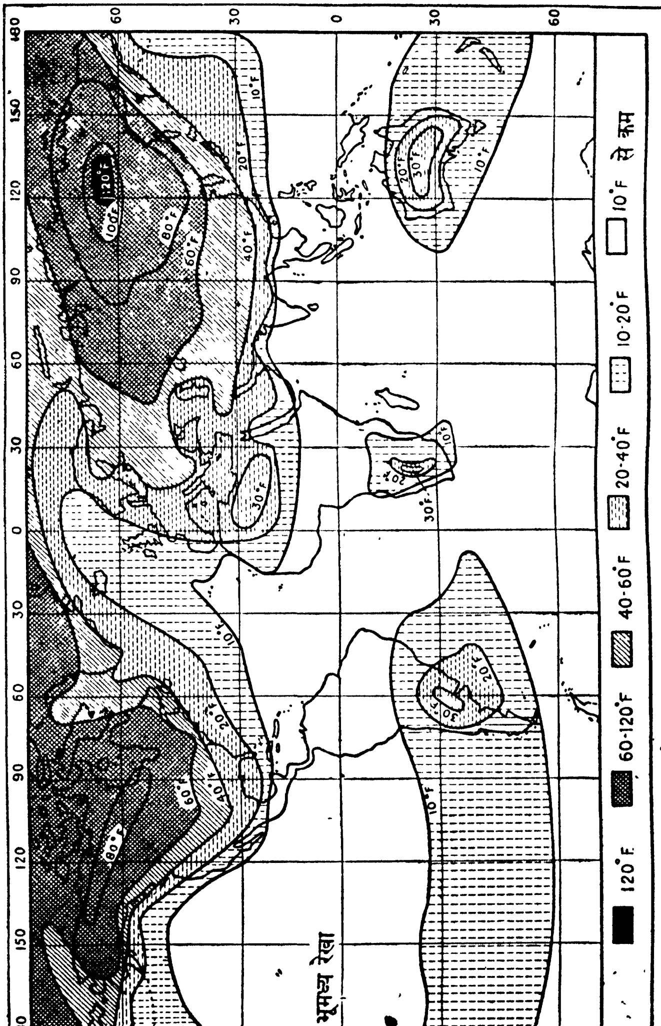

चित्र ९३—मध्यमान वार्षिक तापान्तर

चित्र ९.३ को देखने से संक्षेप में निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते है:

(१) भूमध्यरेखा के समीप सभी स्थानों में चाहे वे अन्दर की ओर स्थित हों या समुद्र के किनारे और अन्य अक्षांशों में द्वीपीय तथा तटीय स्थिति के प्रदेशों में निम्न तापान्तर पाया जाता है।

(२) उच्च तापान्तर शीतोष्ण कटिबंध में स्थित महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में पाये जाते हैं। चूँकि दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीपों का विस्तार अधिक नहीं है, इसलिए वहाँ कोई भी स्थान समुद्र के प्रभाव से अधिक दूर नहीं है। दक्षिणी गोलार्द्ध में उच्चतम तापान्तर ३२° फा० पश्चिमी अर्जेन्टाइना के सैन जुआन स्थान पर पाया जाता है। इसके विपरीत उत्तरी गोलार्द्ध के साइबेरिया प्रदेश में स्थित बर्कोहैन्स्क का तापान्तर उच्चतम है—१२०° फा० (६° फा० से लेकर—६०° फा० तक)। उच्च-

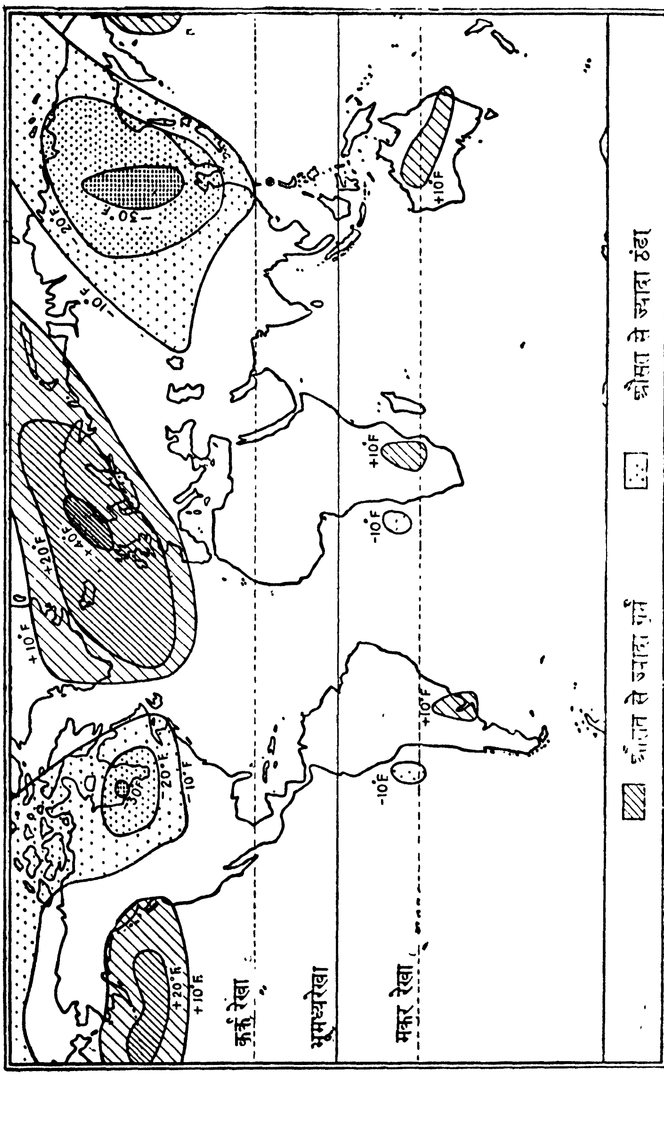

चित्र ९४—जनवरी में अक्षांश के औसत तापक्रम से अधिक गर्म व ठंडे प्रदेश

ऊपर : आयरलैंड में किनसेल के समीप चट्टान खंड।
नीचे : न्यूजीलैंड का जार्ज साउन्ड—यह निमग्न हिमघाटी है।

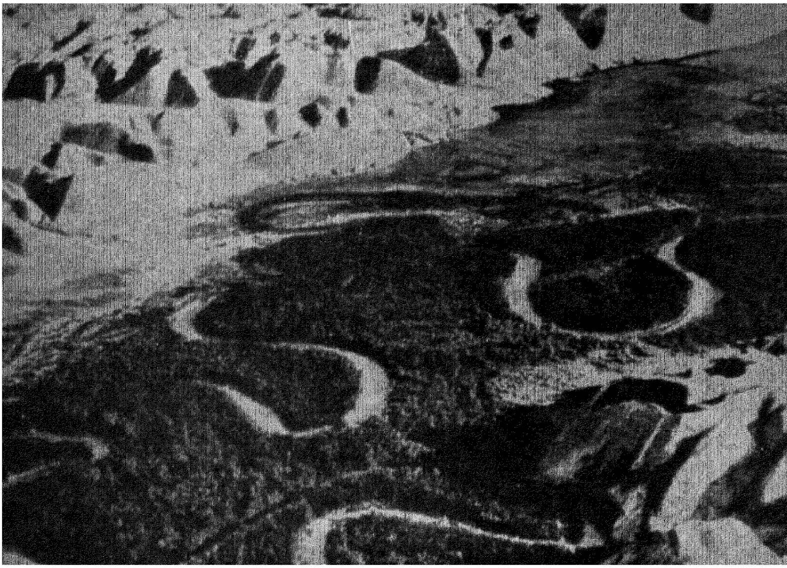

ऊपर : जारडन की दरार घाटी। इसमें नदी के घुमाव स्पष्ट हैं।

नीचे : न्यूसाउथ वेल्स में डार्लिंग नदी के पूर्व में लगातार बहने वाला गहरा पाताल-फोड़ कुँआ।

तापान्तर के विस्तृत क्षेत्र उत्तरी गोलार्द्ध में ही हैं। मध्य यूरोपीय और मध्य उत्तरी अमरीका के समान उच्च तापान्तर कहीं और नहीं पाया जाता।

(३) शीतोष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के पश्चिमी भागों की अपेक्षा पूर्वी भागों का तापान्तर अधिक होता है। इसका कारण यह है कि पूर्व में जाड़े की ऋतु बहुत ठंडी होती है। पीकिंग की पीहो नदी प्रत्येक सर्दी में जम जाती है परन्तु समान अक्षांश में स्थित लिस्बन की टेगस नदी कभी भी नहीं जमती।

अक्षांश के औसत से अधिक या कम तापक्रम वाले प्रदेश

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ध्रुवों की तरफ जाने पर तापक्रम घटता जाता है, परन्तु घटाव की दर स्थायी नहीं है, क्योंकि जल-थल के वितरण से काफी असर पड़ जाता है। इसलिए कुछ स्थानों के जाड़े या गर्मी के तापक्रम अक्षांश विशेष के औसत से बहुत भिन्न होते हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध में जल की प्रधानता के कारण जनवरी और जुलाई के औसत से भिन्नता अधिक नहीं होती।

(१) **जनवरी (चित्र ९४)**—(अ) जनवरी के महीने में उत्तरी गोलार्द्ध में जाड़े का मौसम होता है। अतएव शीतोष्ण कटिबंध में स्थित भूखंड महासागरों की अपेक्षा अधिक ठंडे हो जाते हैं। परन्तु दो स्थान ऐसे हैं जहाँ महासागर के प्रभाव के फलस्वरूप तापक्रम औसत से काफी ऊपर रहते हैं। ये प्रदेश उत्तरी प्रशान्त महासागर के पूर्व में और उत्तरी आन्ध्र महासागर के पूर्व में स्थित हैं। दूसरा क्षेत्र (उत्तरी आन्ध्र-महासागर के पूर्व में) अक्सर जाड़े की गर्मी की खाड़ी कहा जाता है, क्योंकि अक्षांश के औसत से कहीं अधिक तापक्रम जाड़े में पाया जाता है। (जनवरी मास के ३२° फा० सम-तापरेखा के मोड़ों को देखिये)।

इसके विपरीत, उत्तरी अमरीका और यूरेशिया के मध्यवर्ती व पूर्वी प्रान्तों में बहुत अधिक ठंड पड़ती है। इसका कारण यह है कि ये प्रदेश पछुवा हवाओं द्वारा प्राप्त तापकारी समुद्री प्रभाव से वंचित हैं।

इन सर्द तथा गर्मप्रदेशों की महासागरों और महाद्वीपों के पूर्वी भाग में स्थिति का कारण निम्नलिखित है :—

(१) पछुवा हवायें जैसे-जैसे पूर्व की ओर पहुँचती हैं, उनका समकारी प्रभाव क्षीण होता जाता है।

(२) गर्म व शीत जलधारायें भी प्रभाव डालती हैं। शीतोष्ण कटिबंध में ठंडी जलधारायें समुद्र के पश्चिमी भाग में तापक्रम को नीचा कर देती हैं। परन्तु महासागरों के पूर्वी भाग में गर्म जलधाराओं के कारण तापक्रम ऊँचा हो जाता है। यह बात पूर्वी कनाडा और उत्तरी पश्चिमी यूरोप की तुलना द्वारा स्पष्ट हो सकती है।

(ब) जनवरी के महीने में दक्षिणी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम होता है। इसलिए जल की अपेक्षा थल भाग अधिक गर्म हो जाते हैं। तीनों दक्षिणी महाद्वीपों पर अति गर्म प्रदेश स्थित हो जाते हैं, परन्तु उनका ताप उतना अधिक नहीं होता जितना कि उत्तरी गोलार्द्ध के प्रदेशों का। इसलिए वे अक्षांश के औसत तापक्रम से बहुत अधिक

भिन्न नहीं होते। इसका प्रधान कारण यह है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में समुद्री प्रभाव अधिक प्रधान है।

दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका के पश्चिम में अपेक्षाकृत ठंडे प्रदेश पाये जाते हैं। ये प्रदेश उत्तर की तरफ बहने वाली ठंडी जलधाराओं के क्षेत्र में स्थित हैं। इस प्रकार का कोई भी प्रदेश पश्चिमी आस्ट्रेलिया में नहीं है। इसका कारण यह है कि पश्चिम

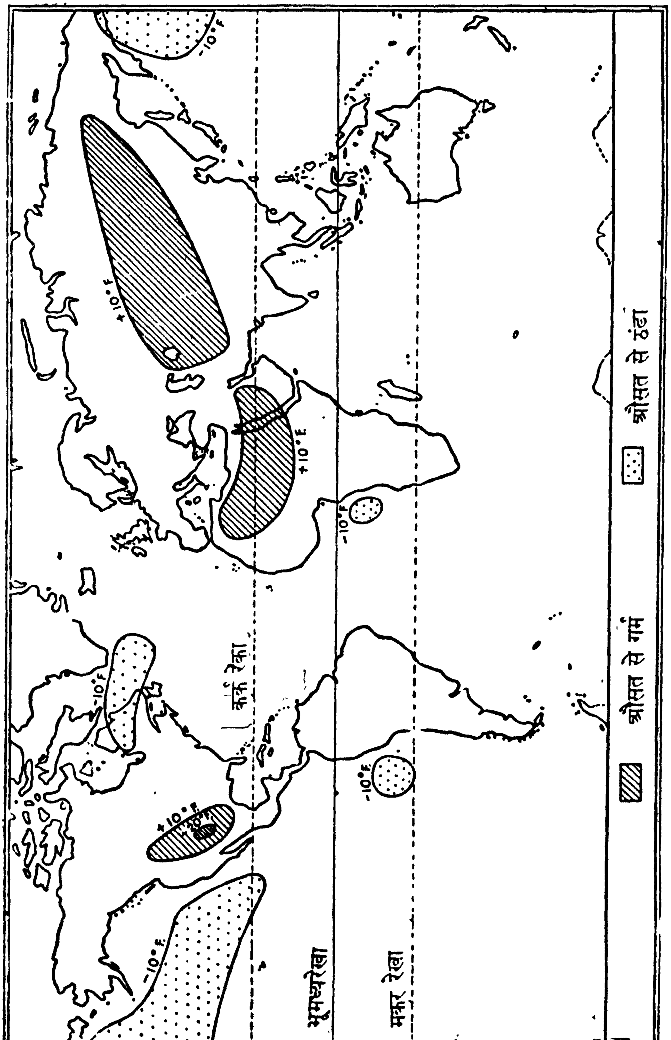

चित्र ९५—जुलाई मास में अक्षांश के औसत तापक्रम से गर्म व ठंडे प्रदेश

की ओर होकर उत्तरी आस्ट्रेलिया की तरफ बहने वाली भूमध्यरेखीय धारायें, पश्चिमी आस्ट्रेलिया की ठंडक को कम कर देती हैं।

(२) **जुलाई (चित्र ९५)** (**अ**) जुलाई में उत्तरी गोलार्द्ध में गर्मी का मौसम रहता है। इसलिए जल की अपेक्षा थल भाग अधिक गर्म हो जाते हैं।

मध्य एशिया, उत्तरी अफ्रीका और संयुक्तराष्ट्र अमरीका के पश्चिमी भाग में अत्यधिक गर्मी पड़ती है। उत्तरी प्रशान्त महासागर और उत्तरी पश्चिमी आन्ध्र महासागर में शीतल प्रदेश पाये जाते हैं। यहाँ पर फिर शीतोष्ण कटिबंध में प्रवाहित ठंडी जलधाराओं का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

(**ब**) जुलाई के महीने में दक्षिणी गोलार्द्ध में जाड़े की ऋतु होती है। स्वभावतः स्थल भाग ठंडे और महासागरीय प्रदेश अपेक्षाकृत गर्म रहते होंगे। परन्तु ऐसा इसलिए नहीं हो पाता क्योंकि दक्षिणी गोलार्द्ध में महासागरों का विस्तार बहुत अधिक है और स्थलखंड अपेक्षाकृत छोटे है। इसलिए उत्तरी गोलार्द्ध की ठंड के मुकाबले दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीप कम ही ठंडे रहते हैं। अत्यधिक सर्दी के प्रदेशों का महाद्वीपों पर प्रायः अभाव-सा है। परन्तु महासागरों पर ठंडी जलधाराओं के क्षेत्रों मे अत्यधिक सर्द प्रदेश पाये जाते हैं। ये प्रदेश दक्षिणी अमरीका और अफ्रीका के पश्चिम में स्थित हैं और वे ही है जो जनवरी में भी स्थित रहते हैं। जनवरी की तरह जुलाई में भी आस्ट्रेलिया के पश्चिम में कोई सर्द प्रदेश नही रहता।

अध्याय दस

जलवायु के तत्व

(CLIMATIC FACTORS)

२. वर्षा (Rainfall)

वर्षा की माप

वर्षा की मात्रा इंचों में नापी जाती है। एक इंच वर्षा के मतलब है कि वर्षा की वह मात्रा जो किसी समतल क्षेत्र को एक इंच की गहराई तक ढक लेगी। परन्तु इसका कुछ भी अंश भाप बन कर, बहकर या जमीन में सोख कर नष्ट नही होना चाहिए। १ फीट गहरा हिमपात १ इंच वर्षा के बराबर होता है।

एक इंच वर्षा का अर्थ है कि काफी भारी वर्षा हुई है। इंग्लैण्ड में तो एक दिन के अन्दर १ इंच वर्षा होना अनहोनी-सी बात है, परन्तु भारत जैसे देश में मानसून के दिनों मे कुछ स्थानों पर कई-कई इंच पानी गिर जाता है। शीतोष्ण कटिबंध के प्रदेशों में एक इंच वर्षा तो केवल गर्मी के तूफानों से ही होती है।

वर्षा को वर्षा-मापक यन्त्र द्वारा नापते है। इस यन्त्र में एक तो गोल बरतन होता है जो सदैव खुला रक्खा रहता है। इस पर घर या दीवारों की आड़ नही होनी चाहिए। इस बर्त्तन का सिरा कुप्पी नुमा होता है, ताकि उसमें से होकर वर्षा का जल सब का सब एक बोतल में पहुँच जाता है। प्रत्येक दिन सुबह बोतल हटा ली जाती है और उसमें इकट्ठा पानी एक खुले मुँहवाले जार मे रख लिया जाता है। इसमें इंच के निशान बने रहते हैं। एक इच के अर्थ हैं कि वर्षामापक यन्त्र के ऊपर के भाग को एक इंच तक की गहराई तक कितना जल घेर लेगा। चूँकि नपना गिलास लम्बा होता है इसलिए वर्षा की मात्रा को ०.०१ इंच तक नापा जा सकता है।

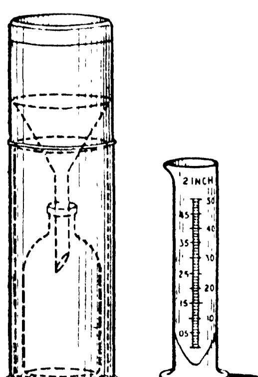

चित्र ९६—स्नोडन प्रकार का वर्षामापक यन्त्र और नापने वाला गिलास

प्रत्येक दिन की वर्षा के आँकड़े साल भर तक के लिए लगातार जोड़ लिए जाते हैं और वही एक विशेष वर्ष की वार्षिक वर्षा होती है। किसी विशेष वर्ष में वर्षा की मात्रा बहुत अधिक या बहुत कम हो सकती है। इसलिए ३०-४० साल के आँकड़ों को लेकर उनका औसत निकाल लिया जाता है। इसे वहाँ की मध्य-

मान वार्षिक वर्षा कहते हैं। तापक्रम और भार के समान इसे भी मानचित्र में अंकित कर दिया जाता है। समानवर्षा वाले स्थानों को मिलाने वाली रेखायें खींच ली जाती हैं। इन रेखाओं को **समवर्षा रेखायें** (Isohyts) कहते हैं।

वर्षा के कारण

वास्तव में बर्षा होने का सबसे प्रधान कारण जलवाष्प से संतृप्त हवा का ठंडा होना है। यह ठंडे होने की क्रिया कई प्रकार से हो सकती है। जिस वायु में भरसक जल-वाष्प होती है, उसे **संतृप्त** (Saturated) कहते हे। जब वायु संतृप्त हो जाती है और वायु में शत-प्रतिशत उतनी ही जलवाष्प रहती है, जितनी होनी चाहिये तो वायु की सापेक्ष आर्द्रता (Relative Humidity) १०० कही जाती है। यदि किसी दिये हुए तापक्रम पर वायु मे जितनी जलावष्प होनी चाहिए उसकी आधी है, तो वहाँ की सापेक्ष आर्द्रता ५० कही जायेगी। गर्म हवा शीतल वायु की अपेक्षा अधिक जलवाष्प ग्रहण कर सकती है। इसलिए एक निम्न तापक्रम वाले वायुपुञ्ज को पूर्णतया संतृप्त करने के लिए कम जलवाष्प की आवश्यकता होगी। उच्च तापक्रम वाले वायुपुञ्ज को संतृप्त करने के लिए कम-से-कम $\frac{1}{4}$ अंश और अधिक जलवाष्प चाहिए। इसलिए जलवाष्प की एक निश्चित मात्रा से एक तापक्रम पर तो सापेक्ष आर्द्रता १०० हो सकती है, परन्तु ताप बढ़ा देने पर सापेक्ष आर्द्रता केवल ७५ ही रह जाती है। जब कहीं का मौसम शुष्क या तर कहा जाता है तो उसके अर्थ वहाँ की सापेक्ष आर्द्रता से होता है। इस दशा में जलवाष्प की वास्तविक मात्रा को नहीं लेते हे। उदाहरण के लिए ७५ सापेक्ष आर्द्रता वाली गर्म हवा में कपड़े जल्दी सूख जायेंगे परन्तु १०० सापेक्ष आर्द्रता वाली ठंडी हवा इस कार्य में विफल रहेगी। इसका कारण है कि अधिक सापेक्ष आर्द्रता वाली हवा तो संतृप्त है और उसमें और अधिक जलवाष्प ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती। दूसरी बात यह है कि गर्म हवा में शीतल हवा की अपेक्षा अधिक जलबाष्प ग्रहण करने की ही शक्ति नहीं होती बल्कि उच्च तापक्रम वाली संतृप्त हवा के ठंडे होने पर वर्षा अधिक होती है। उदाहरण के लिए सहारा रेगिस्तान के ऊपर एक घनफुट वायु में अधिक जलवाष्प ग्रहण हो सकता है परन्तु उतने ही आयतन की नम हवा में वह शक्ति नहीं होती। इसी प्रकार जब संतृप्त हवा का तापक्रम ९०° फा० से ८०° फा० हो जाता है, तो वर्षा कहीं अधिक होगी और ५०° फा० तापक्रम की वायु के १०° फा० कम हो जाने पर उतना पानी नहीं गिरेगा।

इस तथ्य को चित्र ९७ द्वारा भली-भाँति समझा जा सकता है।

इस चित्र में जलवाष्प द्वारा वायु की संतृप्तता की वक्ररेखा दिखलाई गई है। समतल धुरी या अक्षरेखा तापक्रम बतलाती है और लम्ब अक्षरेखा से जलवाष्प की मात्रा का ज्ञान होता है। ९०° से ८०° तापक्रम हो जाने पर हुई वर्षा की मात्रा मोटी लम्ब रेखा 'अ ब' द्वारा दिखलाई गई है। ५०° से ४०° फा० हो जाने पर हुई वर्षा की मात्रा मोटी लम्ब रेखा 'क ख' द्वारा दिखलाई गई है। यह सिद्धान्त बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि

इसके द्वारा उष्ण-कटिबंधीय प्रदेशों मे भारी वर्षा समझ में आ जाती है। इससे यह भी समझ में आ जाता है कि ध्रुवीय प्रदेशों और उच्च पर्वतों पर वृष्टि क्यों कम होती है। इसका कारण यह है कि जिन हवाओं में शुरू से ही कम जलवाष्प रहता है, उन्हें चाहे कितना भी ठंडा क्यों न कर दिया जाय वर्षा अधिक नहीं होगी।

बादलों में ठंडी हुई जलवाष्प की बूँदें रहती है। केवल बहुत ऊँचे सिरस मेघ में हिम के स्फट रहते है। जब ये बादल हजार फीट मोटे हो जाते है, तो ये छोटी-छोटी बूँदें इकट्ठी होकर दौड़ने लगती है और उनसे और बड़ी बूँदें बन जाती है। ये बड़ी बूँदें अधिक समय तक हवा में लटकी नही रह सकती और वर्षा के रूप मे गिर पड़ती है।

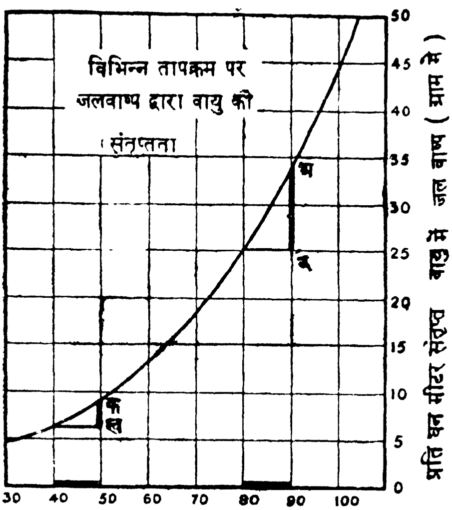

चित्र ९७—वायु की संतृप्तता।

वायु के ठंडा होने पर वर्षा, हिमपात या ओलों के रूप में वृष्टि करना कई बातों पर निर्भर रहता है। यह क्रिया (१) प्राकृतिक बनावट, (२) संवाहन धाराओं (convection currents) और (३) चक्रवातों या गर्तचक्रों (cyclones and depressions) द्वारा होती है। इन गर्तचक्रों के उष्ण-कटिबंधीय रूप को चक्रवात कहते है, जो तूफान सदृश होते है।

(१) **प्राकृतिक बनावट**—जैसे-जैसे हम ऊपर की ओर उठते है तापक्रम गिरता जाता है। यदि कोई हवा जलवाष्प से लदी हुई समुद्र की ओर से आती है और उसके मार्ग में कोई ऊँची पहाड़ी श्रेणी आ जाती है तो हवा को ऊपर उठना पड़ता है, और इस प्रकार यह हवा की ठंडी परतों में पहुँच जाती है। हवा में जल का अंश घनीभूत होकर वर्षा के रूप में नीचे आ पड़ता है। इसीलिए पर्वतीय प्रदेशों का जलवायु तर रहता है। पर्वतों पर ८०–९० इंच तक वर्षा होती है, परन्तु उनके आधार पर स्थित मैदानों में वर्षा की मात्रा ३०–४० इच से अधिक नही हो पाती। अपेक्षाकृत शुष्क प्रदेशों में स्थित निम्न पहाड़ियों पर आस-पास के मैदानों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है। ब्रिटिश द्वीपसमूह के मैदानों में यह अन्तर स्पष्ट देखा जा सकता है। वहाँ के टीलों पर अपेक्षाकृत कुछ अधिक वर्षा होती है।

(२) **संवाहन विधि** (Convection)—गर्म हवा हल्की होने के कारण स्वभावतः ऊपर को उठती है। जैसे यह ऊपर को उठती है, इसका तापक्रम कम

होता जाता है और ठंडी होकर वर्षा करती है। इस दशा में वर्षा अपने आप होती है, चाहे कोई पर्वत पास में हो या नहीं। चूंकि भूमध्यरेखा पर वायु हमेशा गर्म रहती है, इसलिए यह बराबर ऊपर को उठा करती है और प्रायः प्रत्येक दिन ही वर्षा होती है। गर्मी के मौसम में, उत्तरी गोलार्द्ध के महाद्वीपों के आन्तरिक भागों का तापक्रम बहुत ऊँचा हो जाता है। इसलिए इन प्रदेशों की गर्मी की वर्षा प्रधानतः संवाहन विधि द्वारा ही होती है। तूफानों के कारण होनेवाली वर्षा भी इसी विधि से होती है। बहुत अधिक गर्म हवा ऊपर को उठकर ठंडी होकर वर्षा करती रहती है। इंग्लैण्ड में ७६ प्रतिशत तूफान, जून, जुलाई और अगस्त के महीनों में आते रहते हैं। और इनमें से ३० प्रतिशत केवल जुलाई में आते हैं। साधारणतया यह देखा जाता है कि सबसे गर्म महीनों में सबसे अधिक तूफान आते हैं। दूसरी बात यह है कि बड़े-बड़े शहरों और औद्योगिक केन्द्रों में गर्मी की अधिकता के कारण तूफान अधिक आते हैं।

(३) **गर्तचक्र** (Depressions)—शीतोष्ण कटिबंध की पछुवा हवाओं की पेटी में भार व हवाओं के व्यवस्थित रूप में अक्सर रोक पड़ जाती है। ये विक्षोभ या रोक गर्तचक्र तथा विपरीत चक्रवात कहे जाते हैं। गर्तचक्रों के आने पर वर्षा होती है, परन्तु विपरीत चक्रवात में सुन्दर मौसम आता है।

गर्तचक्र निम्नभार के विस्तृत क्षेत्र होते है जो कि इंग्लैण्ड में आन्ध्र महासागर की ओर से आते है और उनके साथ वर्षा व तूफानी मौसम आता है। भूमध्यरेखा की गर्म हवा और ध्रुवों की ठंडी हवा के मिलने से ये गर्तचक्र बनते हैं। गर्म हवा हल्की होने के कारण भारी ठंडी हवा के ऊपर चढ़ती है, और घनीभवन क्रिया से वर्षा होती है। चूंकि ये गर्तचक्र महासागर को पार करते हैं इसलिए इनके द्वारा सबसे अधिक वर्षा अमरीका और ब्रिटिश द्वीप के बीच में होती है। महासागर के ऊपर होने वाली इस वर्षा का श्रेय किसी प्रकार के पर्वतों को नहीं है।

जब कोई गर्तचक्र आता है बैरोमीटर का पारा नीचे को जाने लगता है। वायु का भार कम होने लगता है और पारे का नीचे को उतरना वर्षा का आगमन बतलाता है। चक्रवात प्रायः अण्डाकार होते हैं। एक सिरे से दूसरे सिरे तक इनकी लम्बाई बहुधा एक हज़ार मील तक होती है। मध्य में निम्न भार होता है और किनारों पर उच्च भार। हवायें निम्न भार की तरफ अन्दर की ओर चलती हैं परन्तु उनकी दिशा उत्तरी गोलार्द्ध में केन्द्र से दायीं ओर को मुड़ जाती हैं। इस मुड़ने का प्रधान कारण पृथ्वी का आवर्तन है। दक्षिणी गोलार्द्ध में ये अपनी बायीं ओर को मुड़ जाती है। इस नियम को **फेरल का नियम** (Ferrel's Law) कहते हैं। इस प्रकार हवा का रुख सम-भार-रेखाओं के आर-पार अर्द्धव्यास के समान होता है।

शीतोष्ण कटिबंध के बहुत-से गर्तचक्रों में **गर्म वृत्तांश** (Warm Sector) होता है। इस गर्म वृत्तांश में गर्म वायुराशि शीत वायुराशि के बीच प्रवाहित होती रहती है, जैसा कि चित्र ९८ में दिखलाया गया है।

जैसे-जैसे गर्तचक्र आगे बढ़ता है, गर्म वृत्तांश भी आगे बढ़ता है।

भूमि के धरातल पर गर्म वायु की सीमा को **गर्म सीमान्त** (Warm Front) कहते हैं। चूँकि इसके पहुँचने पर तापक्रम बढ़ जाता है, इसीलिए इसको यह नाम दे दिया गया है। भूमि के धरातल पर सबसे पीछे की सीमा को **शीत सीमान्त** (Cold Front) कहते हैं क्योंकि इसके गुजरने पर तापक्रम फिर गिरने लगता है।

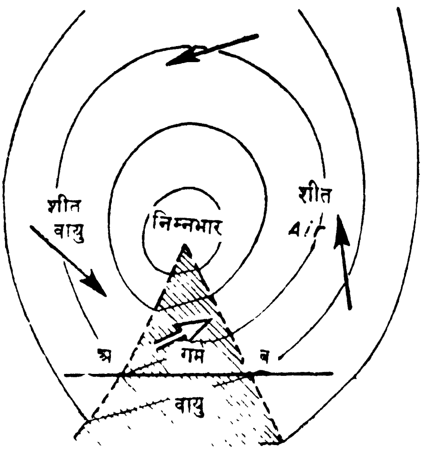

चित्र ९८—गर्म वृत्तांश वाला गर्तचक्र

गर्म सीमान्त की अपेक्षा शीत सीमान्त तेजी से आगे बढ़ता है। इस लिए अक्सर गर्म सीमान्त खंडित हो जाता है और भूमि से एकदम ऊपर को उठ जाता है। चित्र ९९ में चित्र ९८ की 'अ ब' रेखा का खंड-चित्र प्रस्तुत किया गया है। उससे स्पष्ट है कि गर्म व शीतवायु को अलग करने वाली सीमान्त रेखा लम्बवत् नहीं है बल्कि ढाल् है। अग्रिम सीमा पर गर्म हवा धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर ऊपर को उठती रहती है। इनका ढाल सम्भवतः १५० में १ होता है। परन्तु पिछली सीमा पर ठंडी गर्म हवा हवा के नीचे से काफी तेजी से काटती है। वहाँ का ढाल ८० में १ तक होता है और वह इतना नियमित भी नहीं होता।

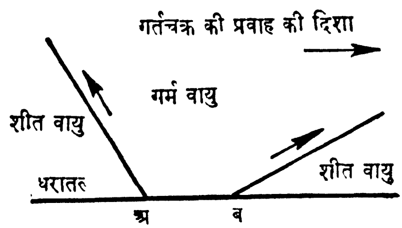

चित्र ९९—गर्म वृत्तांश के बीच से खींचा गया खंड चित्र

आगे वाली सीमा पर ऊपर को उठती हुई गर्म हवा के कारण बादलों की मोटी तह-सी बन जाती है। गर्म सीमान्त के आगमन से पहिले ही भारी वर्षा होती है।

शीत सीमान्त के आने पर भारी वर्षा थोड़े ही समय तक होती है। थोड़े समय तक तूफानी दशायें रहती हैं और फिर आसमान साफ हो जाता है, चाहे इधर-उधर

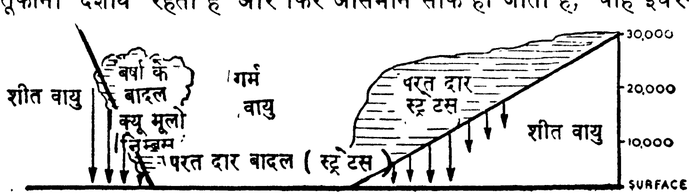

चित्र १००—गर्म वृत्तांश वाले गर्त चक्र से सम्बन्धित वर्षा और बादल

बूंदा-बाँदी क्यों न हो जाये। गर्म वृत्तांश में आसमान प्रायः बादलों से घिरा रहता है और हल्की फुहार पड़ती रहती है, परन्तु वर्षा नहीं होती।

जब कोई गर्म वृत्तांश पृथ्वी के धरातल से बिल्कुल ऊपर उठ जाता है, तो उस दशा को **सीमान्त मिलन** (Occlusion) कहते हैं। ऐसा होने पर घने बादल छा जाते हैं और भारी वर्षा होती है। ऋतु चित्रों पर गर्म व शीत सीमान्त तथा सीमान्त मिलन को स्पष्ट दिखलाया होता है।

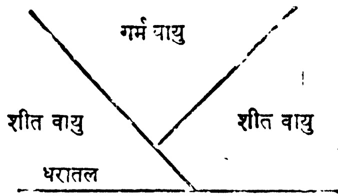

चित्र १०१—सीमांत मिलन का लम्बवत खंड चित्र

विपरीत चक्रवात (Anticyclone) उच्च भार प्रदेश होते हैं और इन से सम्बन्धित मौसम साफ और सुहावना होता है। गर्मी में गर्म मौसम तथा जाड़े में साफ पालारहित मौसम मिलता है। कभी-कभी जाड़े के विपरीत चक्रवात कुछ दिन तक बने रहते हैं और बादलों की एक समान सतह छायी रहती है। ऐसे समय पर घने कोहरे भी बने रह सकते हैं, क्योंकि ताप विलोमता हो जाती है। जैसे विपरीत चक्रवात आगे को बढ़ता है, बैरोमीटर में पारा ऊपर को चढ़ने लगता है। इसलिए इंग्लैण्ड में बैरोमीटर में पारा चढ़ने का अर्थ होता है कि साफ मौसम रहेगा और वर्षा की आशंका कम है। कभी-कभी दो गर्तचक्र के बीच में उच्च भार की संकरी पट्टी के आ जाने से भी बैरोमीटर ऊपर को उठने लगता है। ऐसी दशा में मौसम सिर्फ थोड़ी ही देर के लिए सुहावना होता है क्योंकि फौरन ही दूसरा गर्तचक्र आ जाता है और वर्षा होने लगती है।

विपरीत चक्रवात का उच्च भार केन्द्र चारों तरफ निम्न भार से घिरा रहता है और केन्द्रीय उच्च भार से बाहर की तरफ हवायें चलती है। परन्तु इनकी दिशा फेरल के नियम के अनुसार ही निर्धारित होती है।

वायु की दिशा तीर चिन्हों द्वारा दिखलाई जाती है। वायु की शक्ति को ब्यूफार्ट मानदण्ड के अनुसार तीर में पंख की संख्या बढ़ाकर दी जाती है। निम्नलिखित से यह स्पष्ट हो जायेगा—

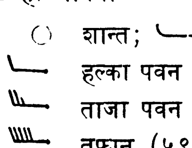

शान्त; मन्द पवन (२ मील प्रति घण्टा)
हल्का पवन (५ मील प्रति घण्टा)।
ताजा पवन (२१ मील प्रति घण्टा)।
तूफान (५९ मील प्रति घण्टा)।

आसमान की आकृति, वृष्टि का प्रकार, दृश्यता तथा भूमि सम्बन्धी विद्युत रूपों को ब्यूफार्ट अक्षरों द्वारा व्यक्त करते हैं:—

b=नीला आकाश।

c=मेघाच्छादित आकाश।

o=मेघों से घिरा आकाश।

g=अन्धेरा आकाश।

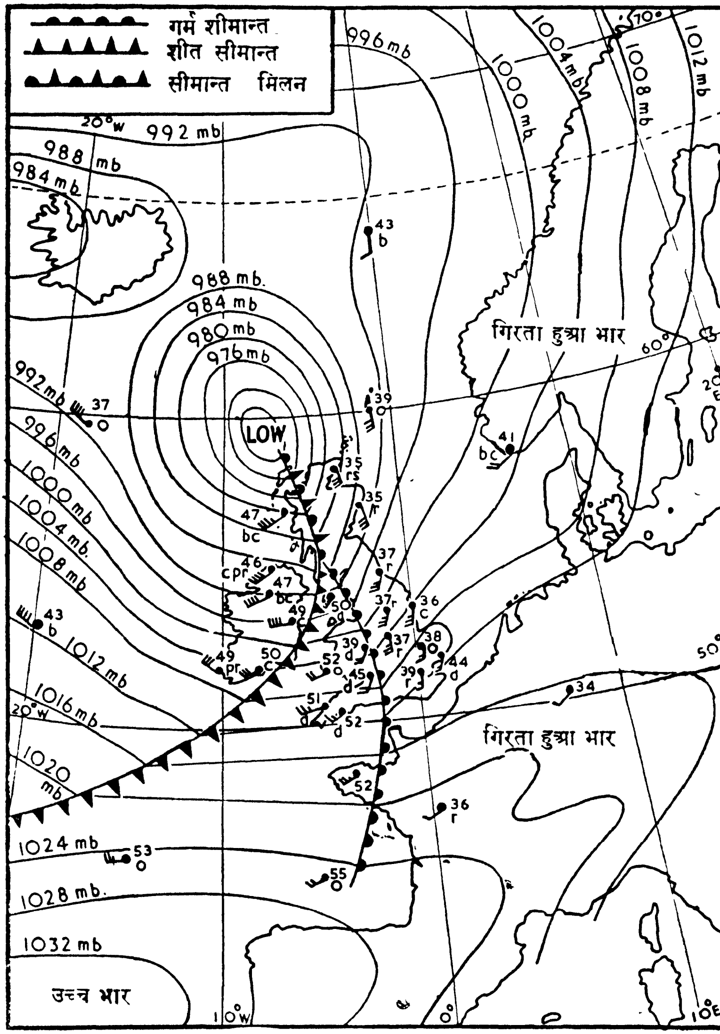

चित्र—१०२

चक्रवातीय दशायें—३० दिसम्बर को ६ बजे। एक महत्वपूर्ण गर्तचक्र जो उत्तरी-पश्चिमी स्काटलैण्ड पर केन्द्रित था अब उत्तर-पूर्व को तरफ बढ़ रहा है और सम्बन्धित गर्म वृत्तांश इंग्लैण्ड और वेल्स पर से गुजरेगा। वायु सोमा पर मुड़ रही है। गर्म सीमान्त के आगे वर्षा हो रही है। गर्म वृत्तांश में हल्की फुहार पड़ रही है। शीत सीमान्त के पीछे बादल तितर-बितर हैं और वर्षा हो रही है। गर्म वृत्तांश में उससे आगे की अपेक्षा तापक्रम बहुत ऊँचे हैं। गर्म वृत्तांश के पीछे की हवा इतनी ठंडी नहीं है जितनी कि उसके सामने की। इसका कारण यह है कि यह अपेक्षाकृत गर्म सागर के ऊपर से होकर आ रहा है।

r = वर्षा

s = बर्फ (हिम) ।

rs = पाला ।

p = बूँदाबाँदी ।

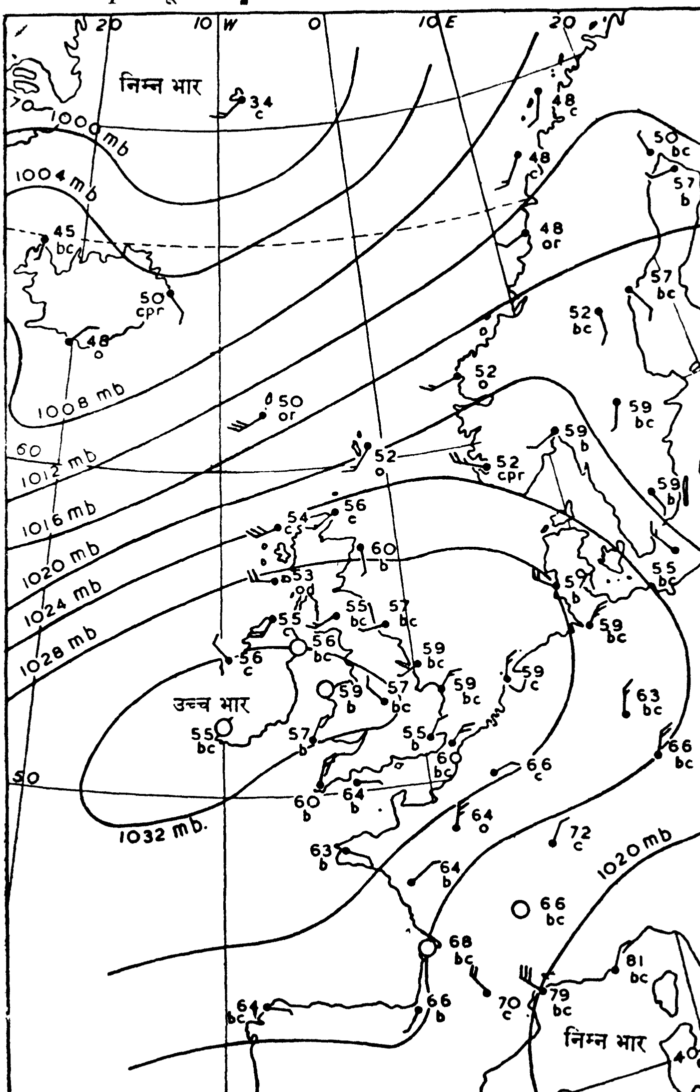

चित्र १०३—विपरीत चक्रवात की दशायें—१७ जुलाई को ७ बजे। इस अवसर पर कई दिन तक सुहावना मौसम रहा।

a = जलफुहार।
h = ओले।
e = बिजली।
t = बादलों की गरज।
f = कुहरा।
m = धुँध।
v = बहुत अच्छी दृश्यता।
w = ओस।
n = जमी हुई ओस।

वायुभार को समभार रेखाओं द्वारा दिखलाते हैं। इनके बीच का अन्तर मिलीबार में दिखलाया जाता है और बैरोमीटर की दशा पूर्णतया लिखी रहती है। १००० मिलीबार का वायुभार = २९.५३ इंच के और ब्रिटिश द्वीप पर वायुभार प्रायः ९७० मिलीबार से लेकर १०३० मिलीबार तक रहता है यद्यपि बीच-बीच में थोड़े समय के लिए बहुत निम्न या बहुत उच्च भार हो सकता है।

ध्यान देने की बात तो यह है कि वायु भार का उतार-चढ़ाव जितना ही अधिक होगा, वायु की शक्ति उतनी ही अधिक होगी और समभार रेखायें भी बहुत पास-पास होंगी। निरीक्षण केन्द्रों पर दी हुई संख्यायें फा० में तापक्रम बतलाती हैं। चित्र नं० १०२ से स्पष्ट है कि दक्षिणी पश्चिमी आयरलैण्ड में वैलेंशिया स्थान का तापक्रम ४९° फा० है और वायुभार १००६ मिलीबार है। हवा पश्चिम, उत्तर-पश्चिम से प्रवाहित होती है। वर्षा की झड़ी रह-रह कर लग जाती है। प्रतिदिन निकलने वाले ऋतु चित्रों में हवायें, वायुभार तथा तापक्रम इसी प्रकार से दिये रहते हैं। परन्तु ब्युफार्ट अक्षरों के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय लाक्षणिक संकेतों द्वारा मौसम को वर्णित किया जाता है। प्रत्येक मानचित्र के नीचे कोने में इन संकेतों का निर्देश दिया रहता है।

किसी स्थान पर वर्षा तो उपर्युक्त किसी एक कारण से हो सकती है परन्तु वर्षा की मात्रा कुछ अन्य तत्वों तथा दशाओं पर निर्भर रहती है। प्रायः तटीय प्रदेशों में वर्षा अधिक होती है। अन्दर के भागों की अपेक्षा यह वर्षा कही ज्यादा होती है और सालभर होती रहती है परन्तु अन्दर के हिस्सों में बर्षा गर्मी के महीनों में ही होती है।

यदि प्रचलित हवायें समुद्र की तरफ से आती हैं, तो वर्षा की मात्रा कहीं अधिक होगी परन्तु थल की तरफ से आने वाली प्रचलित हवायें उतनी वर्षा नहीं कर पातीं। आस्ट्रेलिया के पूर्वी और पश्चिमी तटों के बीच का अन्तर इसका स्पष्ट उदाहरण है। दक्षिणी चिली और पैटागोनिया के बीच वर्षा की मात्रा का अन्तर इसी कारण है।

समुद्र की ओर से चलने वाली हवायें यदि गर्म अक्षांशों की तरफ जाती है, तो वे उतनी अधिक वर्षा नहीं कर पातीं जितनी कि वे उस समय करती हैं, जबकि वे ठंडे अक्षांशों की तरफ अग्रसर होती हैं। शीत शीतोष्ण कटिबंध की पछुवा हवायें इसीलिए अधिक वर्षा कर पाती हैं परन्तु व्यापारिक हवायें अयन रेखाओं की तरफ चलती हैं इसलिए अधिक बर्षा नहीं कर पातीं।

निम्न भूमियों की अपेक्षा पर्वतीय प्रदेशों में वर्षा अधिक होती है। वायु-अभिमुख ढालों की अपेक्षा वायु के सामने वाले ढालों पर वर्षा की मात्रा अधिक रहती है। आसाम की खासी पहाड़ियाँ इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। पूर्वी पाकिस्तान के मैदान में स्थित सिलहट में मानसून के दिनों में १०६ इंच वर्षा होती है, परन्तु समुद्रतल से ४४००

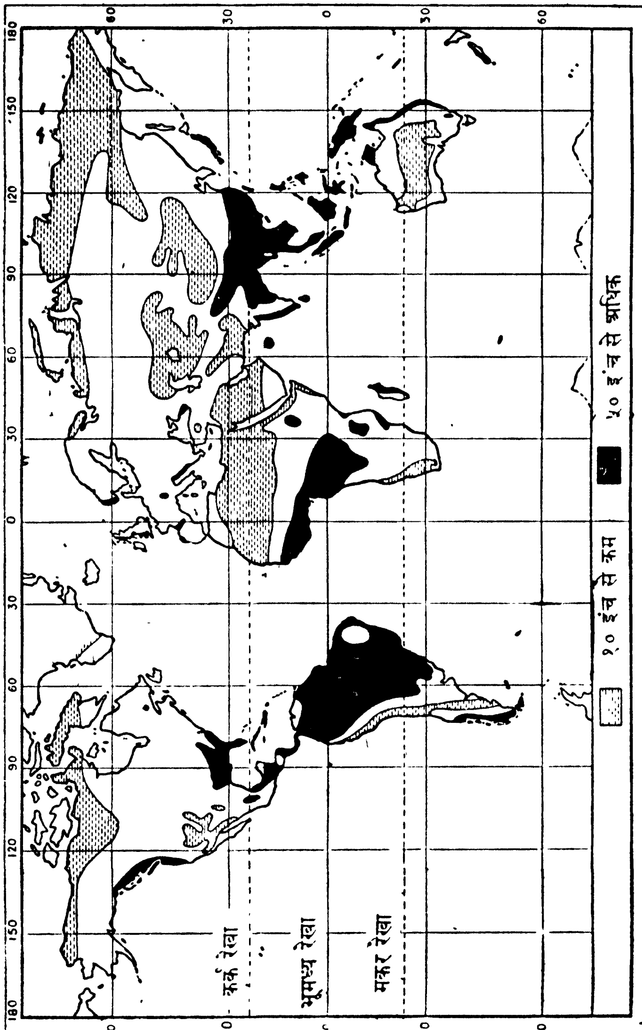

चित्र १०४—५० इंच वार्षिक से ऊपर वाले अधिक वर्षा वाले प्रदेश और १० इंच वार्षिक से कम वाले न्यून वर्षा के प्रदेश।

फीट की ऊँचाई पर स्थित चेरापूंजी में कम-से-कम तिगुनी वर्षा होती है। शीलांग, आसाम की राजधानी, चेरापूंजी से केवल १५ मील ही दूर है, परन्तु पहाड़ के वायु अभिमुख ढाल पर होने से वहाँ पर वर्षा केवल ५५ इंच ही होती है।

मरुस्थली भागों में भी ऊँचाई का प्रभाव देखने में आता है। अरब के मध्य मे नेज्द स्थान काफी ऊँचा है। इसलिए वहाँ पर इतनी वर्षा होती है कि पशुचारण का काम हो सके। परन्तु पठार के निम्न भागों में दक्षिणी और उत्तर के हिस्से ऐसे हैं कि वहा रहना मुश्किल है। इसी प्रकार सहारा के रेगिस्तान के बिल्कुल मध्य में टिबस्टी उच्च-प्रदेश पर गर्मी में थोड़ी वर्षा होती है और जाड़ों में चोटियों पर हिम छा जाती है।

जब समुद्री हवाये किसी गर्म जलधारा पर से होकर गुजरती है, तो उनमें अधिक जलवाष्प आ जाती है। इस प्रकार तटीय प्रदेशों में वर्षा की मात्रा अधिक हो जाती है। दक्षिणी-पूर्वी संयुक्त राज्य अमरीका इसका स्पष्ट उदाहरण है। परन्तु तटीय प्रदेशों की तरफ आने वाली हवायें यदि ठंडी जलधारा पर से होकर गुजरती है, तो जल वाष्प ग्रहण करने की कौन कहे, वे वर्षा कर देती है और जब तट पर पहुँचती है तो कम वर्षा कर पाती हैं। दक्षिणी अमरीका में ठंडी जलधाराओं का प्रभाव विशेष अधिक रहता है। उत्तरी चिली और पीरू में तथा दक्षिणी अफ्रीका के नामिब रेगिस्तान में मरुस्थली दशाओं का प्रधान कारण यही है।

किसी स्थान की वर्षा की दशा को अध्ययन करने के लिए वहाँ की वार्षिक वर्षा को ही नहीं देखना होता, बल्कि उनका मौसम के अनुसार वितरण पर भी ध्यान देना होता है। तापक्रम की दशाओं को भी देखना चाहिए क्योंकि उच्च अक्षांशों मे २० इंच की वर्षा अन्न उत्पादन के लिए काफी होती है। परन्तु उष्ण कटिबंध में यह मात्रा बहुत ही अपर्याप्त रहेगी। फिर, अक्सर होने वाली हल्की वर्षा की अपेक्षा तूफानी घन-घोर वर्षा अधिक फलदायक नहीं होती। यदि वृष्टि हिमपात के रूप में होती है तो उसे अधिक लाभ हो सकता है क्योंकि भूमि का तापक्रम इतना नीचे नहीं आ सकता और बसन्त ऋतु मे जब बर्फ पिघलती है, तो उपयुक्त नमी का प्रबन्ध हो जाता है। कनाडा और साइबेरिया के विस्तृत वनप्रदेश इसी पर निर्भर रहते है।

इस प्रकार वर्षा की मात्रा, मौसमी वितरण और वर्षा का प्रकार सभी बातें उत्पादन तथा मानवी क्रियाओं को प्रभावित करती हैं।

अध्याय ग्यारह

जलवायु के तत्व

(CLIMATIC FACTORS)

३—वायुभार और हवायें (Pressure and Winds)

वायुभार की माप

वायुमण्डल का भार और दबाव बैरोमीटर यन्त्र द्वारा नापा जाता है। समुद्रतल पर बैरोमीटर का पारा लगभग ३० इंच या ७६० मिलीमीटर ऊँचा रहता है। आधुनिक ऋतुचित्रों पर अंकित इकाई १ बार है। १ बार को १००० मिलीबार में बाँट देते हैं। बैरोमीटर की २९.५३ इंच ऊँचाई के बराबर एक बार होता है। समुद्रतल पर बैरोमीटर का पारा शायद ही कभी २८ इंच से कम और ३१ इंच से अधिक गिरता या उठता है। मिलीबार में इसे क्रमशः ९५० मिलीबार तथा १०५० मिलीबार कह सकते है।

निर्दिष्ट समय पर प्रतिदिन वायुभार को नापा जाता है। कई साल के दैनिक आँकड़ों को लेकर उनका औसत निकाल लिया जाता है जैसा कि मध्यमान तापमान निकालने में करते हैं। भार दिखलाने वाले मानचित्रों में समान भार वाले स्थानों को रेखाओं द्वारा मिला दिया जाता है। एक ही समय पर समान भार वाले सभी स्थानों को मिलाने वाली रेखा को समभार रेखा कहते हैं। जब बैरोमीटर में पारे की ऊँचाई ३० इंच या उससे अधिक होती है, तो वायुमण्डल की दशा को "उच्च भार" (High pressure) कहते है। जब बैरोमीटर में पारे की ऊँचाई २९ इंच या उससे कम होती है, तो उसे निम्नभार कहते है।

किसी पर्वत के ऊपर चढ़ते समय बैरोमीटर में पारा उतरने लगता है। इसका कारण यह है कि ऊपर हवा की मात्रा ही नहीं कम होती बल्कि हवा का घनत्व भी कम हो जाता है। १८,००० फीट या ३$\frac{1}{2}$ मील की ऊँचाई पर बैरोमीटर का पारा केवल १५ इंच या (५०० मिलीबार) होता है क्योंकि आधे से अधिक वायुमण्डल (भार के अनुसार) इस तल के नीचे रहता है और आधा इसके ऊपर होता है। इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि वायुमण्डल की मोटाई सात मील है क्योंकि हम जितना ही पृथ्वी से ऊपर को उठते हैं वायु का घनत्व कम होता जाता है। २०० मील की ऊँचाई पर भी वायु के चिह्न मिल जाते हैं परन्तु समताप मण्डल (Stratosphere) के विषय में हमारा ज्ञान सीमित है। अभी तक मनुष्य केवल १३·७ मील की ऊँचाई तक ही पहुँच पाया है।

विश्व-व्यापी हवायें (Planetary Winds)

यद्यपि वायु का भार स्थान-स्थान पर दिन-प्रति-दिन बदलता रहता है, भूमंडल में वायुभार के वितरण की एक निश्चित व्यवस्था है। पृथ्वी का सबसे गर्म भाग भूमध्य-रेखा के समीप ही पाया जाता है। इस प्रदेश में वायु अन्य स्थानों की अपेक्षा अधिक गर्म हो उठती है। गर्म हवा हमेशा ऊपर को उठती है।

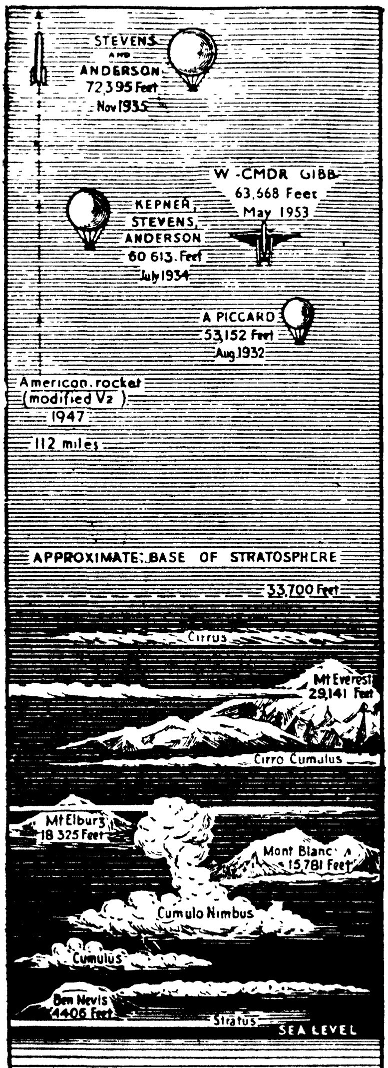

चित्र १०५—वायुमण्डल की विभिन्न ऊँचाइयाँ और बादल तथा पर्वत।

अतः चित्र १०६ में 'अ' स्थान की वायु 'अ ब' दिशा में उठेगी। इस उठती हुई हवा का स्थान लेने के लिए उत्तर और दक्षिण से भूमध्यरेखा की ओर वायु की धारायें अग्रसर होने लगती है। बाहर से आयी हुई यह हवा भी गर्म होकर ऊपर को उठने लगती है। कालान्तर में ऊपर को उठती हुई यह हवा ठंडी हो जाती है और तीरों की दिशा मे उत्तर दक्षिण की ओर फैलकर 'क' और 'ख' स्थानों पर धीरे-धीरे उतरती है। (क और ख ३०° उत्तरी व दक्षिणी अक्षांश है)। वहाँ से इसका कुछ अश तो ध्रुवों की तरफ चला जाता है और कुछ भूमध्यरेखा की तरफ।

वायु की इन धाराओं को **संवाहन धारायें** (convection currents) कहते है। पृथ्वी के धरातल पर चलने वाली वायु धाराओं को हवा कहते है। यदि पृथ्वी पर जल-थल का वितरण बराबर से होता तो चित्र में दिखलाई गई बिन्दु अकित तीरों की भाँति चार हवाये उत्पन्न होतीं। परन्तु पृथ्वी के आवर्त्तन के कारण ये हवायें उत्तरी गोलार्द्ध में अपने दाहिनी तरफ और दक्षिणी गोलार्द्ध में अपने बाँयी तरफ मुड़ जाती है। यह जानने के लिए कि कौनसी दिशा बायी है और कौन दाहिनी हमको उस तरफ मुँह करके खड़ा होना चाहिए जिधर से

हवा आ रही हो। इस प्रकार हवा के मुड़ जाने से विश्वव्यापी हवाओं की दिशा वैसी ाती है जैसी कि चित्र नं० १०७ में दिखलाई गई है।

भूमध्यरेखा पर जहाँ हवा ऊपर उठती रहती है, वायु का भार न होता है। इस शान्त मण्डल को ड्रम्म कहते हैं। जहाँ हवा उतरती भारी होती है, वहाँ वायु का भार क होता है। उच्च भार के इन ों को घोड़े का अक्षांश कहते हैं। ये सदैव उच्च भार से निम्न भार ओर चला करती हैं। उत्तर तथा ण की तरफ से भूमध्यरेखा की चलने वाली हवाओं को क्रमशः ी पूर्वी तथा दक्षिणी पूर्वी व्या- क हवायें कहते हैं। इनका नाम

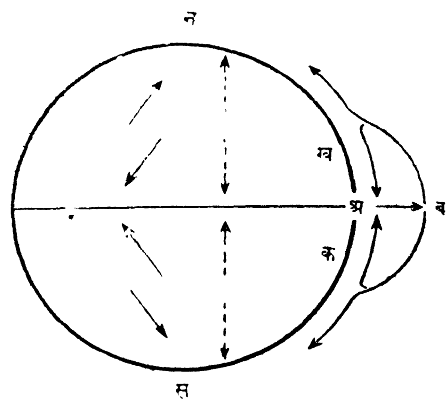

चित्र १०६

लिए नहीं पड़ा कि ये व्यापार में कोई सहायता पहुँचाती है, बल्कि इसलिए कि ये सदैव ही मार्ग पर चलती रहती हैं। उच्च भार प्रदेशों से ध्रुवों की तरफ चलने वाली ओं को परिवर्त्तनशील पछुवा हवायें कहते हैं। उत्तरी गोलार्द्ध में ये दक्षिण पश्चिम से

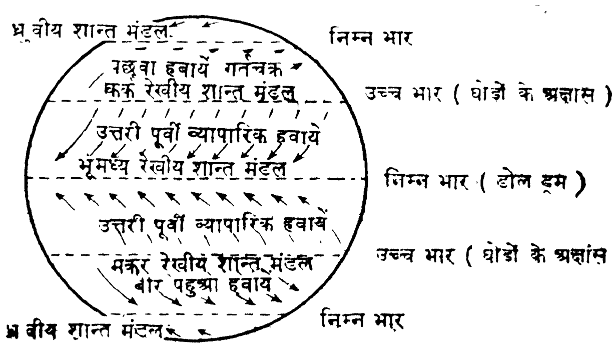

चित्र १०७—स्थायी हवायें और वायु धारायें।

दक्षिणी गोलार्द्ध में उत्तर पश्चिम से चलती है। दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध में भूमि का इतना कम है कि पछुवा हवायें बिना किसी रूकावट के बहुत जोरों से चलती हैं। लिए ४०° से ५०° दक्षिणी अक्षांश प्रदेश में इनको गरजती हुई चालीसा कहते हैं। से ६०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच इनको भयावनी पचासा कहते हैं।

दुर्भाग्य से विश्व-व्यापी वायुभार और हवाओं की इस व्यवस्था में जल-थल ति के फलस्वरूप विभिन्न ताप व शीत के कारण कई परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं।

समुद्री व स्थल पवन (Sea and land Breezes)

दिन के समय समुद्र की अपेक्षा स्थल अधिक गर्म हो जाता है और फलतः स्थल के ऊपर की वायु ऊपर को उठती है। शान्त गर्म मौसम में स्थल के ऊपर उठती हुई वायु का स्थान लेने के लिए समुद्र की ओर से वायु की शीतल धारा चलने लगती है। यह समुद्री पवन है जो प्रधानतः दिन के समय चलता है। रात के समय स्थल शीघ्र ठंडा हो जाता है और फलतः समुद्र की अपेक्षा अधिक ठंडा हो जाता है। शांत मेघरहित मौसम में वायु की धारा उलट जाती है और समुद्र की तरफ स्थल की ओर से हवा चलने लगती है।

शान्त साफ मौसम में ये पवन इंग्लैण्ड के तटीय भागों मे अनुभव किया जा सकता है। पूर्वी भूमध्यसागर के तटीय प्रदेशो मे ही यह पवन विशेष रूप से प्रधान रहता है। परन्तु समुद्र से अधिक दूर अन्दर इनका असर नही हो पाता।

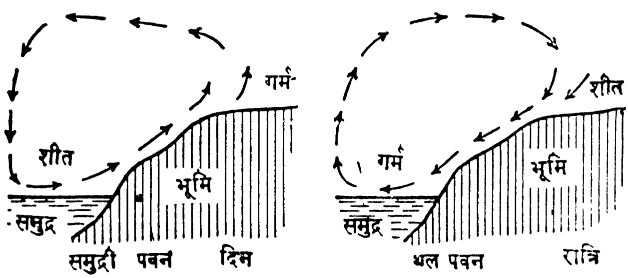

चित्र—१०८

मानसून हवायें (Monsoon Winds)

महाद्वीपों के आर-पार चलने वाली समुद्री और स्थलीय पवन को मानसून कहते है। मानसून शब्द अरबी भाषा के 'मौसम' शब्द से उत्पन्न है। इन हवाओं मे दिन-प्रतिदिन परिवर्त्तन नहीं होता बल्कि मौसम-मौसम के अनुसार अदल-बदल होती रहती है। गर्मी का मानसून जाड़े के मानसून से भिन्न होता है। गर्मी मे हवाये समुद्र से स्थल की ओर चलती है परन्तु जाड़े में स्थल से समुद्र की ओर।

मानसून हवाओं की व्यवस्था का सम्बन्ध दक्षिणी-पूर्वी एशिया, पूर्वी अफ्रीका और उत्तरी आस्ट्रेलिया से है। मानसून के लिए निम्नलिखित दशाओं का होना आवश्यक है :—

(अ) विस्तृत भूखंड।

(ब) ऊष्ण तथा गर्म शीतोष्ण कटिबंध में पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई तट रेखा।

(स) स्थलखंड के भूमध्यरेखीय तरफ विस्तृत महासागर।

गर्मी के मौसम में समुद्र की अपेक्षा स्थलखंड अधिक गर्म हो जाता है। अतएव समुद्र के ऊपर उच्च भार और स्थलखंड के ऊपर निम्नभार हो जाता है। हवायें उच्च

भार से निम्न भार की ओर चलती है। हवायें समुद्र से स्थलखंड की ओर चलने लगती हैं, और इस कारण उनमें नमी रहती है।

जाड़े के मौसम में दशायें बिल्कुल उलट जाती है। समुद्र की अपेक्षा स्थलखंड अधिक ठंडा हो जाता है। अतएव स्थल के ऊपर उच्च भार हो जाता है और समुद्र के ऊपर निम्न भार प्रदेश बन जाता है। हवायें उच्च भार से निम्न भार की ओर चलती हैं—स्थलखंड से समुद्र की ओर चलने के कारण ये हवायें शुष्क होती है। मानसून हवाओं की उत्पत्ति से सम्बन्धित सिद्धान्त की यह साधारण-सी व्याख्या है। परन्तु एशिया में मानसून की दो व्यवस्थायें होती है। प्रथम का उत्पत्ति केन्द्र हिमालय के उत्तर में मध्य एशिया में है और दूसरे का केन्द्र उत्तर-पश्चिमी भारत में।

(१) एशिया की सबसे विस्तृत मानसून व्यवस्था वह है जो भारत को छोड़कर सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्वी एशिया को प्रभावित करती है। इसके अन्तर्गत हिन्द-चीन, चीन और जापान सम्मिलित हैं। इसका उत्पत्ति केन्द्र मध्यएशिया है। गर्मी मे, मध्य एशिया के निम्नभार केन्द्र की ओर हवाये आकर्षित होती है और स्याम में दक्षिण-पश्चिम की ओर से प्रवाहित होती है। चीन में इन मानसूनी हवाओं की दिशा दक्षिण और दक्षिण-पूर्व मे होती है। जापान और मन्चूरिया में ये पूर्व की ओर से आती है। अन्दर की तरफ को आनेवाली ये नम हवाये भारत को छोड़कर सम्पूर्ण दक्षिणी पूर्वी एशिया मे भारी वर्षा करती है और सामान्यतः हम जैसे-जैसे दक्षिणी चीन से उत्तर की ओर चलते है वर्षा की मात्रा घटती जाती है।

जाड़े में मानसून हवाये स्थलखड की ओर से चलती है और वह बहुत ही तेज तथा ठंडी होती है। स्याम में यह उत्तर पूर्व से प्रवाहित होती है, चीन में उत्तर से तथा उत्तर पश्चिम मे और जापान मे तथा मन्चूरिया में पश्चिम से।

(२) दक्षिणी पूर्वी मानसून से भारतीय मानसून सर्वथा भिन्न है। हिमालय पर्वत इतने ऊँचे है कि वे समतापमण्डल में प्रवेश कर जाते है और नियमित विश्व-व्यापी हवाओं से बहुत ऊपर तक उठे हुए हैं। इस प्रकार भारत और मध्यएशिया के बीच ये श्रेणियाँ जलवायु सम्बन्धी रोक का काम करते है।

(अ) चित्र (a) में जनवरी की दशायें दिखलाई गई हैं। इस समय उत्तरी पश्चिमी भारत (पंजाब) में एक कमजोर उच्च भार प्रदेश स्थापित हो जाता है। यहीं से भारत के मानसून की जाड़े की हवायें उत्पन्न होती हैं। उत्तरी पूर्वी जाड़े का मानसून ३–४ मील प्रति घण्टे की गति से प्रवाहित होता है। यह हल्की हवा बहुत अधिक ठंडी भी नहीं होती। यदि हिमालय के उत्तर में इसका प्रादुर्भाव हुआ होता तो यह बहुत अधिक ठंडी होती।

(ब) चित्र (b) में मई की दशायें दिखलाई गई हैं। इस समय उत्तरी भारत में निम्नभार की दशायें उत्पन्न होती रहती है परन्तु दक्षिणी भारत के अक्षांशों में अभी भी उच्च भार ही स्थित रहता है। यह उच्चभार उत्तरी भारत और भूमध्यरेखीय निम्नभार

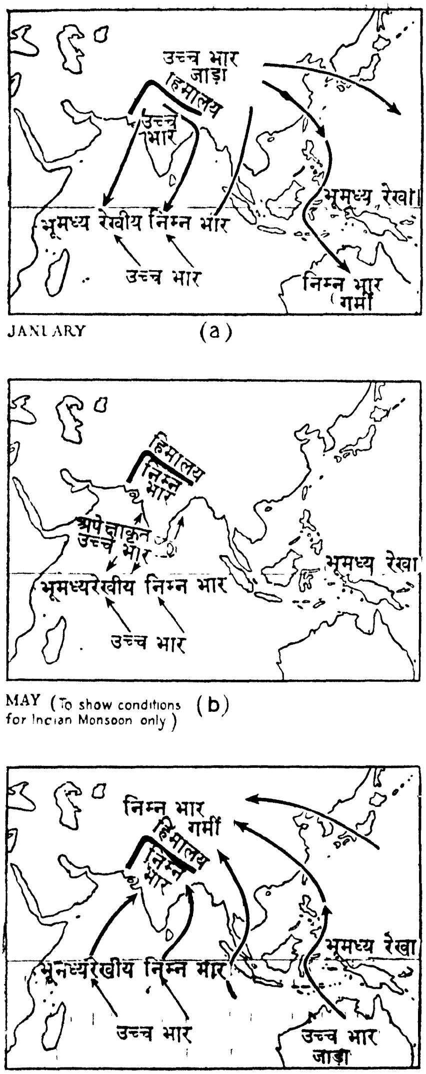

JANUARY (a)

MAY (To show conditions for Indian Monsoon only) (b)

(c)

चित्र १०९—मानसून प्रदेशों की हवायें ।

प्रदेशों के बीच अवरोधक का काम करता है । इस समय दक्षिण पश्चिम मे हल्की हवायें चलने लगती हैं जिनसे दक्षिणी पश्चिमी घाट पर विशेषतया कालीकट के निकट वर्षा होती है । इस वर्षा को "आम की वर्षा" (Mango Rain) कहते हैं ।

चित्र (c) में जून की दशाओं को दिखलाया गया है । बढते हुए तापक्रम के कारण दक्षिण भारत के ऊपर का उच्च भार ममाप्त हो चुका होता है । पंजाब का निम्न भार प्रदेश और अधिक मजबूत हो जाता है । दक्षिणी भारत के उच्च भार अवरोधक के टूटने को ही दक्षिणी पश्चिमी मानसून का टूटना कहते हैं । पंजाब में स्थित निम्न-भार प्रदेश की तरफ बिना किसी रूकावट के दक्षिणी पश्चिमी मानसून हवाये चलती रहती हैं और अधिकतर भारत पर भारी बर्षा करती है। दक्षिणी भारत मे भी मूसलाधार वर्षा होती है । वर्षा ऋतु मे सब से अधिक वर्षा पश्चिमी तट तथा गंगा की निम्नघाटी में होती है ।

(३) उत्तरी आस्ट्रेलिया की मानसून व्यवस्था भारतीय मानसून से बहुत कुछ मिलती-जुलती है । जनवरी में एशिया महाद्वीप से बाहर की तरफ प्रवाहित होने वाली शुष्क हवायें भूमध्य-रेखा को पार करके दक्षिण की ओर चलती है और विस्तृत जलखंड को पार करने के बाद आस्ट्रेलिया पहुँचती है। अतः आस्ट्रेलिया में जब गर्मी का मौसम होता है, ये नम व तर हवायें उत्तर-पश्चिम से पहुँच कर खूब वर्षा करती है । जुलाई में दशायें बिल्कुल उलट जाती हैं। उत्तरी आस्ट्रेलिया में जाड़े का मौसम होता है और वहाँ से बाहर की ओर प्रवाहित होने वाली दक्षिणी पूर्वी हवायें शुष्क रहती हैं।

ये हवायें हिन्द महासागर के आर-पार उत्तर की ओर चलती हैं और एशिया महाद्वीप मे दक्षिणी पश्चिमी या दक्षिणी-पूर्वी गर्मी के मानसून के रूप में पहुँचती हैं।

फोएन हवायें (Foehn winds)

पर्वत श्रेणी के दोनों ओर स्थित मैदानों की हवाओं के लिए ये पर्वत अवरोधक का काम करते हैं। किन्हीं विशेष दशाओं में हवा एक ढाल पर चढ़कर पर्वत के दूसरे ढाल पर उतर सकती है। दूसरी तरफ के ढाल पर उतरते समय यह हवा गर्म हो जाती है और जलवाष्प की कमी के कारण इसका तापक्रम बहुत बढ़ जाता है। जब यह उतर कर मैदान में पहुँचती है तो वहाँ के तापक्रम को दूसरी तरफ के मैदान की अपेक्षा अधिक गर्म कर देती है। इस प्रकार की हवायें गर्म व शुष्क होती हैं। आल्प्स पर्वत की उत्तर की तरफ स्विट्जरलैण्ड की घाटियों में इस प्रकार की हवा का अनुभव होता है। वहाँ इन्हे **फोएन हवायें** कहते हैं। वसन्त में इनके प्रभाव से वर्फ पिघल कर गायब हो जाती है और समय से पहिले ही पशुओं के लिए चारणभूमियाँ उपलब्ध हो जाती हैं।

उत्तरी अमरीका में राकी पर्वत के पूर्वी ढालों से उतरती हुई प्रेरी प्रदेश की तरफ प्रवाहित इसी प्रकार की हवाओं को **चिनूक हवाये** (Chinook Winds) कहते हैं।

उष्णकटिबंधीय चक्रवात (Tropical cyclone)

गर्मी के मौसम के अन्त के करीब, भूमध्यरेखीय शान्तमण्डल मे स्थित सागरीय प्रदेश में उष्णकटिबंधीय चक्रवात उत्पन्न होते है, जिन्हें टाईफून कहते हैं। इन चक्रवातों मे समभार रेखाओं की व्यवस्था उसी प्रकार की होती है जैसी कि शीतोष्ण कटिबंधीय गर्तचक्रों में। परन्तु इन में गर्म वृत्ताश नहीं होता और इसका अर्द्धव्यास बहुत कम होता है। यह तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक ५०० मील से भी कम होता है। समभार रेखायें बहुत करीब-करीब होतीं हैं और वायुभार के तीव्र ढाल के कारण हवा की गति बड़ी ही तीव्र होती है कभी-कभी तो हवा की गति १०० मील प्रति घण्टा से भी अधिक होती है। ये तूफान पश्चिम की ओर और ध्रुवों की ओर चलते हैं। इनका मार्ग निश्चित होता है और इनके मार्ग में पड़ने वाले द्वीपों तथा तटीय प्रदेशों में जन-धन की विशेष हानि होती है। पश्चिमी द्वीपसमूह और दक्षिणी पूर्वी संयुक्तराष्ट्र में इनका विशेष प्रकोप रहता है। परन्तु स्थलखंड पर पहुँचते ही ये शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

टारनैडो (Tornado)

ये स्थानीय बवंडर होते हैं। इन वायभवंर का अर्द्धव्यास कुछ गज से लेकर ½ मील तक होता है। जब मौसम बहुत गर्म और तूफानी हो जाता है तो ये भवंर स्थलखंड के ऊपर बन जाते हैं। हवा की गति बहुत अधिक होती है और टारनैडो हवायें अपने मार्ग में पड़ने वाली सभी प्रकार की वस्तुओं को तहस-नहस कर देती हैं। यह सौभाग्य की बात है कि ये वायु भवंर बहुत अधिक दूर तक नहीं जाते और जितनी जल्दी बनते हैं उतनी ही जल्दी खतम भी हो जाते हैं।

अध्याय बारह

प्राकृतिक विभाग

(NATURAL REGIONS)

विषय प्रवेश

पिछले अध्यायों में मौसम के अनुसार सूर्य का अयनरेखाओं के बीच परिभ्रमण तथा विश्वव्यापी हवाओं की व्यवस्था का विवरण दिया जा चुका है। परन्तु पिछले अध्याय में स्थायी वायु व्यवस्था का चित्र केवल समरात्रियों का है। उस समय सूर्य ठीक भूमध्य रेखा के ऊपर चमकता है और भूमध्यरेखा पर स्थित प्रदेश सबसे अधिक गर्म रहते हैं।

शिरोबिन्दु पर स्थित सूर्य भूमध्यरेखा के उत्तर व दक्षिण में अयनरेखाओं की तरफ जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे सबसे अधिक ताप वाली पेटिया भी उत्तर दक्षिण को खिसक जाती है। फलस्वरूप निम्नभार प्रदेश जहाँ स्थायी वायु-व्यवस्था का प्रादुर्भाव होता है, वह भी खिसक जाते है जैसा कि चित्र १११ मे दिखलाया गया है। स्थायी वायु-व्यवस्था का उत्तर व दक्षिण की ओर खिसकने का वायु-व्यवस्था का परिवर्तन कहते हैं।

वायु व्यवस्था का परिवर्तन (Swing of the Wind System)

जुलाई के महीने मे सूर्य भूमध्यरेखा मे उत्तर की ओर चमकता रहता है, जैसा कि चित्र १११ को (b) स्थिति से प्रगट हो जायेगा।

इस दशा मे सबसे गर्म प्रदेश 'ब' होगा और इसके अर्थ यह हुए कि वह प्रदेश जहाँ हवायें गर्म होकर ऊपर को उठती है वह भूमध्यरेखा से उत्तर मे है। इसका फल यह होता है कि समरात्रियों की अपेक्षा वायु की व्यवस्था कुछ उत्तर को खिसक चुकी होती है।

जनवरी मे सूर्य भूमध्यरेखा से दक्षिण में शिरोबिन्दु पर चमकता रहता है। भूमध्यरेखा के दक्षिण में 'क' स्थान पर ताप की पट्टी स्थित होती है जैसा कि चित्र १११ की (a) स्थिति मे स्पष्ट हो जाता है। फलस्वरूप वायु की व्यवस्था समरात्रियों की अपेक्षा दक्षिण को खिसक जाती है।

वायु पेटियों के इस परिवर्त्तन से कुछ स्थानों पर प्रचलित हवायें बदलती रहती हैं। यदि हवा की पेटियाँ स्थिर व स्थायी होती तो सभी स्थानों पर सदैव एक-सी हवायें चलती रहती, परन्तु ऐसा नहीं है। हवा की पेटियों का परिवर्त्तन महाद्वीपों के पश्चिमी तटीय प्रदेशों पर विशेष दिखलाई पड़ता है।

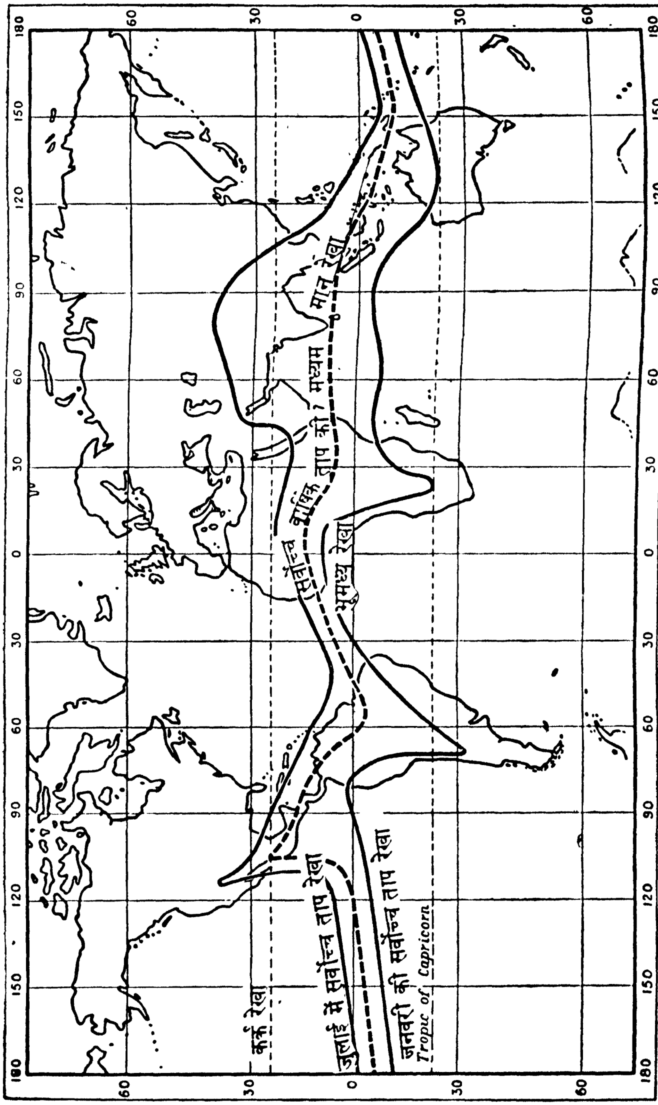

चित्र ११०—तापकीय भूमध्य-रेखा

उत्तरी गोलार्द्ध की दक्षिणी-पश्चिमी हवायें और दक्षिणी गोलार्द्ध की उत्तरी-पश्चिमी हवायें ध्रुवों की तरफ प्रवाहित होती है और इसलिए ये जैसे-जैसे आगे बढ़ती हैं, ठंडी होती जाती है। उनमें भाप व नमी रखने की शक्ति उत्तरोत्तर कम होती जाती है और स्वभावत: वर्षा करती हैं। जब ये हवायें समुद्र की ओर से पश्चिमी तटीय प्रदेशों की ओर चलती हैं, तो इन्हें हम नम या तर हवायें कह सकते है।

व्यापारिक हवायें (Trade Winds)—भूमध्यरेखा की ओर चलती हैं और इसलिए बराबर गर्म होती जाती हैं। उनकी नमी ग्रहण करने की शक्ति बढ़ती जाती है और वर्षा करने की कौन कहे, वह मार्ग में और जलवाष्प ग्रहण करती जाती हैं। इस प्रकार ये हवायें शुष्क होती हैं और जहाँ जाती हैं, वहाँ उष्णता उत्पन्न करती हैं। इनके प्रवाहित होने पर वर्षा तो कम होती है, पर सुहावना मौसम आ जाता है। जहाँ इनके मार्ग मे ऊँचे पर्वत आ जाते हैं, वहाँ ये ऊपर उठ जाती हैं और ठंडी होकर वर्षा कर देती हैं।

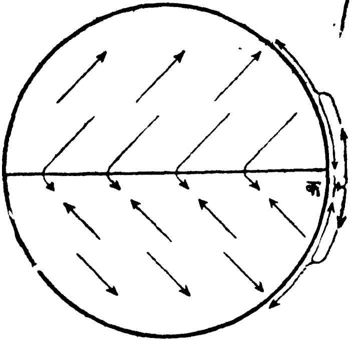

जनवरी (a)

विपरीत चक्रवात की तरह, **उच्चभार प्रदेश** (High Pressure Belts) साफ शुष्क मौसम के केन्द्र होते हैं।

डोलड्रमस की तरह, **निम्नभार प्रदेशों** (Low Pressure Areas) मे हवा गर्म होकर ऊपर को उठती रहती है और ऊपर जाकर ठंडी होकर निरंतर भारी वर्षा करती रहती है।

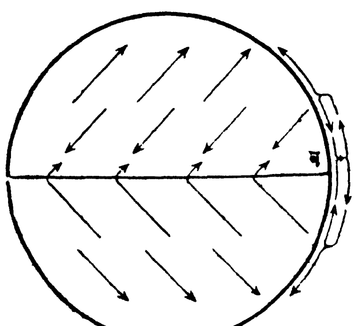

जुलाई (b)

चित्र १११—हवा की पेटियों का भूमध्य रेखा से उत्तर व दक्षिण की ओर खिसकना।

आगे दिये हुए चार्ट में पूरी रेखायें तर पछुवा हवाओं का निर्देश करती हैं। बिन्दु रेखायें सुखाने वाली व्यापारिक हवायें हैं और निम्नभार प्रदेश अधिक वर्षा वाले क्षेत्र हैं। वायुव्यवस्था के परिवर्तन के कारण जुलाई की हवायें जनवरी की अपेक्षा अधिक उत्तर में रहती हैं। 'क' नामक पेटी मे जाड़े के दिनों मे पछुवा हवाओं का जोर रहता है। इसलिए जाड़ों में वर्षा होती है। गर्मी में व्यापारिक हवाओं का जोर रहता है, इसलिए गर्मी का मौसम शुष्क रहता है। तर जाड़े और शुष्क गर्मी वाले इस प्रदेश को **भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेश** (Mediterranean Type of Climate) कहते हैं क्योंकि इस प्रकार की दशायें भूमध्यसागर के आस-पास के प्रदेशों में इस प्रकार की जलवायु पायी जाती है। महाद्वीपों के मध्य या पूर्व में यह जलवायु नहीं पायी जाती क्योंकि विस्तृत भूभाग को पार करने के बाद पछुवा हवाओं में वर्षा करने की शक्ति नहीं होती। इस प्रकार आगे दिये हुए चार्ट से केवल महाद्वीपों के पश्चिमी किनारों की दशाओं का ज्ञान होता है। अन्य पश्चिमी तटवर्ती पेटियों की दशाओं को

निकाला जा सकता है। इसमें ध्यान देने की बात तो यह है कि भूमध्यरेखा से उत्तर और दक्षिण में जलवायु का क्रम एक-सा ही है। भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण में समान अक्षांशों के बीच समान प्रकार की जलवायु पाई जाती है।

	१ जुलाई (गर्मी)	२ जनवरी (जाड़ा)	३ हवायें	४ वर्षा	५ जलवायु का प्रकार
उत्तरी गोलार्द्ध — अ			जाड़े की अपेक्षा गर्मी में तीव्र पछुवा हवायें	गर्मी में हल्की वर्षा	टुन्ड्रा
ब			जाड़े और गर्मी दोनों ही मौसम में पछुवा हवायें	जाड़े और गर्मी में वर्षा	ग्रेटब्रिटेन जैसी
क			जाड़े में पछुवा हवायें गर्मी में व्यापारिक हवायें	जाड़े में वर्षा गर्मी में शुष्कता	भूमध्यसागरीय
ख			जाड़े में व्यापारिक हवायें गर्मी में व्यापारिक हवायें	शुष्क गर्मी और शुष्क जाड़ा	मरुस्थलीय
र	निम्नभार		जाड़े में व्यापारिक हवायें गर्मी में निम्नभार	शुष्क जाड़े तर गर्मी	सवाना
फ	निम्नभार	निम्नभार	जाड़े में निम्नभार गर्मी में निम्नभार	वर्ष भर वर्षा	भूमध्यरेखीय
दक्षिणी गोलार्द्ध — र		निम्नभार	जाड़े में व्यापारिक हवाये गर्मी में निम्नभार	शुष्क जाड़ा तर गर्मी	सवाना
ख			जाड़े में व्यापारिक हवायें गर्मी में व्यापारिक हवायें	शुष्क जाड़ा और शुष्क गर्मी	मरुस्थलीय
क			जाड़े में पछुवा हवायें गर्मी में व्यापारिक हवाये	तर जाड़ा शुष्क गर्मी	भूमध्यसागरीय
ब			जाड़े और गर्मी में पछुवा हवायें	जाड़ा और गर्मी में वर्षा	ग्रेट ब्रिटेन जैसी
अ			जाड़े की अपेक्षा गर्मी में तीव्र पछुवा हवाये	गर्मी में हल्की वर्षा	टुन्ड्रा
	जुलाई (जाड़ा)	जनवरी (गर्मी)			

प्राकृतिक विभाग

दिये हुए चार्ट के पाँचवे खाने में पृथ्वी के कुछ ऐसे विभाग दिये गए है जिन्हे प्राकृतिक विभाग कहा जाता है। प्राकृतिक विभाग एक ऐसा प्रदेश है जिसमें प्राकृतिक बनावट, तापक्रम, वर्षा, प्राकृतिक व खेतिहर वनस्पति की दशायें एक-सी है, और फलत: मानवी क्रियाकलाप भी एक ही प्रकार का है।

अगले पृष्ठों में संसार को प्राकृतिक विभागों में बाँटने का एक बहुत सरल तरीका दिया हुआ है। शुरू मे पर्वत श्रेणियों पर कोई भी ध्यान नहीं दिया जायेगा क्योंकि ऊँचाई के कारण उनकी जलवायु आस-पास के मैदानों से भिन्न होती है। वहाँ की वर्षा और तापक्रम में बड़ा अन्तर होता है।

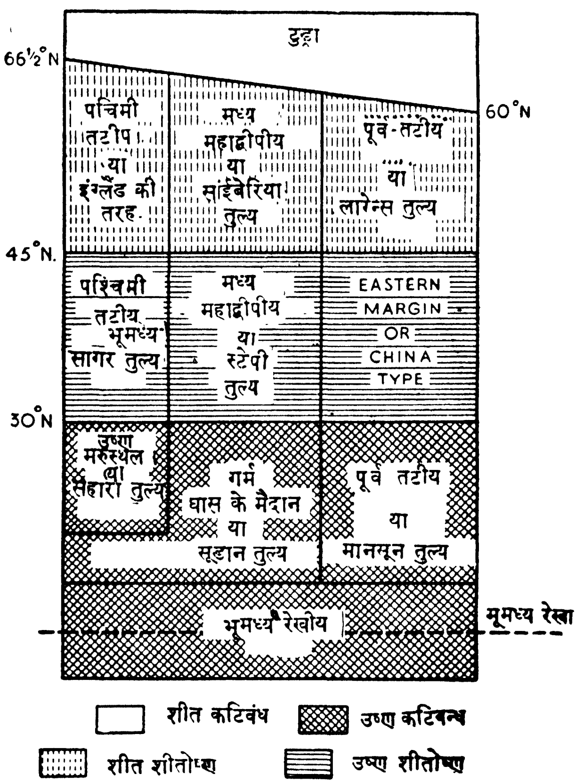

चित्र ११२—प्राकृतिक विभागों की सामान्य व्यवस्था

जब इस साधारण व्यवस्था को समझ लिया जाय, तब फिर पर्वतों को एक विशेष प्राकृतिक विभाग के रूप में ले सकते है। ये कटिबंध या अक्षांश के अनुसार भिन्न होंगे। चूंकि पर्वत हवा के लिए अवरोधक तथा वर्षा विभाजक का काम करते है,

विभिन्न प्राकृतिक विभागों की सीमा के रूप में भी इनको लिया जा सकता है। उदाहरण के लिए कनाडा के राकी पर्वत ब्रिटिश कोलम्बिया की समजलवायु को मध्य कनाडा की विषम जलवायु से अलग करते हैं। राकी पर्वत एक श्रेणी नहीं है। इस चौड़े पर्वत प्रदेश में अनेक श्रेणियाँ सम्मिलित हैं और उनकी अपनी अलग जलवायु है।

मान लीजिए कि पिछले पृष्ठ पर दिया गया चतुर्भुज भूमध्यरेखा के उत्तर में स्थित महाद्वीप है। प्रथम इसे अक्षांशों के अनुसार निम्नलिखित चार कटिबन्धों में बाँट दीजिये :

(१) आर्कटिक वृत्त के उत्तर में स्थित शीत कटिबंध।

(२) ४५° उत्तरी अक्षांश और आर्कटिक वृत्त के बीच स्थित शीत शीतोष्ण कटिबंध।

(३) ३०° उत्तरी अक्षांश से ४५° उत्तरी अक्षांश तक उष्ण शीतोष्ण कटिबंध।

(४) भूमध्यरेखा और ३०° उत्तरी अक्षांश के बीच उष्ण कटिबंध।

इसके बाद प्रत्येक शीतोष्ण कटिबंध को ३ भागों मे बाँट दीजिये—पश्चिमी, मध्यवर्ती और पूर्वी। उष्ण कटिबंध मे भूमध्यरेखा के बिल्कुल समीप की पतली पट्टी छोड़कर सम्पूर्ण को इसी प्रकार के तीन भागों मे बाँट लीजिए परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि मरुस्थल प्रदेश का पश्चिमी तट भूमध्यरेखीय प्रदेश से अलग रहे।

उपविभागों मे बाँटने का यही नियम दक्षिणी गोलार्द्ध में भी लागू किया जा सकता है। परन्तु दक्षिणी महाद्वीप नीचे की तरफ इतने संकीर्ण हैं कि उनको तीन उप-विभागों मे बाँटने पर मध्यवर्ती विभाग खतम-सा हो जाता है। दक्षिणी अमरीका के शीत शीतोष्ण कटिबंध में मध्य कनाडा के समान जलवायु का कोई भी प्रदेश नहीं है।

प्राकृतिक विभागों के दृष्टिकोण से भूमंडल के अध्ययन में अनेकों लाभ हैं। यदि यूरोप में ग्रेटब्रिटेन तुल्य जलवायु की वर्षा, तापक्रम वनस्पति आदि मालूम है तो इसे किसी भी महाद्वीप के पश्चिमी तट पर लागू किया जा सकता है, क्योंकि वह सभी जगहों के लिए समान होगा।

चित्र ११३ में वर्षा का चित्र प्रस्तुत किया गया है। इसमें महाद्वीप को उसी प्रकार के विभागों मे बाँट दिया गया है। इसमें वर्षा का मौसम तथा अत्यधिक वर्षा के माह दोनों को ही दिखलाया गया है। गर्मी में वर्षा वाले क्षेत्रों में घनी छायांकन द्वारा मानसून प्रदेशों को दिखलाया गया है। स्पष्ट है कि सवाना प्रदेशों की अपेक्षा मानसून प्रदेशों में अधिक वर्षा होती है। सवाना प्रदेशों में स्टेपी और साईबेरिया तुल्य प्रदेशों की अपेक्षा अधिक वर्षा होती है।

प्रमुख प्राकृतिक विभागों की वर्षा

संसार को वर्षा के आधार पर कई प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है—

क—साल भर लगातार वर्षा : जिन प्रदेशों में साल भर बराबर वर्षा होती है, निम्नलिखित उपविभागों में बाँटा जा सकता है—

(१) शीत शीतोष्ण कटिबंध (Cool Temperate zone) **में महाद्वीपों के पश्चिमी किनारे।** यहाँ पर प्रचलित पछुआ हवाओं से वर्षा होती है। वर्षा या तो

पर्वतीय होती है या चक्रवातीय। सबसे अधिक वर्षा जाड़े के मौसम में होती है। पर्वतों के वायु अभिमुख ढाल को छोड़कर वर्षा काफी मात्रा में होती है। स्वीडन में वार्षिक वर्षा का औसत २०० इंच है।

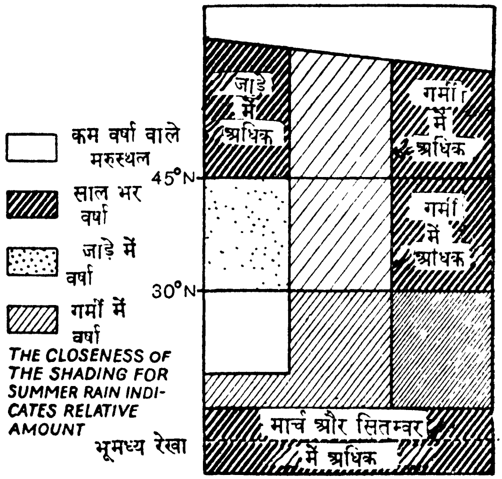

चित्र ११३—वर्षा का वितरण

(२) **भूमध्य रेखीय निम्नभूमि।** इन प्रदेशों में वर्षा बहुत अधिक और वाहनिक होती है। समरात्रियों के समय जब सूर्य शिरोबिन्दु पर चमकता रहता है, तो सबसे अधिक वर्षा होती है।

(३) **शीत और उष्ण शीतोष्ण कटिबंध में** (Cool and Warm Temperate zone) **महाद्वीपों के पूर्वी किनारे।** यहाँ की वर्षा मानसून हवाओं से होती है। परन्तु उत्तरी अमरीका में बर्षा कुछ अंश में चक्रवातों द्वारा भी होती है। वर्षा की मात्रा विभिन्न होती है। उच्च अक्षांशों में वर्षा कम होती है परन्तु निम्न अक्षांशों में वर्षा की मात्रा अधिक रहती है। सबसे अधिक वर्षा गर्मी के मौसम मे होती है।

ख—गर्मी की वर्षा : निम्नलिखित तीन प्रदेशों में वर्षा केवल गर्मी के महीनों में ही होती है।

(१) **शीत और उष्ण शीतोष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में** वर्षा का वार्षिक औसत २० इंच है और यह संपूर्ण वर्षा वाहनिक होती है।

(२) **भूमध्य रेखीय प्रदेशों के उत्तर और दक्षिण में सवाना प्रदेश।** यहाँ की वर्षा वाहनिक होती है और इसका प्रधान कारण भूमध्यरेखीय निम्नभार प्रदेश का उत्तर दक्षिण की ओर खिसकना है। मरुस्थलों के किनारों पर वर्षा १० इंच तक होती है, परन्तु भूमध्यरेखीय वन प्रदेशों की तरफ वर्षा की मात्रा ६० इंच तक होती है।

(३) **मानसून प्रदेश।** इन प्रदेशों में वर्षा समुद्र की तरफ से आने वाली हवाओं द्वारा होती है। वर्षा की मात्रा कभी कम और कभी ज्यादा होती है। आसाम की पहाड़ियों में चेरापूंजी नामक स्थान पर सबसे अधिक वर्षा होती है। औसत वार्षिक वर्षा ४५८ इंच है, यद्यपि एक वर्ष मे ९०५ इंच तक वर्षा हुई है। मानसून प्रदेशों के कुछ हिस्सों में वर्षा बहुत थोड़ी होती है। दक्षिण भारत मे ४० इंच से भी कम वर्षा होती है। उत्तर पश्चिमी भारत के थार रेगिस्तान मे वर्षा की मात्रा १० इंच से भी कम है।

ग—बहुत कम वर्षा—जहाँ वर्षा की मात्रा बहुत कम है, ऐसे दो प्रदेश हैं:—

(१) **ध्रुवीय निम्नप्रदेश**—जहाँ वर्षा का वार्षिक औसत १० इंच से भी कम होता है। सबसे अधिक वर्षा गर्मी मे होती है, और जाड़े मे वृष्टि हिमपात के रूप में होती है।

(२) **उष्ण कटिबंध में भूखंडों के पश्चिमी सिरों पर स्थित गर्म मरुस्थल**—यहाँ पर भी वर्षा की मात्रा १० इंच से कम होती है। परन्तु सबसे अधिक वर्षा का समय भिन्न है। सहारा के भूमध्यसागर की तरफ वाले भाग मे सबसे अधिक वर्षा जाडे में होती है, परन्तु सहारा के दक्षिणी भाग में सवाना प्रदेश के समीप अत्यधिक वर्षा गर्मी में होती है।

घ—जाड़े में वर्षा के प्रदेश—उष्ण शीतोष्ण कटिबंध में भूमध्यसागरीय प्रदेशों में जो महाद्वीपों के पश्चिमी किनारे पर स्थित है, वर्षा जाड़े में होती है। वर्षा की मात्रा तो २०–३० इंच मे अधिक नही होती परन्तु इसका अधिकांश भाग जाड़ों में प्राप्त होता है। गर्मी के दो-एक महीने तो बिल्कुल वर्षा रहित होने है और उत्तरी अफ्रीका में मरुस्थल के किनारे के भाग में तो साल के सात महीनों में १ इंच से भी कम वर्षा होती है।

प्रमुख प्राकृतिक विभागों की वनस्पति

निम्नलिखित चित्र में प्राकृतिक विभागों की वनस्पति को दिखलाया गया है।

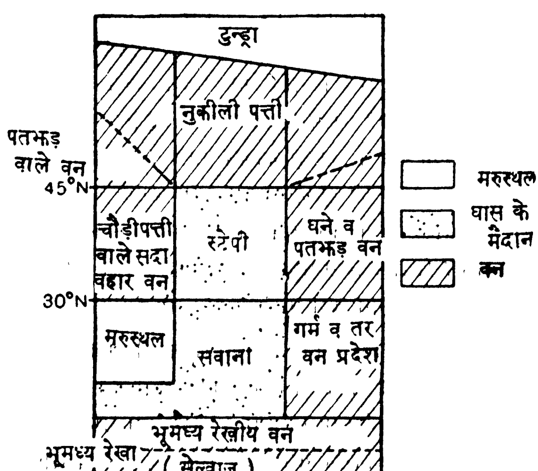

चित्र ११४—प्राकृतिक वनस्पति

बहुत-से प्रदेशों में प्राकृतिक वन-प्रदेशों को काटकर साफ कर दिया गया है और फसलें उगाई जाती हैं और घास के मैदानों में भी खेती की जाने लगी है।

भूमंडल की प्राकृतिक वनस्पति को निम्नलिखित तीन प्रकार का कहा जा सकता है—(१) वन प्रदेश, (२) घास के मैदान, (३) रेगिस्तान। इनको कई उपविभागों में भी बाँटा जा सकता है—

(१) **वन प्रदेश**— (क) **शीत शीतोष्ण**—नुकीली पत्ती वाले सदाबहार और पतझड़ वाले वन।
(ख) **उष्ण शीतोष्ण**—घने पतझड़ वन और चौड़ी पत्ती वाले सदाबहार वन।
(ग) **उष्ण**—मानसून वन और भूमध्य रेखीय वन।

(२) **घास के मैदान**—(क) **उपोष्ण कटिबंध**—स्टेपी प्रदेश—जहाँ कही वर्षा कम है वहाँ यह छोटी घास के मैदान शीत कटिबन्ध में बढ़ जाते हैं।
(ख) **उष्ण कटिबन्ध**—सवाना प्रदेश।

(३) **मरुस्थल**— (रेगिस्तान) (क) **शीत मरुस्थल**—टुन्ड्रा।
(ख) **उष्ण मरुस्थल**—व्यापारिक हवाओं वाले रेगिस्तान।

किसी प्रदेश के तापक्रम, वर्षा और मिट्टी के अनुसार ही वहाँ की वनस्पति होती है। वनस्पति के लिए कई बातें होनी जरूरी हैं परन्तु सबसे महत्वपूर्ण दशायें गर्मी और नमी हैं। अक्षांश के अनुसार ही गर्मी में परिवर्त्तन होता है परन्तु किसी स्थान पर वर्षा की मात्रा से वहाँ पर उपलब्ध जल का ज्ञान नहीं हो सकता। किसी जगह की वनस्पति के लिए यह देखना होता है कि भूमि की सतह या परतों में कितना जल शामिल है। वास्तव में वर्षा का कुछ अंश तो बह जाता है, कुछ जमीन में सोख जाता है और कुछ पुनः भाप बन कर उड़ जाता है। यदि कोई प्रदेश बहुत अधिक गर्म है तो वर्षा का अधिकतर भाग भाप बन कर उड़ जायेगा और पौधों के लिए बहुत थोड़ा शेष रहेगा। चूँकि पौधों की जड़ें घोल के रूप में अपना भोजन प्राप्त करती है, स्पष्ट है कि जब भूमि पर बर्फ जमी रहती है तो वे अक्रिय हो जाती है। इसी प्रकार बहुत-से पौधे भूमि से उस समय भोजन नहीं प्राप्त कर सकते जब तापक्रम ४१° फा० से नीचा हो जाता है। इस प्रकार घोर सर्दी का समय पौधों के लिए प्रायः शुष्क ही रहता है। पौधे वर्षा की कमी से और भीषण सर्दी में अपना भोजन नहीं प्राप्त कर सकते।

इस प्रकार देखने में आता है कि शीत शीतोष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के आन्तरिक भागों में २० इंच की वर्षा पौधों के लिए काफी होती है। परन्तु इतनी वर्षा उष्ण शीतोष्ण प्रदेशों के लिए सर्वथा अपर्याप्त रहती है और वहाँ छोटी घास के सिवाय और कुछ नहीं उग पाता। इसका कारण गर्मी के मौसम के उच्च तापक्रम और अधिक वाष्पीभवन हैं।

उष्ण प्रदेशों में स्थायी वनप्रदेश के लिए ६० इंच वर्षा चाहिए। जहाँ वर्षा ६० इंच से कम होती है, वहाँ उनके स्थान पर खुले पार्क जैसी भूमि पायी जाती है। घास के मैदान के बीच-बीच वृक्षों के झुरमुट मिलते हैं। वर्षा की मात्रा जैसे-जैसे और घटती जाती है, खुले घास के मैदान झाड़ी प्रदेश में बदल जाते हैं।

पौधों को पानी की कमी का मुकाबला करना पड़ता है। पानी की यह कमी या तो वर्षा न होने से होती है, या निम्न तापक्रम से। पतझड़ वाले पेड़ जाड़े में अपनी पत्तियाँ गिरा देते हैं। ग्रेटब्रिटेन जैसी जलवायु के प्रदेश में जाडे का मौसम तर होता है, परन्तु तापक्रम कम होने के कारण उत्पत्ति सीमित हो जाती है। पतझड़ वाले वन के अन्य प्रदेशों मे पत्तियाँ जाड़े के मौसम मे जरूर गिर जाती हैं, परन्तु वहाँ जाड़े का मौसम शुष्क भी होता है।

नुकीली पत्ती वाले वन अपनी पत्तियों को छोटी करके जाड़े का मुकाबला करते हैं। सभी नुकीली पत्ती वाले पेडों में सुई जैसी पत्तियाँ होती हैं। और ये पत्तियाँ साल भर बराबर बनी रहती हैं।

भूमध्यसागरीय प्रदेशों में चौडी पत्ती वाले सदाबहार वनों की पत्तियाँ गर्मी के शुष्क मौसम में गिर जानी चाहिएँ। परन्तु इन पेडों की पत्तियाँ जाड़े के तर मौसम मे धीरे-धीरे निकलती हैं और गर्मी मे बराबर बनी रहती हैं। गर्मी की शुष्कता से मुकाबला करने के लिए प्रकृति ने उनमें कुछ विशेष गुण दिये हैं। इनकी पत्तियों का विस्तार छोटा, उनकी सतह चमड़े जैसी सख्त या मोम जैसी चिकनी होती है। वृक्षों की बनावट में लकडी अधिक होती है। उनकी जडें गहराई तक पहुँच जाती हैं और इसके अतिरिक्त भी इनमें बहुत सी भोजन तथा पानी रखने के विशेषतायें होती हैं।

भूमध्यरेखीय वनप्रदेश मे गर्म और तर मौसम रहता है। अतएव वहाँ पर साल भर बराबर पौधे उग सकते हैं। वहाँ कोई भी शुष्क मौसम नहीं होता। यह वन सदैव हरा-भरा रहता है क्योंकि सब पेड़ों के पत्ते गिरने का कोई निश्चित समय नही होता। इसलिए थोड़ी-थोड़ी दूर पर हरे-भरे पेड़ के साथ-साथ बिल्कुल खाली पेड़ और उनके पास में फल-फूलयुक्त पेड़ दिखलाई पड़ते हैं।

अध्याय तेरह

प्राकृतिक विभाग

(NATURAL REGIONS)

शीत प्रदेश (Cold Lands)

मोटे तौर पर शीत प्रदेश आर्कटिक वृत्त में स्थित है और इनको निम्नलिखित दो विभागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) उच्च प्रदेश या हिम आवरण (Ice Cap)।

(ब) निम्नप्रदेश या टुन्ड्रा (Tundra)।

हिम आवरण

इस प्रकार के प्रदेशों में साल भर बराबर बर्फ का आवरण पड़ा रहता है। अतएव ये प्रदेश मनुष्य के लिए सर्वथा बेकार से होते हैं। ग्रीनलैंड और अन्टार्टिका इसी प्रकार के प्रदेश है। ग्रीनलैण्ड के तटीय प्रदेशों पर ही थोडे से एस्कीमों लोग बस पाये हैं।

टुन्ड्रा या ध्रुवीय निम्नप्रदेश (Tundra or Polar Low-land)

टुन्ड्रा प्रदेशों का विस्तृत विवरण देने के पहिले उनकी जलवायु और वनस्पति को समझ लेना ज्यादा अच्छा होगा।

जलवायु—शीतोष्ण कटिबंध के विस्तृत वनप्रदेश के उत्तर में स्थित ये मैदान वनस्पतिहीन होते हैं। जहाँ का तापक्रम ५०° फा० से कम होता है वहाँ पेड़-पौधे नहीं उग सकते। इसलिए टुन्ड्रा प्रदेश की दक्षिणी सीमा जुलाई या गर्मी के ५०° फा० समभार रेखा द्वारा बनती है। संसार के समभार रेखा मानचित्रों से स्पष्ट है कि दक्षिणी गोलार्द्ध में कोई भी स्थलखंड नहीं है। ५०° फा० की समताप रेखा के दक्षिण में केवल अन्टार्टिक उच्च प्रदेश ही है। उत्तरी गोलार्द्ध में टुन्ड्रा प्रदेश निम्नलिखित है—

(१) साईबेरिया और यूरोपीय रूस के उत्तरी मैदान।

(२) कनाडा के उत्तरी निम्नप्रदेश।

टुन्ड्रा प्रदेशों में गर्मी का मौसम छोटा व ठंडा होता है। तापक्रम ५०° फा० से कम ही होता है। जाड़े की ऋतु लम्बी और बहुत ठंडी होती है। तापक्रम प्रायः ०° फा० से कम ही रहता है। गर्मी के दिन लम्बे होते हैं और जाड़े के दिन छोटे होते है। वर्षा हल्की होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १० इंच से कम ही रहता है। अधिकतर वर्षा गर्मी के मौसम में होती है जबकि यह प्रदेश पछुवा हवाओं के प्रभाव में आ जाता है।

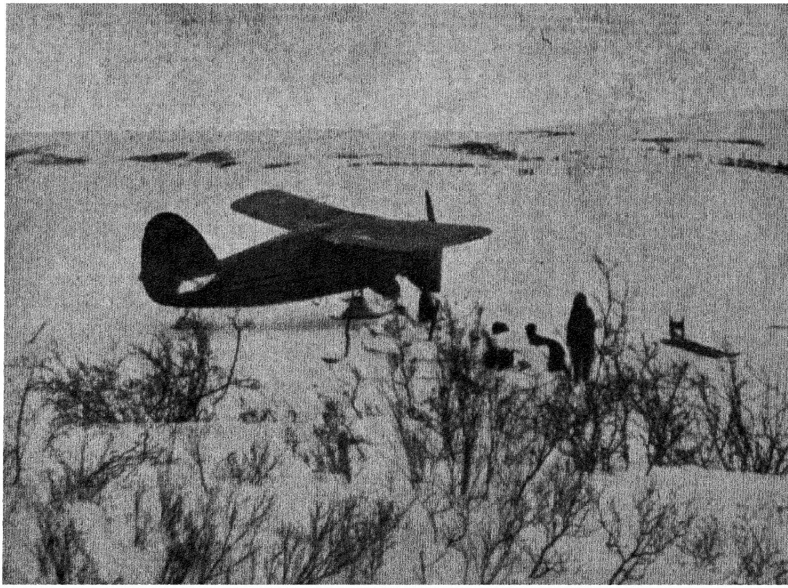

ऊपर : जाड़े की ऋतु में टुन्ड्रा—हवाई जहाजों में बरफ के जूते लगे हुये हैं।

नीचे : गर्मी के मौसम में टुन्ड्रा। अव्यवस्थित जल प्रवाह, हलकी मिट्टी और छोटी झाड़ियाँ देखिये।

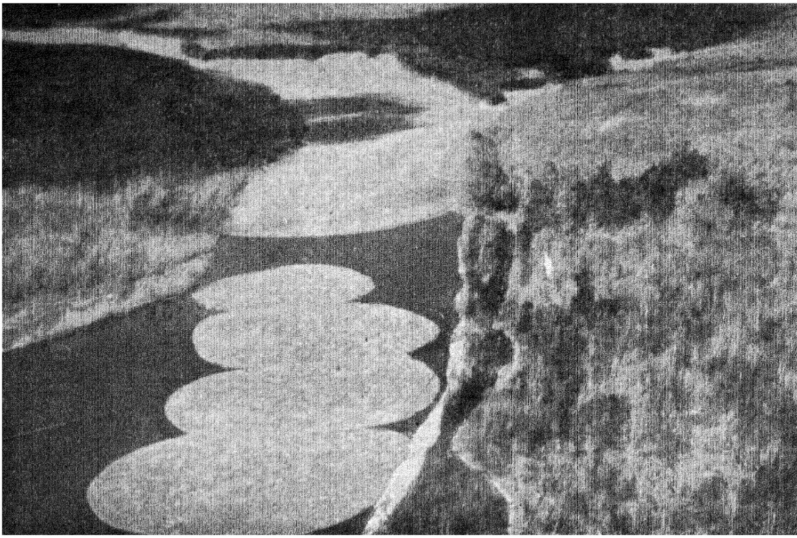

ऊपर : नुकीली पत्ती वाले जंगल। लकड़ी के गोल गट्ठर जिनमें करीब २५००० लट्ठे बंधे रहते हैं ध्यान देने योग्य हैं। नदी के बहाव के साथ इन्हें खैंच कर ले जाया जाता है।

नीचे : रूस—नोवोसिवर्स्क टैक्निकल कालेज में विद्यार्थी रोएंदार खाल को ठीक कर रहे हैं।

जाड़े के मौसम में बर्फ गिरती है परन्तु चूँकि तापक्रम बहुत नीचा होता है, इसलिए बर्फ पिघल नहीं पाती। इस प्रकार बर्फ के इकट्ठा होते रहने से अक्सर यह धोखा हो जाता है कि जाड़े में वर्षा बहुत अधिक होती है। जाड़े में भी बहुत से क्षेत्र हिमरहित रहते हैं क्योंकि तेज हवायें हिम को उड़ाकर कुछ स्थान खाली कर देती हैं और कहीं पर हिम राशि इकटठा कर देती ह ।

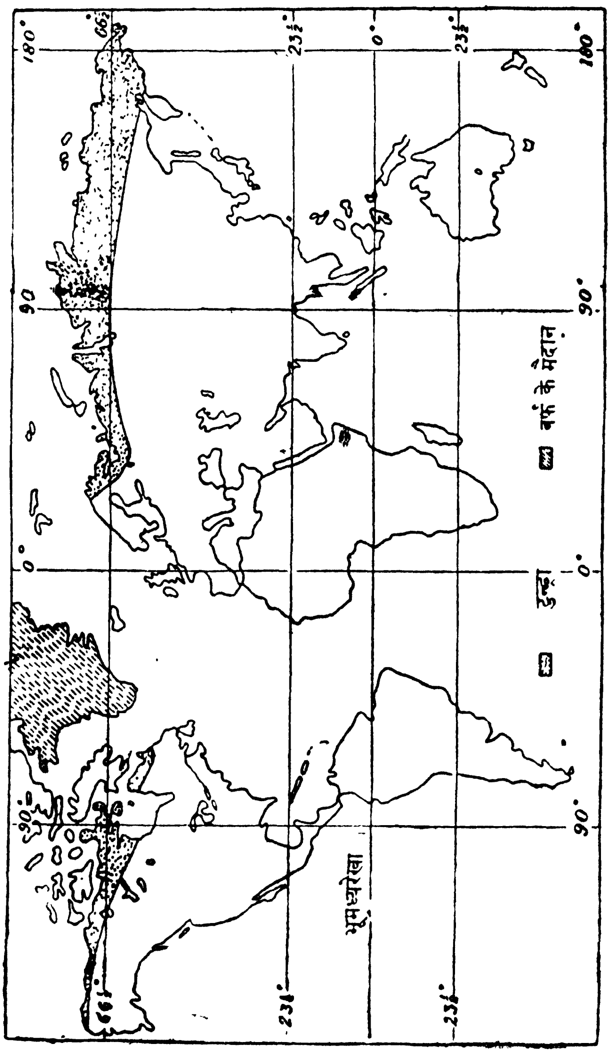

चित्र ११४—शीत प्रदेश

निम्नलिखित रेखाचित्र से टुन्ड्रा के किनारे पर स्थित स्थान के तापक्रम और वर्षा का अन्दाज लग सकता है। यूरोपीय रूस के उत्तरी किनारे पर कोला नगर स्थित है।

टुन्ड्रा प्रदेश के भीतर स्थित किसी भी शहर के विषय में आँकड़े प्राप्त करना कठिन है। चूँकि कोला नगर उत्तरी अटलांटिक महासागर के समकारी प्रभाव के अन्दर ही स्थित है, यहाँ के जाड़े का तापक्रम वास्तविक टुन्ड्रा के तापक्रम से कुछ अधिक ही रहता है।

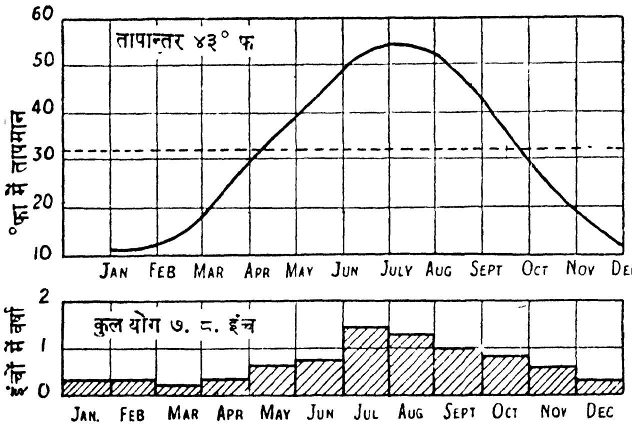

चित्र ११५—टुन्ड्रा तुल्य जलवायु—कोला (समुद्रतल से ३३ फीट ऊँचा)

वर्षा के रेखाचित्र से स्पष्ट है कि जाड़े के मौसम में बहुत कम वर्षा होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १० इंच से भी कम है। इस प्रकार टुन्ड्रा प्रदेशों को शीत मरुस्थल कह सकते हैं क्योंकि १० इंच से कम वर्षा के प्रदेशों को मरुस्थल ही समझा जाता है।

वनस्पति—टुन्ड्रा का अधिकतर भाग काई और लिचन से ढँका रहता है परन्तु सूर्य की रोशनी से पूर्ण दक्षिण की तरफ के ढालों पर जहाँ पानी बहने की सुविधा है, गर्मी के मौसम में कई प्रकार के सुन्दर फूल निकल जाते हैं। अन्य स्थानों पर छोटी-छोटी बेर की झाड़ियाँ उग आती है और नदियों के किनारे छोटे-छोटे बर्च के वृक्ष उगते है। इन प्रदेशों में खेती का उद्यम असम्भव है क्योंकि गर्मी का मौसम छोटा और ठंडा होता है तथा आधे साल से ऊपर भूमि पर बर्फ जमी रहती है।

उन्नति की दशा—टुन्ड्रा प्रदेशों में विकास का कोई विशेष क्रम नहीं मिलता क्योंकि वहाँ के निवासी असभ्य व पिछड़े हुए है।

उत्तरी अमरीका के टुन्ड्रा प्रदेश में एस्कीमो शिकार खेलकर व मछली मार कर अपना पेट भरता है। हाल में बारहसिंघों को पालना भी एक विशेष उद्यम हो गया है। इसके विपरीत, यूरेशिया के टुन्ड्रा प्रदेश के लोगों का मुख्य सहारा बारहसिंघा ही है। परन्तु फिर भी शिकार खेलना और मछली पकड़ना भी उनका धंधा है। क्योंकि बारहसिंघे को अपने भोजन की खोज में इधर-उधर जाना पड़ता है, इसलिए याकूत, लैप और सैमोयड लोग प्रायः खानाबदोश है। यूरेशिया के टुन्ड्रा के पश्चिमी किनारे पर अधिक आसानी से पहुँचा जा सकता है। इसका मुख्य कारण गर्म जलधाराओं का होना है। फलस्वरूप रूस का निकास आर्कटिक महासागर के मेटसामो और मरमन्स्क बन्दरगाहों

द्वारा है। पेटसामों का पृष्ठप्रदेश निकल उत्पादक प्रदेश है, और पिछले महायुद्ध मे मरमंस्क का द्वीप मित्र देशों और रूस के बीच सम्पर्क का प्रधान केन्द्र रहा है। यह बन्दरगाह रेल द्वारा लेनिनग्राड से सम्बन्धित है और एक जहाजी नहर बाल्टिक और श्वेत सागरों के बीच सम्पर्क स्थापित करती है। और पूर्व में इगाकी नामक बन्दरगाह से साईबेरिया से लकड़ी भेजी जाती है। इन अक्षांशों में वायुयान संचालन के महत्व के बढ़ जाने से ऋतु निरीक्षण केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं और बर्फ तोड़ने वाले शक्तिशाली जहाजों के द्वारा आर्कटिक तट और प्रशान्त महासागर के बीच एक स्थायी मार्ग बनाये रखने का प्रयत्न किया जा रहा है। रूस के आर्कटिक प्रदेश में कठोर मौसम सहन कर सकने वाले अनाजों और तरकारियों की खेती की जा रही है। यहाँ कोयले और तेल उपलब्ध होने के कारण उन्नति की और सम्भावना है।

उत्तरी अमरीका मे अलास्कामार्ग के बन जाने से टुन्ड्रा प्रदेश महाद्वीपों के अन्य भागों के निकट सम्पर्क मे आ गया है। यह सड़क बहुत तेजी से बनाई गई है और डॉसन क्रीक से फेरबैंक्स तक जाती है।

अध्याय चादह

प्राकृतिक विभाग

(NATURAL REGIONS)

शीत शीतोष्ण प्रदेश (Cold Temperate Regions)

वर्गीकरण

मोटे तौर पर शीत शीतोष्ण प्रदेशों को निम्नलिखित तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) पश्चिमी तटवर्ती या ब्रिटिश तुल्य (West Margin or British Type)

(२) मध्यवर्ती या साइबेरिया तुल्य (Central or Siberian Type)

(३) पूर्वी तटवर्ती या लारेन्स तुल्य (Eastern Margin or Laurentian Type)

शीत शीतोष्ण पट्टी (Cool Temperate Belt)

शीत लीतोष्ण प्रदेश ४५° उत्तरी अक्षांश और टुन्ड्रा प्रदेशों के बीच में स्थित है। जहाँ कहीं वर्षा कम होती है, या जो भाग पर्वतों की वायुअभिमुख दिशाओं में पड़ जाते है, उन्हें छोड़कर प्रायः सम्पूर्ण पट्टी में वन पाये जाते हैं। इस वन के पेड़ नुकीली पत्ती वाले होते हैं। चीड़, फर, स्प्रूस और लार्च प्रधान वृक्ष हैं। जहाँ जलवायु सम तथा वर्षा अधिक है, वहाँ पतझड़ के बन पाये जाते है जिनमें ओक, एल्म, बीच, एल्डर पोपलार प्रधान हैं।

पतझड़वाले वन प्रदेश में नुकीली पत्ती वाले वृक्ष वहाँ पाये जाते है, जहाँ (१) मौसम ठंडा होता है, जैसे पर्वतों के ढालों पर (२) जहाँ की मिट्टी हल्की और बलुही है, जैसे कि हैम्पशायर के न्यू फारेस्ट में। जहाँ की चट्टानें प्रवेश्य हैं, वहाँ वन नहीं पाये जाते। यूरोप में पतझड़ वाले वनों का बहुत थोड़ा हिस्सा ही बच रहा है, क्योंकि खेती के लिए भूमि प्राप्त करने के लिए वनों को साफ कर दिया गया है। कनाडा में भी नुकीली पत्ती वाले वृक्षों को काट डाला गया है। इन वृक्षों को बहुमूल्य व्यापारिक लकड़ी के लिए तथा गेहुँ की खेती के विस्तार के लिए काट डाला गया है।

पश्चिमी तटवर्ती या ब्रिटिश प्रकार की जलवायु (West Margin or British Type)

जलवायु—पश्चिमी तटवर्ती दशाओं को स्पष्ट करने के लिए दक्षिणी पश्चिमी आयरलैण्ड में स्थित वैलेंशिया को लिया जा सकता है। जैसा कि नीचे दिये हुए चित्र से स्पष्ट है तापान्तर केवल १५° फा० है। गर्मी और जाड़े के तापमान के बीच कोई विशेष अन्तर नही पाया जाता है। पूर्वी इंगलैण्ड के कुछ भागों में तापान्तर २०° फा० तक रहता है। इस जलवायु की विशेषता यह है कि तापक्रम की दशायें सम होती है और अक्षांशों के औसत से जाडे का मौसम अधिक गर्म रहता है। जाड़े में तापक्रम हिमांक तक कभी भी नही पहुँचता और स्काटलैंड के उत्तरी भाग मे जाड़ो का तापक्रम अक्षांश के औसत से ४०° अधिक रहता है। जाड़ों में कम ठंड और गर्मियों में कम गर्मी का प्रधान कारण प्रचलित पछुवाँ हवाये है जो कि समुद्र की ओर से आती है और जाड़ों में भूखंड के तापक्रम को बढ़ा देती है, तथा गर्मी में कुछ नीचा कर देती है। इन प्रदेशों के किनारे पर से गर्म जलधाराये प्रवाहित होती है और भूमध्यरेखा की तरफ से ध्रुवों की तरफ जाती है। इनके कारण भी जाड़े का तापक्रम अक्सर बढ जाता है।

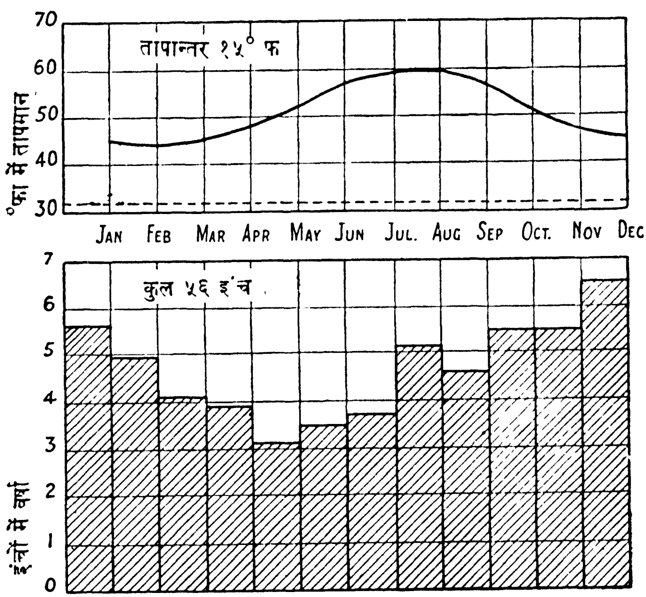

चित्र ११६—ब्रिटिश तुल्य—वैलेंशिया (१२ फीट)

ये ही पछुवाँ हवायें इस प्रदेश में वर्षा भी करती हैं। ये वर्ष भर बरावर चला करती है और इसलिए प्रायः हर महीने ही वर्षा होती है। परन्तु गर्मियों की अपेक्षा जाड़े मे कुछ अधिक वर्षा होती है। वर्षा की मात्रा घटती बढ़ती रहती है। उच्च पर्व-

तीय प्रदेशों में वर्षा का वार्षिक औसत २०० इंच तक होता है। वृष्टि छायास्थित प्रदेश में वर्षा का औसत २० इंच तक ही रह जाता है। पछुवाँ हवाओं के साथ आनेवाले गर्तचक्रों से वर्षा की मात्रा बढ़ जाती है।

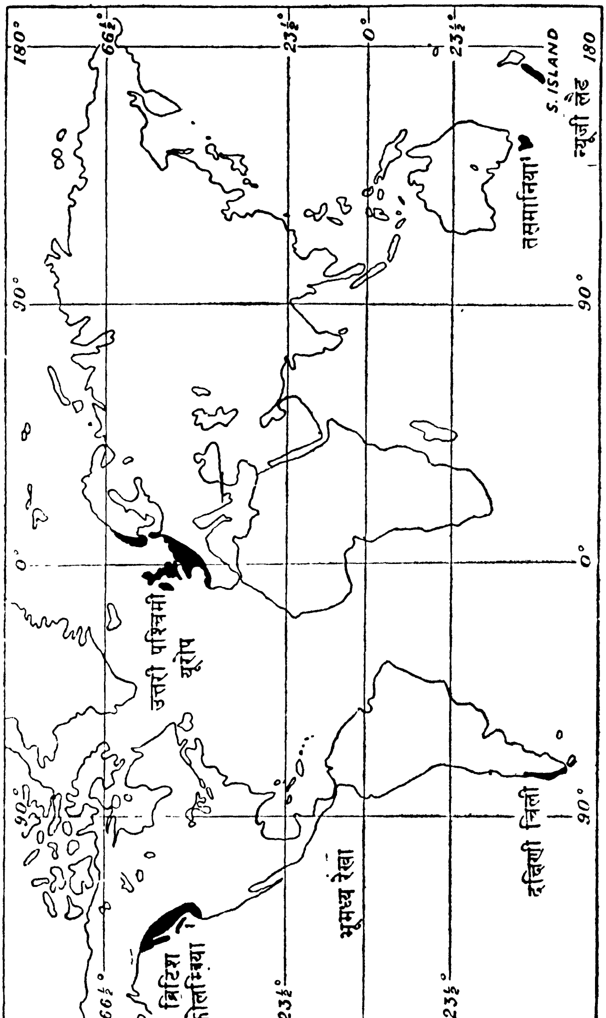

चित्र ११७—ब्रिटिश तुल्य जलवायु के प्रदेश

आर्थिक विकास

वनाच्छादित प्रदेशों के विकास में प्रायः निम्नलिखित क्रम पाया जाता है। वहाँ पर (१) जानवरों को उनके बहुमूल्य समूर के लिए मारते या पकड़ते हैं, (२) लकड़ी को काटकर उनसे तख्ते, लुग्दी आदि तैयार करते हैं, (३) वनों को साफ

करके प्राप्त भूमि पर खेती करते हैं और (४) जहाँ कहीं औद्योगिक शक्ति के साधन मौजूद हैं, वहाँ शिल्प उद्योग होता है। शीतोष्ण कटिबंध के अधिकतर वन प्रदेश विकास की चौथी दशा को प्राप्त कर गए हैं। परन्तु फिर भी बहुत से वन प्रदेशों में लकड़ी काटने और समूर वाले जानवरों को फँसाने का काम ही मुख्य है।

यूरोप में ब्रिटिश तुल्य जलवायु का सम्पूर्ण प्रदेश वनों मे घिरा था। इन वनों के वृक्ष पतझड़ वाले थे परन्तु अच्छी मिट्टी या ऊँचाई पर नुकीली पत्ती वाले वन पाये जाते हैं। इस मिले-जुले वन प्रदेश के अधिकांश भाग को साफ कर डाला गया है, परन्तु कुछ पर्वतीय प्रदेशों में वनप्रदेश के छोटे-छोटे टुकड़े अभी भी पाये जाते हैं। उत्तरी स्पेन, वोसजेस पर्वत और स्कैन्डिनेविया का अधिकाश भाग अभी भी वनाच्छादित है। वास्तव में जंगलों को साफ करके वहाँ खेती का धंधा चालू करना तथा बस्ती कायम करने का काम धीरे-धीरे ही हो सका है। आज उत्तर पश्चिमी यूरोप बहुत अधिक उन्नति कर गया है। वहाँ का प्रधान उद्यम प्राथमिक खेती नहीं है। कोयले और लोहे जैसे खनिजों की प्राप्ति से तो वहाँ की दशा ही कुछ और हो गई है। आज वहाँ के प्रधान धंधे खान खोदना, शिल्प उद्योग और व्यापार है। इस प्रकार उत्तर-पश्चिमी यूरोप बहुत तरक्की कर गया है और कोयले की खानों के समीप घनी आबादी पायी जाती है। घनी आबादी और शिल्प-उद्योग वाले ये देश ग्रेट-ब्रिटेन, उत्तरी-पूर्वी फ्रांस, वेल्जियम, रूहर घाटी और सार बेसिन है। उत्तरी-पश्चिमी यूरोप में गहरी खेती की जाती है। वैज्ञानिक तरीकों तथा युक्तियों द्वारा भूमि से अधिक-से-अधिक उपज प्राप्त करने की कोशिश की जाती है।

इस प्रकार की जलवायु के अन्य प्रदेशों में अधिक उन्नति नही हुई है। अन्य प्रदेशों में औद्योगिक क्रिया-कलाप अधिक उन्नति नहीं कर पाया है। ब्रिटिश कोलम्बिया में लकड़ी काटने का उद्यम अभी भी सर्वोपरि है, परन्तु साथ-साथ मछली पकड़ने, खान खोदने और फल उगाने का काम भी होता है। तसमानिया और न्यूजीलैण्ड के दक्षिणी द्वीप में खेती का धंधा प्रधान है। फिर भी विस्तृत वनप्रदेश अभी तक साफ नहीं हो पाये है। दक्षिणी चिली अभी तक अविकसित दशा में है, परन्तु वहाँ लकड़ी काटने, मछली पकड़ने और दूध के लिए पशु चारण के धंधों के विकास के लिए काफी संभावनाएँ है।

मध्यवर्ती या साइबेरिया तुल्य जलवायु (Central or Siberian Type)

जलवायु—यहाँ की जलवायु बड़ी ही बिषम है। इस बिपमता का प्रधान कारण समुद्र से दूरी है। गर्मी का मौसम काफो गर्म होता है। तापक्रम ७०° फा० तक पहुँच जाता है और जाड़े का मौसम बहुत ठंडा होता है। तापक्रम हिमांक से भी नीचे चला जाता है। वर्षा कम होती है। वार्षिक औसत २० इंच के करीब होता है और यह प्रायः वसन्त ऋतु तथा गर्मी के मौसम में होती है। वर्षा वाहनिक होती है।

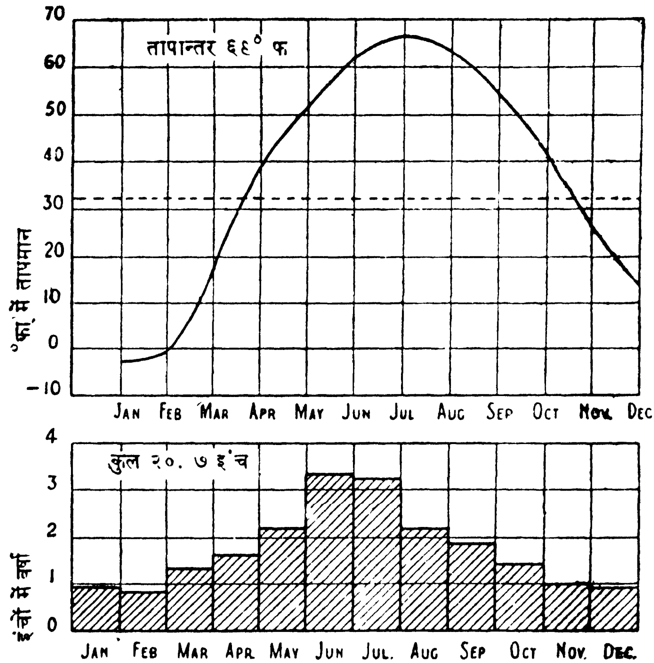

चित्र ११८—साइबेरिया तुल्य प्रदेश—विनिपेग (७८६ फीट)

विनीपेग को इस जलवायु के उदाहरण स्वरूप ले लिया गया है। इस रेखाचित्र को वेलेशिया के तापक्रम के रेखाचित्र से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों के गर्मी के तापक्रम तो बहुत कुछ एक-से है, जाड़े के तापक्रम के बीच बड़ा अन्तर है। विनीपेग का तापक्रम जाड़े में हिमांक से नीचा हो जाता है।

वनस्पति

यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति नुकीली पत्ती के सदाबहार वन है जिन्हें टैगा कहते हैं। कुछ हिस्सों में प्राकृतिक बनावट या हवाओं की विशेषताओं तथा समुद्र से दूरी के कारण वर्षा की मात्रा कम हो जाती है। अतः वनों के बीच घास के मैदान फैले हुए पाये जाते है जैसे कि अल्बर्टा और सस्केचवान में। इन जंगलों के प्रमुख वृक्ष चीड़, फर, स्प्रूस और लार्च हैं। बीच-बीच में बर्च, एस्पन और अन्य चौड़ी पत्ती वाले पेड़ भी बिखरे पाये जाते हैं। बर्च का पेड़ नुकीले पत्ती वाले जंगलों से बहुत अधिक उत्तर में भी मिलता है। वृक्षों के उगने की उत्तरी सीमा गर्मी की ५०° फा० सम-तापरेखा द्वारा बनती है।

नुकीली पत्तीवाले इस जंगल में वर्षा कम होती है और जाड़े में कड़ी सर्दी पड़ती है तथा तेज हवायें चलती हैं। इसलिए वृक्षों को अपना भोजन इकट्ठा कर लेना

पड़ता है। उनकी पत्तियाँ नुकीली होने से उनका अधिकतर भाग खुला नहीं रहता। उनके शंकु जैसे आकार के कारण उनमें तेज हवा सहन करने की शक्ति होती है। पत्तियों की अपेक्षा वृक्षों में काष्ठ का अंश अधिक होता है और इस काष्ठ भाग में ही ये वृक्ष अपना भोजन रखते हैं। नुकीली पत्ती वाले वनों में भूमि पर उगने वाली घास-फूस बहुत कम होती है। भूमि पर ३ से ५ फीट मोटी बर्फ की तरह पड़ी रहती है। इसलिए कोई भी वनस्पति भूमि पर नहीं उगी रह सकती। चीड़ की चिकनी पत्तियों और डालों के सामान्य अन्धकार के कारण भी घास-फूस नहीं उग पाते। इन जंगलों में

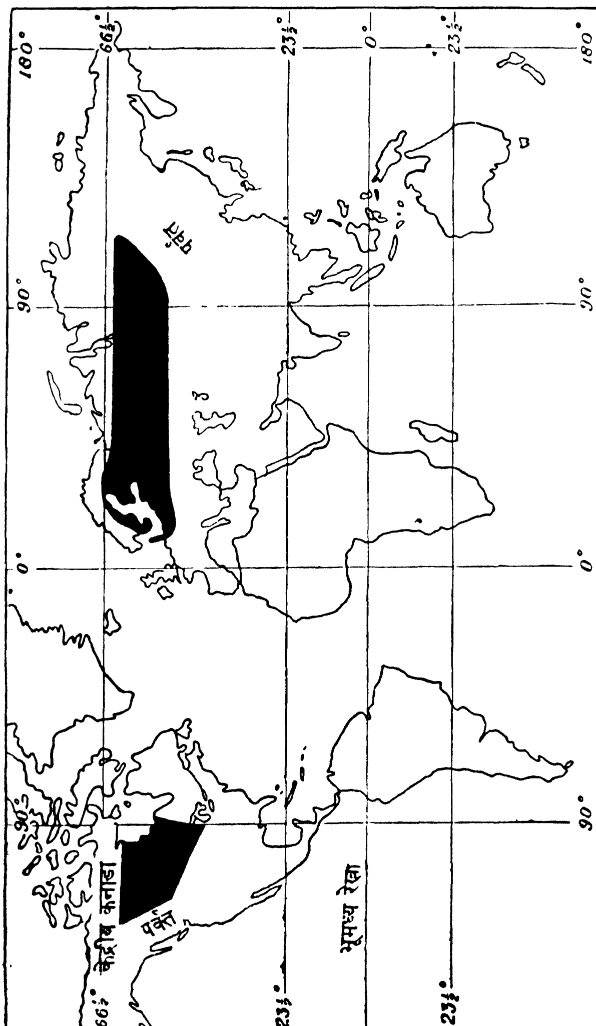

चित्र ११९—साइबेरिया तुल्य जलवायु के प्रदेश—(१) दक्षिणी महाद्वीपों के अन्तिम सिरे संकीर्ण होने के कारण वहाँ विषम जलवायु के कोई भी विस्तृत क्षेत्र नहीं हैं। (२) बाल्टिक सागर के चारों तरफ के प्रदेश को ब्रिटिश और साइबेरिया तुल्य जलवायु के बीच का प्रदेश कह सकते हैं। यहाँ ब्रिटिश प्रदेश की अपेक्षा ज्यादा परन्तु साइबेरिया प्रदेश की अपेक्षा कम तापान्तर पाया जाता है।

दूर-दूर तक केवल ७ या ८ प्रकार के ही वृक्ष पाये जाते हैं। कभी-कभी तो सैकड़ो मील के क्षेत्र में केवल एक ही प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं। इस से लकड़ी काटने में आसानी होती है और इन जंगलों को संसार की बहुमूल्य लकड़ी का भंडार समझा जाता है।

आर्थिक विकास की दशा

पतझड़ वनों की तरह इन प्रदेशों में विकास का क्रम चार दशाओं मे सीमित है :—(१) जानवर पकड़ना, (२) लकड़ी काटना, (३) खेती, (४) यदि खनिज पदार्थ है, तो खान खोदना।

प्रथम दशा में तो जानवर पकड़ने वाले गिलहरी, लोमड़ी, एरमाइन, स्कंक, वीवर, मारटन आदि पशुओं का शिकार करते हैं और उनसे बहुमूल्य समूर प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार नुकीली पत्तीवाले वनों में कुछ थोड़े से प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं इसी प्रकार समूर वाले थोड़ी-सी जाति के पशु ही यहाँ पाये जाते हैं।

काफी ठंडे जाड़े में, हिमाच्छादित भूमि के कारण लकड़ी काटने की सुविधा रहती है। जहाँ-जहाँ लकड़ी काटने के धंधे की प्रगति ने वन साफ कर दिये हैं वहाँ खेती का धंधा होता है और इस प्रकार के प्रदेशों मे खनिज पदार्थ भी काफी पाये जाते हैं।

परन्तु मध्यवर्ती कनाडा और मध्यवर्ती साइबेरिया के विकास मे जमीन आसमान का अन्तर है। इसके निम्नलिखित कारण है।—

(१) साइबेरिया में सेंट लारेन्स और झीलों के जैसा कोई भी जलमार्ग नहीं है जो पूर्व से पश्चिम की ओर फैला हो। कनाडा के ये जलमार्ग यातायात के लिए सस्ता साधन उपस्थित करते हैं और आन्ध्र महासागर जैसे महत्वपूर्ण जलभाग की ओर निकास देते हैं।

(२) साइबेरिया की प्रमुख नदियाँ, ओबी, यनीसी और लीना उत्तर की तरफ ऐसे सागर मे जा गिरती है जो साल के नौ महीने जमा पड़ा रहता है।

(३) मध्यवर्ती कनाडा की अपेक्षा साइबेरिया में रेलमार्गों का विकास भी अधिक नही हुआ है।

(४) मध्यवर्त्ती कनाडा में पश्चिमी यूरोप के लोग जा बसे है और उन्होंने ही काफी तरक्की कर दी है। इसके विपरीत साइबेरिया मे रूस के पिछड़े हुए लोगों ने कोई अधिक प्रगति नहीं की है। इसका एक कारण यह भी है कि इसका विस्तार इतना अधिक है, और देशों से यह इतना अलग-अलग है, पूँजी की कमी है, कैदियों के लिए कालापानी यहीं बनाया गया है तथा कुछ अन्य राजनीतिक कठिनाइयाँ रही है जिनके कारण लोग मध्य कनाडा की ओर अधिक खिचे और साईबेरिया पीछे ही रह गया।

(५) रूस को छोड़कर अन्य यूरोपीय देशों के लोगों को साइबेरिया में बसने का मौका ही नहीं दिया गया।

पिछले कुछ वर्षो से रूस ने साईबेरिया की उन्नति की ओर ध्यान दिया है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप खेती के क्षेत्र में भारी उन्नति हुई है। साथ-साथ लकड़ी काटने और खान खोदने का धंधा तथा शिल्प-उद्योग भी काफी तरक्की कर गया है। खान खोदने और शिकार की तरह लकड़ी काटने का धंधा ऐसा है कि उसके द्वारा काटी हुई सामग्री हमेशा के लिए समाप्त हो जाती है। इसके द्वारा प्राकृतिक सम्पत्ति निरन्तर घटती ही जाती है। सैकड़ों वर्षों से संसार की लकड़ी को काटा जा रहा है और धीरे-धीरे इसकी वन-सम्पत्ति कम होती जा रही है। लकडी काटते समय जिस प्रकार से पेड़ हटाये जाते है, उनको देखते हुए यह धंधा अल्पकालिक मालूम पड़ता है। जब किसी एक विशेष क्षेत्र की लकड़ी काटी जा चुकी है तो लकड़ी काटने वाले आगे बढ़ जाते है। यही कारण है कि इनका निवास स्थान लकड़ी की झोपड़ियों में रहता है और इनका जीवन बड़ी कठिनाई से बीतता है। जब तक फिर से वन लगाने और वर्त्तमान वन-प्रदेशों को होशियारी से काटने की नीति नही अपनाई जाती, तब तक स्थायी निवास और जीवन का उच्च स्तर कदापि नही प्राप्त किया जा सकता।

पूर्वी तटवर्ती या लारेन्स तुल्य जलवायु (East Margin or St. Laurence Type)

जलवायु—पूर्वी तटवर्ती प्रदेशों की जलवायु न तो पश्चिमी तट के सामान सम ही है और न मध्यवर्नी प्रदेशों की तरह विषम ही। मुख्य अन्तर जाड़े के तापक्रम में है।

उपर्युक्त चित्र से प्राप्त क्वेबक के विषय मे आँकड़ों को वेलेशिया और विनीपेग के साथ तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि गर्मी के तापक्रम में कोई विशेष अन्तर नही है, परन्तु आन्ध्र महासगर के प्रभाव के कारण वेलेशिया का ग्रीष्मकालीन तापमान कुछ कम रहता है। जाड़े मे वेलेशिया का तापक्रम ३२° फा० से अधिक रहता है, विनीपेग का ०° से और क्वेबक का १०° फा० यानी दोनों के बीच का।

इस विषय मे यह भी विचारने की बात है कि पश्चिमी तटवर्ती प्रदेशों में पछुवाँ हवाये आती है और ये हवाये सभी मौसम में समुद्र की ओर से चला करती है परन्तु मध्यवर्नी प्रदेशों मे समुद्र का कुछ भी प्रभाव नही पड़ पाता। इसके विपरीत पूर्व तटवर्ती प्रदेशों मे जाड़े मे हवा पश्चिम से आती है और स्पष्ट है कि यह अपने साथ महाद्वीपों के केन्द्र से विषमता भी लाती है। गर्मी के मौसम मे इन पूर्वी प्रदेशों में हवा पूर्व से समुद्र की ओर से आती है। ये हवायें गर्मी के तापक्रम को कम कर देती है और इन्हीं के द्वारा गर्मी में वर्षा भी होती है।

पूर्वी तटवर्ती प्रदेशों मे वर्षा २० इंच से ४० इंच तक होती है। यह पश्चिमी प्रदेशों की वर्षा से कम परन्तु मध्यवर्त्ती प्रदेशों से अधिक होती है। इस प्रकार वर्षा और तापक्रम दोनों ही के दृष्टिकोण से पूर्वी प्रदेश पश्चिमी और मध्यवर्ती प्रदेशों के बीच के ठहरते हैं। वर्षा प्रधानतः गर्मी के मौसम में होती है जबकि हवायें समुद्र से अन्दर की

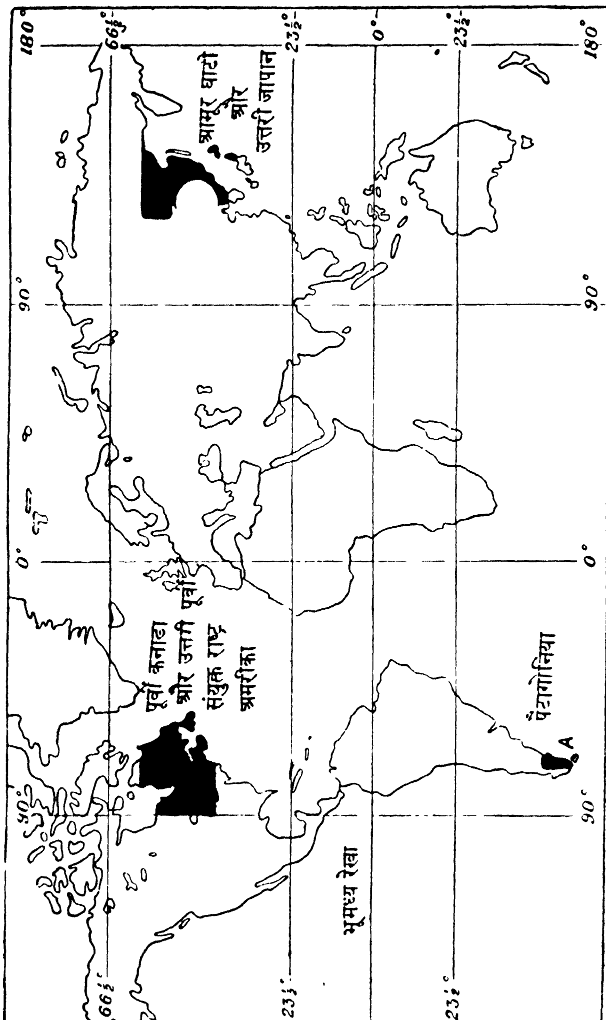

चित्र १२०—लारेंस तुल्य जलवायु के प्रदेश

ओर चलती हैं। यदि पूर्वी एशिया में व्लाडीवोस्टक की वर्षा को ठीक से अध्ययन किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है, परन्तु पूर्वी कनाडा में गर्तचक्रों से जाड़े के मौसम में बर्फ गिर जाती है और इस प्रकार कुल वर्षा की मात्रा बढ़ जाती है तथा उसका वार्षिक वितरण भी सम हो जाता है। पूर्वी कनाडा में जाड़े का भारी हिमपात लकड़ी काटने के उद्यम के लिए बहुत महत्व का है।

दक्षिणी अमरीका का एक भाग स्थिति के अनुसार इस प्रकार की जलवायु के अन्तर्गत आता है परन्तु उसकी जलवायु यहाँ से बहुत कुछ भिन्न है। यह अर्जेन्टाइना

का दक्षिणी भाग है जिसे पैटागोनिया कहते हैं। यहाँ यह महाद्वीप संकरा हो जाता है और समुद्र का प्रभाव उत्तरी गोलार्द्ध के पूर्वी भागों की अपेक्षा अधिक प्रखर है। अतः तापान्तर बहुत कम है और जाड़े का मौसम काफी गर्म होता है। जुलाई का मध्यम-मान तापक्रम ३२° फा० से अधिक होता है। इसके विपरीत लारेन्स प्रदेशों का उत्तरी गोलार्द्ध में जनवरी का तापक्रम ३२° फा० से कम होता है।

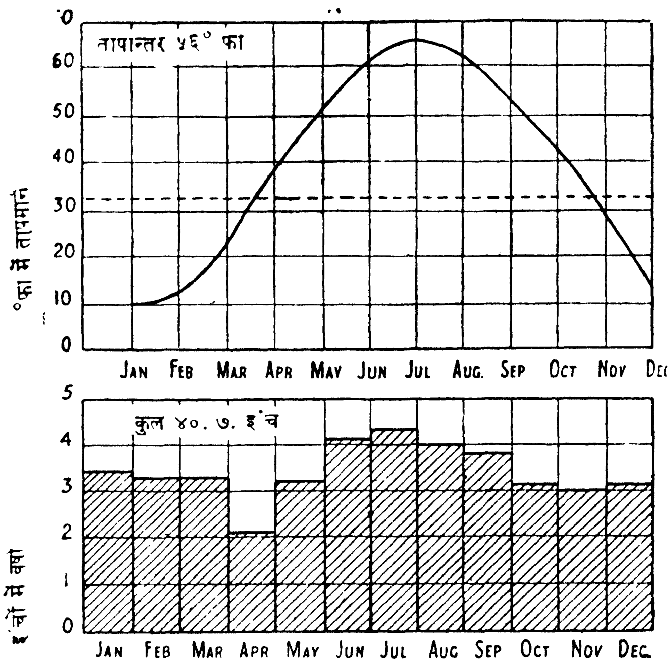

चित्र १२१—लारेन्स तुल्य जलवायु—क्वेबक (२९६ फीट)

एण्डीज पर्वत श्रेणी इस प्रदेश तक पछुवाँ हवाओं को नही आने देती। फलस्वरूप यहाँ वर्षा १० इंच वार्षिक से भी कम होती है और इसे रेगिस्तान ही कहा जाता है। इसका अधिकतर भाग सूखी झाड़ियों से ढका है और उन पर छोटी घास के चरागाह पाये जाते हैं जिन पर भेड़ चराई जाती है।

वनस्पति

अधिकतर भाग में नुकीली पत्ती वाले जंगल पाये जाते हैं और यह प्रदेश भी शीत शीतोष्ण कटिबंध के विस्तृत वन प्रदेश का ही भाग है। परन्तु इन प्रदेशों के दक्षिणी पूर्वी कोने में—जैसे अमरीका में सेंटलारेन्स की घाटी तथा न्यू-इंगलैण्ड प्रदेश और एशिया में मन्चूरिया में पतझड़ के पेड़ पाये जाते हैं। पूर्वी कनाडा में मेपल और ओक तथा वीच मन्चूरिया में पाये जाते हैं।

आर्थिक विकास

साइबेरिया तुल्य जलवायु के प्रदेशों की तरह इन प्रदेशों में भी विकास क्रम की चारों दशायें पायी जाती हैं। (१) जानवर पकड़ने से आगे बढ़कर, (२) लकड़ी काटने का धंधा होता है। लकड़ी की प्राप्ति पर निर्भर और बहुत से शिल्प उद्योग भी शुरू हो जाते हैं। जहाँ कहीं पेड़ काट कर भूमि को साफ कर लिया गया है वहाँ (३) किसी न किसी प्रकार की खेती की जाती है। परन्तु खेती का धंधा मिट्टी की दशा पर निर्भर रहता है। बाद में यदि खनिज पदार्थ मिल गये तो (४) खान खोदने का धंधा बढ़ जाता है।

पूर्वी एशिया की अपेक्षा पूर्वी कनाडा में अधिक आर्थिक उन्नति हुई है। परन्तु जापान में लकड़ी की कमी को पूरा करने के लिए मन्चूरिया में लकड़ी काटने का धंधा बहुत तरक्की कर गया है।

अध्याय पन्द्रह

प्राकृतिक विभाग

(NATURAL REGIONS)

उष्ण शीतोष्ण प्रदेश (Warm Temperate Lands)

वर्गीकरण

सामान्य रीति से उच्च प्रदेशों को छोड़कर उष्ण शीतोष्ण प्रदेशों को निम्न-लिखित विभागों में बाँटा जा सकता है :

(१) पश्चिमी तटवर्ती या भूमध्यसागरीय (Western Margin or Mediterranean Type)

(२) मध्यवर्त्ती या स्टेपी तुल्य (Central or Steppe Type)

(३) पूर्व तटवर्ती या चीन तुल्य (Eastern Margin or China Type) (इसे शीतोष्ण मानसून जलवायु भी कहते हैं)। उष्ण शीतोष्ण प्रदेश मोटे तौर पर ३० और ४५ अक्षांशों के बीच स्थित है।

पश्चिमी तटवर्ती या भूमध्य सागर तुल्य जलवायु

(Western Margin or Mediterrenean Type)

जलवायु—इस प्रकार की जलवायु के प्रदेशों में तापक्रम **और वर्षा** की **वे** ही दशायें पाई जाती हैं जो भूमध्य सागर के चारों ओर के प्रदेशों में मिलती हैं। जाड़े में इस प्रदेश की ओर समुद्र से तर पछुवाँ हवायें चलती है, परन्तु गर्मी में व्यापारिक हवाये थल की ओर से चलती हैं। परन्तु विस्तृत अध्ययन से इस साधारण स्थिति में कुछ हेर-फेर हो जाता है।

गर्मी का मौसम गर्म रहता है। तापक्रम ७०° फा० से अधिक और ८०° फा० से कम रहता है। मौसम की यह दशा समुद्र से दूर मध्य इटली जैसे प्रदेशों में रहती है। जाड़े की ऋतु साधारण ठंडी होती है। औसत तापक्रम करीब ५०° फा० होता है। वर्षा प्रायः जाड़ों के महीनों में होती है। इन प्रदेशों के ध्रुवीय पार्श्व में वर्षा की मात्रा ३० इंच तक होती है, परन्तु रेगिस्तान की तरफ वर्षा केवल १० इंच रह जाती है। ट्रीस्ट के आस-पास वार्षिक वर्षा ८० इंच तक होती है। भूमध्यसागरीय प्रदेशों के ध्रुवीय तरफ जैसे दक्षिणी फ्रांस के गर्मी के मौसम में प्रायः एक महीना ऐसा होता है, जब वर्षा बिल्कुल नहीं होती परन्तु मरुस्थल की तरफ जैसे ट्रिपाली में गर्मी के सात महीनों में तृण मात्र भी वर्षा नहीं होती है।

निम्नलिखित चित्र में सिसली द्वीप के पलार्मो स्थान के आँकड़े दिये गये हैं। यूरोपीय भूमध्यसागर तुल्य प्रदेश में इसकी स्थिति केन्द्रीय है। गर्मी के तीन महीनों में यहाँ वर्षा बिल्कुल भी नहीं होती। तापान्तर २७° फा० होता है। गर्मी का तापक्रम ७७° फा० रहता है, और जाड़े का तापक्रम ५०° फा० होता है।

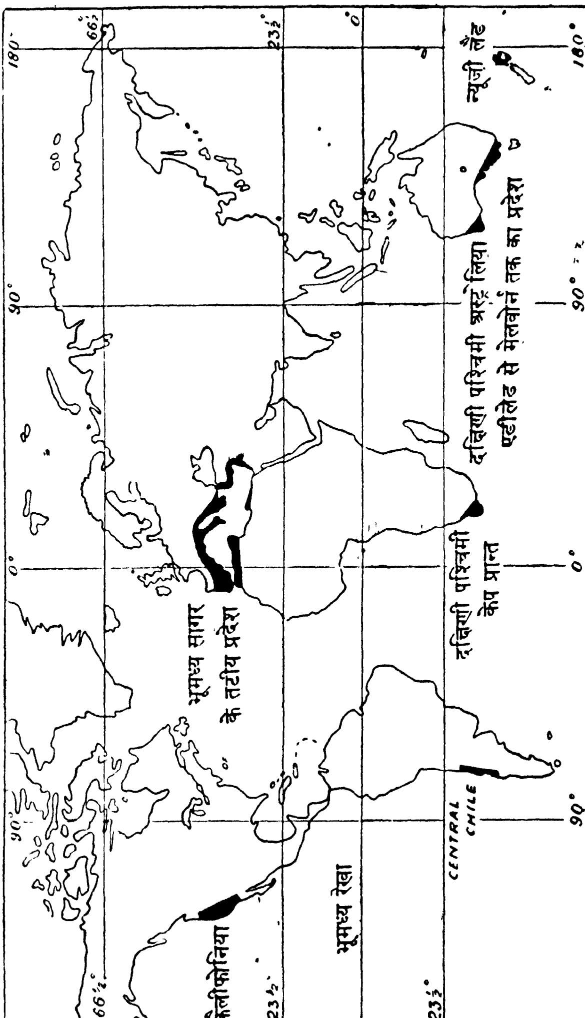

चित्र १२२—भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेश—न्यूजीलैंड के उत्तरी द्वीप की जलवायु बिल्कुल भूमध्य सागर जैसी नहीं है और कुछ विशेषज्ञ इसे ब्रिटिश तुल्य कहते हैं। भूमध्यसागर के तट पर वेनिस जैसे कुछ स्थान भी पूर्णतया इस वर्ग में नहीं आते।

वनस्पति—इस प्रकार की जलवायु में चौड़ी पत्ती के सदाबहार जंगल तथा झाड़ियाँ पायी जाती है। जाड़े के महीनों में वर्षा तो होती है और सर्दी भी कम पड़ती है परन्तु उपज धीरे-धीरे ही होती है। गर्मी के महीनों में वर्षा तो थोड़ी बहुत जरूर

होती है, परन्तु उष्ण व शुष्क मौसम के कारण उपज धीमी रहती है। इस प्रकार की जलवायु के वृक्षों में धीमी उपज और गर्मी की शुष्कता के मुकाबले के लिए प्रकृति ने उनमें काष्ठ का अंश अधिक दे दिया है। उनकी बनावट भी घनी होती है। अधिक वाष्पीभवन से बचाव करने के लिए यहाँ के सदाबहार वृक्षों की पत्तियाँ कठोर, छोटी तथा चमकदार चिकनी होती है। इनका रंग नीला और भूरा हरा होता है । इन प्रदेशों में पानी इकट्ठा करने वाले पौधे भी पाये जाते हैं। घीकुआँर के पेड़ खूब उगते हैं और उनकी पत्तियाँ तलवार जैसी होती है। परन्तु इन वृक्षों की ऊँचाई ब्रिटिश द्वीप की झाड़ियों से कम होती है। उनमें छाया नही होती है। यहाँ पर हरे-भरे चरागाहों की भी कमी है, क्योंकि गर्मी के मौसम की शुष्कता हरी-भरी घास उगने नहीं देती।

इस प्रकार कई प्रकार की वनस्पति पायी जाती है। ओक के जंगल हैं, अंजीर के पेड़ों के झुरमुट ह और जैतून के पेड़ पाये जाते है। मर्टल, लारेल, आलीएन्डर आदि की ाड़ियाँ भी पाई जाती हैं। जहाँ पर मूल वन नष्ट हो चुके है, वहाँ पर काँटेदार झाड़ियाँ पाई जाती है। कार्सिका में इन झाड़ियों को माक्विस या माचिया कहते है। माक्विस जाति के फूलवाले पौधों के कारण कार्सिका को खुशबूदार द्वीप कहते है।

खेतिहर पौधों में गेहूँ, जौ आदि अनाज प्रधान है। बहुत प्रकार के फल भी उगाये जाते है, जिनमे जैतून, अंजीर, संतरे, नींबू, नाशपाती, आडू, खूबानी अंगूर तथा

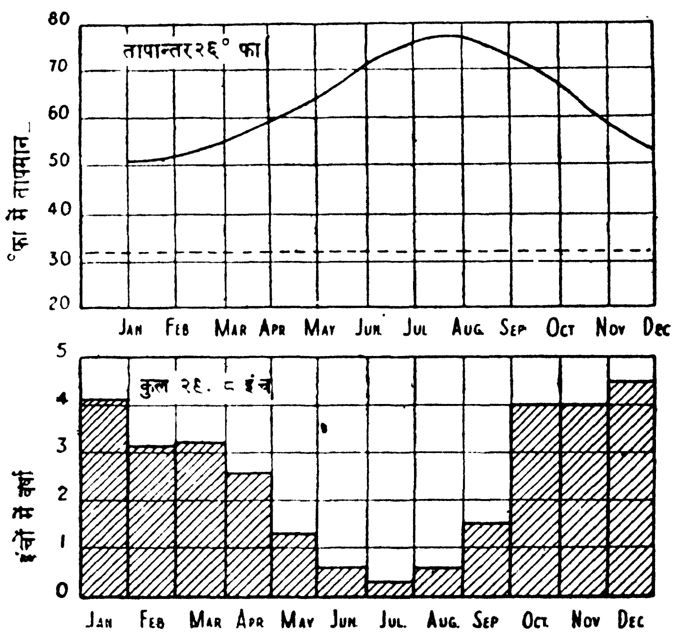

चित्र १२३--भूमध्य सागरीय जलवायु---पैलर्मो (२३० फीट)

अनार, बादाम मुख्य हैं। इन सब में जैतून का पौधा विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। प्रायः जहाँ कहीं भी जैतून के पौधे उगते हैं, यह समझ लेना चाहिए कि वहाँ भूमध्यसागरीय जलवायु पायी जाती है। यदि जैतून के उत्पादन को एक मानचित्र पर दिखलाया जाय तो वही सीमायें भूमध्यसागरीय प्रदेशों की भी होगी।

आर्थिक विकास—भूमध्यसागरीय प्रदेशों में विकास का क्रम शीत शीतोष्ण प्रदेशों से कुछ भिन्न है। यूरोप के बाहर स्थित भूमध्यसागरीय प्रदेशों में निम्नलिखित विकास क्रम मिलता है :—

(१) बहुमूल्य खनिज की खोज, जैसे, कैलीफोर्निया में सोना।
(२) चमड़े की खालों और मांस के लिए पशुओं का पालना।
(३) फलों का उगाना।
(४) खेतिहर धंधों की उन्नति, जैसे शराब बनाना, फल सुखाना, जैतून का तेल निकालना इत्यादि।

विकासक्रम की ये चारों दशाये अन्य प्रदेशों में तो मिल जाती है, परन्तु यूरोप में नही।

वन भी बहुत विस्तृत नही है। वृक्षों की लकड़ी अधिक उपयोगी नहीं है। परन्तु कुछ वृक्ष विशेष उपयोगी है, जैसे सिडार के वृक्ष की लकड़ी और ओक वृक्ष की छाल। गर्मी के मौसम में साफ शुष्क रोशनी वाले मौसम में फल उगाना बड़ा ही सुविधाजनक है। इस मौसम में फलों को सुखाया भी जा सकता है और अन्य प्रकार की खेती भी की जा सकती है। यह जलवायु गेहूँ के उत्पादन के लिए आदर्श है और यहाँ का गेहूँ मार-कोनी बनाने के लिए बड़ा ही उपयुक्त होता है। परन्तु सभी भूमध्यसागरीय प्रदेशों की प्राकृतिक बनावट ऐसी है कि उनमें से कही भी मध्यवर्ती कनाडा जैसे विस्तृत मैदान नही है। अतएव उपयुक्त जलवायु के होते हुए भी भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेश संसार के गेहूँ उत्पादक प्रदेश नही है।

भूमध्यसागरीय प्रदेशों के निरीक्षण से स्पष्ट है कि वहाँ कोयले का अभाव है। इसीलिए उत्तरी पश्चिमी यूरोप और उत्तरी पूर्वी संयुक्तराष्ट्र अमरीका के समान ये प्रदेश उन्नत नहीं हो पाये हैं। इन प्रदेशो में उद्योग अवश्य है, परन्तु उनका आधार अधिकतर फल है, जैसे कि शराब बनाना, जैतून का तेल तैयार करना, इत्यादि। अलग-अलग शहरों में सुविधा के अनुसार कपड़े बुनने, इंजीनियरिंग आदि उद्योग उठ खड़े हुए है। बार्सीलोना, नेपल्स, मिलन, ट्यूरिन, और मारसले इसी प्रकार के नगर है। परन्तु ये नगर बर्मिन्घम या डुसलडार्फ की तरह भारी उद्योगों के केन्द्र नहीं है।

मध्यवर्ती या स्टेपी तुल्य जलवायु (Central or Steppe Type)

जलवायु—महाद्वीपों के मध्यवर्ती प्रदेश में समुद्र से दूर होने के कारण तापक्रम की विषमता पाई जाती है। गर्मियाँ बहुत गर्म होती हैं। तापक्रम ८०° फा० से भी अधिक होता है। जाड़े का मौसम बहुत ठंडा होता है। तापक्रम ३२° फा० से भी नीचा चला जाता है। वर्षा कम होती है। वार्षिक औसत केवल २० इंच है। वर्षा का अधिकांश भाग बसन्त और गर्मी के शुरू में होता है। यह वर्षा वाहनिक है।

नीचे दिये हुए चित्र से उत्तरी डकोटा राज्य के विस्मार्क नगर की दशा का पता चलता है। यह नगर समुद्रतल से १६७४ फीट ऊँचा है। इसलिए तापक्रम ५° फा० तक कम हो जाते हैं। एशियाई स्टेपी प्रदेश की वर्षा केवल १० इंच होती है क्योंकि वे प्रदेश समुद्र से बहुत दूर हैं। दक्षिणी गोलार्द्ध के स्टेपी प्रदेशों के नगरों में तापक्रम की वह विषमता नहीं मिलती जो कि उत्तरी गोलार्द्ध में। इसका कारण यह है कि शीतोष्ण अक्षांशों में दक्षिणी महाद्वीप बहुत संकरे हैं और कोई भी जगह समुद्र के प्रभाव से परे नहीं है। दक्षिणी गोलार्द्ध में अर्जेन्टाइना में तापान्तर सबसे अधिक है। वहाँ का तापान्तर ३०° फा० है। इसके विपरीत उत्तरी गोलार्द्ध के स्टेपी प्रदेश का तापान्तर ५०° फा० से ७०° फा० तक है।

वनस्पति—स्टेपी प्रदेश घास के मैदान हैं। ये विस्तृत मैदान बड़ी दूर तक फैले हुए होते हैं। दृश्य की समानता को भ्रष्ट करने वाली कोई भी रूकावट नहीं होती।

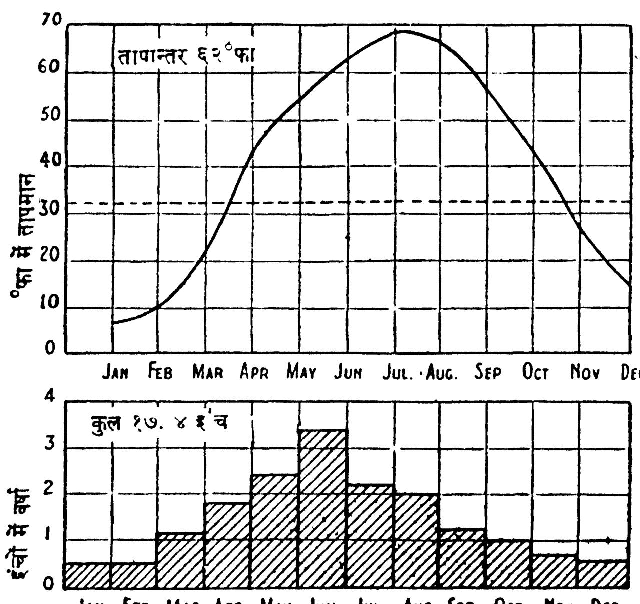

चित्र १२४—स्टेपी तुल्य प्रदेश—विस्मार्क (१६,७४ फीट)

मीलों तक कोई पेड़ तक नहीं दिखलाई पड़ता। जाड़े की कड़ी सर्दी और शुष्कता के साथ-साथ कम वर्षा और भीषण वाष्पीभवन के कारण पेड़ों का उगना असम्भव होता है। विलो, पोपलार और एल्डर के वृक्ष नदियों के किनारों पर ही पाये जाते हैं। यहाँ की घास भी हरी फरी और ताजी नहीं होती। यह घास कड़ी और सूखी होती है। इसके तिनके अन्दर को मुड़े हुए और भूरे रंग के होते हैं। अर्जेन्टाइना के पैम्पास में घास गुच्छों में उगती है और घास के इन गुच्छों के बीच खाली जमीन दिखलाई पड़ती रहती है।

स्टेपी प्रदेश का दृश्य मौसम के अनुसार बदलता जाता है। बसन्त ऋतु के शुरू में हरी-ताजी घास के बीच-बीच सैकड़ों फूल खिले रहते हैं। परन्तु साल में आगे बढ़कर घास जलकर सूखी और भूरी पड़ जाती है। इसका प्रधान कारण मौसम की गर्मी और शुष्कता है। पतझड़ के मौसम में कुछ स्टेपी प्रदेशों में सूखी भूरी-हरी वनस्पति उग आती है और सम्पूर्ण प्रदेश ब्रुश की तरह मालूम पड़ने लगता है। जाड़े के मौसम म स्टेपी प्रदेश वनस्पति रहित और हिमाच्छादित हो जाता है।

जहाँ पर वर्षा की मात्रा २० इंच तक होती है, वहाँ पेड़ पाये जाते हैं। जहाँ

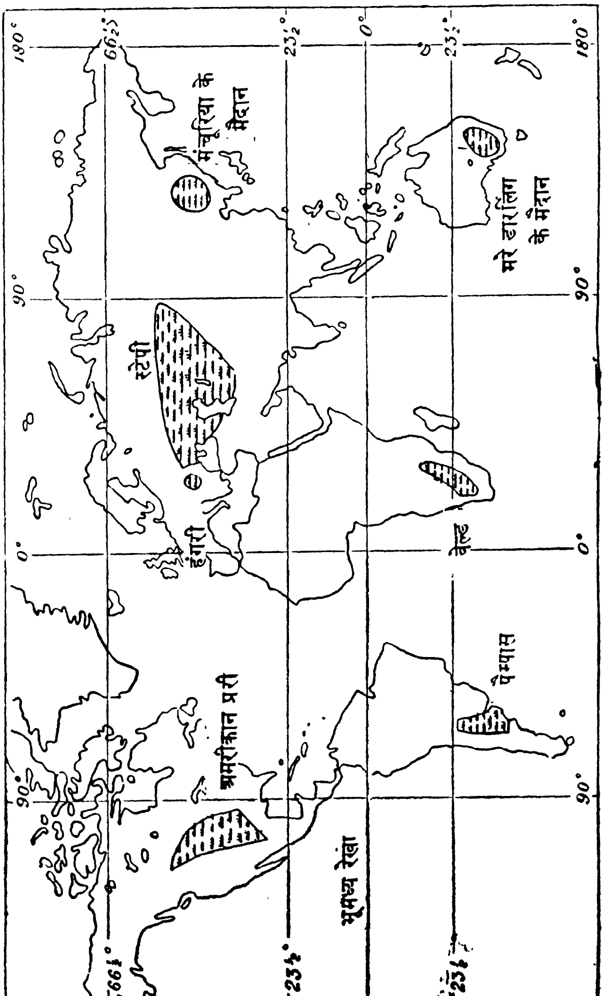

चित्र १२५—स्टेपी प्रदेश

वर्षा १० इंच से कम हो जाती हैं, वहाँ छोटी-छोटी झाड़ियाँ पाई जाती हैं और भूखंड अर्द्ध-मरूस्थली हो जाता है।

आर्थिक विकास

स्टेपी प्रदेशों में विकास क्रम की चार अवस्थायें दिखलाई पड़ती हैं—

(१) सबसे प्रथम अवस्था खानाबदोशी की है। थोड़े से निवासी जो रहते हैं वे शिकारी हैं और खाने की तालाश में इधर-उधर घूमा करते हैं। बाद में यदि प्रदेश के जानवर पालने के योग्य हुए तो यही खानाबदोश लोग पशुचारण का धंधा करने लगते हैं। यूरेशिया के मैदानों में ये लोग अपने पशुओं के भोजन की तालाश में दूर-दूर तक जाते हैं।

(२) जब इन मैदानों में अधिक तरक्की किये हुए लोग आकर बस जाते हैं, तो वैज्ञानिक तरीकों से पशु व भेड़ रखने का काम शुरू हो जाता है। खानाबदोशी का जीवन खतम हो जाता है और उसके स्थान पर स्थायी बस्तियाँ बन जाती हैं।

(३) स्टेपी के अधिकतर व उपजाऊ भागों में खेती का धंधा होता है और शीतोष्ण कटिबंधीय बहुत सी फसलें उगाई जाती हैं। धीरे-धीरे शुष्क स्टेपी प्रदेशों को शुष्क खेती प्रणाली या सिचाई द्वारा खेती योग्य बनाया जा रहा है।

(४) अधिक उन्नत प्रदेशों में शिल्प-उद्योग बढ रहे है। ये उद्योग कुछ विशेष प्रकार के हैं। जिस प्रकार भूमध्यसागरीय प्रदेशों के उद्योग फल तथा अन्य खेतिहर उपज से सम्बन्धित हैं, उसी प्रकार स्टेपी प्रदेशो के उद्योग वहाँ की फसलों और पालतू पशुओं से सम्बन्ध रखते हैं। वहाँ के उद्योग-धन्धों मे अनाज तथा माडी तैयार करना; मांस को डिब्बों में भरकर तैयार करना; मांस की अन्य वस्तुये तैयार करना; चमड़े के सामान तैयार करना; सूअर के मांस को ठीक करना; चर्बी को साफ करना तथा मारगेरीन गोंद तथा हड्डी और सीग की वस्तुये तैयार करना है। कुछ भागों मे विशेष-कर मध्यवर्ती संयुक्त राज्य अमरीका में कोयले की खानें पाई जाती है, और इनकी सहायता से अधिक औद्योगिक उन्नति हो सकी है।

हर स्टेपी प्रदेश को विकास की इन दशाओं से नही गुजरना पडता और प्रत्येक स्टेपी प्रदेश ने समान उन्नति कदापि नहीं की है। मध्य एशिया के स्टेपी प्रदेश में अभी भी बहुत से खानाबदोश पाये जाते है जो पशुचारण करते हैं। इधर कुछ दिनों मे रूस तर प्रदेशों में खेती का धंधा उन्नत करने का प्रयत्न कर रहा है। अमरीका के तर भागों में—नम प्रेरी प्रदेश में मक्का उगाया जाता है और अन्य प्रकार की खेती की जाती है। शुष्क प्रदेशों में पशुचारण होता है।

आस्ट्रेलिया के घास के मैदानों में भेड़े चराई जाती हैं और साथ-साथ खेती तथा पशुचारण भी होता है। यही हाल दक्षिणी अफ्रीका के वेल्ड प्रदेश का है।

पूर्वी तटवर्त्ती या चीन तुल्य जलवायु (Eastern Margin or Chinese Type)

जलवायु—इस प्राकृतिक विभाग को अक्सर शीतोष्ण मानसून प्रकार भी कहते

हैं। गर्मी के दिनों में तर हवायें समुद्र से महाद्वीप के आन्तरिक भाग की ओर प्रवाहित होती हैं और जाड़े में शुष्क हवायें महाद्वीपीय उच्च भारप्रदेश से समुद्र की ओर चलती हैं। गर्मी में काफी तापक्रम रहता है, ८०° फा० तक और भूखंड की तरफ से आनेवाली ठंडी हवाओं के कारण जाड़े में कड़ी सर्दी पड़ती है। भूमध्यसागरीय जलवायु की अपेक्षा यहाँ सर्दी बहुत अधिक रहती है। वर्षा ३० इंच से ५० इंच तक होती है। वर्षा साल भर

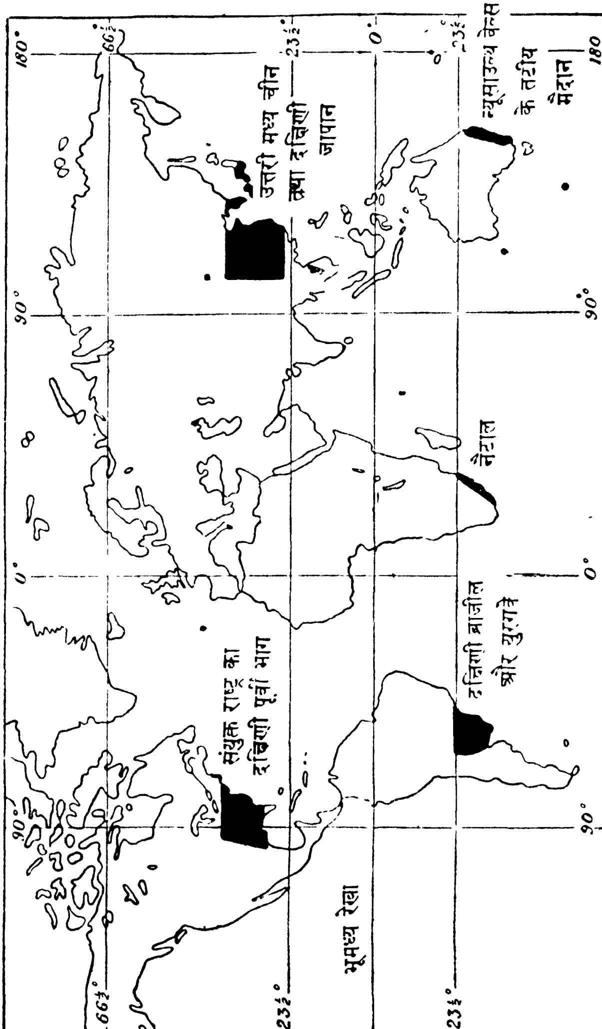

चित्र १२६—चीन तुल्य जलवायु के प्रदेश

बराबर होती रहती है यद्यपि गर्मी के मौसम मे वर्षा अधिक होती है। अगले पृष्ठ पर दिये हुए शांघाई के चित्र से ये विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं।

अमरीका में इस जलवायु के प्रदेश को गर्तचक्रों से वर्षा प्राप्त होती है, परन्तु एशिया में बाहर की ओर चलने वाली हवाओं के किनारे की तरफ पुनः मुड़ जाने से।

जिस प्रकार ब्रिटिश तुल्य जलवायु की अपेक्षा लॉरेन्स तुल्य जलवायु में सर्दी का मौसम बहुत ठंडा होता है उसी प्रकार भूमध्यसागरीय जलवायु की अपेक्षा चीन तुल्य जलवायु की सर्दियाँ बड़ी कड़ाके की होती हैं। लिस्बन और पीकिंग प्रायः एक ही अक्षांश में हैं, परन्तु लिस्बन की टेगस नदी कभी भी नही जमती, यद्यपि पीकिंग की पीहो प्रायः हमेशा ही जम जाती है। पर्लामो और शाघांई के रेखाचित्रों की तुलना से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

दक्षिणी गोलार्द्ध में चीन तुल्य जलवायु के प्रदेशों का विन्यास कुछ भिन्न है। वहाँ का तापान्तर कम रहता है, क्योंकि समुद्र के प्रभाव से जाड़े का तापक्रम कुछ बढ़ जाता है। वहाँ पर वास्तविक मानसून भी नहीं होने और दक्षिणी पूर्वी हवाये सभी

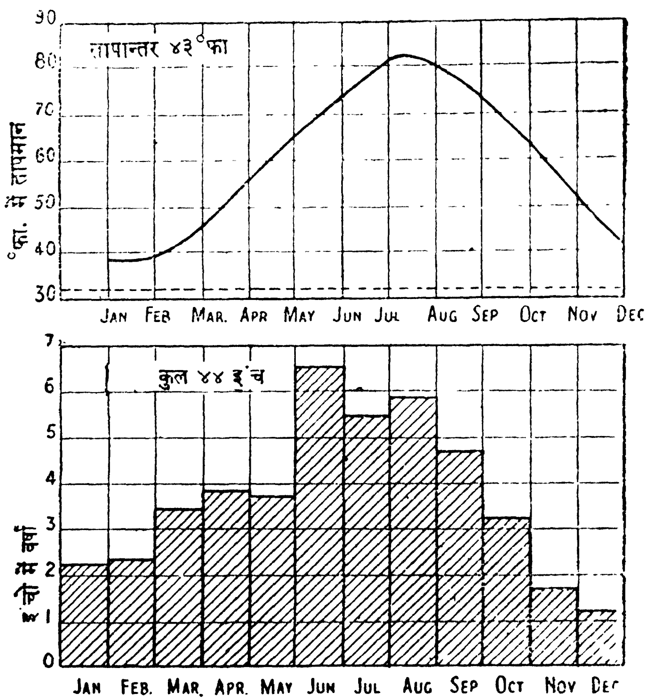

चित्र १२७—चीन तुल्य जलवायु—शांघाई (३३ फीट)

मौसम में समुद्र से स्थल की ओर चला करती है। इसलिए वर्षा साल भर बराबर होती है यद्यपि गर्मी में वर्षा अधिक होती है, क्योंकि व्यापारिक हवायें महाद्वीपों के आन्तरिक भागों की ओर तेजी से चलती हैं।

वनस्पति——इन प्रदेशों में घने पतझड़वाले वन पाये जाते हैं, परन्तु ऊँचाइओं पर नुकीली पत्ती वाले वन मिलते हैं। अपलेचियन, आस्ट्रेलिया के ब्लू पर्वत, दक्षिणी ब्राजील के चीड़ वन और दक्षिणी अफ्रीका के ड्रेकान्सबर्ग पर्वत पर नुकीली पत्ती वाले वन पाये जाते हैं।

इन वनों के प्रधान वृक्ष वीच, ओक, मैगनोलिया, कैमीलिया और कपूर है। इसके अलावा काँटेदार वृक्ष, छोटे ताड़, बाँस और अन्य फूलदार झाड़ियाँ भी मिलती हैं। इनकी विशेषता यह है कि इनकी निम्न भूमि पर घास-फूस तथा जंगली फूलों की भरमार रहती है। ये वन व्यापारिक दृष्टिकोण मे महत्त्वपूर्ण है——कुछ से तो बहुमूल्य लकड़ी प्राप्त होती है और कुछ से कपूर, गोंद, चाय इत्यादि।

आर्थिक विकास——एशिया में इस प्रकार की जलवायु का प्रदेश चीन इतना पुराना देश है कि वहाँ के आर्थिक विकास के क्रम की अवस्थाओं को बतलाना प्रायः असम्भव-सा है। अन्य पाँच प्रदेशों में लोग हाल मे जाकर बसे है। स्वभावतः ये प्रदेश वनाच्छादित है, और पर्वतीय प्रदेशों का अधिकांश भाग अभी भी वनों मे ढका हुआ है। निम्न तल पर स्थित पतझड़ वनों को साफ करके खेती का धंधा शुरू किया गया है। लकड़ी काटने का काम वास्तव मे कभी भी अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं रहा। जाड़े में बर्फ न जमने से यातायात मे काफी परेशानी होती है। दूसरे यहाँ पर लकड़ी काटने का उद्यम शीत प्रदेशों का मुकाबला नही कर सकता। पतझड़ वनों की लकड़ी कठोर होती है और मुलायम लकड़ी के सामने इसकी माँग बहुत कम है। संयुक्त-राष्ट्र अमरीका के दक्षिणपूर्वी भाग में बहुत अधिक लकड़ी काट ली गई और जला भी दी गई। इस आर्थिक हानि पर लोगों का ध्यान उस समय तक नहीं गया जब तक मिसीसीपी के पश्चिम में घास के मैदानों का पता नहीं चला। उस समय लकड़ी की कमी, उसकी बढ़ती हुई माँग तथा दामों में बढ़ती के कारण वनों को संभाल कर रखने की नीति पर काम शुरू हुआ।

इस प्रकार साफ किये गए प्रदेशों पर कई प्रकार की फसलें उगाई गई। प्रत्येक जिले के निवासियों तथा वहाँ मजदूरों की उपलब्धता के अनुसार विभिन्न फसलों को उगाया जाने लगा है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका में पर्याप्त गुलाम मजदूरों के होने की वजह से कपास, तम्बाकू, चावल और चीनी की खेती प्रधान है। नेटाल में भी इसी प्रकार की गर्म फसलें उगाई जाती है——चीनी, चावल, चाय और अनन्नास। यहाँ पर चीनी और भारतीय मजदूर मिल जाते है। दक्षिणी अमरीका के प्रदेश में——युरुगवे और दक्षिणी ब्राजील में——प्रधान धंधा पशुचारण है। वहाँ गाय, बैल, घोड़े और भेड़ें चराई जाती है। साथ-साथ अंगूर, चीनी, मक्का और केले भी उगाये जाते है। इसके लिए पोर्टो अलेगरे का पृष्ठप्रदेश बहुत प्रसिद्ध है। न्यू साउथ वेल्स के तटीय प्रदेश में काले रंग की आबादी नहीं है और शीतोष्ण प्रकार की खेती होती है। भूमि के अधिकांश भाग में मिश्रित खेती और दुग्धशाला उद्योग किया जाता है। भूमध्यसागरीय फल उगाये जाते हैं। केवल सबसे उत्तरी भाग में चीनी जैसी गर्म फसलें उगाई जाती है।

दक्षिणी जापान को छोड़कर इस प्रकार के अन्य सभी प्रदेशो में शिल्प उद्योग ने अधिक उन्नति नहीं की है। दक्षिणी जापान ने पिछले कुछ दिनों के भीतर काफी तरक्की की है। संयुक्तराज्य अमरीका के दक्षिणी-पूर्वी भाग में भी शिल्प उद्योग काफी उन्नति कर गया है। परन्तु अन्य सभी भागों में शिल्प उद्योग बहुत अवनत है। जो कुछ है भी वह या तो खेती पर आश्रित है या यूरोपीय कम्पनियों की शाखा मात्र है।

अध्याय सोलह

प्राकृतिक विभाग (NATURAL REGIONS)

उष्ण प्रदेश (The Hot Lands)

सामान्य रीति से उष्ण प्रदेशों को, जो ३०° उत्तरी और ३०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच स्थित है, चार प्राकृतिक विभागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) उष्ण मरुस्थल या सहारा तुल्य जलवायु (Hot Desert or Sahara Type)।

(२) सवाना घास के मैदान या सूडान तुल्य जलवायु (Savanna Grass-Lands or Sudan Type)।

(३) उष्ण पूर्वीय तटवर्ती (Hot East Coast)।

(अ) मानसून प्रदेश या भारत तुल्य (Monsoon Areas or Indian Type)

(ब) व्यापारिक हवाओं के प्रदेश या कैरीबियन तुल्य (Trade Wind Areas or Caribbean Type)

(४) भूमध्यरेखीय प्रदेश या अमेजन तुल्य (Equatorial Areas or Amazon Type)

उष्ण मरुस्थल (Hot Deserts)

जलवायु—२०° और ३०° अक्षांशों के बीच भूखंड के पश्चिमी किनारों पर

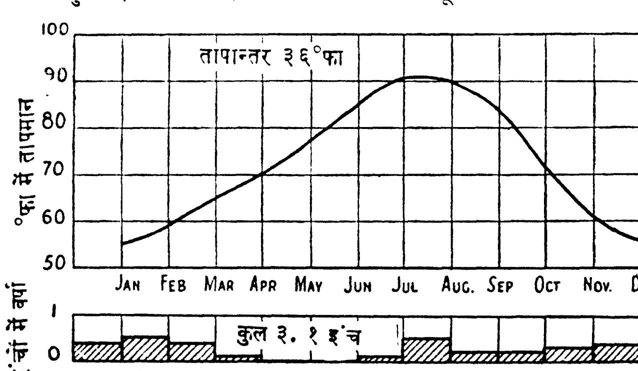

चित्र १२८—मरुस्थल तुल्य—यूमा (१४१ फीट)

उष्णमरुस्थलपाये जाते हैं। इन प्रदेशों की जलवायु में प्रधान तत्व उच्च भार पेटियाँ तथा भूमि से बाहर की ओर को चलने वाली व्यापारिकहवायें हैं। ये हवायें शुष्क होती है। वर्षा कम होती है। वार्षिक वर्षा का औसत १० इंच से कम है और किसी-किसी जगह तो ५–६ साल के बाद वर्षा होती है। जब वर्षा होती है तो खूब जोर से होती है। दक्षिणी अमरीका में इकीक की वार्षिक वर्षा ०.०३ इंच होती है। सभी उष्ण मरुस्थलों के किनारों से ठंडी जलधारायें होकर गुजरती है। इन जलधाराओं से तापक्रम और वर्षा दोनों में ही कमी आ जाती है। चूंकि आसमान मेघ रहित होता है, रात्रि को तापक्रम बहुत कम हो जाता है। फलतः दैनिक तापान्तर काफी अधिक रहता है। पिछले पृष्ठ पर दिये हुए चित्र से यूमा की दशाओं का ज्ञान होता है। यूमा कोलैरैडो की घाटी में स्थित है, और संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा मेक्सिको की सीमा पर है।

उत्तरी गोलार्द्ध के मरूस्थलों में जुलाई का तापक्रम ९०° फा० या उससे अधिक होता है। जनवरी के तापक्रम का औसत ६०° फा० तक होता है। ग्रेट ब्रिटेन में गर्मी का तापक्रम इतना ही होता है। मरुस्थल प्रदेशों में सबसे अधिक तापक्रम पाये जाते है—वादी हल्फा का छाया में तापक्रम १२६° फा० तक हो चुका है। मरूस्थली प्रदेशों में गर्मी का तापक्रम भूमध्यरेखीय प्रदेशों के गर्मी के तापक्रम से अधिक रहता है। भूमध्यरेखीय प्रदेशों में तो वर्षा और बादल के कारण तापक्रम कम हो जाता है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इतना अधिक तापक्रम नही रहता है, क्योंकि वहाँ समुद्र का समकारी प्रभाव पड़ता रहता है। दूसरे वहाँ के मरुस्थलों का विस्तार भी कोई अधिक नही है। उत्तरी चिली के अटाकामा रेगिस्तान में गर्मी का औसत तापक्रम ७०° फा० रहता है।

वनस्पति—सभी मरूस्थलों में बालू की विशाल राशि नही पाई जाती है। बलुहे रेगिस्तान का सबसे अच्छा उदाहरण दक्षिणी मरक्को का इगड्डी प्रदेश है। यहाँ बालुका स्तूप की ऊंचाई ६०० फीट तक है। कुछ रेगिस्तान तो सूखी पकाई हुई चिकनी मिट्टी के बने होते है। कुछ अन्य मरुस्थलों में चट्टानों की टूटी राशि से घिरे केवल चट्टानी प्रदेश ही पाये जाते हैं। प्रायः मरूस्थलों के अन्तर्गत उन सभी प्रदेशों को ले लेते है, जहाँ १० इंच से कम वर्षा होती है। अतएव वहाँ वनस्पति का सर्वथा अभाव नही होता। ८–९ इंच वर्षा में छोटी घास या कांटेदार झाड़ियाँ उग सकती है।

मरुस्थलीय वनस्पति के अन्तर्गत वे पेड़ पौधे होते है जो वर्षा की कमी को सहन कर सकते है। काँटेदार झाड़ियाँ और बबूल जाति के पेड़ प्रधान हैं। जो घास होती है वह कड़ी तार जैसी होती है। जहाँ कहीं भूमिगत जल सतह पर आ गया है, वहाँ मरुद्यान पाये जाते हैं। इससे स्पष्ट है कि पानी के उपलब्ध होने पर मरुस्थलों की भूमि का उपजाऊपन पता चलता है। इन मरूद्यानों में खजूर के पेड़ बहुतायत से पाये जाते हैं। इसके अलावा कपास, चावल, चीनी, अंगूर, ज्वार बाजरा, टमाटर, तम्बाकू, तथा कई तरह के फल भी उगाये जाते हैं।

शीतोष्ण मरुस्थलों में, जैसे कि चीनी तुर्किस्तान में, मरूद्यान की उपज शीतोष्ण

कटिबंध जैसी है। वहाँ पर विलो के वृक्ष पाये जाते है। ये मरूद्यान बहुत बड़े होते है। इनका विस्तार सैकड़ों वर्ग मील में होता है और बहुत-से निवासी रहते हैं।

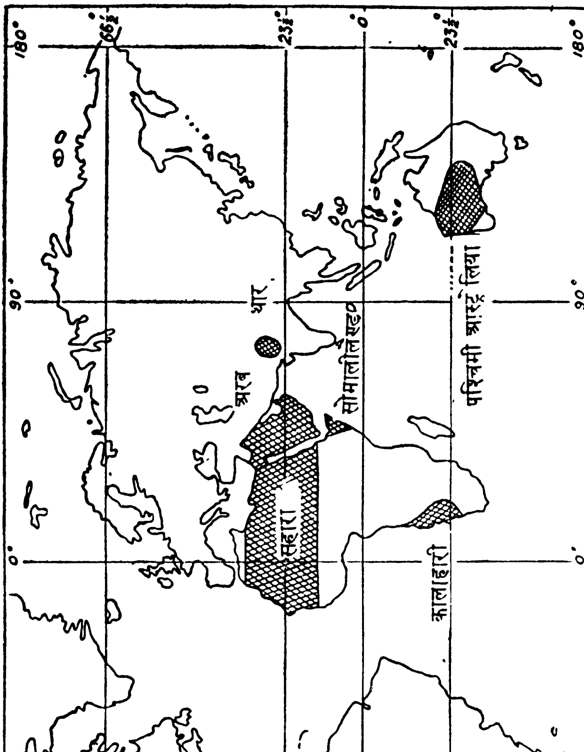

चित्र १२९—उष्ण मरुस्थल

आर्थिक उन्नति

कम वर्षा के कारण मरूस्थल प्रदेशों में कम लोग निवास करते हैं और इसीलिए अपेक्षाकृत कम ही उन्नति हो पाई है। मरूस्थलों के निवासियों को तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है :

(अ) आदि निवासी जिन्हें अन्य शक्तिशाली जातियों ने खदेड़कर झाड़ियों

की तरफ कर दिया है। कालाहारी के बुशनम इसी श्रेणी में आते हैं। ये लोग स्वभावतः शिकारी होते हैं और उनके लिए खेती करना, स्थायी घरों में बस्ती बनाकर रहना, असम्भव है।

(ब) खेतिहर निवासी जो स्वाभाविक मरूद्यानों या अन्य सिंचित प्रदेशों में रहते हैं। शुष्क मौसम के कारण फसल का अच्छा होना निश्चित ही होता है। जाड़े के तापक्रम में शीतोष्ण कटिबंधीय फसलो को भी उगाया जा सकता है और खेती का धंधा काफी बढ़ जाता है। मरूद्यानों के शुष्क किनारो पर लोग भेड़, बकरी और ऊँट चराकर पेट पालते हैं।

(स) हाल में बाहर से आये हुए लोग जो खनिज को प्राप्त करके धन प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं और इसीलिए पानी की कमी सहन करके तकलीफ उठाते हैं। इन खनिज क्षेत्रों को पानी पहुँचाने का विशेष प्रबन्ध किया जाता है। धीरे-धीरे जब खनिज भंडार खाली हो जाता है तो लोग छोड़ कर चले जाते हैं।

सवाना घास के मैदान (Savannah Grass Lands)

जलवायु——ये प्रदेश भूमध्यरेखीय वन और मरूस्थल प्रदेशों के बीच में स्थित हैं। गर्मी का मौसम विशेष गर्म होता है। तापक्रम ८०° फा० से ९०° फा० तक होता है। जाड़े में भी मौसम गर्म ही रहता है। औसत तापक्रम ७०° फा० रहता है। चूँकि ये प्रदेश उष्ण कटिबंध में होते हैं इसलिए कभी भी सर्दी नही पडती। तापान्तर भी अधिक नहीं होता। गर्मी में वर्षा होती है, जबकि सूर्य के साथ भूमध्यरेखीय वाहनिक वर्षा के प्रदेश की सीमा उत्तर या दक्षिण को खिसक जाती है। जाड़े का मौसम शुष्क होता है, क्योंकि इस मौसम में व्यापारिक हवायें चलती हैं।

चित्र १३२ में पश्चिमी अफ्रीका में सेनेगल नदी पर स्थित घेम स्थान के आँकड़ों को दिया गया है। यहाँ पर जाड़े का मौसम भी गर्म होता है। गर्मी के शुरू में, मई के महीने में सबसे अधिक तापक्रम रहता है। यह बड़ी ही अजीब बात मालूम पड़ती है क्योंकि जुलाई या अगस्त का महीना ही प्रायः सबसे गर्म होता है। यदि कोई वर्षा के चित्र को तापक्रम के चित्र से मिलाये तो जून, जुलाई और अगस्त में तापक्रम के कम होने का कारण स्पष्ट हो जायेगा। इन महीनों में भारी वर्षा होती रहती है और आकाश में बादल छाये रहते हैं। सूर्य की किरणों की तेजी कम हो जाती है और तापक्रम कम हो जाता है। तापक्रम की यही विशेषता मानसून प्रदेशों में भी देखने में आती है। मानसून खुलने के बाद भारत में तापक्रम कम हो जाता है। सवाना प्रदेशों में भी सूर्य साल में दो बार शिरोबिन्दु पर चमकता रहता है। एक तो मार्च और जून के बीच और दूसरे जून तथा सितम्बर के बीच।

वनस्पति——यहाँ की वनस्पति घास के मैदान है जिसके बीच-बीच में पेड़ों के झुरमुट पाये जाते है। इसको बहुधा पार्कलैण्ड भी कहते हैं। मरूस्थलीय सीमा से

लेकर भूमध्यरेखीय सीमा तक वनस्पति में बहुत से परिवर्त्तन पाये जाते हैं। मरूस्थल के समीप घास कम और छोटी होती है। बीच-बीच में काँटेदार झाड़ियाँ पाई जाती हैं।

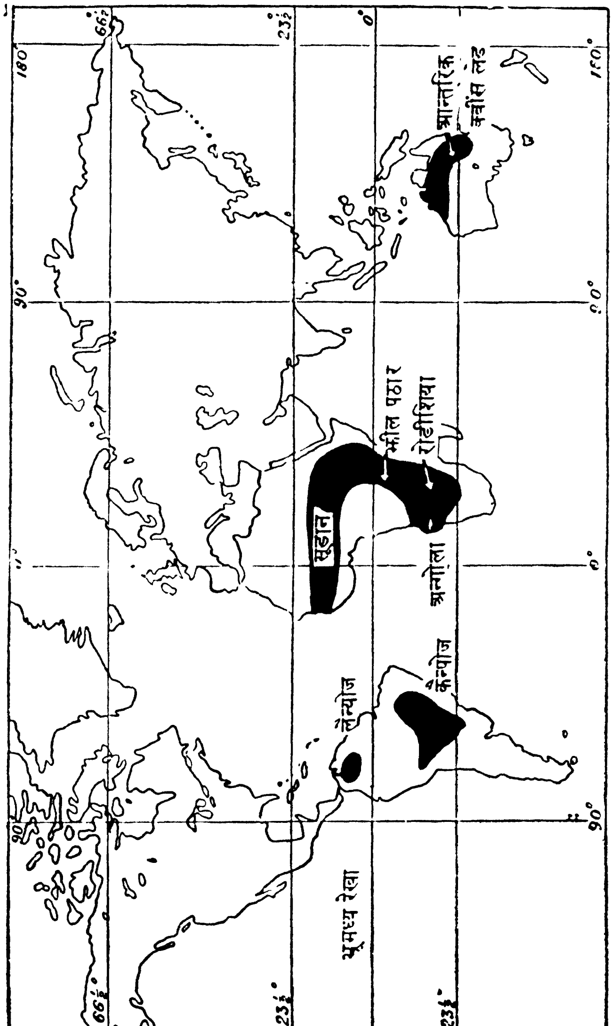

चित्र १३०—सवाना प्रदेश

जैसे-जैसे हम वन-प्रदेश की सीमा की ओर बढ़ते हैं घास बड़ी और घनी होती जाती है और पेड़ों की संख्या बढ़ती जाती है। अन्त में हम ऐसी वनस्पति पाते हैं कि दूर-दूर तक पेड़ों के झुरमुट रहते हैं और बीच-बीच घास के मैदान फैले रहते हैं।

यद्यपि सवाना घास के मैदान हैं फिर भी न तो यह ब्रिटिश चरागाहों से ही मिलते हैं और न ही शीतोष्ण स्टेपी प्रदेशों से। बहुधा घास ५–१० फीट तक ऊँची होती

है और प्रायः सूखी नजर आती है। कुछ प्रदेशों में हाथी घास १२–१५ फीट तक ऊँची रहती है और उसमें से होकर गुजरना प्रायः असम्भव होता है।

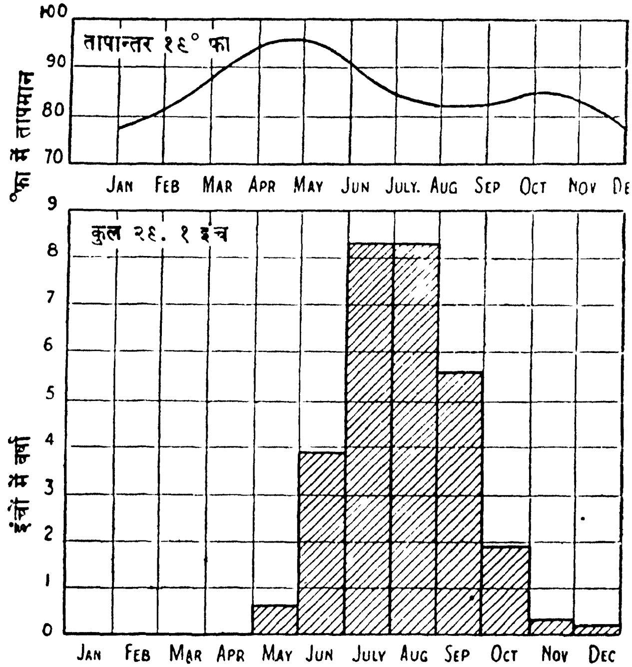

चित्र १३१—सवाना तुल्य-घंस (१९७ फीट)

आर्थिक उन्नति

वास्तविक सवाना प्रदेश तो केवल दक्षिणी गोलार्द्ध में पाये जाते है। ये सभी प्रदेश कर्क रेखा के दक्षिण में ही स्थित है। इस प्रकार ये प्रदेश बहुत दिनों से उन्नत प्रदेशों में स्थित नहीं है बल्कि वहाँ पाये जाते है जो अभी हाल में खोजे गए है और जहाँ अभी अधिक प्रगति नहीं हुई है। प्रथम अध्ययन में अनुमान होता है कि घास के मैदान होने की वजह से शायद सवाना प्रदेश के विकास का क्रम भी स्टेपी प्रदेशों जैसा ही ही होगा यानी घूम-घूम कर पशुचारण फिर स्थायी रूप से खेती का धंधा और तत्पश्चात खेती पर निर्भर उद्योगों का प्रादुर्भाव होना।

इस प्रकार का विकास क्रम किसी हद तक केवल अफ्रीका में पाया जाता है। अफ्रीका के घास के मैदानों में बहुत-सी हब्शी जातियाँ घूम-घूम कर खानाबदोशों की तरह पशु चराती है। नाइजीरिया के हौसा जाति की तरह के कुछ हब्शी इस स्थिति से आगे बढ़ चुके हैं और अब वह पुराने तरीके की खेती करते है। यूरोप के लोगों के आ जाने से नए-नए तरीके काम में लाये जाने लगे हैं। आदि निवासी जरूरत से ज्यादा उपज प्राप्त कर लेते हैं और निर्यात व्यापार होने लगा है।

दक्षिणी अमरीका और आस्ट्रेलिया के सवाना प्रदेश में खानाबदोश पशुचारण के लिए अनुकूल दशायें नहीं हैं। दक्षिणी अमरीका के घास के मैदानों में पालने योग्य खुरदार कोई जानवर ही नही पाये जाते। इन सवाना प्रदेशों में बहुत प्रकार के चूहे पाये जाते थे। साथ-साथ खरगोश आदि भी मिलते हैं। आस्ट्रेलिया के घास के मैदान में कंगारू विशेष रूप से पाया जाता है। इस प्रकार इन प्रदेशों में उस समय तक पशुचारण का धंधा हो ही नही सका जबतक कि बाहर से भेड़, गाय, बैल और घोड़ों को नहीं लाया गया। यूरोप देशवासी अपने साथ इन पशुओं को लाये और तभी से पशुचारण भी थोड़ा बहुत होने लगा। आस्ट्रेलिया के सवाना प्रदेश में 'काले लोग' नाम की एक जाति है। इनको कालाहारी के बुशमन के समान कहा जा सकता है।

संसार के कोई भी सवाना प्रदेश अभी तक बहुत अधिक उन्नत नहीं है। परन्तु भविष्य में उन्नति की विशेष संभावनायें है। यहाँ साल के किसी महीने में भी सर्दी अधिक नही पड़ती। इसलिए साल भर बराबर फसले उगाई जा सकती है। भविष्य में सिचाई की सहायता से जाड़े के मौसम में शीतोष्ण फसले उगाई जा सकती है। गर्मी में उष्ण कटिबंधीय फसलें उगाई जा सकती हैं। यहाँ पर कपास की खेती के विकास व प्रसार की बहुत संभावनाएँ हैं। रोडीशिया मे तम्बाकू का उत्पादन बराबर बढ़ रहा है।

उष्ण पूर्व तटवर्ती (Hot East Coast) (अ) मानसून या भारत तुल्य जलवायु (Monsoon Areas, Indian Type)

जलवायु—वास्तविक मानसून प्रदेशों में जहाँ भारत तुल्य जलवायु पाई जाती है, मौसमीहवायें चलती है। गर्मी के मौसम मे समुद्र से थल की ओर हवायें चलती रहती है। जाड़ों मे हवा का रूख बदल जाता है और वे शुष्क होकर थल से जल की ओर चलती हैं। इसलिए गर्मी में भारत की हवाओं का रूख दक्षिण-पश्चिम से और जाड़े में उत्तर-पूर्व से होता है।

वास्तविक मानसून प्रदेश गर्मी में बहुत गर्म हो जाते है। गर्मी का तापक्रम ८०° फा० से ९०° फा० तक रहता है। जाड़े का मौसम साधारणतया ठंडा होता है। वर्षा गर्मी के मौसम में होती है जबकि हवायें समुद्र से थल की ओर चलती होती है। परन्तु कुल वर्षा स्थान-स्थान पर भिन्न होती है। प्रचलित हवाओं के मार्ग में स्थित पर्वत होने पर वर्षा अपेक्षाकृत अधिक होती है। पश्चिमी घाट, बर्मा और आसाम में वर्षा अधिक होती है। उत्तरी पश्चिमी भारत में थार रेगिस्तान शुष्क प्रदेश है, जहाँ १० इंच से कम वर्षा होती है।

वर्ष में तीन मौसम होते है :—

(१) अक्टूबर से मार्च तक, शीतल पर शुष्क मौसम,
(२) मार्च से जून तक, गर्म शुष्क मौसम,
(३) जून से अक्टूबर तक, गर्म पर तर मौसम।

वर्षा एकदम से होने लगती है। वर्षा होने पर तापक्रम उसी प्रकार कम हो जाता है, जैसे कि सवाना प्रदेशों में। इस प्रकार उत्तरी गोलार्द्ध में सबसे अधिक गर्म महीना अप्रैल-मई का होता है।

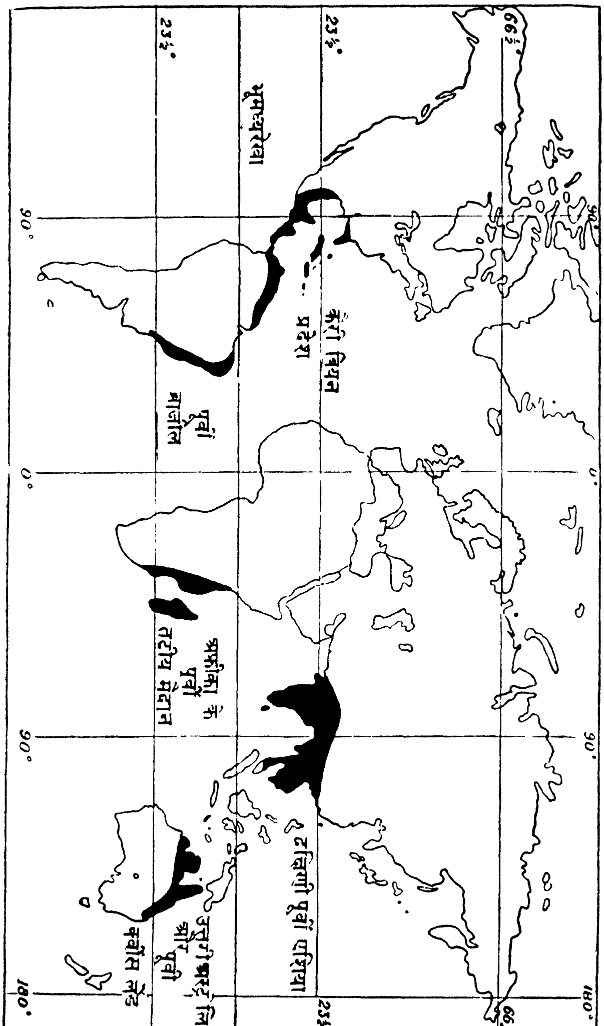

चित्र १३२—मानसून प्रदेश और उष्ण पूर्वी तटवर्ती प्रदेश।

मद्रास के आस-पास के जिलों में वर्षा जाड़े में होती है। उत्तरी-पूर्वी मानसून हवायें बंगाल की खाड़ी को पारकर जब इस प्रदेश में पहुँचती हैं, तो वर्षा करती हैं। वास्तव में असली मानसून प्रदेश तो संसार में केवल दो ही हैं :—(१) दक्षिणी-पूर्वी एशिया और (२) उत्तरी आस्ट्रेलिया। पूर्वी अफ्रीका में हिन्द महासागर के मानसून

की शाखा का कुछ सिरा पहुँच जाता है। एशियाई और आस्ट्रेलियन मानसून एक दूसरे से परस्पर सम्बन्धित हैं। जुलाई के महीने में जब आस्ट्रेलिया में जाड़े का मौसम होता है तो दक्षिणपूर्व से शुष्क हवा थल से जल की ओर चलती है। भूमध्यरेखा पार करने पर यह हवा एशिया के लिए तर दक्षिणी-पश्चिमी मानसून हो जाता है। जनवरी के महीने में जब एशिया महाद्वीप में जाड़े का मौसम रहता है, तो एक शुष्क स्थलीय पवन उत्तर-पूर्व की ओर से चलने लगता है। भूमध्यरेखा पार करने पर यही उत्तरी-पश्चिमी मानसून हो जाता है, जो आस्ट्रेलिया के उत्तरी भाग में जल से थल की ओर चलता हुआ वर्षा करता है।

वनस्पति––वर्षा की मात्रा के अनुसार मानसून प्रदेशों की वनस्पति भी विभिन्न होती है। जहाँ वर्षा ८० इंच से अधिक होती है, वहाँ पर सदाबहार भूमध्य-रेखीय वन पाये जाते हैं। जहाँ वर्षा ४० इंच से अधिक और ८० इंच से कम होती है, वहाँ पर घने पतझड़ वाले वन पाये जाते हैं। सागौन इनका प्रधान वृक्ष है और इस प्रकार के वन के वृक्ष शुष्क गर्म मौसम में पत्तियाँ गिरा देते हैं। साधारण वर्षा में घास और झाड़ियाँ पाई जाती हैं। जहाँ वर्षा बहुत कम होती है, वहाँ मरुस्थल पाये जाते हैं।

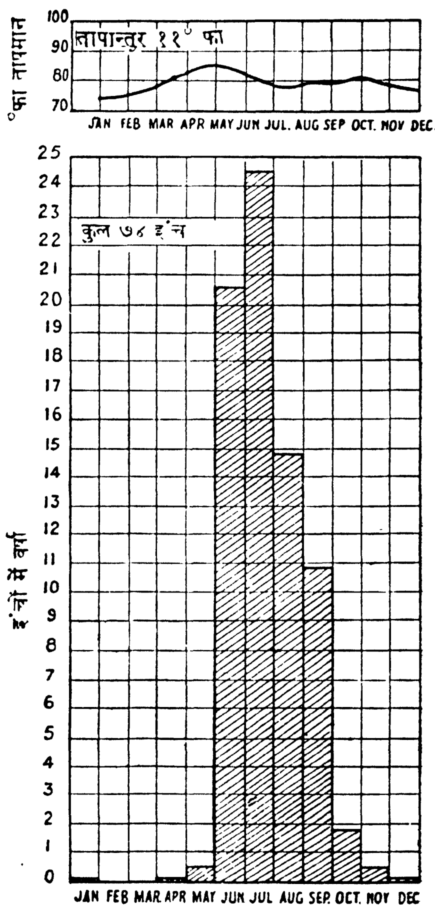

चित्र १३३––मानसून प्रदेश
(बम्बई ३७ फीट)

उष्ण पूर्व तटवर्ती प्रदेश (Hot East Coast)––(ब) व्यापारिक हवाओं के प्रदेश या कैरीबियन तुल्य प्रदेश (Trade Wind Areas or Caribbean Type)

जलवायु––संसार के कुछ प्रदेश ऐसे हैं जहाँ की तापक्रम व वर्षा सम्बन्धी दशायें मानसून प्रदेशों से बहुत मिलती जुलती हैं। जाड़े का तापक्रम ७०° फा० या उससे अधिक रहता है। गर्मी का तापक्रम ८०° फा० रहता है। जमाइका द्वीप के किन्गस्टन स्थान में

जनवरी का तापक्रम ७५° फा० और जुलाई का तापक्रम ८२° फा० रहता है। वर्षा ४० इंच से अधिक होती है। परन्तु वर्षा का वितरण मानसून प्रदेशों से भिन्न होता है। मानसून प्रदेशों में तो एक तर मौसम और एक शुष्क मौसम होता है, परन्तु इन प्रदेशों में वर्षा का वितरण बड़ा ही सम होता है। फिर भी गर्मी में वर्षा अधिक होती है। इसका कारण यह है कि यहाँ मौसमी हवायें नहीं चलतीं बल्कि व्यापारिक हवायें समुद्र से थल की ओर साल भर बराबर चला करती हैं। उनका प्रभाव गर्मी में सबसे अधिक रहता है और इसीलिए गर्मी में अपेक्षाकृत वर्षा अधिक होती है। ये व्यापारिक हवायें अपने अन्दर खूब तरी ले लेती है। इनके रास्ते में जब कोई पर्वत आ जाता है तो ये भारी वर्षा कर देती है। परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि व्यापारिक हवायें तर होती ही है। अगर इनको मार्ग में पर्वत न मिले तो प्रदेश में ये वर्षा करेंगी ही नहीं।

वनस्पति—चूंकि कैरीबियन तुल्य जलवायु मानमून प्रदेशों से बहुत मिलती है, यहाँ घने जंगल पाये जाते हैं। खेती करने पर इनसे मानसून प्रदेशों जैसी ही उपज प्राप्त होती है।

आर्थिक विकास

मानसून या कैरीबियन तुल्य जलवायु के प्रदेशों में जहाँ मूल वनप्रदेश अभी भी स्थित हैं, कठोर लकड़ी को काटना मुख्य धंधा है। दक्षिणी-पश्चिमी एशिया और विशेष कर वर्मा और स्याम में सबसे महत्त्वपूर्ण लकड़ी सागौन है। परन्तु लट्ठों को लाना ले जाना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि शीतोष्ण कटिबंध में जहाँ जाड़े में भूमि पर बर्फ जमी रहती है। इसलिए लकड़ी के यातायात के लिए हाथियों को प्रयोग किया जाता है।

जब और जहाँ जंगलों को साफ कर दिया गया है, वहाँ पर लोग उष्ण कटिबंधीय फसलों की खेती करते हैं। चावल, ज्वार, बाजरा, कपास, कहवा, पटसन, चीनी, सन, केला, अनन्नास प्रधान उपज है।

उच्च तापक्रम, भारी वर्षा और तर जलवायु के कारण श्वेत जाति के लोग तो काम कर ही नहीं सकते। इसलिए उनका विकास काली जाति के लोगों पर ही निर्भर रहता है। ये ही लोग इस प्रकार की जलवायु में काम कर सकते हैं। श्वेत जाति के लोग इनसे केवल काम लेते हैं और इन्तजाम देखते हैं। पूर्वी अफ्रीका में भारतीय और चीनी, ब्रिटिश गिनी में भारतीय प्रवासी और पश्चिमी द्वीपसमूह में हब्शी लोगों की सहायता से ही विकास संभव हो सका है। कुछ क्षेत्रों में जैसे दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील में, दक्षिणी यूरोप के लोग इटाली और स्पेनी लोग उद्यानों की देख-भाल करते हैं।

दक्षिणी-पूर्वी एशिया में उष्ण कटिबंधीय कृषि बहुत उन्नति कर गई है। भूमि को इतने यत्न से तथा मेहनत से जोता बोया जाता है कि दो-दो एकड़ के छोटे-छोटे खेत बड़े ही उपजाऊ होते हैं। जरा-सी भूमि को भी बरबाद नहीं किया जाता। पर्वतों के ढाल पर सीढ़ीदार खेत बना दिये जाते हैं, ताकि अधिक-से-अधिक भूमि का उपयोग किया जा सके। खेती के तरीके बागवानी की तरह हैं। मानसून प्रदेशों की खेती को

इसीलिए उद्यान-कृषि या फावड़े की खेत कहते हैं। इस प्रकार की गहरी तथा सयत्न खेती से साल में एक ही खेती से कई फसलें उगाई जाती हैं और इन प्रदेशों में आबादी बहुत घनी है।

उत्तरी आस्ट्रेलिया को छोड़कर उष्ण पूर्व तटवर्त्ती जलवायु के अन्य प्रदेशों में पुरानी प्रकार की खेती के साथ-साथ विस्तृत उद्यानों में फसलों का अधिकाधिक उत्पादन होता है। इन उद्यानों के स्वामी यूरोप-निवासी हैं। परन्तु विकास की सीमा उपलब्ध मजदूरों पर निर्भर रही है।

इस प्रकार पश्चिमी द्वीपसमूह में जहाँ हब्शी मजदूर खूब मिल जाते है, विस्तृत फार्म पाये जाते हैं परन्तु उत्तरी आस्ट्रेलिया में मजदूरों के अभाव के कारण अभी भी अवनति विराजती है। इन प्रदेशों ने कोई विशेष औद्योगिक उन्नति तो की नही है और इनके द्वारा हमें दो प्रकार की आर्थिक सुविधायें प्राप्त होती हैं—(१) शीतोष्ण कटिबंध के घने बसे औद्योगिक प्रदेशों के लिए भोजन और कच्चा माल यही से मिलता है और (२) उन प्रदेशों के उद्योग धंधों द्वारा तैयार माल की खपत के लिए विस्तृत बाजार भी यहीं उपलब्ध है।

भूमध्यरेखीय प्रदेश (Equatorial Areas)

जलवायु—भूमध्यरेखीय प्रदेशों का तापक्रम साल भर बराबर ८०° फा० के आस-पास ही बना रहता है। अतएव तापान्तर बहुत कम रहता है। वर्षा साल भर बराबर होती है परन्तु भारी वर्षा के दो काल होते हैं—मार्च और सितम्बर में जब सूर्य उत्तर से दक्षिण या दक्षिण से उत्तर को जाता है। इस समय गर्मी भी कुछ अधिक हो जाती है। यहाँ शीतोष्ण कटिबंध जैसे चार मौसम नहीं होते, क्योंकि यहाँ सदा ही मौसम गर्म व तर रहता है। साल के अधिकतर दिनों में तीसरे पहर के समय गरज के साथ वर्षा होती है। रात-दिन की अवधि १२ घंटे की होती है। दिन रात बराबर होते हैं। प्रत्येक दिन सूर्योदय सुबह ६ बजे होता है और शाम को ६ बजे सूर्यास्त हो जाता है। सूर्योदय या सूर्यास्त के समय धुँधला प्रकाश थोड़ी ही देर के लिए रहता है।

चित्र १३५ में कैमीरून प्रदेश में स्थित यान्डे नगर की दशाओं को दिखलाया गया है। यह नगर समुद्रतल से २४६१ फीट ऊँचा है। इसलिए बिन्दुरेखा द्वारा उस तापक्रम को दिखलाया गया है जो यहाँ होता अगर यह नगर समुद्रतल पर होता। वर्षा के रेखा-चित्र से स्पष्ट है कि जैसे ही सूर्य भूमध्यरेखा को पार कर के उत्तर या दक्षिण की तरफ़ जाता है, वर्षा अधिक होती है। अधिक वर्षा के महीने मार्च और सितम्बर हैं। वार्षिक तापान्तर ४०° फा० है। यह ध्यान देने योग्य तत्त्व है।

वनस्पति—यहाँ की प्राकृतिक वनस्पति वन है, जिन्हें सेल्वाज कहते हैं। ये जंगल सदा हरे भरे रहते है। इनमें बहुत से पेड़ पतझड़ वाले होते हैं परन्तु वे सब एक ही समय पर अपनी पत्तियाँ नहीं गिराते हैं। इस प्रकार यदि एक वृक्ष पर पत्तियाँ लगी होती हैं तो दूसरे पर पत्तियाँ गायब होती है। यदि किसी पर फल लगे होते हैं, तो किसी पर फूल खिले होते हैं और ये सभी एक दूसरे के पास-पास खड़े होते हैं। इन वनों की सबसे बड़ी

विशेषता वृक्षों के अनेक प्रकार तथा उनकी विभिन्नता है। शीतोष्ण कटिबंधीय नुकीली पत्तीवाले वनों में एक ही जाति के पेड़ मीलों तक पाये जाते हैं। परन्तु भूमध्यरेखीय वनों में एक एकड़ भूमि पर मुश्किल से एक ही जाति के दो पेड़ मिल पाते हैं। महोगनी, रोजवुड, आयरनवुड, ग्रीनहार्ट, रबड़ और कोको के वृक्ष प्रधान है।

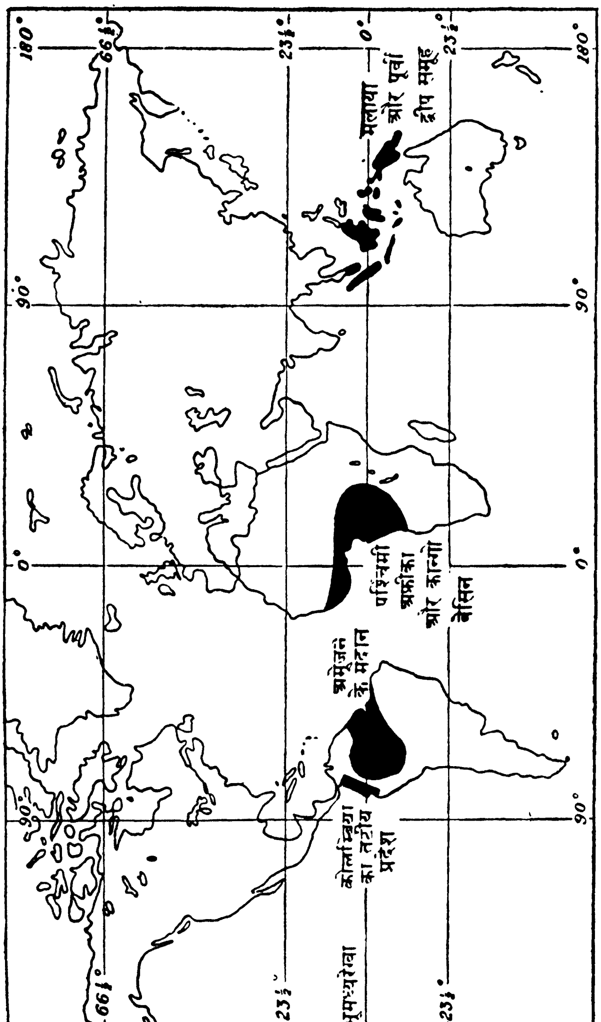

चित्र १३४—भूमध्य रेखीय प्रदेश

वास्तविक सेल्वाज में वृक्षों की टहनियों के मिल जाने से एक घना चंदोवा सा बन जाता है। यह चदोवा इतना घना होता है कि इसमें से होकर सूर्य की रोशनी नीचे तक नहीं पहुँच पाती। अतएव नीचे का हिस्सा अन्धेरा, नम और भयावह मालूम

पड़ता है। नीचे जमीन पर अधिक पौधे नहीं उगते। बड़ी-बड़ी मोटी लतायें विभिन्न वृक्षों से लिपटी रहती है और एक पेड़ से दूसरे तथा तीसरे तक फैली रहती हैं। कुछ लताओं का भाग पेड़ों की शाखा से झूलता रहता है और आपस में फँस कर उनके सिरे भूमि पर इस प्रकार पड़े रहते है कि आना-जाना मुश्किल होता है। जहाँ ऊपर का चंदोवा बहुत घना नहीं होता वहाँ सूर्य की रोशनी नीचे तक पहुँच पाती है। अतः नीचे जमीन पर जंगली पेड़-पौधे खूब उग आते है। इन वनों के अधिकतर पशु पेड़ो पर रहते हैं। इन वन प्रदेशों को साफ करना कोई आसान काम नहीं है। एक बार साफ कर देने पर जंगली पौधे व झाड़ियाँ बहुत शीघ्र ही फिर उग आती है।

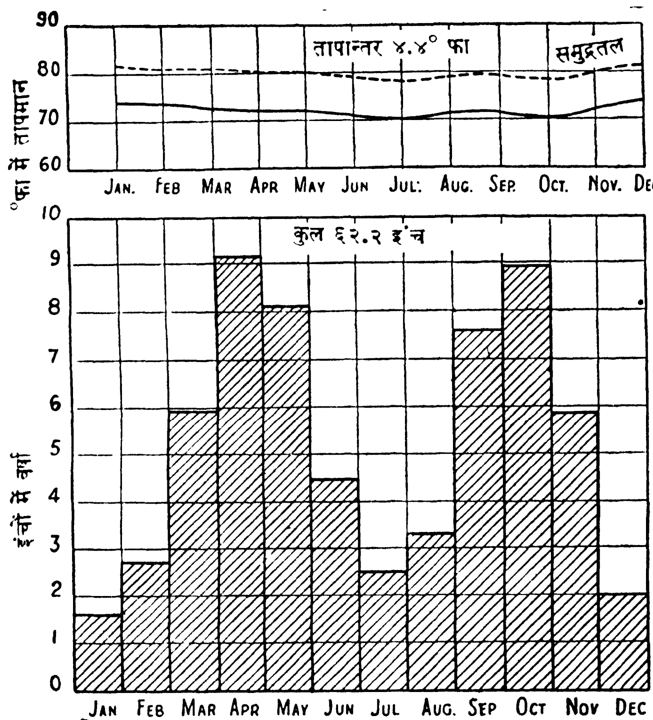

चित्र १३५—भूमध्य रेखीय प्रकार—यान्डे (२४६१ फीट)

आर्थिक विकास

चूंकि ये प्रदेश घने वनों से घिरे हुए है, इसलिए अनुमान होता है कि इनमें आर्थिक विकास का क्रम शीतोष्ण कटिबंध के वन प्रदेशों जैसा ही होगा। अर्थात् यहाँ पर भी शिकार करना, लकड़ी काटना, खेती करना और उद्योग-धन्धों को चलाना क्रमशः धन्धे रहे होंगे। परन्तु वनों की प्रकृति, उनमें पाये जाने वाले वृक्षों की लकड़ी और जलवायु सम्बन्धी दशाओं के कारण आर्थिक विकास का यह क्रम नहीं रह सका

है। खेती के लिए वनों को वहीं साफ किया गया है, जहाँ उन तक आसानी से पहुँचा जा सकता है और जहाँ वनों को साफ करना सुविधाजनक भी है।

उष्ण वन-प्रदेशों के जानवर बहुत प्रकार के होते हैं। उनके ऊपर समूर भी नहीं होता क्योंकि उन्हें सर्दी के मौसम का सामना ही नहीं करना पड़ता। इसलिए जानवरों को पकड़ना यहाँ का मुख्य धंधा कभी भी नहीं रहा। परन्तु यहाँ के मूल निवासी कुछ पशुओं का उनके मांस के लिए अवश्य शिकार करते हैं।

इन वनों में लकड़ी काटने का धंधा निम्नलिखित कारणों की वजह से शीतोष्ण वन-प्रदेशों के समान उन्नति नहीं कर पाया है :—

(१) जाड़े में ठंडक न पड़ने के कारण हिमपात नहीं होता और भूमि पर बर्फ नहीं जमी रहती। इसलिए काटे हुए लट्ठों को आसानी से सरकाने की सुविधा नहीं रहती।

(२) जमीन हमेशा तर और मुलायम रहती है। इसलिए उसके ऊपर गमनागमन कठिन होता है।

(३) यद्यपि इस वन प्रदेश में ऐसी बहुत-सी नदियाँ हैं जिनपर लट्ठों को बहाया जा सकता है, परन्तु भूमध्यरेखीय वन-प्रदेशों की बहुत-सी लकड़ी पानी से भारी होती है और उसे नाव द्वारा ही इधर-उधर ले जाया जा सकता है।

(४) पेड़ इकट्ठे एक जगह नहीं पाये जाते। इसलिए उचित व उपयोगी वृक्षों को ढूँढने और पता लगाने में मेहनत और खर्चा दोनों ही अधिक पड़ता है।

(५) भूमध्यरेखीय वन-प्रदेशों में ऐसे बहुत से वृक्ष पाये जाते हैं, जिनकी लकड़ी सुन्दर व बहुमूल्य होती है और लकड़ी का सामान तैयार करने के लिए बड़ी अच्छी रहती है। परन्तु इसकी उतनी माँग नहीं है जितनी कि शीतोष्ण कटिबंधीय मुलायम लकड़ी की क्योंकि यह आसानी से प्राप्त की जा सकती है। अमेजन घाटी में रहने वाले लोग उत्तरी अमरीका से मँगवाई हुई लकड़ी से अपना मकान तैयार करते हैं, यद्यपि उनके चारों तरफ इस प्रकार की लकड़ी बहुतायत से उपलब्ध रहती है। लकड़ी काटने के उद्यम में कड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है। इसलिए गर्म व तर जलवायु में श्वेत जाति के लोगों के वश की बात नहीं है। फिर, यहाँ के आदि निवासी संख्या में कम हैं और उनमें मिल-जुलकर इकट्ठा काम करने की आदत नहीं है।

जब तक इन जंगलों को साफ न किया जाय, खेती का धंधा सम्भव नहीं है। सफाई के बाद भी जंगली घास-फूस इतनी तेजी से उगती है कि उनके सम्मुख खेती करना एक समस्या होती है। इस प्रकार जावा और मलाया को छोड़कर अन्य भूमध्यरेखीय प्रदेशों में खेती के धन्धे ने कोई विशेष उन्नति नहीं की है। सबसे बड़ी समस्या और जरूरत मजदूरों की है और इन प्रदेशों की उन्नति के लिए अश्वेत जाति के मजदूरों की आवश्यकता होगी, क्योंकि श्वेत जाति के लोगों के लिए यह जलवायु उपयोगी नहीं है।

भूमध्यरेखीय प्रदेशों के आदि निवासी अधिक नहीं हैं। अधिकांश आदि निवासी शिकारी हैं जो वन में भी अपने लिए वनस्पति तथा प्राणिज भोजन प्राप्त कर लेते हैं। कुछ जातियाँ पुराने तरीके की खेती करती हैं और उससे केले या अन्य कन्दमूल प्राप्त कर लेती हैं। चूंकि यहाँ का मौसम सदैव गर्म व तर रहता है, और पौधे बहुत जल्दी उग आते हैं, जरा-सी मेहनत से अच्छी फसल प्राप्त हो जाती है। यही कारण है कि यहाँ के लोगों में लगकर मेहनत करने की आदत नहीं है और इस प्रकार उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

अध्याय सत्रह
आदि जातियाँ (PRIMITIVE COMMUNITIES)

विषय प्रवेश

पिछले अध्यायों में प्राकृतिक विभागों के विवरण से स्पष्ट हो गया है कि समान जलवायु और वनस्पति वाले प्रदेशों में आर्थिक उन्नति की समान दशा नहीं है। मनुष्य की सभ्यता जैसे-जैसे बढ़ती गई उसके द्वारा प्राकृतिक साधनों का उपभोग बराबर बढ़ता गया। परन्तु सभी जगह मनुष्य पर परिस्थितियों का समान प्रभाव नहीं पड़ता। मनुष्य अपने मस्तिष्क द्वारा बहुत सी प्राकृतिक असुविधाओं को जीत लेता है। पानी की कमी को सिंचाई द्वारा, दलदली भूमि को जल-प्रवाह द्वारा और रोग-प्रचलन को चिकित्सा-विज्ञान द्वारा दूर कर दिया गया है। मनुष्य अब केवल भोजन व कच्चे माल सम्बन्धी स्थानीय स्रोतों पर कदापि निर्भर नही रहता। व्यापार व वाणिज्य द्वारा अब मनुष्य को संसार के सभी प्रदेशों की वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं।

फिर भी अभी ऐसे बहुत से प्रदेश हैं, जहाँ पर आर्थिक उन्नति नहीं हो पाई है और वहाँ के निवासी अभी भी स्थानीय साधनों पर ही निर्भर रहते हैं। इन प्रदेशों के निवासियों को "आदि जातियाँ" (Primitive Communities) कहते हैं।

इस प्रकार के लोग शीत व उष्ण मरुस्थलों में, एशियाई स्टेपी प्रदेश में, सवाना प्रदेश में और भूमध्यरेखीय वन-प्रदेशों में पाये जाते हैं।

शीत मरुस्थल

यूरेशिया के टुन्ड्रा प्रदेश और उत्तरी अमरीका की बंजर भूमि शीत मरुस्थल कहलाते हैं।

एशियाई टुण्ड्रा प्रदेश में लैप, सैमोइड और याकूट लोग रहते हैं। इन प्रदेशों की प्राकृतिक सम्पत्ति यहाँ के जंगली जानवर, पक्षी, मछली और कई प्रकार के जंगली बेर हैं जो कि गर्मी के छोटे मौसम में पक जाते हैं। यहाँ की वनस्पति काई, लिच और झरबेरी की झाड़ियाँ हैं। छोटे-छोटे बर्च और विलो के वृक्ष भी पाये जाते हैं। जानवरों में आर्कटिक लोमड़ी, खरगोश, लेमिंग तथा कुछ खाने योग्य पक्षी प्रमुख हैं। तटीय प्रदेशों पर सील और वालरस पाई जाती है। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण जानवर रेन-डियर है जिसको यहाँ के लोगों ने पालतू बना लिया है और जिससे यहाँ के लोगों की अधिकतर आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं।

निम्न तापक्रम, गर्मी के छोटे मौसम तथा हिमाच्छादित भूमि के कारण खेती करना असम्भव है। इसलिए यहाँ के लोगों का प्रमुख धंधा शिकार करना, मछली पकड़ना

तथा जानवर पालना है। यहाँ के लोगों का भोजन कच्चा व सड़ा हुआ मांस, रेनडियर का दूध, मछली और जंगली बेर हैं। इनको सुखा कर जाड़े के वास्ते भी रख लिया जाता है। समूर व खालों के बदले ये लोग चाय, कहवा, तम्बाकू आदि प्राप्त कर लेते हैं।

इन शीत प्रदेशों में गर्म कपड़े जरूरी होते हैं। ये लोग जंगली पशुओं की खालों से कपड़े बनाते हैं। इनकी खालों को सुखा कर वस्त्र बनाये जाते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों ही सर के ऊपर समूर की टोपी, हाथों में समूर के दस्ताने तथा पैरों में समर के अस्तर वाले जूते पहिनते है।

रेनडियर काई और लिचन खाकर रहता है। अतएव भोजन की खोज में यहाँ के लोगों को इधर-उधर जाना पड़ता है। फलतः यहाँ के लोग खानाबदोश है और उनके स्थायी घर नहीं होते। टुन्ड्रा निवासी इसलिए तम्बू में रहते हैं जिन्हे चूम कहते है। ये चूम लकड़ी के चौखटों पर खालों को फैलाकर बनाये जाते हैं। इनको एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ले जाया जा सकता है। इस तम्बू के फ़र्श पर सुखाई हुई काई बिछा दी जाती है। बिस्तर और पलंग के स्थान पर रेनडियर की खाल होती है। खाना पकाने का एक बर्तन होता है और भद्दे लैम्प होते हैं जिनमें सील मछली का तेल जलाया जाता है और अन्धकारमय जाड़े की ऋतु का सामना किया जाता है। इनके पास शिकार खेलने के लिए कुल्हाड़ी, तीर-कमान होते हैं। परन्तु हाल में बन्दूकों का प्रचलन बढ़ रहा है। आने-जाने के वास्ते यहाँ के लोग बिना पहिये की गाड़ी इस्तेमाल करते है जिसे रेनडियर खींचता है और बरफ के जूते प्रयोग करते है। इन गाड़ियों को स्लेज कहते है।

दक्षिणी गोलार्द्ध में टेरा-डल-फ्यूगो (Terradel Fuego) के ओनास लोग भी इसी प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी प्राकृतिक परिस्थितियाँ समान हैं, परन्तु उनकी जाति भिन्न है। उनके जीवन का एकमात्र सहारा ग्वानको है जो एण्डीज के लामा से मिलता-जुलता है।

उत्तरी अमरीका की बंजर भूमि—इसके अन्तर्गत उत्तरी अमरीका के आर्कटिक प्रदेश और ग्रीनलैण्ड के तटीय प्रदेश शामिल हैं। यहाँ पर एस्कीमो लोग रहते है। यहाँ के प्राकृतिक साधन यूरेशिया के टुन्ड्रा प्रदेश से मिलते-जुलते है। परन्तु एक भेद है कि यहाँ का प्रमुख जानवर पालतू रेनडियर न होकर जंगली कैरीबू है।

इसलिए एस्कीमो लोग सिर्फ शिकार और मछली पकड़ने का धंधा करते है। कुछ स्थानों में हाल में बारहसिंघों के झुण्डों को पाला जाने लगा है! बहुत सी एस्कीमो जातियाँ समुद्री मछलियों को पकड़ कर अपना जीवन बिताती हैं। ये ह्वेल, सील और वालरस का शिकार करके अपना पेट भरते है। जाड़े के दिनों में ये लोग घंटों तक बर्फ के अन्दर छेद करके उसके पास अपने भाले लिये बैठे रहते हैं कि मछली निकले और ये उसका शिकार कर लें। ये लोग मछली खाते हैं और साथ में चर्बी और मांसल पेशियों का बहुतायत से सेवन करते हैं ताकि इनको सर्दी न लगे। सब्जी और फल आदि का ये लोग बिल्कुल भी सेवन नहीं करते।

ये गर्म बालदार खालों के लोग कपड़े पहिनते हैं। सील और ध्रुवीय भालू की खाल इन्हें विशेष प्रिय है। जाड़ों में ये बर्फ के घर बना लेते हैं जिन्हें इग्लू कहते हैं। ताजे पानी की बर्फ से ये खिड़कियाँ बनाते हैं । गर्मी में जब बर्फ पिघलती है, तो ये लोग बह कर आई हुई लकड़ी और बारहसिंघों की खालों के तम्बू बनाकर रहते हैं।

गर्मी के मौसम में रोशनी रहती है। इसलिए उस समय काम करने का मौसम रहता है। उस समय कैरीबू दक्षिण से उत्तर की ओर आ जाता है और एस्कीमो शिकारी के अन्दर सरगर्मी आ जाती है। मछली को पकड़कर सुखाकर जाड़े के लिए रखते हैं। मांसल पेशियों और चर्बी को भी निकाल कर इकट्ठा करते हैं।

गमनागमन के लिए ये लोग छोटी बड़ी नावों का प्रयोग करते हैं। छोटी नावों को कायक और बड़ी नावों को उमियाक कहते हैं। मजबूत कुत्तों द्वारा खींची जाने वाली बगैर पहियों की स्लेज गाड़ी भी प्रयोग में लाई जाती है। इनके द्वारा प्रयुक्त अधिकतर वस्तुएँ जैसे हारपून, तीर-कमान, स्लेजगाड़ी आदि को बहकर आई हुई लकड़ी से ही बनाया जाता है। साथ में ह्वेल और अन्य मछलियों की हड्डी तथा खाल को भी प्रयोग में लाते हैं। इतना सब होते हुए भी एस्कीमो लोग बहुत कठिनाई से अपना जीवन बिता पाते हैं और धीरे-धीरे उनकी संख्या घटती जा रही है।

टैगा या नुकीली पत्ती वाले जंगल

शीत मरुस्थल के दक्षिण में पूर्व से पश्चिम तक टैगा या नुकीली पत्ती के जंगलों की पट्टी फैली हुई है। यह पट्टी यूरेशिया और उत्तरी अमरीका में पाई जाती है। एशियाई जंगल में आसटियक और टनगस लोग रहते हैं। पहले किसी जमाने में उत्तरी अमरीका के जंगलों में लाल इंडियन (Red Indian) लोग रहते थे परन्तु अब वे सरकारी बाड़ों में रहते हैं।

लगातार ऊँचे-ऊँचे पेड़ों के होने के कारण, यहाँ न तो खेती ही हो सकती है और न पशुचारण। इस जंगल के लोग प्रधानतः शिकारी या मछुवे हैं। फर, चीड़, स्प्रूस और लार्च के वृक्षों से फल-फूल भी नहीं मिलते परन्तु नदियों में मछलियाँ खूब पाई जाती है तथा जंगलों में हरिण व समूर वाले छोटे-छोटे जानवर पाये जाते हैं जिनमें बीवर, स्कन्द, मारटेन और गिलहरी मुख्य हैं।

अपने उत्तर वाले पड़ोसियों की तरह, इस जंगल के लोग गर्म बालदार कपड़े पहिनते है। ये लोग खाल के बने तम्बू में रहते हैं जो नदी के किनारे साफ किये स्थान पर लगा दिये जाते है। प्रायः रहने के लिए ऐसा स्थान चुना जाता है जहाँ से नदी की मछलियाँ और जंगली जानवर सुगमता से मिल सके। जंगल के भीतर से होकर गुजरने की कठिनता के कारण यातायात का प्रधान साधन नदियों पर छोटी-छोटी नावें हैं। अंग्रेजों तथा गोरी जातियों के सम्पर्क से यहाँ के लोग समूर का व्यापार करने लगे है।

शीतोष्ण कटिबंधीय घास के मैदानों के लोग

मध्य एशिया के खिरगीज लोग घास के मैदानों के वातावरण में रहने वाले हैं।

स्टेपी प्रदेशों में मुख्य प्राकृतिक साधन घास ही है। नदियों के किनारे विलो को छोड़कर अन्य कोई वृक्ष नहीं पाये जाते। अधिकतर प्रदेश में वर्षा बहुत कम होती है और उसका वितरण इतना अनिश्चित ही कि खेती का धंधा हो ही नही सकता।

अतएव **खिरगीज** लोग जानवरों को चराने वाले खानाबदोश हैं, जो जानवरों के भोजन की तलाश में अपने घोड़ों, ऊँट, बैल-गाय, भेड़-बकरी के साथ इधर से उधर घूमते फिरते हैं। यद्यपि ये लोग पशुओं पर इतना निर्भर रहते हैं, परन्तु ये लोग मांस बहुत कम खाते हैं। इनके पशुओं को ठंडी हवाओं और जंगली जानवरों से बड़ा डर रहता है। नए जानवरों को अपने समूह को पूरा करने के लिए रखना पड़ता है। कुछ नए जानवरों को ये लोग विदेशियों को दे देते हैं और उनके बदले में बन्दूकें, सूती कपड़े, चाय और आटा ले लेते हैं। दूध और पनीर इनका मुख्य भोजन है। दूध को ये लोग खट्टा कर के पीते हैं। उसे कौमिस कहते है। वनस्पति भोजन इन्हें बहुत कम मिल पाता है। गर्म पत्थरों पर सेंकी हुई सपाट रोटियाँ इनके लिए दुर्भर हैं। लकड़ी के अभाव में जानवरों के गोबर को सुखाकर ईंधन के रूप में प्रयोग करते हैं।

ऊँट के बाल का कपड़ा, चमड़ा, भेड़ की खालें और सूती कपड़ों से ये अपना वस्त्र बनाते हैं। भेड़ के चमड़े का टोप, कोट और लम्बे जूते इनका मुख्य पहिनावा है। अन्य खानाबदोश जातियों की भाँति इनका रहने का स्थान तम्बू होता है, जिसे इधर-उधर ले जाया जाता है, और जिसे यर्ट कहते हैं। ये तम्बू विलो की गोलाकार टहनियों से बनते हैं और उनके ऊपर नम्दे की परतें फैलाई हुई होती हैं। ये तम्बू प्रायः गोलाकार होते हैं। गर्मी के दिनों में बहुत सी खिरगीज जातियाँ पास के पठारों पर हरी-भरी घासवाली घाटियों में चली जाती हैं जहाँ पानी की सुव्यवस्था है। यहाँ पर ये लोग पत्थर की झोपड़ियों में रहते है और इनका निवास स्थान अधिक स्थायी होता है।

इनके तम्बुओं में अच्छे नम्दे व कालीन रहते है। इनके ऊपर खिरगीज औरतों द्वारा बनायी गई सुन्दर पच्चीकारी होती है। इनकी अधिकतर घरेलू वस्तुएँ चमड़े की होती है। दूध ले जाने की बोतल चमड़े की होती है। इनका कुछ सामान लकड़ी का बना होता है, क्योंकि इधर-उधर हटाने से बहुत-सी वस्तुएँ टूट जाती हैं। पुरुष चमड़े का सुन्दर साज पहिनते है।

खिरगीज लोग निडर घुड़सवार होते हैं। इनके छोटे-छोटे बच्चे भी अच्छी घुड़सवारी जानते हैं। अन्य खानाबदोश जातियों की भाँति इनकी औरतें ही अधिकतर घरेलू काम-काज देखती हैं। औरतें ही जानवरों का दूध निकालती हैं और तम्बू गाड़ती हैं। पुरुष अधिक हिम्मत तथा ताकत का काम करते हैं। इधर-उधर भागते हुए जानवरों के झुण्ड को इकट्ठा करते है, जंगली पशुओं को दूर भगाते है और शिकार की खोज में दूर-दूर तक जाते हैं। अक्सर लौटने पर पुरुष बहुत थक जाते है। तब वे लोग आलसियों की तरह हफ्तों आराम करते रहते है।

यद्यपि खिरगीज लोग रूस के राज्य में रहते हैं, परन्तु ये लोग अपना ही कानून

मानते हैं, और इनके झगड़ों में घर या जाति के सबसे वृद्ध व्यक्ति का फैसला सर्वमान्य होता है ।

हाल के दिनों में रूसी सरकार ने अपनी खेती नीति को बढ़ा कर बहुत से खिरगीज चरागाहों पर खेती शुरू कर दी है । अब इन खानाबदोश चरवाहों को स्थायी किसानों के रूप में बदला जा रहा है। उत्तरी अमरीका के प्रैरी प्रदेशों से रेड-इंडियन लोग बिल्कुल गायब हो गए हैं। वास्तव में रेड-इंडियन लोग कभी भी खिर-गीज लोगों की तरह चरवाहे नहीं थे । यहाँ का मुख्य जानवर बिसन पालतू नहीं बनाया जा सकता। पैम्पास के ग्वाको लोग भी चरवाहे नहीं थे क्योंकि दक्षिणी अमरीका के घास के मैदान में खुरदार जानवर नहीं पाये जाते हैं। वहाँ के मुख्य जानवर चूहे की जाति के है जैसे चिनचिला, विसका और कैपिबरा । आस्ट्रेलिया की भी यही दशा है। वहाँ का मुख्य जानवर कंगारू है। दक्षिणी अफीका में बहुत सी जातियाँ रहती है जिनका रहन-सहन खिरगीज लोगों की तरह का है। वहाँ के हाटेन-टाट लोग गाय बैलों के झुण्ड पर निर्भर रहते हैं। ये लोग दूध पीकर गुजर-बसर करते है, और अपने पशुओं की खाल से ढाल और लबादे बनाते हैं।

उष्ण मरुस्थल के लोग

जैसा पहिले भी कहा जा चुका है, उष्ण मरुस्थल के निवासी कई प्रकार के होते हैं :—

(१) कुछ लोग स्थायी रूप से मरूद्यानों या नखलिस्तान में रहते हैं और खेती या पशुचारण करके अपना गुजर बसर करते हैं। चावल, मक्का, फल, प्याज और टमाटर यहाँ की मुख्य फसलें हैं। नखलिस्तान के शुष्क किनारों पर भेड़, बकरी और ऊँट चराये जाते हैं। इन लोगों का भोजन अनेक प्रकार का होता है। उसमें खजूर, भेड़ का मांस, फल, अनाज और सब्जी प्रधान हैं। ये लोग धूप में सुखाये हुए पंक या पत्थर के बने सपाट छत वाले मकानों में रहते हैं। यहाँ के निवासी बड़े संगठित होते है और जहाँ कहीं ये लोग बाहर वालों के सम्पर्क में आ गये हैं, वहाँ इन्होंने विशेष तरक्की कर ली है। सहारा के नखलिस्तान के निवासी इसी प्रकार के हैं।

(२) दूसरे प्रकार के मरुस्थल निवासी खानाबदोश होते हैं, जैसे कि अरब के विदून (Bedouin) लोग और सहारा के टुराग (Tuaregs) लोग । रेगिस्तान के सबसे शुष्क भागों में वनस्पति बहुत कम पाई जाती है यहाँ तक कि पशु चर भी नहीं सकते। लेकिन जहाँ वर्षा की मात्रा १० इंच प्रति वर्ष है, वहाँ सूखी झाड़ियाँ और मोटी घास पाई जाती है। यहाँ पर खानाबदोश लोग भेड़, बकरी और ऊँट चरा कर अपना जीवन निर्वाह करते हैं और स्थान-स्थान पर अपने तम्बू लेकर आते-जाते हैं। ऊँट इन लोगों का अमूल्य पशु है। इससे यहाँ के लोगों को दूध मिलता है, और बिना खाना-पानी के कई दिन तक चल सकने के कारण यह यहाँ के यातायात के लिए बड़ा ही उपयोगी है। रेगिस्तान के खानाबदोश लोग सफेद सूती कपड़े के लम्बे-लम्बे ढीले-ढाले चोगे पहनते हैं।

ये लोग बड़े मजबूत और साहसी होते हैं। परन्तु अकाल के समय अपने भोजन व अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ये व्यापारी कारवाँ तथा मरूद्यानों के निवासियों की लूट-मार किया करते हैं।

(३) कालाहारी मरुस्थल में बुशमन (Bushmen) लोग रहते हैं। यह लोग अफ्रीका की आदि जनता की संतान है। अलग-थलग होने के कारण और इनकी प्राकृतिक परिस्थिति में साधनों का अभाव होने से, ये लोग संसार में सबसे पिछड़े हुए हैं। बहुत सी दशाओं में ये लोग आस्ट्रेलिया के काले लोगों से मिलते-जुलते हैं।

यहाँ पर खेती का धंधा तथा पालतू जानवरों का अभाव है। यही कारण है कि ये लोग बड़े तेज व कुशल शिकारी होते हैं। ये लोग सभी जंगली जानवरों की आवाज बोल सकते हैं और डरपोक जानवरों के समीप जाकर ये लोग जहरीले तीर फेंक कर मारते हैं। इनका प्रकृति-ज्ञान तथा प्राकृतिक विष के विषय में जानकारी बहुत अधिक होती है।

इनका भोजन प्रधानतः मांस होता है। यह मांस कच्चा तथा सड़ा हुआ होता है। अकाल के समय ये लोग कीड़े-मकोड़े तथा साँप आदि तक खा जाते हैं। प्राचीन खुर्पी से ये लोग जड़े आदि निकाल कर खा जाते हैं। जाड़े की कमी के कारण ये लोग बहुत कम वस्त्र पहिनते हैं। खाल का कमरबन्द तथा लबादा ही इनका मुख्य पहिनावा है। इनके घर बड़े भद्दे होते हैं। पहाड़ी गुफा के सामने सरपत की चिकें डाल कर ये लोग अपना घर बना लेते हैं। इनके लिए सबसे बहुमूल्य वस्तु जल होता है जिसे ये लोग बालू के नीचे छिपा कर इकट्ठा रखते हैं।

पशु चराने वाली जातियों के विपरीत ये बुशमन लोग जाति में नहीं रहते। ये लोग छोटे-छोटे घरानों में रहते हैं। यदि ये लोग छोटे-छोटे घरानों में न रहें तो इन्हें भोजन के लिए पर्याप्त जानवर मिलना भी कठिन होता है। इनमें बड़ी सहनशक्ति होती है। ये लोग धैर्यवान, मजबूत और साहसी होते हैं। अकाल के समय अन्य खाना-बदोश लोगों की तरह यह पड़ोसी जातियों की लूटमार करते हैं।

सवाना प्रदेश के लोग

मरुस्थल की तरह सवाना प्रदेश के लोग भी विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार का जीवन बसर करते हैं। इनमें सभ्यता की तीन दशायें देखने में आती हैं— (१) चरवाहे लोग, (२) चरवाहे और पुरानी रीति से खेती करने वाले, (३) प्रधानतया खेतिहर लोग।

(१) पूर्वी अफ्रीका के पठार के मसाइ लोग पशुचारण करते हैं। ये लोग लम्बे कद के, मजबूत तथा लड़ाकू होते हैं। अंशतः ये लोग हब्शी जाति के होते हैं। ये लोग पशु, भेड़ और बकरियों को चराते हैं। चूंकि यहाँ घास अधिक घनी होती है, इसलिए यहाँ के लोग खिरगीज लोगों की अपेक्षा कम खानाबदोश होते हैं। ये लोग मांस कम खाते है। अधिकतर ये लोग दूध और खून खाते हैं। अनेक प्रकार के जंगली जानवरों के रहते हुए भी ये मसाई लोग केवल शेर का शिकार करते हैं क्योंकि

इनके जानवरों को शेर का बड़ा डर रहता है। शेर के शिकार में ये बड़ा साहस दिखलाते हैं। उच्च तापक्रम के कारण ये लोग बहुत कम कपड़ा पहिनते हैं। इनकी गोल झोंपड़ियाँ पेड़ की टहनियों से बनाई जाती हैं, और इन टहनियों के ऊपर दलदल और गोबर पोत दिया जाता है। इन झोपड़ियों के समूह के चारों ओर काँटेदार झाड़ियों की चारदिवारी बनी होती है। इस बाड़े में रात को पशु हाँक दिये जाते हैं। मसाई जाति के लोग इधर-उधर घूमते हुए स्थायी निवासियों की फसलों को लूटते हैं और उनसे लड़ते हैं।

दक्षिणी कीनिया में मसाई जाति के लोगों की बस्ती बनी हुई है, परन्तु इसका अधिकतर भाग इतना शुष्क है कि पशुचारण हो ही नहीं सकता। इसलिए यह प्रदेश मसाई लोगों के लिए हानिकर है। इसके अन्तर्गत अब कुछ हरे-भरे घास के मैदानों को शामिल कर दिया गया है।

(२) किकुयु लोग हब्शी बन्टू जाति के हैं और कीनिया पर्वत के उत्तर में रहते हैं। ये लोग खेती के साथ-साथ पशुचारण भी करते हैं। ये लोग पशु चराते हैं, और छोटे-छोटे खेतों में केला, मोटा अनाज और मोनइक उगाते हैं। इनके घर और वस्त्र मसाई जाति के लोगों से मिलते-जुलते हैं, परन्तु इनका भोजन विभिन्न होता है। स्वभाव से ये लोग स्थायी और शांतिपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। आजकल ये लोग विप्लव कर रहे हैं।

(३) सूडानी हब्शी जाति के हॉसास लोग सहारा के दक्षिण में पश्चिमी अफ्रीका के सवाना प्रदेश में रहते हैं। ये लोग स्थायी रूप से खेती के सहारे रहते हैं, परन्तु उनके खेती के तरीके बड़े पुराने हैं। जब तक अंग्रेज लोग यहाँ आकर नही बसे थे, हौसा लोग हल नहीं इस्तेमाल करते थे। पहिले और अभी भी कुछ लोग खुर्पे और कुल्हाड़ी से जमीन खोदते हैं। इस प्रकार भद्दे तरीके से जोते गए खेतों पर ये लोग कपास, ज्वार-बाजरा, गिनी अनाज और मूंगफली उगाते हैं। पहिले ये लोग पशु नहीं पालते थे, क्योंकि पास में रहने वाले फुलानी लोगों के हमलों का इन्हें डर था। अंग्रेजी हुकूमत के शांतिमय वातावरण में और खाद की उपयोगिता समझ लेने के बाद अब ये लोग लम्बे सींग वाले बहुत से पशु चराते हैं।

खेती की उपज के कारण इन लोगों का भोजन अन्य घास के मैदान वाले निवासियों की अपेक्षा बहुत विभिन्न है। ये लोग गाँव और नगर में रहते हैं। इनके चारों ओर दीवारें बनी रहती है। गाँवों के झुण्ड एक मुखिया के अधिकार में रहते हैं।

हौसा लोग बहुत दिनों से व्यापार करते आ रहे हैं। नमक का रोजगार मुख्य है। ये लोग मिट्टी के बर्त्तन और चमड़े का सामान बनाने में बड़े कुशल होते हैं। सूती कपड़ा बुनना और लोहे का सामान बनाना भी इनके धंधे का अंग है। उत्तर के मुसलमान लोगों के प्रभाव से हौसा लोग लम्बे-लम्बे ढीले-ढाले वस्त्र पहिनते हैं। अन्य हब्शी जातियों की अपेक्षा ये अधिक सभ्य हो गये हैं।

भूमध्यरेखीय वन-प्रदेशों के लोग

भूमध्यरेखीय वन-प्रदेशों के लोग अपने जीवन-यापन में विभिन्न प्रकार की रीति प्रदर्शित करते हैं :—

(१) जहाँ जंगल घने हैं, वहाँ बहुत पिछड़े हुए लोग रहते हैं। इस श्रेणी में कांगो बेसिन के बौने लोग, लंका के वेदा लोग, अमेजन बेसिन के गर्दन काटने वाले इंडियन लोग, सुमात्रा के कुबुस लोग तथा अन्य इसी प्रकार की जातियाँ सम्मिलित हैं।

वनस्पति के घनेपन के कारण और सफाई करने में अशक्त होने की वजह से, ये लोग प्रधानतः शिकारी हैं, जो फल और कन्द की खोज में जंगल में इधर-उधर घूमा करते हैं। ये लोग जहरीले तीर और कमान से बन्दरों का शिकार करते हैं। ये लोग पशुचारण और खेती से बिल्कुल अनभिज्ञ हैं, और संसार में सबसे पिछड़े हुए हैं।

अत्यधिक ऊँचे तापक्रम के कारण यहाँ के लोग बहुत कम वस्त्र प्रयोग करते हैं। कभी-कभी तो बिल्कुल नंगे ही रहते हैं। उनकी चौकोर झोपड़ियों की कमजोर दीवारें कीचड़ से पुती हुई डहनियों की बनी रहती है। सूर्य की गर्मी से बचने के लिए ये लोग अपनी झोंपड़ियों पर पत्तियों का छप्पर डाल लेते हैं। यहाँ पर प्रतिदिन खूब वर्षा होती है इसलिए उससे भी बचाव करना पड़ता है। इस प्रकार की झोपड़ियाँ प्रायः नदियों के किनारे बनी रहती है। ये लोग छोटे कद के और कमजोर होते हैं। ये जंगली होते हैं, और इनका विश्वास नहीं किया जा सकता। ये इतने बुजदिल होते हैं, कि जरा से आक्रमण से जंगल भर में छितर-बितर जाते हैं।

(२) कम घने जंगल में निवासी इतने अधिक पिछड़े हुए नहीं हैं। शिकार के साथ-साथ वे लोग पुरानी रीति से खेती भी करते रहते है। कुछ लोग मुर्गी और बकरी भी पालते है। फ्रांसीसी भूमध्यरेखीय अफ्रीका के गाबुन लोग, कान्गोंबेसिन के बकूबा लोग, अनाम के मोह लोग तथा बोर्नियो, फिलीपाइन और अमेजन की बहुत सी जातियाँ इसी तरह की है।

इनकी खेती करने की रीति को मिल्पा या फैंग कहते है। अस्थायी रूप से जंगलों को साफ कर के ये लोग फसल बो देते हैं। हर दो तीन साल के बाद जंगल के नये हिस्से को साफ करके जला डालते हैं। राख और मिट्टी के मिश्रण में चावल, ज्वार-बाजरा, केला, मैनइक और टारो की फसलें उगाई जाती हैं। जब भूमि की उपज शक्ति खतम हो जाती है, तो दूसरा मैदान साफ कर लिया जाता है। भूमध्यरेखीय वनों में लकड़ी के दुबारा उगे हुए वृक्ष पाए जाते है, जो इस बात के द्योतक हैं, कि वे मिल्पा खेती के द्वारा छोड़े हुए प्रदेश हैं। उनके खेती करने के औजार पुराने होते हैं भूमि स्वभावतः अनुपजाऊ होती है। घास-फूस बड़ी तेजी से उगती हैं। जंगली हाथी और बन्दरों से फसलों को बड़ी हानि होती है। इस प्रकार यहाँ के किसानों को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

ये जंगली किसान अर्द्धरूप से खानाबदोश होते है, और एक खेत छोड़कर दूसरे खेत को जाते रहते हैं। परन्तु इनमें सभ्यता की मात्रा अधिक है। इनको भोजन

निश्चित रूप से और अनेक प्रकार का मिल जाता है। ये लोग बहुत कम कपड़े पहिनते हैं, और जंगल साफ करके बनाये गए खेतों के किनारे चौकोर नुकीली और छप्परदार झोपड़ियाँ बनाते है। जंगली जानवरों के डर से तथा कुछ अन्य कारणों से इन मकानों को जमीन से कई फीट ऊँचे मचान पर बनाया जाता है।

ये आदि किसान बड़े शांतिप्रिय होते हैं, और प्रायः आलसी होते हैं। भूमध्यरेखीय वनप्रदेशों में प्रकृति इतनी भरपूर होती है कि जरा सी मेहनत से काफी भोजन मिल जाता है। कोई भी ऐसा मौसम नहीं होता, जबकि भोजन की कमी हो। इसलिए भविष्य के लिए भोजन इकट्ठा करने की जरूरत ही नहीं होती। फल यह होता है कि लोगों में लगातार काम करने तथा आगे बढ़ने की इच्छा ही नहीं होती। इस प्रकार के लोग उद्यान कृषि के लिए सर्वथा बेकार होते है।

अध्याय अट्ठारह

अनाज (CEREALS)

उपज का वितरण

रबड़ इंगलैण्ड में नहीं हो सकता। इसी प्रकार जैतून अमेजन-बसिन में नहीं हो सकता। प्रत्येक पौधे की उपज के लिए कुछ दशाओं की आवश्यकता होती है। इस अध्याय में प्रमुख वस्तुओं के उत्पादन की दशाओं तथा वितरण का विवेचन किया जावेगा।

गेहूँ

सब अनाजों में गेहूँ का स्थान सबसे ऊँचा है और इसे कई हजार वर्षों से उगाया जा रहा है। स्विट्जरलैण्ड में पाषाण युग की झील निवासों में भी गेहूँ के दाने पाये गये हैं। वैज्ञानिकों का विचार है कि फिलस्तीन में उन्होंने जंगली गेहूँ को प्राप्त किया है, जिसके बीजों को उगाया जा रहा है।

उपज की दशायें—भूमि और जलवायु सम्बन्धी विविध दशाओं के अनुसार कई विशेष प्रकार के गेहूँ को उत्पन्न किया जाता है। सामान्यतः गेहूँ के उत्पादन के लिए निम्नलिखित दशाओं का होना जरूरी है :—

(१) साधारण वर्षा। २० इंच से ३० इंच तक की वर्षा सबसे अधिक उपयुक्त होती है। इस वर्षा का कुछ अंश उपज काल में प्राप्त होना चाहिए।

(२) पकने के लिए गर्म व सूर्य की रोशनी से भरा-पूरा मौसम चाहिए।

(३) सामान्यतः कड़ी दोमट या चीका मिट्टी इसके लिए अच्छी होती है।

(४) भूमि सपाट होनी चाहिये ताकि मशीनों का पूर्णतया प्रयोग हो सके, परन्तु साथ-साथ भूमि इतनी ढालू होनी चाहिए कि पानी न रुके।

भूमध्यसागरीय प्रदेशों की जलवायु में ये सभी दशाये पाई जाती हैं। शीतोष्ण कटिबंधीय महाद्वीपों के मध्यवर्ती प्रदेशों में भी सभी उपयुक्त दशायें मिलती हैं। मध्यवर्ती प्रदेशों में वर्षा प्रधानतया गर्मी के महीनों में होती है, और उपज के काल में भी होती रहती है। गर्मी के पिछले महीनों में जब अनाज पकता है, तो मौसम शुष्क रहता है। उत्तरी भारत में वर्षा पूर्ण गर्मी के महीनों के बाद जाड़े का मौसम आता है, जो अनाज पकाने के वास्ते काफी गर्म रहता है। इसलिए गेहूँ को वर्षा के अन्त में बोया जाता है और जाड़ों में काटा जाता है।

उत्पादन के प्रदेश

संसार के प्रमुख गेहूँ उत्पादक प्रदेशों को ३ वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(१) पश्चिमी यूरोप के घने बसे भाग, जैसे ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, बाल्जयम, हालैण्ड, डेनमार्क और जर्मनी। भूमि के ऊँचे दाम और अपेक्षाकृत घनी आबादी के कारण, किसान गहरी खेती (Intensive Cultivation) करते हैं, ताकि उन्हें अधिक-से-अधिक प्रति एकड़ उपज प्राप्त हो। औसत प्रति एकड़ उपज १५ से २७ हण्डरवेट तक रहती है। इतनी अधिक प्रति एकड़ उपज होते हुए भी फ्रांस को छोड़कर अन्य देशों में गेहूँ की कमी रहती है और अन्य देशों से आयात किया जाता है। ग्रेट-ब्रिटेन में कुल उपभोग का केवल ३० प्र० श० गेहूँ ही उत्पन्न किया जाता है।

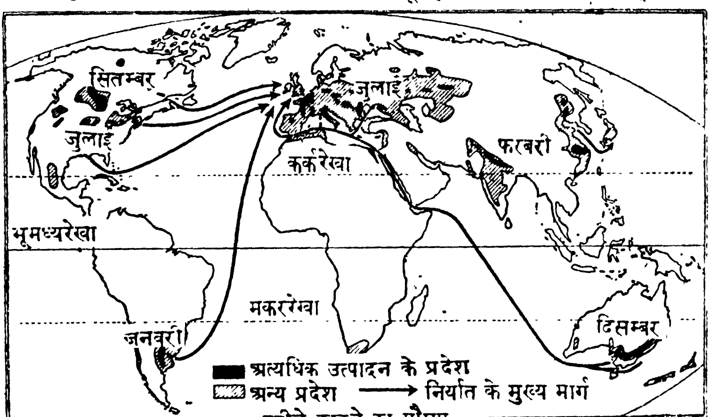

चित्र १३६—गेहूँ उत्पादन का वितरण

(२) पिछड़े हुए तथा कम बसे हुए प्रदेश जो पूर्वी तथा दक्षिणी-पूर्वी यूरोप में स्थित हैं। इन भागों में छोटे-छोटे किसान अपने उपभोग के लिए गेहूँ उगाते हैं। उत्पादन की रीति वैज्ञानिक नहीं है, और प्रति एकड़ उपज बहुत कम है। १९१४–१८ की लड़ाई से पहिले यूरोपीय रूस की प्रति एकड़ उपज ४$\frac{3}{2}$ हण्डरवेट थी, परन्तु हाल के दिनों में रूस में गेहूँ के उत्पादन में बड़ा हेर-फेर हो गया है। निम्न प्रति एकड़ उपज के होते हुए भी रूमानिया तथा हंगरी जैसे मैदान प्रधान देशों में गेहूँ का उत्पादन जरूरत से ज्यादा होता है।

(३) कनाडा, आस्ट्रेलिया, अर्जेन्टाइना और मध्य संयुक्तराष्ट्र अमरीका के नवीन प्रदेश जहाँ विस्तृत खेतों में मशीनों द्वारा गेहूँ उगाया जाता है। प्रति एकड़ उपज ९ हण्डरवेट से कम होती है, परन्तु इन विस्तृत खेतों में इतना अधिक उत्पादन होता है, कि यहाँ से बहुत सा अनाज पश्चिमी यूरोप के घने बसे भागों को निर्यात कर दिया जाता है।

हाल के दिनों में सभी देशों में गेहूँ की प्रति एकड़ उपज में वृद्धि हुई है। इस वृद्धि का प्रधान कारण खेती की वैज्ञानिक रीति और खाद का अधिकाधिक प्रयोग है। कनाडा में प्रति एकड़ उपज पिछले १५ वर्षों में ५० प्रतिशत बढ़ गई है।

नवीन परिवर्तन

सन् १९३० से १९३९ तक के जमाने में संयुक्त-राष्ट्र-अमरीका और कनाडा में गेहूँ

का उत्पादन काफी घट गया। सन् १९२८–२९ में अमरीका की फसल बहुत अधिक हुई, फलत: दामोंमें भारी कमी हो गई और इनके साथ यूरोपीय किसान प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाये। इसलिए यूरोप की सरकारों ने गेहूँ के किसानों को संरक्षण प्रदान किया।

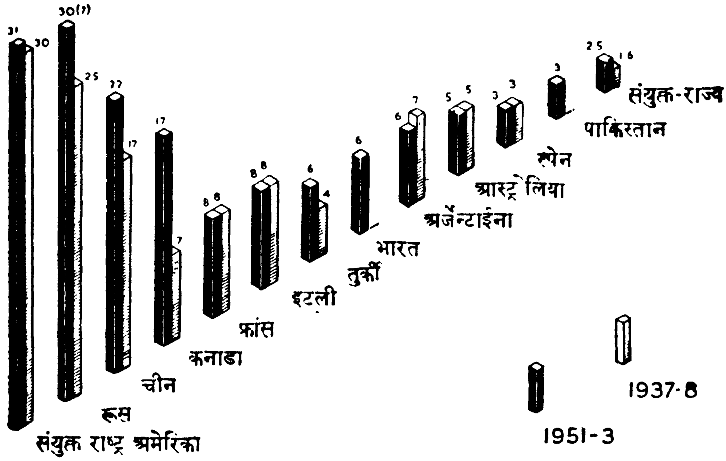

चित्र १३७—गेहूँ का विश्वव्यापी उत्पादन (दस लाख टन में)

उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि, कम दाम और बाजारों की कमी के कारण सम्पूर्ण विश्व में गेहूँ का व्यापार कम हो गया। फलत: अमरीकी किसान अपनी फसल को निकाल नहीं पाये और सन् १९३२ में बहुत सा गेहूँ जला दिया गया। अमरीकी किसानों ने दूसरी फसलें उगाना शुरू कर दिया। सन् १९३५ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका का गेहूँ उत्पादन १६४ लाख टन हो गया। कनाडा का उत्पादन ७५ लाख टन हो गया। परन्तु सन् १९३८ तक दशा बहुत कुछ सुधर गई।

सन् १९३९–४५ के दूसरे विश्व-युद्ध से यूरोप में गेहूँ का उत्पादन ४० प्रतिशत घट गया क्योंकि मनुष्यों, मशीनों, खाद और कीड़े-मकोड़े मारने की दवा की कमी हो गई थी। इसी बीच में विश्व की जनसंख्या २५० लाख प्रतिवर्ष के हिसाब से बढ़ती गई और फल यह हुआ कि अनाज की भारी कमी हो गई। इसी समय पर अमरीका के गेहूँ उत्पादक देशों ने उत्पादन बढ़ाया और सन् १९४७ में संयुक्त राष्ट्र अमरीका का गेहूँ उत्पादन ३७० लाख टन हो गया। इसी वर्ष आस्ट्रेलिया ने ६० लाख टन गेहूँ उत्पन्न किया। इस समय संसार में गेहूँ की माँग पूर्ति की अवस्था बिल्कुल ठीक है। वास्तविक कमी दूर हो गई है। परन्तु चूँकि दो बड़े निर्यातक देशों की मुद्रा डालर है, इसलिए संयुक्त राज्य तथा पश्चिमी यूरोपीय देशों को आयात में दिक्कत उठानी पड़ती है।

संयुक्त राज्य में लड़ाई के दिनों में उत्पादन ३० लाख टन से अधिक हो गया और इस समय भी २० वर्ष पहिले की अपेक्षा उत्पादन की मात्रा ड्योढ़ी हो गई है।

प्रमुख गेहूँ निर्यातक देश

(लाख टन में)

		१९५१–५३	१९३४–३८
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	...	९७	१३
कनाडा	...	९२	४८
आस्ट्रेलिया	...	२५	२८
आर्जेन्टाइना	...	७	३३

मक्का

मक्का सब से पहिले अमरीका में उगाया जाता था। वहाँ से इसका उत्पादन पुरानी दुनिया के अन्य देशों में फैला है। मेक्सिको, इटली और बहुत से दक्षिणी अमरीकन राज्यों में इस अनाज को मानव भोजन के रूप में प्रयोग करते हैं। उत्तरी अमरीका और यूरोप में इसे प्रधानतया जानवरों को खिलाते हैं। इसकी सूखी पत्ती व डंठल कागज बनाने के काम में आती है। अमरीका के कुछ भागों में, विशेष कर निम्न सेंटलारेन्स घाटी में मक्का की नई हरी टहनियों को सिलों में रख कर इकट्ठा कर लिया जाता है, और जाड़े के दिनों में जानवरों को दिया जाता है।

उपज की दशायें—(१) इसके लिए ५ महीने का उपज काल चाहिये, और गर्मी का मध्यमान तापक्रम ६६° फा० होना चाहिए (२) पौधे के उत्पादन के लिए गर्मी में वर्षा होनी चाहिए। (३) भूमि गहरी गर्म और जलपूर्ण होनी चाहिए।

उपर्युक्त दशाओं से स्पष्ट है, कि मक्का शीतल जाड़े वाले देशों में जैसे इंगलैण्ड में कदापि नहीं पनप सकती। भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेश भी जहाँ गर्मी में वर्षा बहुत कम होती है, इसके लिए अनुपयुक्त रहते हैं। यद्यपि मक्का का पौधा गर्मी पसन्द करता है, फिर भी गर्म व तर प्रदेशों में यह नहीं उग सकता।

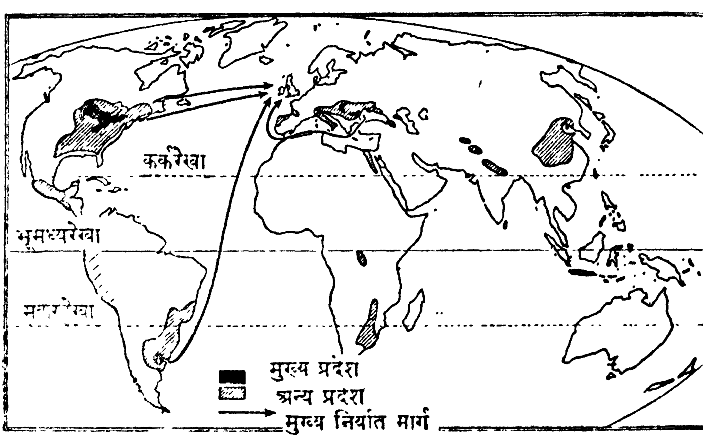

चित्र १३८—मक्का उत्पादन का वितरण

उपज के प्रमुख प्रदेश—(१) संयुक्त राष्ट्र अमरीका का मक्का प्रदेश जिसके

अन्तर्गत संयुक्तराष्ट्र अमरीका की मध्यवर्ती रियासतें आती हैं। यह प्रदेश कनाडा की सीमा से सेंट लुई के अक्षांश तक फैला हुआ है। यहाँ की उपज का अधिकांश भाग जानवरों को खिलाने के वास्ते प्रयोग में लाया जाता है। शिकागो, सेंट लुई, ओयाहो, कैन्सास आदि केन्द्रों में गाय, बैल और सूअर को मक्का खिला कर मोटा किया जाता है। इस प्रकार मक्का उत्पादन के आधार पर ही अमरीका का मांस तथा अन्य सम्बन्धित उद्योग चलते हैं।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमरीका की दक्षिणी रियासतों में भी कुछ मक्का उगाया जाता है। कपास क्षेत्र में जो भी मक्का उगाया जाता है, उसे हब्शी लोग खाने में उपयोग कर डालते हैं।

(३) अर्जेन्टाइना की पराना और युरुगवे नदियों के बीच के तर पैम्पास मैदान में भी मक्का उगाया जाता है।

(४) मध्य अमरीका के सभी राज्यों में और दक्षिणी अमरीका के एण्डीज राज्यों में मक्का का मानव भोजन के रूप में इस्तेमाल करते हैं। इन राज्यों से निर्यात बिल्कुल भी नहीं होता।

(५) यूरोप में डैन्यूब के मैदान और दक्षिणी रूस प्रमुख मक्का उत्पादक प्रदेश हैं। यूगोस्लाविया, रूस, रूमानिया और हंगरी से मक्का पश्चिमी यूरोप को भेजा जाता है।

(६) भूमध्यसागरीय देशों के कुछ भागों में जैसे इटली के उत्तरी मैदान में जहाँ गर्मी का मौसम बहुत शुष्क नहीं होता या जहाँ सिंचाई की सुविधा है, मक्का की फसल उगाई जाती है, और वहाँ के किसान इसे अपने भोजन के रूप में लाते हैं।

(७) चीन, भारत और दक्षिणी-अफ्रीका में भी घरेलू उपयोग के लिए मक्का उगाया जाता है।

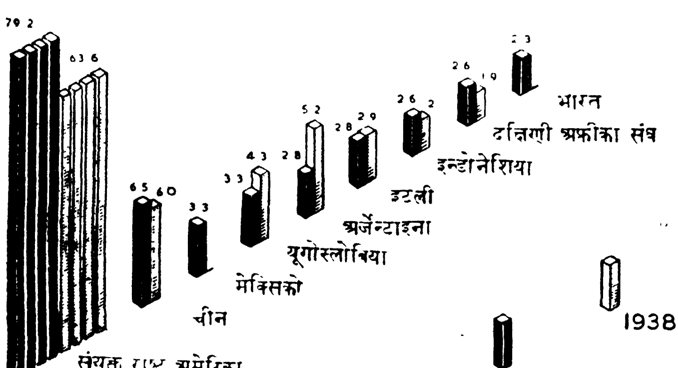

चित्र १३९—मक्का का विश्वव्यापी उत्पादन (दस लाख टन में)

नवीन परिवर्तन और विश्व व्यापार—गेहूँ की तरह, मक्का के उत्पादन की मात्रा संयुक्त राष्ट्र अमरीका में १९३५ के समीप बहुत घट गई, परन्तु अब यह कमी

पूरी हो गई है और उत्पादन पहिले से अधिक हो गया है। लड़ाई के दिनों में यूरोप में मक्का का उत्पादन बहुत कम हो गया था परन्तु अब वह ठीक हो गया है और रूस से संयुक्त राज्य को काफी मक्का निर्यात की जाती है। यद्यपि संयुक्तराष्ट्र अमरीका की अपेक्षा अर्जेन्टाइना मे मक्का का उत्पादन बहुत कम है, परन्तु फिर भी सन् १९३९ तक अर्जेन्टाइना संसार का प्रमुख निर्यातक देश था। संयुक्त राष्ट्र से मक्का का निर्यात तो दूर रहा बल्कि अपनी जरूरत पूरी करने के लिए वह अर्जेन्टाइना से मक्का का आयात करता था, क्योंकि अर्जेन्टाइना मे पशुओं को अल्फाल्फा घास अधिक खिलाई जाती है। परन्तु अब अर्जेन्टाइना का उत्पादन १५ वर्ष पूर्व की अपेक्षा आधा ही रह गया है, और निर्यात की मात्रा के हिसाब से इसका स्थान संयुक्त राष्ट्र के बाद दूसरा हो गया है। सन् १९५०–५१ मे संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने ६३० हजार टन मक्का निर्यात की, अर्जेन्टाइना ने १८५ हजार टन और यूगोस्लाविया ने ६९ हजार टन।

चावल

संसार की ५० प्रतिशत जनसंख्या का प्रधान भोजन चावल ही है और इसकी उपज का प्रधान क्षेत्र दक्षिणी-पूर्वी-एशिया है।

उपज की दशायें—(१) सम्पूर्ण उपज काल मे गर्मी का उच्च तापक्रम ७०° फा० तक होना चाहिए।

(२) वर्षा काफी होनी चाहिए, पर उपजकाल के शुरू मे चावल के खेतों मे जल भरा रहना चाहिए।

(३) नदी द्वारा लाई हुई उपजाऊ प्रवेश्य मिट्टी जैसे कि डेल्टा प्रदेशों में पाई जाती है, इसके लिए सब से अच्छी रहती है। परन्तु नीचे की मिट्टी की परत अप्रवेश्य होनी चाहिए, ताकि पानी इकट्ठा बना रहे।

(४) धान उगाने की धीमी व कठिन रीति के कारण काफी संख्या में सस्ते मजदूरों की आवश्यकता होती है। धान के छोटे-छोटे अंकुरों को हाथ से उखाड़-उखाड़ कर पानी से भरे खेतो में लगाया जाता है। चावल की खेती में बड़े धैर्य, लगन और सावधानी की जरूरत होती है।

अधिकतर चावल दलदल या निम्न भूमि पर उगाया जाता है। उसीके लिए ऊपर लिखी दशायें आवश्यक होती है, परन्तु एक दूसरे प्रकार का चावल उच्च भूमि पर उगाया जाता है, जहाँ मिट्टी शुष्क रहती है।

उपज के क्षेत्र—चावल उत्पादक प्रदेशों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(१) वे देश जहाँ उत्पादन बहुत अधिक होता है, और साथ-साथ जनसंख्या भी बहुत घनी है। अतएव वहाँ से निर्यात नहीं हो पाता। ये देश चावल के प्रधान उत्पादक क्षेत्र होते हुए भी चावल बाहर से मंगाते है। चीन, जापान, भारत और इन्डोनेशिया इसी श्रेणी में आते है।

(२) वे देश जहाँ उत्पादन तो कुछ कम है, पर साथ-साथ जनसंख्या भी अधिक नहीं है। अतएव वहाँ से निर्यात खूब होता है। बर्मा, स्याम और फारमोसा इसी प्रकार के देश है।

(३) एशिया के बाहर के वे देश जो सिंचित भूमि पर थोड़ा बहुत चावल उगाते हैं, और सबका सब घरेलू उपभोग में ले आते हैं।

(क) संयुक्तराष्ट्र अमरीका में मिसीसीपी का डेल्टा तथा कैलीफोर्निया और टेक्सास की सिंचित भूमि।

(ख) पीरू मरुस्थल की सिंचित नदी घाटियाँ।

(ग) मिश्र।

(घ) इटली की पो घाटी का दक्षिणी-पूर्वी भाग।

(ङ) यूगोस्लाविया का आन्तरिक निम्न प्रदेश।

(च) दक्षिणी-पूर्वी स्पेन के सिंचित प्रदेश।

(छ) आस्ट्रेलिया में मरमबिजी (Murrum bidgee) प्रदेश की सिंचित भूमि।

(ज) मध्य अमरीका, पश्चिमी द्वीपसमूह और ब्रिटिश गिनी।

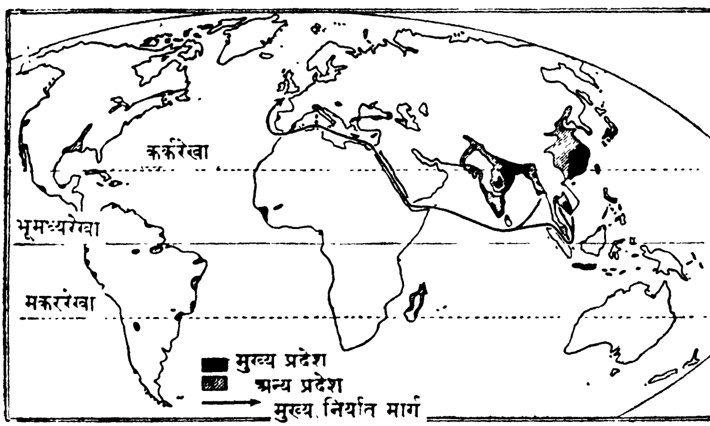

चित्र १४०—चावल उत्पादन का वितरण

उत्पादन में परिवर्तन—१९३९–४५ के युद्ध से पूर्व कोरिया, स्याम, इन्डोनेशिया, जापान में चावल का उत्पादन बराबर बढ़ रहा था। इसका प्रधान कारण था, बढ़ती हुई जनता की माँग पूर्ति। परन्तु युद्धपूर्व की फसल का केवल ९ प्रतिशत अंश ही व्यापार में आया। बर्मा से ३० लाख टन का निर्यात हुआ। इस के बाद स्याम व कोरिया का स्थान आता है। बर्मा के निर्यात का आधा भाग भारत को आता था।

जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि तथा युद्ध के कारण उलट-फेर से चावल की भारी कमी पड़ गई। यह अन्न की विश्वव्यापी कमी का ही भाग था। सन् १९५४ में संसार में कुल युद्धपूर्व उत्पादन से १० प्र० श० अधिक चावल पैदा हुआ। माँग पूर्ति के लिए यह काफी था। भारत, लंका और जापान में चावल की जगह गेहूँ का प्रयोग अधिकाधिक बढ़ रहा है।

विश्वव्यापी चावल व्यापार (लाख टन में)

निर्यातक देश	१९५०-५२	१९३६-४०	आयातक देश	१९५०-५२	१९३६-४०
स्याम	१५	२९	जापान	७	१५
बर्मा	१३	३२	भारत	६	१८
फारमोसा	१०	१४	मलाया	५	८
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	६	१	इन्डोनेशिया	५	२
मिश्र	२	३	लंका	४	६

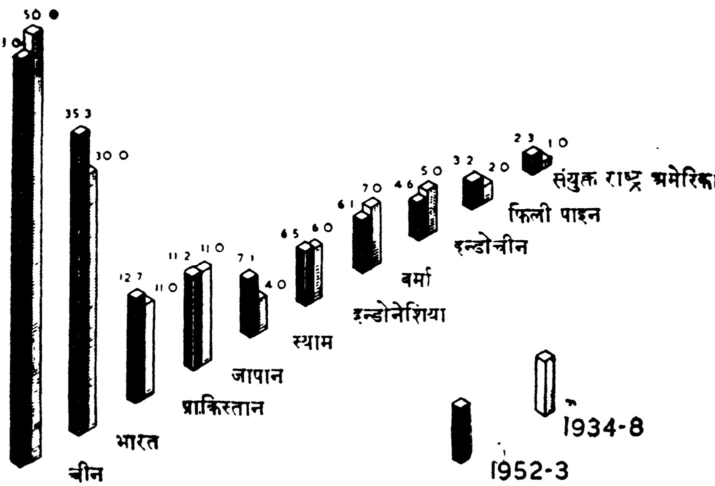

चित्र १४१—चावल का विश्वव्यापो उत्पादन (दस लाख टन में)

अन्य अनाज

जई—यह अनाज शीतल व तर जलवायु में सबसे अच्छा पनपता है। इसलिए शीत शीतोष्ण कटिबंध के ग्रेट ब्रिटेन, आयरलैण्ड, जर्मनी के कुछ भाग, मध्य रूस, मध्य व पूर्वी कनाडा और दक्षिणी गोलार्द्ध के शीतल भाग जई उत्पादन के प्रधान केन्द्र हैं। जई को जानवरों और विशेषकर घोड़ों को खिलाया जाता है। यह गेहूँ उत्पादक भूमि पर खूब पनपता है, परन्तु उन प्रदेशों में पकता है, जो गेहूँ के लिए अधिक सर्द व तर है।

सन् १९५१–५३ में विभिन्न उत्पादक प्रदेश व उनकी उपज (दस लाख टन में) इस प्रकार थी :—

रूस ...	२०–३०	फ्रांस ...	४
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	२०	संयुक्त राज्य ...	३
चीन ...	११	जर्मनी ...	३
कनाडा ...	७	पोलैण्ड ...	२
		डेनमार्क ...	१

जौ—यह भी शीतोष्णकटिबंध का अनाज है, जो गेहूँ के देशों में खूब उगता है। परन्तु यह गेहूं की अपेक्षा अधिक विभिन्न प्रदेशों में उग सकता है। जई की भाँति यह अधिक शीतल जलवायु में उग सकता है, और अधिक उत्तरी अक्षांशों में उग सकता है। जई के विपरीत, यह शीतोष्ण कटिबंध के अधिक गर्म व शुष्क प्रदेशों में भी उगता है। इस प्रकार भूमध्यसागरीय प्रदेशों की यह प्रधान फसल है, और मरक्को तथा दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में इसका विशेष महत्त्व है। जौ से माल्ट तैयार किया जाता है, और उससे ह्विस्की शराब बनाई जाती है। कनाडा, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और चीन प्रधान उत्पादक देश हैं।

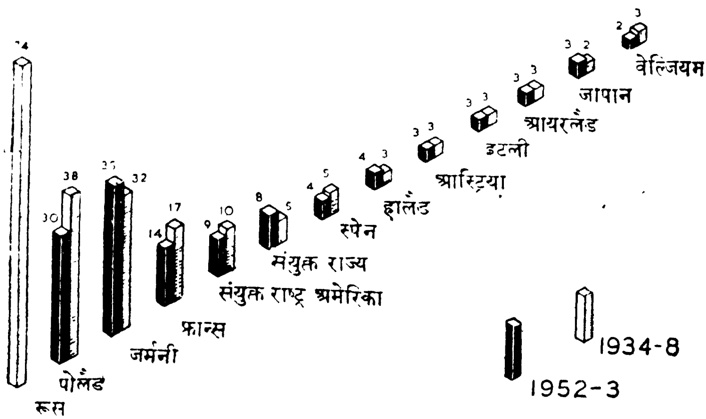

चित्र १४२—आलू का विश्वव्यापी उत्पादन (दस लाख टन)

राई—यह भी शीतोष्ण कटिबंध का अनाज है। इसकी सब से बड़ी विशेषता यह है कि यह बहुत मामूली मिट्टी में भी पनप सकता है। पाले के कारण यह उतने उत्तर तक नहीं उगता जितने कि गेहूँ और जौ। जर्मनी और मध्य रूस की मोरेनपूर्ण मिट्टी में राई की विस्तृत खेती होती है। पोलैण्ड और जर्मनी इसके महान् उत्पादक देश हैं। प्रत्येक देश का उत्पादन लगभग ७५ लख टन है।

ज्वार बाजरा—मानसून प्रदेशों में जहाँ कहीं वर्षा ४० इंच से कम होती है और चावल के लिए अपर्याप्त रहती है, वहाँ ज्वार-बाजरा उगाया जाता है। ज्वार-बाजरा कई प्रकार का होता है। धुर्रा भी इसी प्रकार का अनाज है और अफ्रीकी जातियों द्वारा उगाया जाता है।

आलू—यद्यपि आलू अनाज नहीं है, परन्तु अनेक स्थानों पर यह अनाज के स्थान पर या अन्न के साथ खाया जाता है। इसे जानवरों को भी दिया जाता है और इससे अनेक प्रकार की औद्योगिक स्प्रिट व तेजाब बनाई जाती है। चूंकि आलू काफी स्थान घेरता है और इसे अधिक समय तक रखा नहीं जा सकता, इसलिए इसका अन्त-

राष्ट्रीय व्यापार बहुत कम है। इसे प्रधानतः घरेलू उपभोग के लिए उगाया जाता है।

आलू शीत-शीतोष्ण कटिबंध में खूब उगता है और प्रमुख आलू उत्पादक देश एक पट्टी के रूप में आयरलैंण्ड से पूर्व की ओर हालैण्ड, बेल्जियम और जर्मनी से होती हुई पोलैण्ड तथा रूस तक फैली हुई है। संसार में आलू का कुल उत्पादन २३०० लाख टन है। इसमें से २१०० लाख टन केवल यूरोप में होता है। परन्तु उपजकाल में आलू को अनेक रोग लग जाते हैं। इसीलिए सबसे अच्छे बीज के लिए आलू शीतल प्रदेशों में तथा अति उत्तरी अक्षांशों में उगाये जाते हैं। स्काटलैण्ड जैसे शीत प्रदेशों में आलू की बीमारी के कीड़े पनप नहीं पाते।

अध्याय उन्नीस

अन्य भोज्य पदार्थ (OTHER FOOD PRODUCTS)

चाय

चाय दक्षिणी-पूर्वी एशिया की एक झाड़ी की सुखाई हुई पत्ती है।

उपज की दशायें--(१) उष्ण तथा उपोष्ण कटिबंध की गर्म गर्मी का मौसम परन्तु, थोड़ा सा पाला हानिकर नहीं होता है।

(२) अत्यधिक वर्षा।

(३) जल का अच्छा बहाव। इसीलिए यह पर्वतों के ढालों पर खूब पनपता है।

(४) सस्ते और सीखे हुए मजदूरों की पर्याप्त संख्या। पत्तियाँ तोड़ने, सुखाने और डिब्बे में बन्द करने में बड़ी मेहनत की आवश्यकता होती है। झाड़ियों मे पत्ती तोड़ने में काफी सावधानी की आवश्यकता होती है, इसलिए स्त्री मजदूरों से काम लिया जाता है।

उत्पादन की रीति और तैयार करने की विधि—नये चाय के बगीचे लगाने मे पहिले भूमि के एक टुकड़े को साफ कर लिया जाता है, और ४–४ फीट की दूरी पर एक-एक फुट ऊँचे पौधे लगा दिये जाते हैं। जब ये झाड़ियाँ ३ वर्ष पुरानी हो जाती हैं, तो इनसे पत्तियाँ चुनी जा सकती है। नियमित अवधि पर इनसे पत्तियाँ तोड़ ली जाती हैं, और नई शाखाओं को निकलने का मौका दिया जाता है। चीन और जापान के पिछड़े हुए भागों में चाय के बगीचे ३–४ एकड़ तक के होते है। वहाँ चाय को हाथ मे पुराने तरीके द्वारा तैयार की जाती है। भारत, लंका, इन्डोनेशिया और जापान के अन्य भागों में चाय के बगीचे और भी बड़े होते है। इनका विस्तार ३०० से १००० एकड़ तक होता है। इन पर नवीनतम मशीनें प्रयोग की जाती है। पत्तियों को चुनने के बाद सुखाया जाता है। सुखाने का काम कभी तो खुली हवा मे किया जाता है, और कभी कृत्रिम गर्मी द्वारा। सुखाने के बाद इन्हें कुचल और लपेट कर फिर सुखाया जाता है। इस स्थिति में चाय का रंग फीका हरा होता है। काली चाय तैयार करने के लिए पत्तियों को सड़ाया जाता है। बाद में चाय को वर्गों में बाँट दिया जाता है, और निर्यात के वास्ते टीन के बक्सों में बन्द कर दिया जाता है।

वितरण—(१) चावल की तरह, चाय प्रधानतः दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों की उपज है। निम्नलिखित ५ क्षेत्र विशेष रूप से प्रधान है—(क) दक्षिणी जापान, (ख) चीन में शंघाई और हांगकांग के बीच का दक्षिणी-पूर्वी पहाड़ी भाग, (ग) भारत और पाकिस्तान में, विशेष कर उत्तर-पूर्व में आसाम में और दक्षिणी-पश्चिमी भाग में नीलगिरी की पहाड़ियों पर (घ) लंका, (ङ) जावा।

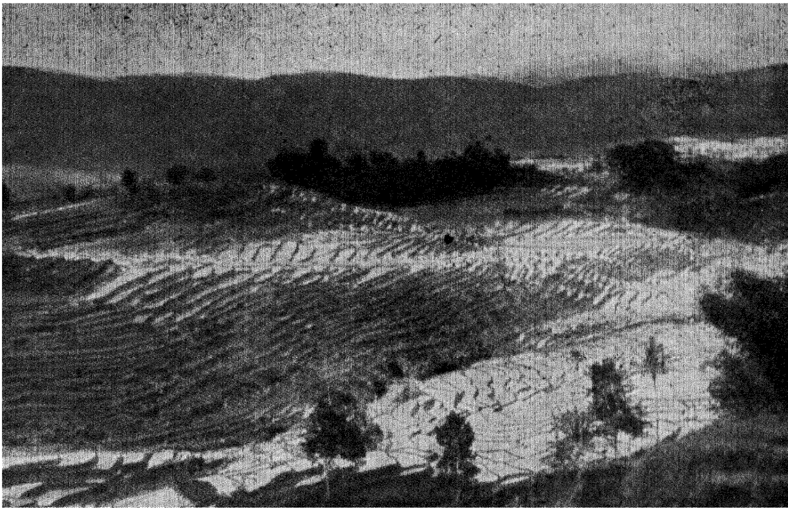

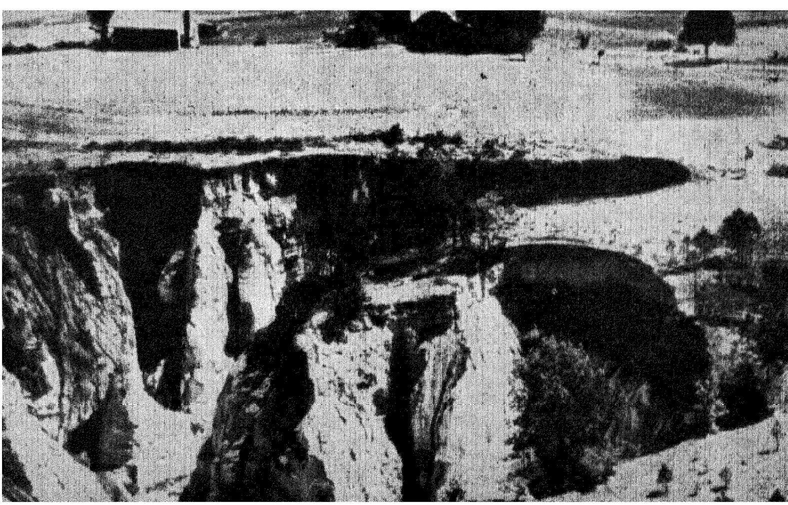

ऊपर : इन्डोनीशिया में चावल की खेती। सस्ती मानवी शक्ति के उपलब्ध होने से गहरी खेती की जाती है। सीढ़ीदार खेतों में उत्पत्ति काल के प्रारम्भ में पानी भरा रक्खा जाता है। इसके सहारे पर्वतीय ढालों पर भी खेती हो सकी है।

नीचे : जल द्वारा आवरणक्षय से बड़ी गहरी नालियाँ बन जाती हैं और खेतिहर भूमि नष्ट हो जाती है।

ऊपर : ब्रिटिश पश्चिमी द्वीपसमूह। गन्ने को काट कर गिराया जा रहा है। कुली इसे गट्ठरों में बांधेंगे।

नीचे : संयुक्तराष्ट्र में मक्के की कटाई।

(२) यद्यपि दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों के समान जलवायु वाले अन्य प्रदेश और भी हैं, परन्तु वहाँ पर चाय की खेती की कोई अधिक प्रगति नहीं है। चाय की

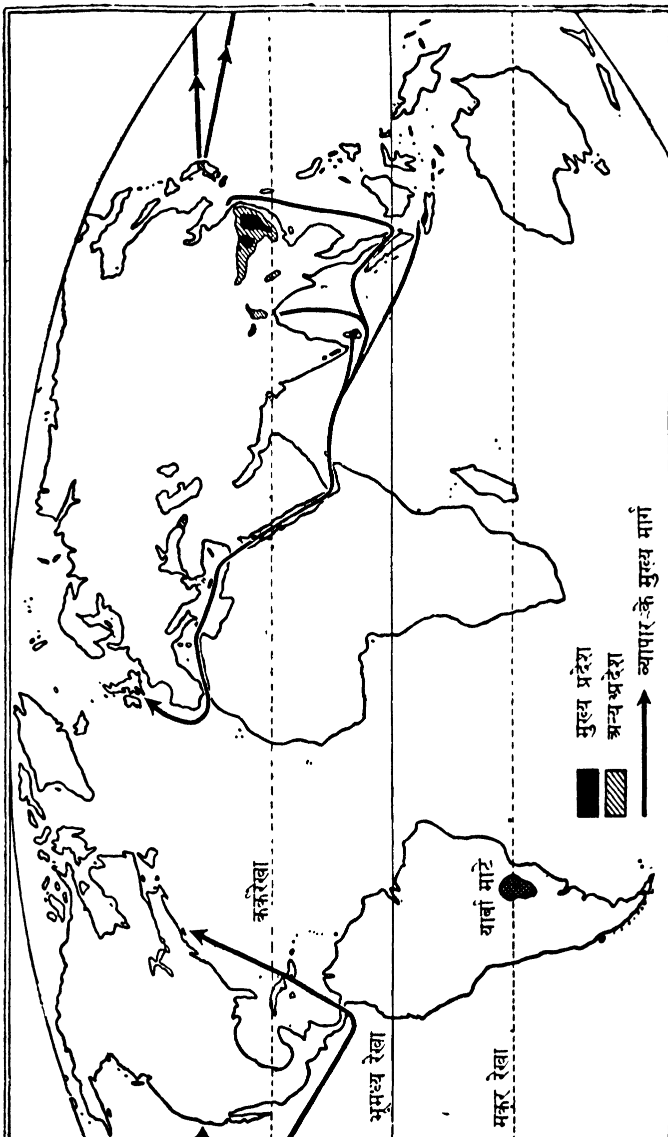

चित्र १४३—चाय के उत्पादन का वितरण

थोड़ी मात्रा पूर्वी अफ्रीका के कीनिया, न्यासालैण्ड और नेटाल राज्यों में, फिजी द्वीप में, जमाइका में और ट्रान्सकाकेशिया में भी उगाई जाती है।

(३) दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील, कैलीफोर्निया, जमाइका और दक्षिणी कैरोलीना में चाय उगाने का सफल प्रयत्न हुआ है। परन्तु सस्ते मजदूरों के अभाव में अधिक उन्नति नहीं हो पाई है।

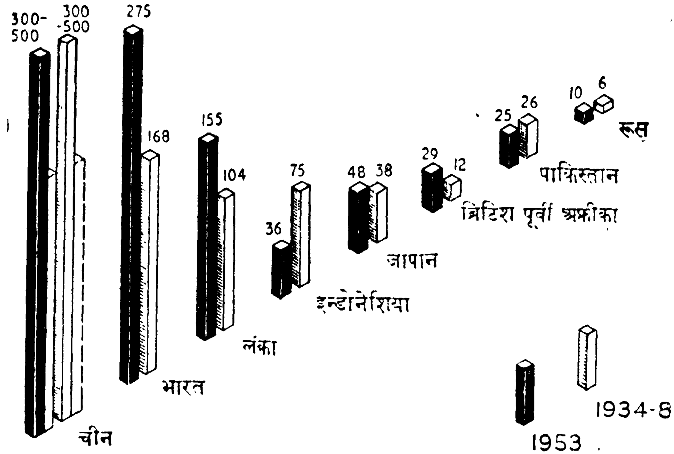

चित्र १४४—चाय का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

व्यापार और उपभोग—१८४० तक केवल चीन में ही चाय का निर्यात व्यापार होता था। ब्रिटिश सरकार ने भारत में चाय की खेती शुरू की और भारत में चाय ने इतनी तरक्की की कि अब भारत प्रमुख निर्यातिक देश है, और १८८० से चीन से चाय का निर्यात ७५ प्र० श० कम हो गया है। भारत के बाद लंका में चाय की खेती शुरू की गई, और पिछली शताब्दी के अन्त में कहवा के खेतों के बरबाद हो जाने से चाय को विशेष प्रगति मिली। चाय निर्यात में लंका का दूसरा स्थान है। इन्डोनेशिया में संसार की एक पंचमांश चाय उत्पन्न होती थी, परन्तु जापानी आधिपत्य के काल में इसका विश्वव्यापी व्यापार से सम्बन्ध टूट गया, और १९४३–४५ में कुछ भी निर्यात नहीं हो पाया। इन्ही वर्षों में चीन से भी निर्यात न हो सका, परन्तु अब चीन की उपज का थोड़ा-सा ही भाग विश्वव्यापी व्यापार में आ पाता है। युद्धपूर्व की अपेक्षा विश्वव्यापी उत्पादन अब २० प्रतिशत अधिक है।

चाय का निर्यात

(हजार टन में)

		१९३८	१९४६	१९४७–९	१९५०-२	१९५३
भारत और पाकिस्तान	...	१७५	१५८	२०२	२०५	२३५
लंका	...	१०७	१४६	१४७	१४०	१५२
इन्डोनेशिया	...	८०	२	१२	३३	३२
चीन	...	४६	७	८	२०	(२०)
ब्रिटिश पूर्वी अफ्रीका	...	१०	१२	१२	१२	१२

चाय का उपभोग पूर्व के लोग और अंग्रेजी भाषाभाषी लोग करते हैं। सन् १९५२ में औसत प्रति व्यक्ति उपभोग इस प्रकार था :—

संयुक्त राज्य ८.३ पौंड; न्यूजीलैण्ड ७.५ पौंड; आस्ट्रेलिया ६.५ पौंड; कनाडा ३.२ पौंड; मिश्र १.७ पौंड; नेदरलैण्ड १.५ पौंड; संयुक्त राष्ट्र अमरीका ०.६ पौंड।

कहवा

पेय पदार्थों में चाय के बाद कहवा का दूसरा स्थान है। यह एबीसीनिया के काफा प्रान्त का पौधा है जो अरब में बोया गया और लगभग २०० साल से कहवा का मुख्य स्रोत अरब ही रहा, परन्तु माँग बहुत कम है। कहवा की झाड़ी में चेरी की तरह के फल होते हैं और प्रत्येक फल में बेर की तरह के दो कहवा होते हैं। इसका रंग भरा-हरा होता है और जब तक यह पूरी तरह भूने नहीं जाते, इनका रंग भूरा नहीं होता है।

उपज की दशायें—(१) उष्ण प्रदेशों का उच्च तापक्रम।

(२) पाले का अभाव जो कि पौधे के लिए हानिकर होता है।

(३) भारी वर्षा, ७५ से १२० इंच तक।

(४) काफी जलप्रवाहमय भूमि।

(५) यद्यपि कहवा के लिए गर्म दशायें चाहिये, परन्तु इस पर सूर्य की सीधी किरणें कदापि नहीं पड़नी चाहिए। कहवा के पौधे के बीच-बीच में मक्का या केले के वृक्षों को लगाकर छाया प्रदान की जाती है। अरब के मोका प्रान्त में धुन्ध के कारण गर्मी कम हो जाती है। स्पष्ट है कि उष्ण कटिबंध में महाद्वीपों के पूर्वी किनारों पर वर्षामय पहाड़ी या पर्वती ढालों पर कहवा की खेती खूब अच्छी तरह हो सकती है।

पिछले पचास वर्षों में कहवा के उपभोग में विशेष वृद्धि हुई है। इस बीच में प्राप्ति के केन्द्र अदल-बदल गये हैं। पहिले अरब प्रमुख उत्पादन देश था। उसके बाद पश्चिमी द्वीप समूह ने प्रथम स्थान ग्रहण किया और तत्पश्चात् जावा सर्वप्रथम हो गया। आजकल सभी से बढ़कर ब्राजील है।

प्रमुख उत्पादक प्रदेश—(१) ब्राजील में रियोडिजिनैरो के समीप साओ पालो राज्य में पठारी ढालों पर कहवा खूब होता है। २० वर्ष पहिले इस छोटे से प्रदेश से ७० प्रतिशत कहवा प्राप्त होता था। आज भी विश्वव्यापी माँग पूर्ति का आधा भाग यहीं से प्राप्त होता है।

(२) बाकी कहवा छोटे-छोटे छितरे-बितरे प्रदेशों से प्राप्त होता है। इन प्रदेशों का कहवा ब्राजील की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी का होता है। ब्राजील में कहवा को बाजार के लिए अच्छी तरह नहीं तैयार किया जाता है :—

(अ) मध्य अमरीकी राज्य और द्वीप जैसे कोलम्बिया, गेटेमाला, सैन सैलवेडर जमाइका, मेक्सिको, हेबी और वेनेजुला।

(ब) पूर्वी द्वीप समूह—जावा। इसका उत्पादन युद्ध के कारण बहुत कम हो गया है।

(स) अफ्रीका—इथोपिया, बेल्जियम कान्गो, फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, मेडागास्कर, युगान्डा और अन्गोला।

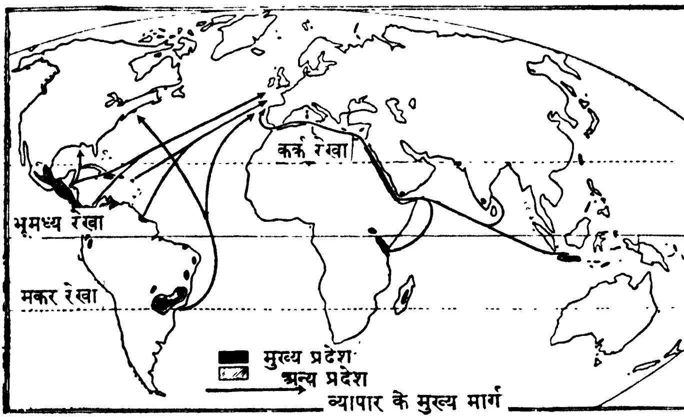

चित्र १४५—कहवा उत्पादन का वितरण

अधिक उत्पादन का प्रश्न—ब्राजील में कहवा के लिए उपयुक्त दशाओं के होने की वजह से और अन्य स्पर्धाजनक फसलों के अभाव में कहवा का उत्पादन इतनी तेजी से बढ़ा है कि यूरोप और अमरीका के उपभोग से कही अधिक हो गया है। चूंकि ब्राजील की फसल उच्चतम श्रेणी की नहीं होती, इसलिए अन्य प्रदेशों की उत्तम कहवा विश्व बाजार में पहिले बिक जाती है और तब ब्राजील के कहवा का नम्बर आता है। इसलिए ब्राजील की फसल इकट्ठा हो जाती है।

ब्राजील में फसल की मात्रा वर्ष-प्रति-वर्ष बदलती रहती है। जब मौसम अच्छा रहता है तो फसल बहुत अच्छी होती है। साधारणतया अच्छी फसल के एक वर्ष के बाद दो-तीन वर्ष तक फसल मामूली होती है। इस बीच में किसान अत्यधिक (Bumper Crops) फसल का बचा हुआ अंश ऊँचे दाम पर बेच लेते हैं। ऊँचे दामों के कारण कहवा की खेती को विशेष प्रोत्साहन मिला और लोगों ने पूंजी लगाने का अच्छा जरिया मान लिया।

अभाग्यवश, सन् १९२३ के बाद से हर साल अत्यधिक उत्पादन होता रहा, और १९३० में कहवा की बहुत विशाल राशि बिके बिना बच रही। सरकारी हुकुम के अनुसार इसका अधिकांश भाग नष्ट कर दिया गया और कहवा की खेती की भूमि पर नियन्त्रण द्वारा सीमा लगा दी गई। परन्तु फिर भी कठिनाइयों का अन्त नहीं हुआ क्योंकि कहवा के वृक्ष में पाँच वर्ष के पहिले फल नहीं लगते। किसानों को केवल इतनी आज्ञा मिली कि वे अपनी फसल का ४० प्रतिशत ही बेच सकते थे। यह इसलिए किया गया कि दाम उचित स्तर पर बने रहे। कहवा के करीब ४०,०००,००० बोरे नष्ट कर दिए

गये। यह दो वर्ष की उपज थी। बहुत से कहवा उगाने वाले कपास, फल और सन्तरे उगाने लगे।

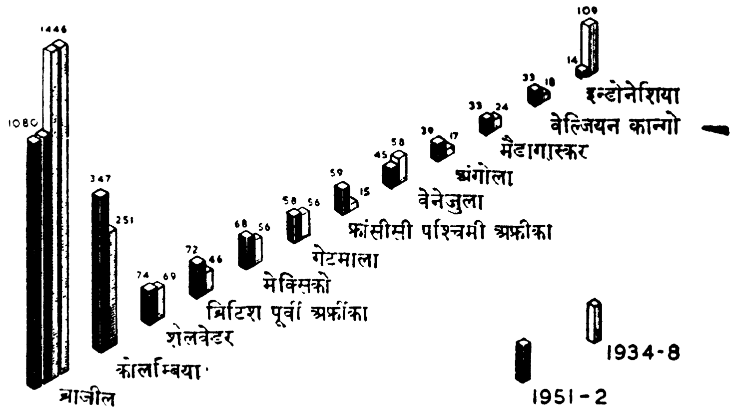

चित्र १४६—कहवा का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

सन् १९३९-४५ के युद्धकाल में कहवा का उत्पादन २० प्रतिशत कम हो गया। इन्डोनेशिया और ब्राजील मे उत्पादन की विशेष कमी हुई। केवल फ्रांसीसी पश्चिमी अफ्रीका, युगान्डा, टैन्गानाइका और कीनिया में कहवा का उत्पादन विशेष रूप मे बढ़ गया। माँग से पूर्ति अब बहुत कम है, और यह दशा कई वर्षों तक बनी रहेगी जब तक कि नये लगाये गए वृक्षों से फल नहीं प्राप्त होते।

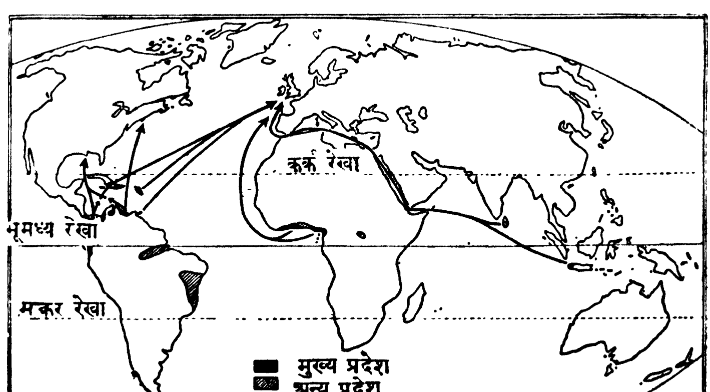

चित्र १४७—कोको उत्पादन का वितरण

दक्षिणी अमरीका के देशों से संसार के कुल कहवा उत्पादन का ८० प्रतिशत अंश प्राप्त होता है। इसका केवल चतुर्थांश ही यूरोप को आता है। कहवा का सबसे

अधिक उपभोग संयुक्त राष्ट्र अमरीका में है, जहाँ विश्वव्यापी फसल का $\frac{2}{3}$ भाग खप जाता है। सन् १९५१–५२ में प्रमुख निर्यातक देश इस प्रकार थे—

ब्राजील, ९६०,००० टन; कोलम्बिया २८०,००० टन; युगैण्डा, टैन्गानाइका और कीनिया ७०,००० टन।

कोको

कोको इसी नाम के वृक्ष का एक फल है। इस वृक्ष के फल और फूल तने और मुख्य शाखाओं से उगते हैं। कोको की फली १० इंच लम्बी होती है। कोको की फली का ५० प्रतिशत चर्बी होता है, जिसे कोको का मक्खन कहते हैं, और मिठाई बनाने में प्रयोग किया जाता है।

उपज की दशाएं—(१) बहुत गर्मी—औसत तापक्रम ८०° फा० तक होना चाहिए।

(२) भारी वर्षा—८० इंच तक।

(३) नदी द्वारा लाई हुई गहरी उपजाऊ या ज्वालामुखी मिट्टी।

(४) तेज हवाओं और सूर्य की सीधी किरणों से रक्षा।

चूंकि कोको के पेड़ को हवा से छाया की आवश्यकता होती है यह भूमध्यरेखीय प्रदेशों के शान्तमण्डल में सबसे अच्छा होता है। पर्वतों की वायु अभिमुख दिशा में भी कोको का पेड़ खूब उगता है। केले के वृक्षों को लगाकर सूर्य की किरणों से छाया प्रदान की जाती है।

वितरण—(१) **पश्चिमी अफ्रीका**—गोल्ड कोस्ट, नाइजीरिया, कैमीरून, फरनानडो पो, प्रिन्सपी और सेंट थोम के प्रदेश।

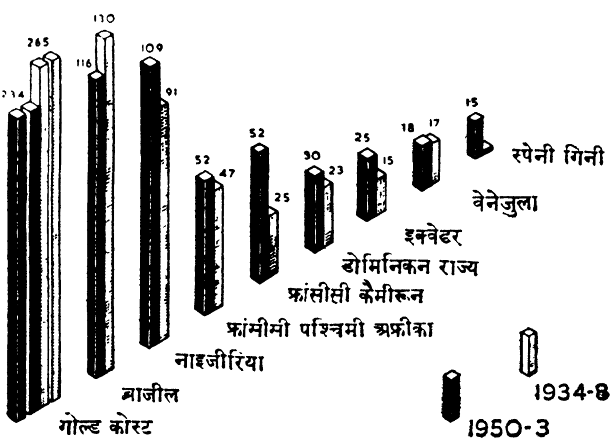

चित्र १४८—कोको का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

(२) **अमरीका**—ब्राजील, इक्वेडर, वेनेजुला, कोलम्बिया और बहुत से पश्चिमी द्वीपसमूह के द्वीपों में जैसे ट्रिनीडाड, सान डोमिनगो और जमाइका।

(३) **एशिया** के गर्म व तर प्रदेशों में कोको की खेती बहुत अधिक तरक्की नहीं कर पाई है, परन्तु लंका व जावा में बहुत से उद्यान बन गये हैं।

उत्पादन केन्द्रों में परिवर्त्तन—इस शताब्दी के शुरू में इक्वेडर के तर पश्चिमी निम्नप्रदेश कोको का प्रमुख उत्पादक देश था, परन्तु कुल उत्पादन विश्वव्यापी उत्पादन का १० प्र० श० मात्र है। आजकल गोल्ड कोस्ट सबसे प्रमुख उत्पादक देश है। पश्चिमी अफ्रीका के प्रदेशों में संसार की ५० प्र० श० कोको उत्पन्न होती है। ग्रेट ब्रिटेन में उपभुक्त कोको का अधिकांश भाग पश्चिमी अफ्रीका के किसान ही उगाते हैं। कोको उत्पादन के क्षेत्र में पश्चिमी अफ्रीका की उन्नति निम्नलिखित कारणों से हुई है :—

(क) दक्षिणी अमरीकी राज्यों की अपेक्षा ब्रिटिश राज्यों का राजनीतिक स्थायित्व।

(ख) उपयुक्त मजदूरों की पर्याप्त संख्या में उपलब्धता।

(ग) पनामा नहर के खुलने से पहिले प्रदेश तक पहुँचने की सुविधा।

(घ) ब्रिटिश कोको और चाकलेट बनाने वालों से दिया गया प्रोत्साहन।

पिछले वर्षों में पश्चिमी अफ्रीका की कोको का दाम बहुत बढ़ गया है। पौधों के रोग के कारण फसल को हानि से उम्मीद है कि अन्य क्षेत्रों में कोको का उत्पादन बहुत बढ़ जावेगा।

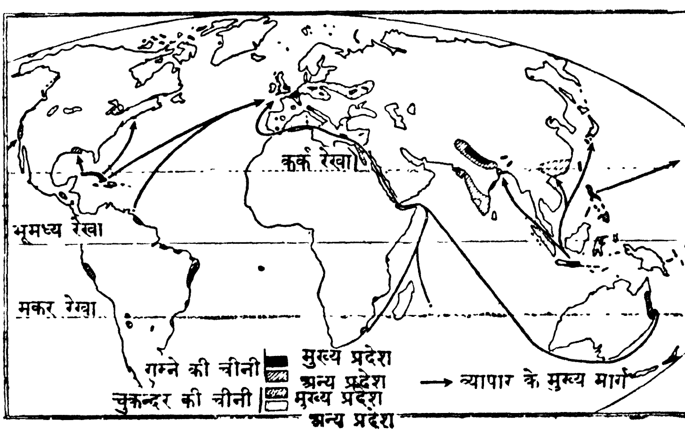

चित्र १४९—चीनी उत्पादन का वितरण

गन्ना

चीनी बहुत से पौधों और फलों में पाई जाती है। मैपल, अंगूर, खजूर और मक्का आदि में चीनी का अंश मौजूद रहता है। परन्तु संसार की अधिकतर चीनी गन्ना और चुकन्दर से प्राप्त होती है। गन्ना उष्णकटिबंध का पौधा है और चुकन्दर शीत शीतोष्ण कटिबंध में होता है। विभिन्न प्रदेशों के बीच स्पर्धा का नमूना चीनी से ही प्राप्त होता है।

गन्ने की चीनी को निर्यात के लिए तैयार किया जाता है। परन्तु चुकन्दर की चीनी को घरेलू उपभोग के लिए तैयार करते हैं। चुकन्दर अन्य फसलों के साथ हेर-फेर से उगायी जाती है। शीतोष्ण कटिबंध की फैक्टरियों में ही गन्ने की चीनी को साफ किया जाता है।

उपज की दशाएं—गन्ने का पौधा निम्नलिखित दशाओं मे पनपता है :—

(क) अत्यधिक गर्मी—तापक्रम का औसत ८०° फा० तक होना चाहिएं।

(ख) खूब वर्षा।

(ग) गहरी उपजाऊ मिट्टी। मिट्टी को उपजाऊ बनाये रखने के लिए खाद देने की जरूरत पड़ती है।

(घ) निम्नभूमि।

ये दशायें चावल उत्पादन की दशाओं से बहुत मिलती-जुलती है। अक्सर गन्ना उत्पादक प्रदेश चावल उत्पादक भी होते है।

गन्ने को चुकन्दर की तरह सावधानी से देख-भाल की जरूरत नही पड़ती। परन्तु गन्ने के भारीपन के कारण उसे इधर-उधर लाने ले जाने में दिक्कत होती है। जहाँ यह उगता है, वहाँ की भूमि दलदली व नम होने के कारण यातायात की और भी समस्या खड़ी करती है। गन्ने को कई हजार एकड़ के खेतों में उगाया जाता है। इन खेतों पर अपना रेलमार्ग और साफ करने के कारखाने होते हैं। बहुधा ये स्थान समुद्र से अधिक दूर पर स्थित नहीं होते।

वितरण—चूँकि गन्ना उष्णकटिबंधीय निम्नभूमि पर उगता है, इसलिए केवल भारत और चीन को छोड़कर, अधिकतर उत्पादन द्वीपों और तटीय मैदानों में होता है। गन्ना उत्पादक प्रधान द्वीप क्यूबा, जावा, हवाई, पूर्टोरिको, फिलीपाइन, मारीशस और जमाइका है। भारत और चीन में तर निम्नभूमियों पर गन्ना उगाया जाता है। ब्राजील में पूर्वी तटीय मैदान के गर्म व तर भाग में गन्ना उगाया जाता है। यह सम्पूर्ण प्रदेश परनामबुको और बाहिया का पृष्ठ प्रदेश। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में मिसीसीपी के डेल्टा प्रदेश में, नेटाल के तटीय मैदान में और क्वीसलैण्ड के गर्म व तर पूर्वी तटीय मैदानों में भी गन्ना उगाया जाता है। पिछले कुछ वर्षो से क्वीसलैण्ड मे गन्ने की चीनी का उत्पादन बराबर बढ़ रहा है। इसका प्रधान कारण यह है कि सरकारी नीति द्वारा यहाँ अंग्रेजी साम्राज्य की चीनी कम कर पर मँगाई जाती है। आस्ट्रेलिया में चीनी की खेती श्वेत जाति के लोग करते है। यद्यपि गर्मी काफी पड़ती है और जलवायु भी नम है, परन्तु फिर भी अंग्रेज लोग सफलतापूर्वक खेती करते है।

गन्ने की चीनी का व्यापार—(१) क्यूबा गन्ने की चीनी का सबसे प्रधान उत्पादक राष्ट्र है, और यहाँ से सबसे अधिक निर्यात होता है। द्वीप विशेष के कुल निर्यात का ४/५ भाग गन्ने की चीनी है। क्यूबा, फिलीपाइन, हवाई की चीनी प्रधानतः संयुक्त राष्ट्र को जाती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका इन द्वीपों की चीनी को अधिक पसन्द करता है।

(२) आस्ट्रेलिया, मारीशस, नेटाल और ब्रिटिश पश्चिमी द्वीपसमूह की चीनी प्रधानतः संयुक्त राज्य को भेजी जाती है।

(३) फारमोसा की चीनी जापान को जाती है। भारत में इतना अधिक उत्पादन होते हुए भी निर्यात बहुत कम है।

(४) सबसे अधिक आयात करने वाले देश संयुक्त राष्ट्र अमरीका और संयुक्त राज्य है। इनके बाद जापान, जर्मनी, हालैण्ड और फ्रांस का स्थान आता है।

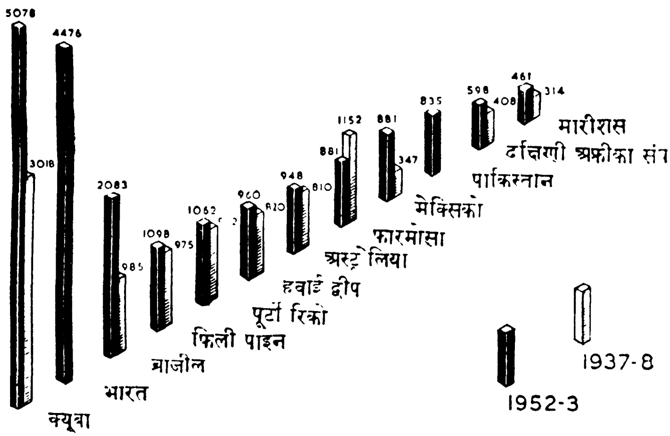

चित्र १५०—गन्ने की चीनी का विश्वव्यापी उत्पादन (हजारों टनों में)—सन् १९३७-८ में भारत और पाकिस्तान में २९६६००० टन चीनी उत्पन्न हुई

चुकन्दर

नैपोलियन की लड़ाईयों के समय फ्रास को अपने आधीन राज्यों से चीनी नहीं मिल सकी थी। इसलिए उस समय सबसे पहिले चुकन्दर से चीनी प्राप्त की गई। उस समय से अब तक कई प्रकार के चुकन्दर जिनमें चीनी का अंश अधिक होता है, प्राप्त कर लिये गए हैं। गन्ने के विपरीत चुकन्दर शीत शीतोष्ण कटिबंध का पौधा है, जो कि अन्य फसलों के हेर-फेर से चार साल में उगाया जाता है।

इसके लिए (क) अच्छी गहरी पत्थरों रहित मिट्टी, (ख) जून से अगस्त तक की वर्षा, (ग) पतझड़ में शुष्क मौसम जबकि जड़ों को निकाला जाता है, और (घ) सावधानीपूर्ण खेती की आवश्यकता होती है। इसके उपजकाल में जंगली घास-फूस को बहुत निराना होता है। इसलिए काफी सस्ते मजदूरों की जरूरत होती है। चुकन्दर से चीनी निकालने का काम मौसमी है, और अक्टूबर से जनवरी तक कारखानों में खूब काम रहता है। वर्ष के शेष दिनों में केवल कुछ ही मनुष्यों से काम लिया जाता है। ये लोग मशीनों को ठीक-ठाक करके आगामी मौसम के लिए तैयार करते हैं।

वितरण—(१) चुकन्दर के उत्पादन का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रदेश यूरोप का मध्यवर्ती मैदान है जो कि आयरलैण्ड से लेकर इस्ट्रेलिया, उत्तरी फ्रांस, हालैण्ड, बेल्जि-

यम, जर्मनी, जेकोस्लोवाकिया और पोलैण्ड से होते हुए मध्य रूस तक फैला है। इसमें चार प्रदेश विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है--(अ) उत्तरी फ्रांस और बेल्जियम (ब) जर्मनी, मेगडेबर्ग के पास का प्रदेश, (स) चेकोस्लोवाकिया, (द) रूस, सीवा और कुर्स्क के पास का भाग।

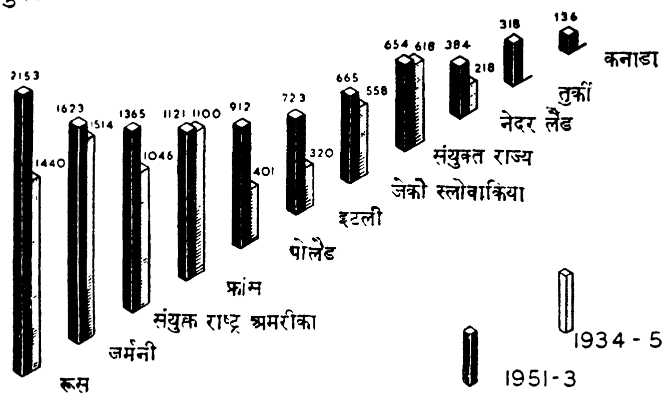

चित्र १५१--चुकन्दर की चीनी का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

(२) उत्तरी-मध्य संयुक्त राष्ट्र अमरीका और दक्षिणी-मध्य कनाडा में भी चुकन्दर की थोड़ी बहुत खेती की जाती है।

ग्रेट ब्रिटेन को छोड़कर अन्य चुकन्दर उत्पादक देश माँग पूर्त्ति में भरे-पूरे हैं और कुछ देशों में निर्यात के लिए उपज बच भी रहती है। इस प्रकार विश्व की मंड़ियों में गन्ने और चुकन्दर की चीनी में बड़ी स्पर्धा रहती है। संसार की कुल चीनी का $\frac{१}{३}$ भाग चुकन्दर से प्राप्त होता है परन्तु आजकल चुकन्दर की चीनी का अनुपात बराबर घटता जा रहा है।

गन्ने और चुकन्दर की चीनी का प्रश्न--गन्ना और चुकन्दर उगाने वालों के बीच स्पर्धा सबसे पहिले सन् १९०२ में बढ़ी। यूरोप के देश आयात की हुई चीनी से स्वतंत्र होना चाहते थे। इसलिए उन्होंने आर्थिक सहायता तथा कर द्वारा घरेलू उद्योग को प्रोत्साहन दिया। फलतः पश्चिमी द्वीप समूह के उद्योग को भारी धक्का लगा और उत्पादन मूल्य में कमी लाने के लिए गन्ने से चीनी निकालने की नई विधि निकाली गई। सन् १९१४–१८ के युद्ध में यूरोपीय चीनी का अभाव हो गया और चीनी की विश्वभर में कमी हो गई। इस प्रोत्साहन से गन्ने की खेती को विशेष बढ़ावा मिला, विशेष कर क्यूबा में, और दाम भी बहुत बढ़ गए।

युद्ध के बाद, यूरोप में चुकन्दर का उद्योग फिर बढ़ा और इसे आयात की गई चीनी व कर मुक्ति से विशेष सहायता मिली। इससे दुनिया में चीनी का अत्यधिक उत्पादन हुआ, दामों में कमी हो गई और सन् १९३१ में चैडवर्न (Chadvourn) स्कीम बनायी गई। इसके अन्तर्गत किसानों ने उत्पादन पर नियन्त्रण कर दिया।

क्यूबा को विशेष हानि पहुँची। वहाँ पर मजदूरी कम हो गई और रहने का स्तर गिर गया। फलतः भीषण गड़बड़ी हुई और राजनीतिक कठिनाइयाँ उठ खड़ी हुई।

सन् १९३९–४५ के दूसरे विश्व युद्ध में चीनी की फिर कमी हुई। यूरोप में चीनी का उत्पादन आधा रह गया और फिलीपाइन, जावा तथा फारमोसा की चीनी संसार की मंडियों में बहुत कम आई, क्योंकि जापान का आधिपत्य था। बहुत दिनों तक उत्पादन युद्धपूर्व से २० प्रतिशत कम था और इसी बीच में संसार की जनसंख्या बराबर बढ़ती गई, केवल मध्य और पश्चिमी यूरोप में १२,०००,००० से अधिक व्यक्ति बढ़ गये। सन् १९५१ तक उत्पादन युद्धपूर्व से कहीं ज्यादा हो गया और माँग पूर्ति में सामंजस्य स्थापित हो गया।

भेड़ का मांस

मांस के लिए पाली गई भेड़ें हरे-भरे घास के मैदानों में खूब पनपती हैं। परन्तु घास उतनी घनी नही होनी चाहिए जितनी कि गाय-बैल के लिए। प्रमुख ऊन उत्पादक देश ही भेड़ का मांस उत्पन्न करते हैं, परन्तु यदि आस्ट्रेलिया से ऊन का निर्यात अधिक है तो न्यूजीलैण्ड से भेड़ का मांस अधिक निर्यात किया जाता है। न्यूजीलैण्ड में भेड़ चराने के क्षेत्र कैण्टरबरी मैदान हैं जो कि दक्षिणी द्वीप के पूर्वी भाग में स्थित हैं। आस्ट्रेलिया में मरे डार्लिंग का मैदान भेड़ चराने वाला प्रमुख क्षेत्र है। परन्तु न्यूजीलैण्ड के मैदान की अपेक्षा यह अधिक शुष्क है। दक्षिणी अमरीका के प्रमुख केन्द्र प्लेट के मैदान और युरुगवे हैं। इस के अलावा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रदेश अर्जेन्टाइना और चिली के दक्षिणी भाग में टेरा डल फ्यूगो तक फैला हुआ है। ब्रिटेन में भी काफी भेड़ का मांस उत्पन्न किया जाता है परन्तु फिर भी केवल वही सबसे अधिक आयात करता है। संसार के कुल निर्यात का ९५ प्र० श० भाग केवल ग्रेट ब्रिटेन को ही आता है। उत्तरी अमरीका में भेड़ चराने का काम ओहिओ राज्य में होता है और पश्चिमी पठार पर

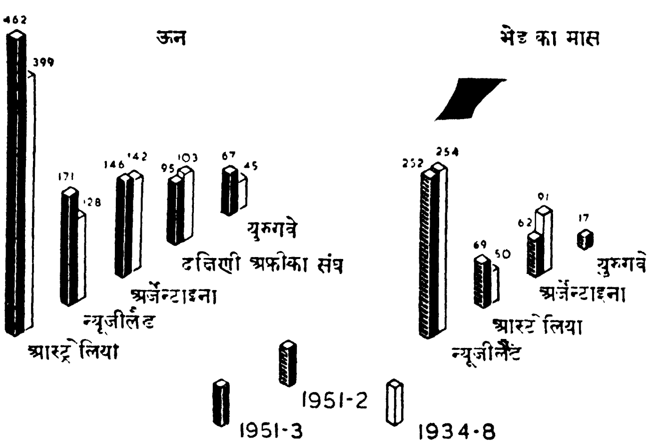

चित्र १५२—ऊन और भेड़ का मांस निर्यात करने वाले प्रमुख देश (हजार टन में)

इसका काफी महत्त्व है। परन्तु अधिकतर मांस और ऊन घरेलू उपभोग में ही आ जाता है। दक्षिणी अफ्रीका में भेड़ चराने का धंधा केप प्रान्त के पूर्व के पठार पर केन्द्रित है, और कुछ ऊन बाहर भेजा जाता है।

गाय का मांस और दूध का उत्पादन

गाय-बैल को मांस, दूध, चमड़े और बोझा ढोने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। पशुओं को भेड़ की अपेक्षा अधिक घनी घास चाहिये और जहाँ पशुओं को दूध के लिए पाला जाता है, वहाँ की आदर्श जलवायु शीतल तथा तर गर्मी और गर्म तथा तर जाड़े की ऋतु चाहिए जैसा कि आयरलैंड और कार्नवाल में है। इन दशाओं में घास साल भर उगती है और जानवरों को घर में रख कर खिलाना नही पड़ता जैसा कि जर्मनी, पोलैण्ड आदि विषम जलवायु के प्रदेशों में होता है।

शीतोष्ण और उष्ण कटिबंध मे पशु खूब पनपते हैं। भारत में बहुत अधिक पशु पाये जाते हैं परन्तु वहाँ पर उनसे बोझा ढोने का काम लिया जाता है। हिन्दू लोग गौ का मांम नही खाते और मुसलमान बहुत कम गोमांस खाते हैं। भारतीय पशु से बहुत कम दूध प्राप्त होता है। इसलिए भारत न तो मास के लिए और न दूध की वस्तुओं के लिए ही प्रसिद्ध है। भारत के अलावा निम्नलिखित तीन प्रदेश पशु-उत्पादन के लिए बहुत प्रसिद्ध हैं:—

(१) पश्चिमी यूरोप के मैदान जिसके अन्तर्गत आयरलैण्ड, इंगलैण्ड, उत्तरी फ्रांस, बेल्जियम, हालैण्ड, डेनमार्क, जर्मनी, स्विट्‌जरलैण्ड और उत्तरी इटली शामिल है। युद्ध के दिनों में भोज्य पदार्थों की कमी के कारण यूरोप में पशुओं की संख्या बहुत कम हो गई। अब यह कमी पूरी हो गई है, और यूरोप में पशुओं के गिरोह सन् १९३९ की अपेक्षा बहुत बढ़ गये है।

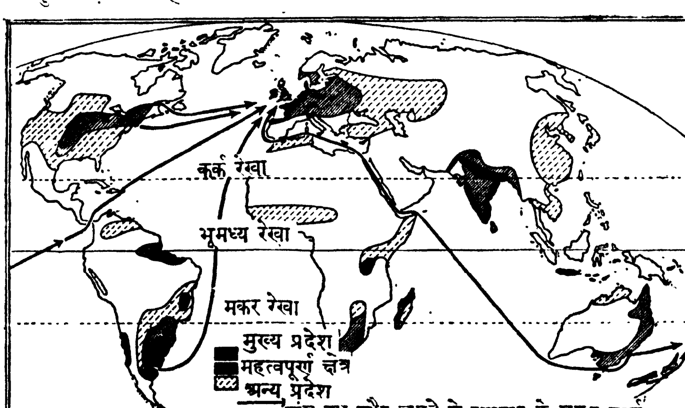

चित्र १५३—पशुओं का वितरण

(२) संयुक्त राष्ट्र अमरीका के उत्तरी मध्य मैदान जहाँ मक्का उत्पन्न होता है। उच्च पश्चिमी मैदान में बहुत से पशु चराये जाते हैं।

(३) दक्षिणी अमरीका के शीतोष्ण मैदान पैम्पास, पराना, युरुगवे, और दक्षिणी ब्राजील में पशु खूब पाले जाते हैं।

पशुचारण उद्योग के आदिकाल में मांस टिक नहीं पाता था इसलिए इसका निर्यात नहीं किया जाता था। उस समय प्रमुख निर्यात की वस्तुएँ, चमड़े, चर्बी और हड्डी थी। चमड़ा और हड्डी तो अभी भी बाहर भेजा जाता है। हड्डियों से "Bone China" का निर्माण होता है। कुछ बाद में मांस से बनी वस्तुओं का निर्यात किया जाने लगा। सन् १८७० के समीप मांस को डिब्बो में भरने तथा शीत भण्डार रीति (Refrigeration) का प्रादुर्भाव हुआ। यातायात साधनों में भी तरक्की हुई और लाने ले जाने का खर्च कम हो गया। फलतः मांस को अधिक मात्रा में यूरोप के देशों को भेजा जाने लगा। शुरू-शुरू में मांस को जमा दिया जाता था परन्तु बाद में इसे ठंडा करके भेजा जाने लगा, क्योंकि खोज द्वारा पता चला कि हिमांक से कुछ ऊपर तापक्रम पर भी माम ठीक बना रह सकता है। फलतः १८७० के बाद से मांस का निर्यात तेजी से बढ़ गया।

संसार में गो-मांस का उत्पादन युद्धपूर्व की अपेक्षा २५ प्रतिशत अधिक है, परन्तु निर्यात में पहिले से २० प्रतिशत की कमी आ गई है। इसका प्रधान कारण यह है कि उत्पादक देशों में उपभोग बढ़ गया है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड मे तथा अर्जेन्टाइना मे गो-मांस का प्रति व्यक्ति उपभोग क्रमशः दुगना, चौगुना और ६ गुना है।

अर्जेन्टाइना से गो-माम का सबसे अधिक निर्यात होता है। इसके बाद क्रमशः न्यूजीलैण्ड, युरुगवे और आस्ट्रेलिया का स्थान है। यूरोपीय देशों में उत्पन्न गो-मांस वहीं खप जाता है। अमरीका में मास का उत्पादन यद्यपि बहुत अधिक है, परन्तु सब का सब वही खत्म हो जाता है और निर्यात के लिए कुछ भी नही बचता। ग्रेट ब्रिटेन मे सबसे अधिक मांस आयात किया जाता है। देश के उपभोग का केवल आधा भाग ही घरेलू उत्पादन से प्राप्त होता है। आयरलैण्ड से बहुत से जिन्दा गाय-बैल निर्यात कर दिये जाते हैं। ये गाय-बैल इंगलैण्ड में आकर काटे जाते हैं।

दुग्धशाला का उत्पादन—अधिक घने बसे केन्द्रों के समीप मे स्थित पशु चारण प्रदेशों में, दुग्धशाला उद्योग काफी तरक्की कर गया और उससे दूध, मक्खन और पनीर प्राप्त होती है।

दुग्धशाला उद्योग के प्रमुख केन्द्र व प्रदेश निम्नलिखित है :—

(१) उत्तरी-पश्चिमी यूरोप के शीतल व तर प्रदेश जैसे डेनमार्क, हालैड, ब्रिटिश द्वीप समूह और उत्तरी पश्चिमी फ्रांस।

(२) स्विट्जरलैण्ड जहाँ पर आल्पस की ऊँचाइयों पर स्थित चरागाहों में पशुचारण होता है।

(३) अमरीका में ग्रेट लेकस के दक्षिण का प्रदेश जो पूर्व में न्यूयार्क तक फैला हुआ है और जिसके अन्तर्गत कनाडा के सेंटलारेन्स की घाटी भी सम्मिलित है।

सन् १९१४–१८ के युद्ध के बाद दक्षिणी गोलार्द्ध के शीतोष्ण प्रदेशों में दुग्ध-शाला उद्योग (Dairying) ने विशेष तरक्की की। यह प्रगति न्यूजीलैण्ड के उत्तरी द्वीप, आस्ट्रेलिया के पूर्वी तटीय मैदान और अर्जेन्टाइना के पूर्वी पैम्पास में विशेष

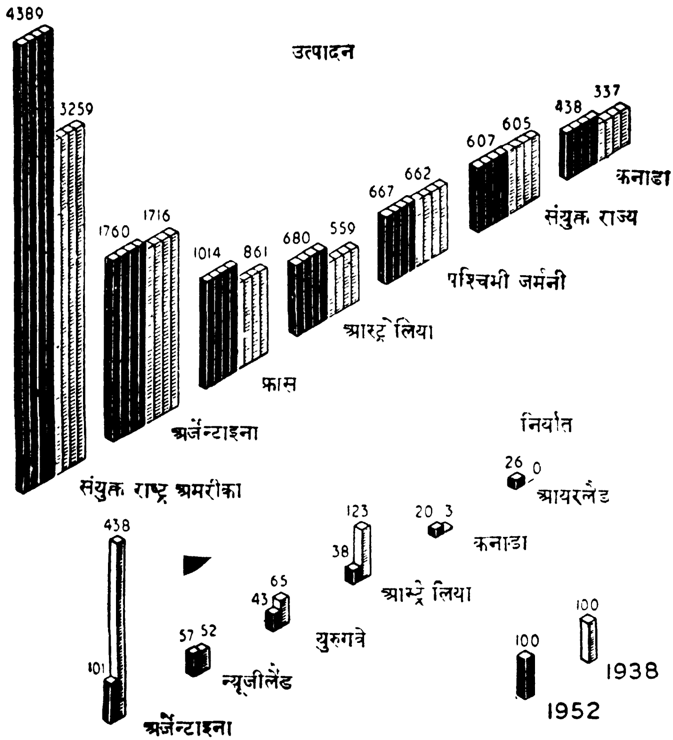

चित्र १५४—विश्व उत्पादन और गो मांस का निर्यात (हजार टनों में)

रही। इन प्रदेशों में तैयार किये गए मक्खन और पनीर की यूरोप के देशों मे विशेष माँग रही। इतने दूर से आने पर भी यूरोपीय मक्खन और पनीर की अपेक्षा यह कम मूल्य पर बिकता था।

सन् १९३९–४५ के महायुद्ध में यूरोपीय उत्पादन कम हो गया यद्यपि जनसंख्या में काफी वृद्धि हो गई थी। इसका प्रधान कारण यह था कि जानवरों को खिलाने के वास्ते अनाज उपलब्ध नहीं था। परन्तु यह कमी अब पूरी हो गई है।

यद्यपि अब युद्धपूर्व से अधिक पनीर तैयार की जाती है, मक्खन का उत्पादन पहिले से पंचमांश कम हो गया है और निर्यात के लिए उपलब्ध मात्रा पहिले से $\frac{2}{3}$ ही रह गई है। निर्यात में यह कमी बाल्टिक और पूर्वी यूरोपीय देशों से निर्यात का अभाव, आस्ट्रेलिया में आयात की कमी और पश्चिमी यूरोप में ताजे दूध की अधिक खपत के कारण उत्पन्न हुई। आयरलैण्ड जो पहिले निर्यातक देश था, अब मक्खन आयात करता है।

अध्याय बीस

प्रमुख कच्चा माल

(MAJOR RAW MATERIALS)

रबड़

बहुत-से उष्णकटिबंधीय पौधों व वृक्षों का जमाया हुआ रस ही रबड़ कहलाता है। इन वृक्षों में प्रधान हेविया (Havea) है जो अमेजन के जंगल में पाया जाता है। इस वृक्ष से प्राप्त उच्च कोटि के रबड़ को पारा रबड़ कहते हैं, क्योंकि यह अमेजन नदी के मुँह पर स्थित पारा बन्दरगाह से बाहर भेजा जाता है। रबड़ का प्रयोग यूरोप में सबसे पहिले अट्ठारहवीं सदी में हुआ और उसके बाद कई सौ वर्षों तक इसको केवल पेन्सिल के निशान मिटाने में ही प्रयोग किया जाता रहा। उन्नीसवीं सदी के शुरू में मेकिनटोश (Mackintosh) ने खोज कर पता लगाया कि रबड़ से जलनिरोधक (Warter-proof) कपड़ा बनाया जा सकता है और सन् १८३९ में गंधक के घोल द्वारा रबड को कड़ा करने की विधि का पता चला। परन्तु रबड़ की माँग में वास्तविक वृद्धि उन्नीसवी सदी के अन्त और बीसवीं सदी के प्रारम्भ में हुई। बाईसिकल, मोटरकार और बिजली के उद्योगों में रबड़ की माँग के कारण इसका उत्पादन खूब बढ़ा। जंगलों में तितर-बितर वृक्षों से बेतरतीब रबड़ प्राप्त करने के स्थान पर व्यवस्थित उद्यानों में रबड़ के वृक्षों का लगाना शुरू हुआ। उद्यानों के रबड़ को निम्नलिखित सुविधायें प्राप्त हैं।

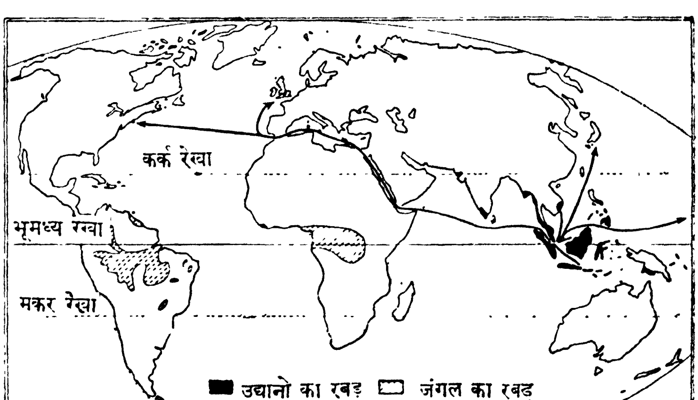

चित्र १५५—रबड़ का वितरण

(१) उत्तम श्रेणी का रबड़ प्राप्त होता है।

(२) प्रत्येक वृक्ष से ज्यादा रबड़ प्राप्त होता है और रबड़ इकट्ठा करने पर नियन्त्रण बना रहता है।

(३) रबड़ को इकट्ठा करना अधिक आसान होता है।

उपज की दशायें—रबड़ के वृक्षों को निम्नलिखित दशाओं की आवश्यकता होती है :—

(अ) अत्यधिक गर्मी, मध्यममान तापक्रम ८०° फा० होना चाहिए और ७०° फा० से कम नहीं होना चाहिए।

(ब) भारी वर्षा, ८० इंच से अधिक होनी चाहिए और शुष्क मौसम नहीं होना चाहिए।

(स) उपजाऊ भूमि और जलप्रवाहपूर्ण मैदान होना चाहिये।

उपर्युक्त दशाओं से स्पष्ट है कि रबड़ के पेड़ भूमध्यरेखीय निम्नभूमि में सबसे अच्छे उगते हैं। मंडी के लिए रबड़ तैयार करने के लिए काफी संख्या में सस्ते मजदूरों की आवश्यकता होती है। अमेजन की घाटी में बहुत कम लोग रहते हैं और ये लोग रोज का काम करने में दिल नहीं लगाते। जब रबड़ की विश्वव्यापी माँग बढ़ गई तो अन्य जगह रबड़ के बगीचे लगाने का प्रयत्न होने लगा। सन् १८७६ में ब्राजील से लाये हुए बीजों को लन्दन के पास क्यू (Kew) स्थान पर उगाया गया। इस प्रकार उत्पन्न नये वृक्षों को भारत व लंका को भेज दिया गया। वहाँ से मलाया व पूर्वी द्वीपसमूह को भी रबड़ के वृक्ष भेजे गये। रबड़ के बगीचों में उत्पादन इतना अधिक बढ़ा कि थोड़े दिनों के भीतर रबड़ का मुख्य स्रोत दक्षिणी अमरीका से हट कर एशिया हो गया।

नवीन परिवर्तन—रबड़ के लिए बढ़ती हुई माँग के कारण बहुत से वृक्ष लगाये गये और १९१४–१८ के विश्वयुद्ध के बाद जब दाम इतने गिर गये कि एक पौंड का मूल्य १ शिलिंग ही रह गया (पिछले वर्षों में मूल्य १४ शि० तक हो गया था) तो इसके उत्पादन के रोकथाम के उपाय किये जाने लगे। परन्तु इस दिशा में इन्डोनेशिया के किसानों ने सहयोग देने से इन्कार कर दिया। फलतः यह योजना सन् १९२८ में छोड़ दी गई।

बहुत वर्षों तक कृत्रिम रबड़ बनाने का प्रयत्न किया गया। दूसरे महायुद्ध के दौरान में इन्डोनेशिया और मलाया पर जापानी आधिपत्य के कारण प्राकृतिक रबड़ की माँग पूर्ति में कमी आ गई। फलतः उत्तरी अमरीका में कृत्रिम रबड़ बनाने में बड़ी काफी तरक्की हुई। इस समय संसार के कुल रबड़ उत्पादन का एक तिहाई भाग कृत्रिम रबड़ होता है। कृत्रिम रबड़ का यह अनुपात दिन-प्रति-दिन बढ़ ही रहा है। करीब-करीब २ लाख टन कृत्रिम रबड़ केवल पूर्वी जर्मनी और रूस में बनाया जाता है। सन् १९५६ तक संयुक्त राज्य में भी कृत्रिम रबड़ तैयार किया जाने लगेगा। कृत्रिम रबड़ कुछ बातों के लिए तो बहुत अच्छा रहता है, परन्तु सामान्य प्रयोगों के लिए यह प्राकृतिक रबड़ के समान उपयोगी नहीं होता। इससे टायर नहीं बन सकते, यद्यपि संयुक्तराष्ट्र अमरीका में यह विशेष सस्ता होता है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में संसार का सबसे अधिक रबड़ उपभोग किया जाता है। अतएव यहाँ सबसे अधिक कृत्रिम रबड़ तैयार किया जाता है। सन् १९४९ में ४ लाख टन कृत्रिम रबड़ तैयार किया गया। इसका कुछ अंश तो सैनिक प्रयोग में आता है और कुछ विशेष खोज के लिए। यहाँ प्राकृतिक रबड़ का आयात बहुत अधिक मात्रा में होता है। विश्वव्यापी राजनीतिक स्थिति और प्राकृतिक रबड़ के मूल्य में कमी करने के लिए, संयुक्त राष्ट्र अमरीका ने पिछले दो एक वर्षों से कृत्रिम रबड़ का उत्पादन फिर बढ़ा दिया है यद्यपि सन् १९५४ में बहुत अधिक उत्पादन नहीं हो पाया।

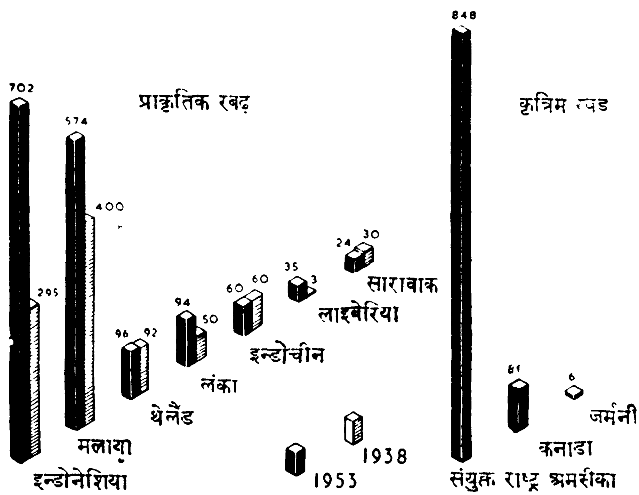

चित्र १५६—कृत्रिम और प्राकृतिक रबड़ का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

जापानी आधिपत्य के कारण इन्डोनेशिया में रबड़ के उत्पादन को भारी धक्का लगा। बर्मा और इन्डोचीन में राजनीतिक अशान्ति के कारण प्राकृतिक रबड़ उत्पादन कम हो गया, फलतः मलाया में रबड उत्पादन बढ़ा। अभी हाल में, मलाया के राज्य में कम्युनिस्ट उपद्रव के कारण उत्पादन में रूकावट आ गई है और सन् १९५१ तक इन्डोनेशिया फिर से प्रमुख हो गया। विश्वव्यापी उत्पादन माँग से बढ़ गया है। पौंड या स्टर्लिंग सिक्का प्रदेशों के लिए यह बड़ी भारी समस्या हो गई है, क्योंकि मलाया के रबड़ के द्वारा यह सबसे अधिक डालर मुद्रा कमाता है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में मोटर उद्योग के कारण रबड़ की सबसे अधिक माँग रहती है। लंका का अधिकतर रबड़ चीन को भेजा जाता है।

कपास

कपड़ा बनाने में प्रयुक्त सभी रेशों में कपास सर्वप्रधान है। १८०० से पूर्व इसका मूल्य बहुत अधिक होता था और मंडी के लिए तैयार करने में बड़ी कठिनाई होती थी। कपास के रेशों से बिनौले हाथ से ही निकाले जाते थे। सन् १७९३ में कपास से

बिनौले निकालने वाली मशीन निकाली गई। इस मशीन के निकलते ही कपास का उत्पादन मूल्य कम हो गया और इसके उत्पादन में प्रसार हुआ। दक्षिणी संयुक्त राष्ट्र अमरीका में खेती का प्रसार विशेष अधिक रहा। कपास के बहुत प्रकार होते हैं और रेशे की लम्बाई पर कपास के प्रकार विशेष का मूल्य निर्भर रहता है :—

कपड़ा बनाने वाले रेशों का विश्वव्यापी उत्पादन

(हजार टनों में)

	१९५२	१९३८
कपास	८,६९०	६,८८०
कृत्रिम रेशम	१,८००	९६०
ऊन	१,०२०	८३०
नाइलन	१६०	१
रेशम	२३	६०

जार्जिया के तटीय मैदानों और पश्चिमी द्वीपसमूह में समुद्रद्वीपीय कपास (Sea Island Cottoe) उगाई जाती है। इसका रेशा २ इंच तक लम्बा होता है और यह कपास सबसे अच्छी होती है। इसी से मिलती-जुलती मीड (Meade) कपास होती है और संयुक्तराष्ट्र अमरीका में इसका प्रसार हो रहा है। समुद्रद्वीपीय कपास के फूलों को एक कीड़ा लग जाता है, जो उसे छोटा कर देता है। मिश्र की कपास भी उत्तम प्रकार की होती है और अत्यन्त गर्म व शुष्क जलवायु में सिंचाई द्वारा उगाई जाती है। मिश्र की कपास अन्य प्रदेशों में सफलतापूर्वक नहीं उगाई जा सकी है। केवल उष्ण व उपोष्ण रेगिस्तानी क्षेत्रों में सिंचाई द्वारा ही उगाई जा सकती है जैसे निम्न कोलैरेडो घाटी और पीरू के तटीय रेगिस्तान में।

संसार की अधिकांश कपास अमरीकी उच्च भूमि प्रकार की कहलाती है और इसका रेशा एक इंच से भी कम लम्बा होता है। अधिकतर कपास उत्पादक प्रदेशों में छोटे रेशोंवाली कपास होती है और इससे केवल मोटा कपड़ा या सूत ही बनाया जा सकता है।

उपज की दशायें—कपास को निम्नलिखित दशाओं की आवश्यकता होती है—

(क) उपज काल के शुरू में काफी वर्षा।

(ख) पतझड़ के मौसम में शुष्क चुनने का समय।

(ग) कम-से-कम सात महीने पाला रहित होने चाहिएँ।

(घ) गर्मी का तापक्रम ७५° फा० तक होना चाहिए।

(ङ) चुनने के समय काफी मजदूर उपलब्ध होने चाहिएँ।

कपास ४०° उत्तरी और ३०° दक्षिणी अक्षांशों के बीच उगती है और इसकी सबसे उत्तरी सीमा दक्षिणी यूक्रेन में पाई जाती है। यद्यपि कपास के पौधे को गर्मी तथा नमी की आवश्यकता होती है परन्तु अत्यधिक गर्म प्रदेशों में यह नहीं पनपता। कपास उत्पादक प्रदेशों के शीतल व शुष्क किनारों पर कपास खूब पनपती है। जाड़े की सर्दी या शुष्कता के आने पर पौधे की उपज बढ़ जाती है। कपास को छोटे-छोटे

खेतों पर छोटे-छोटे किसान उगाते हैं। इस को विस्तृत खेतों पर नहीं उगाते। इसका प्रधान कारण चीन, भारत, मिश्र आदि कपास उत्पादक प्रदेशों की सामाजिक व खेतिहर दशा है। इसका कारण यह भी है कि चुनने के लिए बहुत परिश्रम की आवश्यकता होती है। आजकल तो कपास के फूलों को चुनने की मशीन निकाल ली गई है और उसका प्रयोग दिन-पर-दिन बढ़ रहा है।

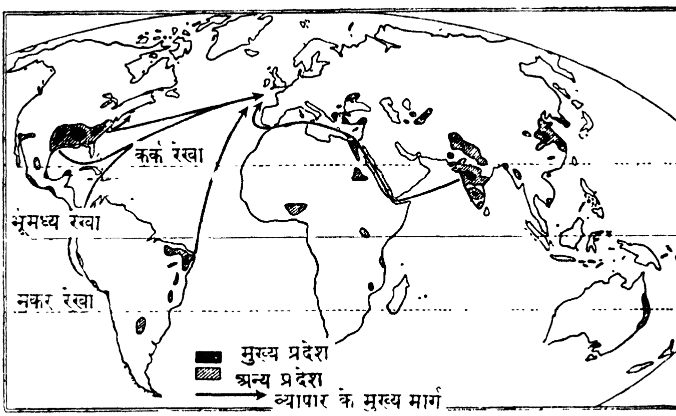

चित्र १५७—कपास का विश्व वितरण।

कपास उत्पादन में परिवर्तन—(१) चित्र १५८ से स्पष्ट है कि अमरीका में कपास का उत्पादन युद्धपूर्व से कम है यद्यपि कुल विश्व का उत्पादन पहिले से बढ़ गया है। अमरीकी कपास क्षेत्र संसार में सबसे बड़ा है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के दक्षिण-पूर्वी भाग में १८ रियासतों में कपास उगाई जाती है। उत्तर में पाले से इसका उत्पादन सीमित है और पश्चिम में शुष्कता इसको सीमित करती है। मेक्सिको की खाड़ी के तटीय मैदान और फ्लोरिडा में नमी के कारण कपास उगायी नहीं जा सकती। अमरीका में कपास उत्पादन के तीन प्रधान क्षेत्र हैं:—

(अ) टेक्सास के काली प्रेरी प्रदेश में।

(ब) मिसीसीपी के मैदान में—मेम्पिस और विक्सवर्ग के बीच के बाढ़ के मैदान की उपजाऊ मिट्टी में।

(स) जार्जिया और दक्षिणी कैरोलीना की उपजाऊ चीका मिट्टी में।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका से विश्वव्यापी कपास उत्पादन का ५० प्र० श० अंश प्राप्त होता है। विभिन्न देशों के कपास उद्योग के प्रदेश कच्चे माल क लिए अमरीका पर निर्भर रहते हैं।

(२) तीस वर्ष पूर्व की अपेक्षा रूस में अब कहीं अधिक कपास उत्पन्न होती है। इसका प्रधान कारण यह है कि पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा रूसी तुर्किस्तान और दक्षिणी यूक्रेन में कपास की खेती ने बहुत उन्नति की। रूस का प्रयत्न यह है कि कच्चे माल म

वह आत्मनिर्भर हो जाये। कपास के विश्वव्यापी उत्पादन में रूस का दूसरा स्थान है, और इसे कपास आयात नहीं करना पड़ता।

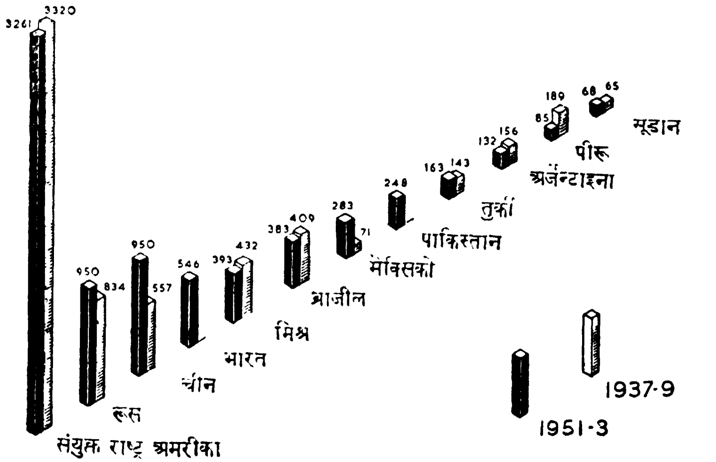

चित्र १५८—कपास का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

(३) जापान में कपास का उत्पादन तो बिल्कुल ही विलीन हो गया है और अब भूमि चावल उगाने के काम में आती है। भारत और पाकिस्तान का मिलकर कपास उत्पादन में संयुक्त राष्ट्र अमरीका और रूस के बाद तीसरा स्थान है। इनकी निम्नप्रकार की कपास निर्यात की प्रधान वस्तु है।

(४) ब्राजील में सन् १९३२ से १९३९ तक कपास का उत्पादन चौगुना हो गया। कहवा के स्थान पर कपास उगायी जाने लगी है।

(५) लंकाशायर की सूती कपड़ा मिलों के उद्योग को अमरीकी घरेलू युद्ध के बाद से कच्चे माल की बड़ी दिक्कत उठानी पड़ी है। ब्रिटिश साम्राज्य में उचित स्थानों पर कपास उगाने के लिए British Cotton Growers Association ने विशेष प्रयत्न किये ताकि लंकाशायर के सूती वस्त्र-उद्योग की अमरीका पर निर्भरता कम हो जाये। इससे अमरीका की फसलों में वृद्धि हुई। एंग्लो-मिश्री सूडान में करोड़ों पौंड खर्च करके सिंचाई की योजनायें बनाई गई।

(६) अफ्रीका में युगेन्डा, उत्तरी नाइजीरिया, न्यासालैण्ड और रोडीशिया, दक्षिणी-पश्चिमी एशिया में दक्षिणी तुर्की, सीरिया और ईराक; दक्षिणी अमरीका में मेक्सिको, पश्चिमी द्वीप समूह, वेनेजुला, पूर्वी ब्राजील, उत्तरी अर्जेन्टाइना और पश्चिमी पीरू तथा आस्ट्रेलिया में पूर्वी क्वींसलैण्ड अन्य उत्पादक प्रदेश हैं।

यद्यपि कपास का उत्पादन इतने देशों में फैला हुआ है, परन्तु यदि एक प्रदेश में कमी हो जाये तो दूसरे प्रदेश की अधिक उत्पत्ति से माँग पूर्ति में कोई भी अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि लम्बे रेशों वाली कपास से कताई बुनाई करने वाली मशीन छोटे रेशोंवाली

ऊपर : अफ्रीका का किसान न्यासालैण्ड में कपास के फूल चुन रहा है।
नीचे : लंका में रबड़ के पेड़ों से रस निकालना।

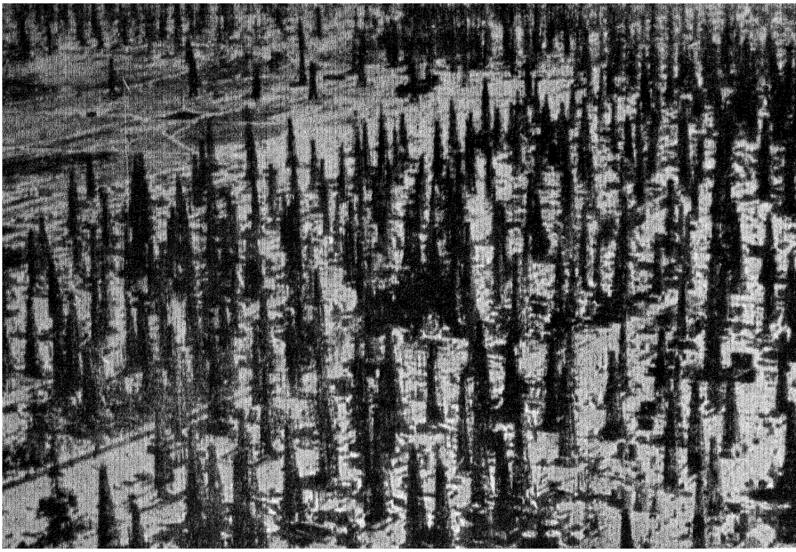

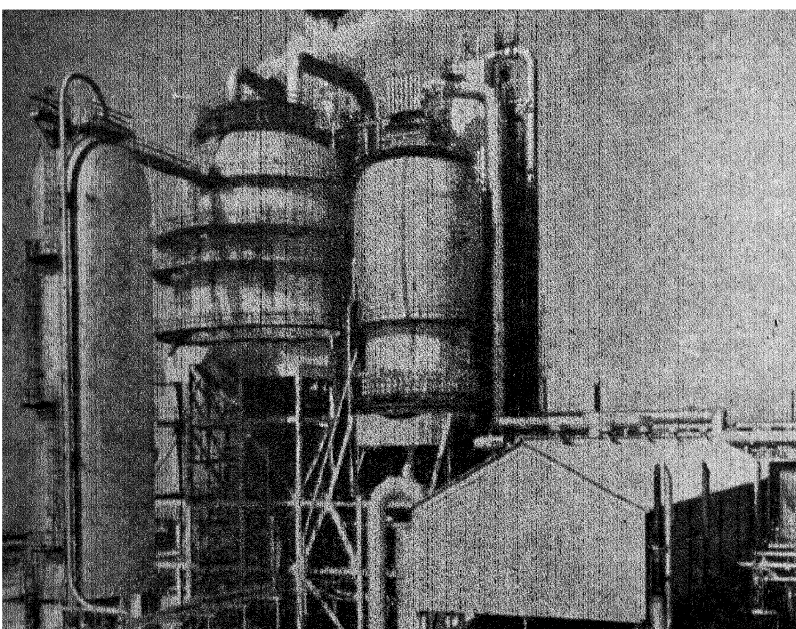

ऊपर : कैलिफोर्निया में तेल का कुँआ ।

नीचे : साउथम्पटन के समीप फैली (Fawley) में तेल साफ करने की कम्पनी ।

कपास को कातने व बुनने वाली मशीन से बिल्कुल भिन्न होती है। इसलिए उत्पादन क्षेत्र में फसल के नष्ट होने पर उद्योग क्षेत्र को भारी धक्का लगता है।

रूस, चीनी, अमरीकी और भारतीय कपास का अधिकांश भाग उन्हीं देशों में खप जाता है। संयुक्त राज्य मिश्री कपास का सबसे अच्छा ग्राहक है। मिश्र से कपास का ९।१० अंश इंगलैण्ड को भेजा जाता है। जापान पाकिस्तानी कपास को खरीदता है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका की कपास का प्रधान ग्राहक जापान है। उसके बाद संयुक्त राज्य का स्थान आता है।

कच्ची कपास के निर्यातक देश (१९५०–५३)

(हजार टनों में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका ...	९९२	तुर्की	९७
मिश्र	३०७	युगेण्डा	७७
पाकिस्तान	२४०	पीरू	६९
मेक्सिको	२०२	सूडान	६७

कपास का उद्योग—संसार में कपास उद्योग के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित है—(१) दक्षिणी-पूर्वी लंकाशायर, (२) न्यू इंगलैण्ड राज्य (३) उत्तरी और दक्षिणी कैरोलीना, (४) भारत (बम्बई), (५) चीन (शान्घाई), (६) जापान (ओसाका), (७) उत्तरी इटली, (८) स्विट्जरलैण्ड, (९) उत्तरी-पूर्वी फ्रांस, (१०) बेल्जियम, (११) जर्मनी का वेस्टफैलिया।

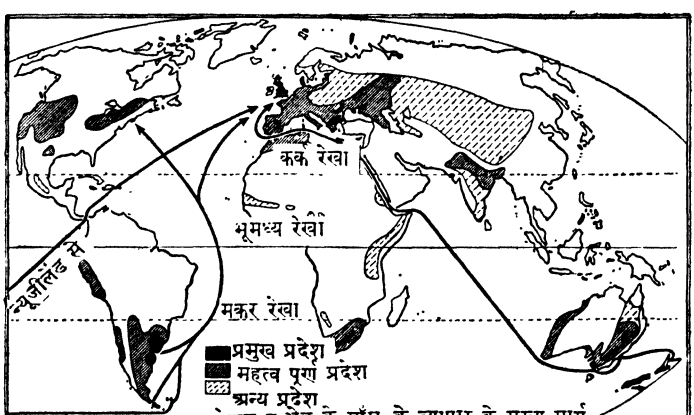

चित्र १५९—भेड़ों का वितरण

ऊन

संसार के भेड़ चराने वाले क्षेत्रों को दो प्रधान भागों में बाँटा जा सकता है:—

(१) पुरानी दुनिया के वे अनुपजाऊ प्रदेश जो उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित हैं। इसके अन्तर्गत मध्य स्पेन, ब्रिटिश द्वीप समूह के उच्च प्रदेश और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप के उच्च प्रदेश सम्मिलित हैं।

(२) दक्षिणी गोलार्द्ध के वे नवीन देश जहाँ भूमि बहुत काफी और सस्ती है तथा जनसंख्या का घनत्व बहुत कम है। इसके अन्तर्गत आस्ट्रेलिया, दक्षिणी अफ्रीका, अर्जेन्टाइना, न्यूजीलैण्ड और युरुगवे के देश शामिल हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका के पर्वतीय प्रदेशों पर स्थित भेड़ चराने वाले क्षेत्र दूसरे वर्ग में आते हैं। अमरीका का ऊन वही की ऊनी कपड़ा मिलों में इस्तेमाल हो जाता है, और निर्यात के लिए कुछ भी नही बचता। दक्षिणी गोलार्द्ध के देश ऊन के प्रमुख उत्पादक व निर्यातक हैं। विश्वव्यापी माँग पूर्ति का ३० प्र० श० अंश केवल आस्ट्रेलिया से प्राप्त होता है। इस प्रकार ऊन के व्यापार में किसी एक देश का प्रभुत्व नही है जैसा कि ब्राजील की कहवा, अमरीका की कपास और एशिया के रबड़ का है।

भेड़ों को ऊन और मांस दोनों के ही लिए पाला जाता है। परन्तु अच्छा ऊन देने वाली भेड़े मांस के दृष्टिकोण से अच्छी नही होती। अच्छे मांस की भेड़ें अच्छा ऊन नही दे पाती। ऊन प्रधान रूप से दो प्रकार का होता है—मेरीनो ऊन बढ़िया महीन रेशमी होता है, परन्तु क्रास ब्रेड (Cross bred) ऊन उतना अच्छा नही होता। परन्तु मिश्रित जाति या (Cross bred) भेडों का पालना किसान के लिए सुविधाजनक होता है, क्योंकि यदि ऊन का दाम गिर जाये तो मांस बेचकर काम चला सकते है। चूंकि भेड़ चराने वाले किसान ऊन की मात्रा को मांस की मात्रा की अपेक्षा बढा सकते है। इसलिए ऊन के उत्पादन पर वे बन्धन नही लगाये गये है जो रबड़, चीनी आदि पर होते है और ऊन के व्यापार में आर्थिक संकट कम ही पड़ा है।

कपड़े बनाने के व्यवसाय मे अन्य प्रकार के ऊन तथा पशु जन्य (Animal Fibres) रेशों को भी प्रयोग किया जाता है। इनमें निम्नलिखित बहुत महत्त्वपूर्ण है :—

(१) अलपका और विक्यूना नामक पशुओं का ऊन। ये पशु दक्षिणी अमरीका के एण्डीज प्रदेश में रहते है।

(२) ऊँट के बाल।

(३) काश्मीर जाति की बकरी के ऊन।

(४) अंगोरा जाति की बकरी का ऊन, जिसे मोहेर कहते हैं। यह एशियाई तुर्की में पाई जाती है। दक्षिणी अफ्रीका इसके उत्पादन का प्रधान केन्द्र है।

सन (Flax)

इसी नाम के पौधे से प्राप्त रेशे को सन कहते है। काटने के बाद सन के पौधे को पानी में भिगो कर सड़ाया जाता है, ताकि रेशे आसानी से अलग किये जा सकें। सन के पौधे से बीज और रेशा दोनों ही प्राप्त होता है। यदि पौधे को रेशे के लिए उगाया जाये तो इसे शीतल तर जलवायु चाहिये जो कि शीत शीतोष्ण कटिबंध में पाई जाती है विशेषकर ४९° उत्तरी और ५५° उत्तरी अक्षांशों के बीच। यदि जलवायु गर्म व शुष्क हुई तो रेशा मोटा रह जाता है। बीजों को पास-पास बोया जाता है ताकि पौधा काफी ऊँचाई तक बढ़ सके और इसमें रेशों की अधिकता रहे। सन का पौधा

भूमि की उपज शक्ति को बहुत कम कर देता है। इसलिए एक भूमि के टुकड़े पर सन की एक फसल उगाने के बाद ८ साल तक फसलें उगाते रहते हैं और तब कहीं सन की फसल फिर उगाते हैं।

अलसी के लिए सन के पौधे को गर्म अक्षांशों में उगाते है।

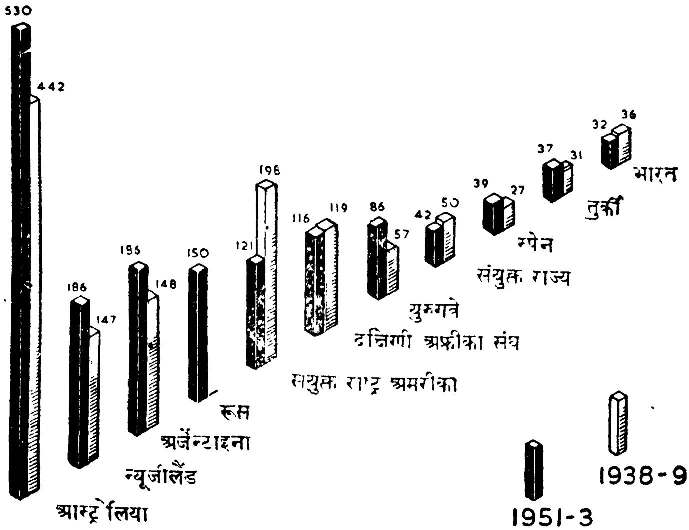

चित्र १६०—ऊन का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

सन उत्पादन का वितरण—सन का वितरण बहुत कुछ चुकन्दर से मिलता-जुलता है क्योंकि प्रमुख उत्पादक प्रदेश यूरोप के मध्यवर्ती मैदान में आयरलैण्ड से रूस तक फैले हुए है। रूस सन का प्रमुख उत्पादक देश है जहाँ पर संसार की फसल का ८० प्रतिशत

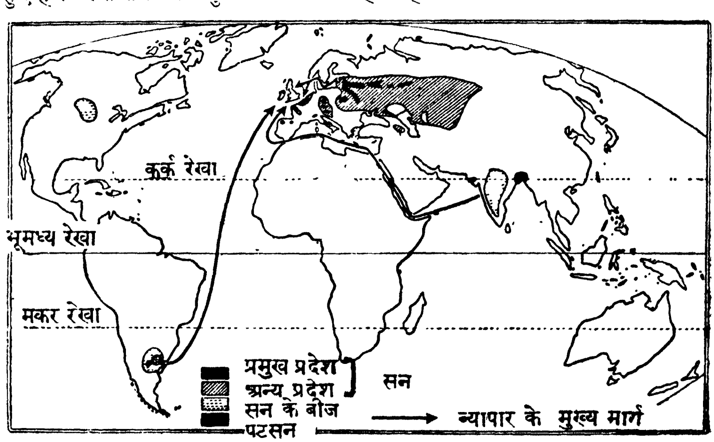

चित्र १६१—सन, अलसी और पटसन का वितरण

अंश या ८ लाख टन सन उत्पन्न होता है। इसका बहुत थोड़ा अंश ही निर्यात किया जाता है। युद्ध से पूर्व बाल्टिक तटवर्ती रूसी रियासतें, इस्टोनिया, लटेविया और लिथूनिया से सन का काफी निर्यात होता था। बेल्जियम का सन बड़ी उच्च श्रेणी का होता है और यद्यपि बेल्जियम में सन के कपड़ा बुनने का उद्योग काफी महत्त्वपूर्ण है फिर भी सन का अधिकांश भाग उत्तरी आयरलैण्ड को भेज दिया जाता है, जहाँ सन का उत्पादन काफी नहीं होता। युद्ध के दिनों में पूर्व यूरोपीय देशों का सन विश्व मंडियों में नहीं आता था। इस लिए बेल्जियम, फ्रांस और हालैण्ड का उत्पादन बहुत बढ़ गया।

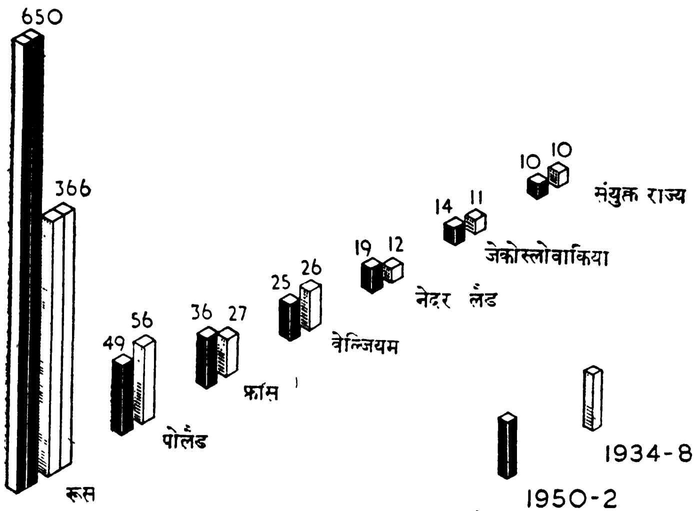

चित्र १६२—सन के रेशे का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

सन का कपड़ा बनाने का उद्योग—ग्रेट ब्रिटेन में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। उत्तरी आयरलैण्ड और पूर्वी स्काटलैण्ड इसके प्रधान केन्द्र हैं। आयरलैण्ड का लिनन तो सम्पूर्ण विश्व में बिकता है। इस उद्योग के अन्य केन्द्र उत्तरी फ्रांस, बेल्जियम, रूहर घाटी और उत्तरी इटली हैं। पिछले वर्षों में जापान में इस उद्योग ने विशेष तरक्की कर ली है। जापान में अब उत्तरी आयरलैण्ड से अधिक सन उत्पन्न किया जाता है।

पटुआ (Hemp)

सन की तरह पटुआ भी एक पौधे का रेशा है। इसको सन की ही तरह से तैयार किया जाता है। इसका भौगोलिक वितरण भी सन के ही समान है। यूरोप में पटुआ का सबसे अधिक उत्पादन रूस के सन प्रदेश में ही होता है। पटुआ से रस्से, डोरी, दरियाँ, लिनोलियम, जीन आदि बनाये जाते हैं। यूरोप में रूस के बाद इटली का स्थान आता है और वोल्गा प्रदेश का इटाली पटुआ उच्च कोटि का होता है।

कुछ अन्य प्रकार के भी रेशे होते हैं, जिन्हें पटुआ कहते हैं :—

(१) **मनीला पटुआ**—फिलीपाइन द्वीप में उगाया जाता है। अन्य प्रदेशों

में इसको उगाने के प्रयत्न असफल रहे हैं। यह पौधा केले की तरह का होता है और दोनों में इतनी अधिक समानता होती है कि बड़े विशेषज्ञ ही भेद पता चला सकते हैं। इससे बड़ी मजबूत रस्सी बनाई जाती है। इन रस्सों को जहाजों में इस्तेमाल करते हैं। इससे मजबूत कागज भी बनाया जाता है। कटाई की मशीनों में प्रयुक्त बाँधने की डोरी भी इसी से बनती है।

(२) **सीसल पटुआ**, हेनेक्वेन पौधे की तलवार जैसी कठोर पत्तियों का रेशा है। इसका सम्पूर्ण विश्वव्यापी उत्पादन मेक्सिको के यूकाटन प्रायद्वीप से प्राप्त होता है। पश्चिमी द्वीपसमूह, कीनिया और टैन्गानाइका प्रदेश के कुछ भागों में इसकी सफल खेती हो सकी है। यह मनीला पटुआ की तरह मजबूत तो नहीं होता परन्तु उस से सस्ता जरूर होता है।

(३) **फोरमियम** या न्यूजीलैण्ड का सन, वहीं का पौधा है और न्यूजीलैण्ड के सभी भागों में उगाया जाता है।

पटसन

पटसन सब रेशों से सस्ता होता है। इसको धोया नहीं जा सकता और इससे रस्सियाँ व बोरे बनाये जाते हैं। इसको थोक व्यापार का भूरा कागज कहते हैं क्योंकि इसमें विश्व व्यापार की बहुत सी वस्तुएँ बाँधी जाती है। कपास और ऊन की गाँठें इसी में बाँधी जाती हैं। कहवा और गेहूँ के लिए बोरियाँ इसी से बनती हैं।

संसार के पटसन का ९९ प्रतिशत अंश (लगभग १० लाख टन) निम्न गंगा घाटी में उत्पन्न होता है। ६० प्रतिशत अंश पाकिस्तान में उगाया जाता है। भारत में कलकत्ता के समीप सब से अधिक पटसन मिलें हैं। डन्डी और फिलाडेलफिया में भी पटसन का माल तैयार किया जाता है। थोड़ा बहुत पटसन फारमोसा और ब्राजील में भी उत्पन्न किया जाता है। पटसन का निर्यात केवल पाकिस्तान से होता है और भारत, संयुक्तराज्य, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और जर्मनी क्रमशः महत्त्वपूर्ण आयातक देश हैं।

रेशम

रेशम के कीड़ों के कोकून से रेशम निकाला जाता है। चूंकि रेशम का कीड़ा सफेद शहतूत की पत्तियों को खाता है, रेशम के कीड़ों का वितरण शहतूत के वृक्षों से मिलता-जुलता है। चूंकि रेशम के कीड़े को खिलाने के वास्ते पत्तियों की दूसरी फसल चाहिए, इसलिए तीन महीने के लिए तापक्रम कम-से-कम ५५° फा. तक होना चाहिए परन्तु ६०° फा. से कम तापक्रम रेशम का कीड़ा सह नहीं सकता। इसलिए शीतल प्रदेशों में गर्म किये हुए कमरों में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं। कौकून से रेशम को खोलने के वास्ते बहुत सीखे हुए सस्ते मजदूरों की काफी संख्या में आवश्यकता होती है। रेशम का उत्पादन जलवायु की दशाओं की अपेक्षा मजदूरों पर अधिक निर्भर रहता है।

संसार में रेशम का उत्पादन दो प्रदेशों में सीमित है—

(१) दक्षिणी-पूर्वी एशिया जहाँ से विश्वव्यापी उत्पादन का ८० प्र० श० रेशम प्राप्त होता है।

(२) यूरोप के भूमध्यसागरीय प्रदेशों से शेष रेशम प्राप्त होता है।

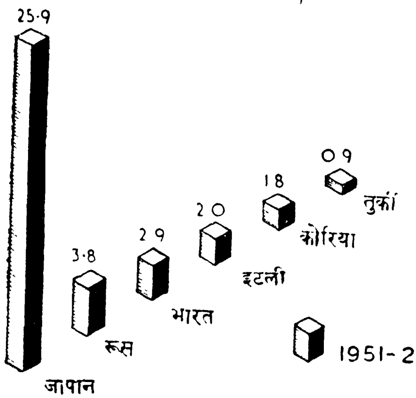

चित्र १६३—रेशम का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

चीन में रेशम का उत्पादन याँगटीसीक्याँग और सी-क्याँग घाटियों मे सीमित है। उत्पादन का थोड़ा-सा अंश ही बाहर भेजा जाता है। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में जापान में रेशम का उत्पादन बहुत बढ़ गया। जैसे इंगलैण्ड में भेड़ों का चराना महत्वपूर्ण है, उसी प्रकार जापान में रेशम के कीड़ों का पालना है, क्योंकि शहतूत के पेड़ उन पहाड़ी ढालों पर लगाये जाते हैं जहाँ खेती असम्भव होती है। इस प्रकार यह उद्योग अनुपजाऊ भूमि के उपयोग का सबसे अच्छा उपाय है। सन् १९३३ तक रेशम जापान से निर्यात की प्रमुख वस्तु थी। कुल निर्यात का २० प्र० श० रेशम ही होता था परन्तु सन् १९३८ तक यह कुल १३ प्रतिशत ही रह गया और अब सूती कपड़े का निर्यात अधिक होता है। रेशम का सबसे अधिक आयात करने वाला देश संयुक्त राष्ट्र अमरीका है, जहाँ जापानी उत्पादन का ८० प्रतिशत और इटाली उत्पादन का ५० प्रतिशत अंश आयात किया जाता है। पच्चीस वर्ष पूर्व की अपेक्षा रेशम का विश्वव्यापी उत्पादन अब केवल एक तिहाई रह गया है।

पो घाटी के उपजाऊ मैदान से यूरोपीय उत्पादन का ९० प्रतिशत रेशम प्राप्त होता है। अंगूर की लताओं को शहतूत के पेड़ों पर चढ़ाया जाता है और बीच की भूमि पर गेहूँ की फसल काटी जाती है। यह सब घनी आबादी के प्रदेश में गहरी खेती का नमूना है। यह रेशम मिलान के कारखानों में बुना जाता है। लिओन्स के दक्षिण में रोन घाटी में भी रेशम उत्पन्न किया जाता है। पूर्वी स्पेन और एशियाई तुर्की के पश्चिमी मैदानों में भी रेशम का उत्पादन होता है।

कृत्रिम रेशम (Rayon)

लकड़ी की लुग्दी, कपास और अन्य वनस्पति पदार्थों को विभिन्न रसायनों द्वारा मिलाकर सिलूलोज तैयार करते हैं और इससे कृत्रिम रेशम बनाया जाता है। इसे शीशे में बने छोटे-छोटे छेदों में से होकर दबाया जाता है और फलस्वरूप रेशमी तागे से बन जाते हैं। वास्तव में कृत्रिम रेशम के द्वारा असली रेशम को हटाया नहीं जा सका

हैं। देखने में तो कृत्रिम रेशम असली रेशम की भाँति ही लगता है परन्तु इसके अतिरिक्त इसमें अन्य कोई गुण नही होते। इसके लिए जरूरी कच्चेमाल के सस्तेपन के कारण आजकल असली रेशम की अपेक्षा कृत्रिम रेशम का उत्पादन बहुत अधिक बढ़ रहा है। सन् १९३९–४५ के महायुद्ध से पूर्व इसका उत्पादन ऊन से कहीं अधिक था। इस समय

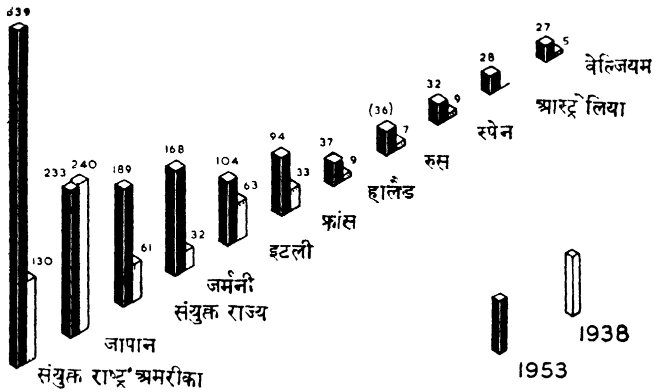

चित्र १६४—कृत्रिम रेशम का विश्वव्यापी उत्पादन (हजार टनों में)

ऊन का दुगना कृत्रिम रेशम तैयार होता है। वर्त्तमान प्रगति तो ऐसी है कि सूत व ऊन के बने कपड़ों के स्थान पर इसका अधिकाधिक प्रयोग हो रहा है, परन्तु इसे दूसरे सूतों के साथ मिलाया भी खूब जाता है। युद्ध से पहिले इसका सबसे प्रधान उत्पादक देश जापान था पर युद्ध के बाद के दिनों में जापान का उत्पादन बहुत कम हो गया। परन्तु अब हालत सुधर गई है और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बाद जापान का दूसरा स्थान है। संयुक्तराज्य का तीसरा स्थान है। सन् १९३०–३९ के व्यापार संकट में लंकाशायर की बहुत-सी मिलें सूती कपड़े के स्थान पर कृत्रिम रेशम तैयार करने लगी थी।

नाइलन (Nylon)

नाइलन एक प्रकार का कृत्रिम रेशम है, जिसका उत्पादन लगभग २ लाख टन प्रतिवर्ष है। संयुक्तराष्ट्र अमरीका इसका सबसे बड़ा उत्पादक है और संयुक्त राज्य का दूसरा स्थान है।

तिलहन (Oilseeds)

अधिकतर वनस्पति तेल बहुत-से पौधों के बीज या फल से बनाये जाते हैं। ये पौधे अनेक प्रकार के होते हैं और प्रायः हर प्रकार की जलवायु में उगते हैं। प्रत्येक वनस्पति तेल के अपने अलग प्रयोग होते हैं परन्तु सामान्यतः इनका प्रयोग मारगीरोन, साबुन, मोमबत्ती, शृंगार के सामान, वारनिश और रंग आदि बनाने में किया जाता है। तेल निकालने के बाद बची हुई लुग्दी को व्यापारिक प्रयोग में लाते हैं। बिनौले

से तेल निकालने के बाद बची हुई खली को जानवरों को खिलाया जाता है। अलसी को भी इसी प्रकार इस्तेमाल किया जाता है।

अलसी का तेल वार्निश बनाने में प्रयोग किया जाता है और जैसा कि नाम से ही प्रकट है यह सन के पौधे से प्राप्त किया जाता है। एक समय अर्जेन्टाइना में अलसी का सबसे अधिक उत्पादन होता था परन्तु वहाँ की सरकार ने किसानों से सस्ते मूल्य पर खरीद कर महँगे दामों पर बेचना शुरू किया। फल यह हुआ कि किसानों ने अलसी का उत्पादन कम कर दिया और अन्य देशों में अलसी को उगाने का प्रयत्न किया जाने लगा। कई देशों में अलसी के स्थान पर अन्य वस्तुओं का उपयोग भी होने लगा। अर्जेन्टाइना में युद्ध पूर्व से अब केवल एक तिहाई उपज रह गई है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में उत्पादन पहिले से एक तिहाई अधिक हो गया है और वहाँ बसन्त गेहूँ के प्रदेश में उगाया जाता है। अलसी का विश्व व्यापार सन् १९३८ की अपेक्षा अब केवल आधा रह गया है। अलसी के समुख निर्यातक देश (हजार टनों में) निम्नलिखित हैं :—

कनाडा ४०; भारत ३४; अर्जेन्टाइना ३४; युरूगवे ३०; संयुक्त राष्ट्र अमरीका २४।

जैतून का तैल—जैतून का वृक्ष भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेशों का पौधा है। जहाँ कहीं भी यह पौधा यूरोप के बाहर भूमध्यसागरीय जलवायु के प्रदेशों में उगाया गया है वहाँ इसकी कोटि निम्न हो गई है और तेल कम निकलता है। सबसे उत्तम तेल इटली के लुक्का प्रदेश में और दक्षिणी फ्रांस में निकाला जाता है। स्पेन और इटली में उत्पादन सबसे अधिक है। प्रमुख निर्यातक देश महत्त्व के अनुसार क्रमशः स्पेन, ट्यूनीशिया, अलजीरिया और पोर्तुगाल है।

मूँगफली का तेल—मूँगफली को इंगलैण्ड में "Monkey nut" और संयुक्त राष्ट्र अमरीका में "Pea nut' कहते हैं। अन्य प्रकार की खेती के लिए अनुपयुक्त भूमि पर या हल्की मिट्टी वाले प्रदेशों में मूँगफली खूब उगती है। इसकी खेती संसार के बहुत से भाग में होती है। हाल के दिनों में इसके उत्पादन में कोई भी परिवर्त्तन नहीं हुआ है। हाँ, संयुक्त राष्ट्र अमरीका में युद्धपूर्व से उत्पादन दुगना हो गया है।

मूँगफली का उत्पादन (१९५०–२)
(लाख टन में)

भारत	३०	संयुक्त राष्ट्र अमरीका	८
चीन	२३	नाइजीरिया	६
पश्चिमी अफ्रीका	८	इन्डोनेशिया	३

कुल विश्व योग ९६ लाख टन

धातुएँ

सोने को और कुछ अंश में चाँदी को छोड़कर अन्य सभी धातुएँ स्वतंत्र रूप में अलग नहीं पाई जातीं। ये रासायनिक वस्तुओं के साथ मिली पाई जाती हैं और इसे

कच्ची धातु (Ore) कहते हैं। इसके साथ जमीन की अन्य अशुद्ध वस्तुएँ भी मिली रहती हैं। इन कच्ची धातुओं को जलाया जाता है और फिर उनसे धातु विशेष को प्राप्त करते हैं। इसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा अलग करते हैं और प्राप्त धातु को शोधते हैं। धातु को अलग करके साफ करना बड़ी औद्योगिक क्रिया है और इसमें काफी ईंधन खर्च हो जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि धातु शोधने का काम धातु की खानों से बहुत दूर पर या दूसरे देशों में किया जाता है। कम उन्नत और अविकसित देशों में धातु को खानों से निकाला जाता है और इन अनौद्योगिक देशों से इसी दशा में बाहर भेज दिया जाता है। परन्तु पिछले कुछ दिनों से धातु उत्पादक प्रदेशों में गलाने का काम शुरू किया जा रहा है।

एक ही प्रकार की धातु के विभिन्न कच्ची धातुओं में वास्तविक धातु का प्रतिशत अंश अलग-अलग होता है। आगे दिये हुए आँकड़ों में कच्ची धातु की मात्रा न देकर वास्तविक धातु के अंश के तोल को दिया गया है। प्रत्येक धातु के प्रतिशतांश का एक निम्नतम अंक होता है। इसमे कम होने पर उसे खोदकर निकालना तथा साफ करना कदापि लाभप्रद नही होता।

लोहा और इस्पात (Iron & Steel)

इस समय लोहा सबसे प्रमुख औद्योगिक धातु है। इसके अतिरिक्त यह सबसे सामान्य तत्व भी है क्योंकि पृथ्वी के ऊपरी पपड़े का ५ प्रतिशत अंश लोहा ही है। परन्तु जिन कच्ची धातुओं में लोहे की मात्रा २० प्रतिशत से कम होती है, उन्हें खोदना और शोधना लाभप्रद नहीं होता। कुछ कच्ची धातुओं में जैसे स्वीडन की कच्ची धातु में लोहे का अंश ६० प्रतिशत तक होता है। पश्चिमी यूरोप के कच्चे लोहे में धातु का अंश इसकी अपेक्षा बहुत कम होता है। बहुत सा लोहा व इस्पात टूटे-फूटे लोहे से बनाया जाता है।

कच्चे लोहे का उत्पादन (१९५३)

(लोहा का अंश दस लाख टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	६.०	कनाडा	३
रूस	२१	लक्समबर्ग	२
फ्रांस	१४	चिली	२
स्वीडन	११	भारत	२
संयुक्त राज्य	५	आस्ट्रेलिया	१.५
पश्चिमी जर्मनी	४	स्पेन	१.५

संसार का अधिकतर लोहा इस्पात के रूप में परिवर्तित कर दिया जाता है। इस्पात एक बहुत ही मजबूत मिश्रण होता है, जिसमें कारबन का अंश रहता है। इस्पात में अन्य धातुएँ भी विभिन्न अनुपात में मिली रहती हैं, जिनमें मैन्गनीज, निकल, कोबल्ट, मोलीबडेनम (Molybdenum), वेनाडियम (Vanadium) और टंगस्टन

(Tungsten) प्रमुख हैं। ये धातुएँ इस्पात के प्रयोग विशेष को ध्यान में रखकर मिलाई जाती हैं।

इस्पात का उत्पादन (१९५३)
(दस लाख टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	१११	पश्चिमी जर्मनी	१५
रूस	३८	फ्रांस	१३
संयुक्त राज्य	१८	जापान	८

रूस से **मैंगनीज** के विश्वव्यापी उत्पादन का आधा भाग प्राप्त होता है। वहाँ का वार्षिक उत्पादन ४० लाख टन है। शेष ५० प्रतिशत गोल्ड कोस्ट, दक्षिणी अफ्रीका और भारत से प्राप्त होता है। संसार का अधिकतर **कोबल्ट** और ९० प्रतिशत **निकल** कनाडा के ओंटेरियो प्रान्त से प्राप्त होता है। **मोलीबडनम** (Molybdenum) के विश्वव्यापी उत्पादन (१२०,००० टन) का ९० प्रतिशत अंश संयुक्त राष्ट्र अमरीका से प्राप्त होता है। शेष अंश चिली से मिलता है। **वेनाडियम** (Vanadium) संयुक्त राष्ट्र अमरीका, पीरू, और दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका में पाया जाता है। **टंगस्टन** (Tungsten) के उत्पादन में चीन और पुर्त्तगाल सर्वप्रमुख हैं। उनके बाद संयुक्त राष्ट्र अमरीका, बोलीविया, स्पेन और आस्ट्रेलिया का नम्बर आता है।

ताम्बा (Copper)

ताम्बे के अन्दर बिजली की लहरों के सबसे अच्छी तरह गुजर सकने के कारण, इस धातु को बिजली के उद्योग में खूब प्रयोग किया जाता है। इससे बहुत से धातु मिश्रण बनाये जाते है। ब्रोन्ज (Bronze), फासफर ब्रोन्ज (Phosphor-Bronze) पीतल, मानेल धातु (Monel Metal), डेल्टा धातु (Delta Metal) जर्मन सिलवर आदि इसीके मिश्रण रूप है। संसार में ताँबे का कुल उत्पादन सन् १९३९ से तिगुना हो गया है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका, बेल्जियन कान्गो और उत्तरी रोडीशिया में ताम्बे का उत्पादन पहिले से अधिक हो गया है।

कच्चे ताम्बे का उत्पादन (१९५२)
(ताम्बे का अंश हजार टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	८३९	बेल्जियन कान्गो	२०६
चिली	४०८	मेक्सिको	५९
रोडीशिया	३२०	जापान	५७
रूस	२५०	यूगोस्लाविया	३७
कनाडा	२३४	विश्व योग	२,४००

शीशा (Lead)

छत, पाइप और तश्तरी बनाने तथा टाइप की धातु, जोड़ने की धातु तथा प्युटर (Pewtr) आदि बनाने में शीशा प्रयोग किया जाता है। इतना अधिक उत्पादन होते हुए भी, संयुक्तराष्ट्र अमरीका लगभग एक लाख टन शीशा प्रतिवर्ष अन्य अमरीकी

देशों से आयात करता है। शीशे के प्रधान निर्यातक देश आस्ट्रेलिया, मेक्सिको, कनाडा, बेल्जियम और फ्रांस है।

कच्चे शीशे का उत्पादन (१९५२)

(शीशे का अंश हजार टनों में)

सयुक्त राष्ट्र अमरीका	३४८	यूगोस्लाविया	७९
मेक्सिको	२४६	जर्मनी	५२
आस्ट्रेलिया	२२७	स्पेन	४३
कनाडा	१५०	इटली	३९
पीरू	९८	कुल विश्व योग	१,६५०

जस्ता (Zinc)

लोहे पर मोरचा न लगे इसलिए लोहे पर जस्ते की परत चढ़ाई जाती है। इस को पीतल, जर्मन सिल्वर तथा डेल्टा धातु में भी मिलाया जाता है। आस्ट्रेलिया, कनाडा, इटली और स्वीडन इस कच्ची धातु के प्रमुख निर्यातक देश हैं। बेल्जियम, संयुक्त राष्ट्र अमरीका और संयुक्त राज्य प्रमुख आयातक राज्य है। सन् १९३९ से जस्ते का विश्व-व्यापी उत्पादन २५ प्रतिशत अधिक हो गया है। इस बढ़ोत्तरी का प्रधान कारण संयुक्त राष्ट्र अमरीका और कनाडा मे उत्पादन की अधिकता है, परन्तु बेल्जियन कान्गो और पीरू में उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया है।

कच्चे जस्ते का उत्पादन (१९५२)

(जस्ते का अंश हजार टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	६०४	इटली	११२
कनाडा	३४६	बेल्जियन कान्गो	९९
मेक्सिको	२२७	जापान	८८
आस्ट्रेलिया	२००	स्पेन	८६
पीरू	१२१	जर्मनी	८१

कुल विश्व योग : २,४७०

टीन (Tin)

टीन से डिब्बों के लिए टीन की चादरें बनाई जाती है। इसे ब्रोन्ज, गन-मेटल (Gun Metal), सोल्डर और पीउटर आदि धातु मिश्रण में भी मिलाया जाता है। दक्षिणी पूर्वी एशिया की अधिकतर चीनी संयुक्त राष्ट्र अमरीका को जाती है। ग्रेट ब्रिटेन बोलीविया से २५,००० टन टीन प्रतिवर्ष आयात करता है। रोमन लोगों के जमाने से कार्नवाल (Cornwall) की टीन की खानें खोदी जा रही है, परन्तु अब उनका टीन समाप्त हो चुका है। इस समय का उत्पादन १,००० टन प्रति वर्ष से भी कम है।

कच्चे टीन का उत्पादन (१९५३)

(टीन का अंश हजार टनों में)

मलाया	५६	बेल्जियन कान्गो	१७
बोलीविया	३५	थैलैण्ड	१०
इन्डोनेशिया	३४	नाइजीरिया	९

कुल विश्व योग : १७७

अल्युमिनियम (Aluminium)

यह धातु बहुतायत में पाई जाती है और पृथ्वी के ऊपरी पपड़े का ८ प्रतिशत अंश अल्युमिनियम ही है। चीका मिट्टी अल्युमिनियम का सिलिकेट है, परन्तु इस संयुक्त रूप (Compound) से अल्युमिनियम धातु का निकालना लाभप्रद नहीं है। यह सिर्फ वाक्साइट (Bauxite) नामक कच्ची धातु से ही प्राप्त किया जाता है। इसमें धातु का अंश २५ प्रतिशत होता है। अल्युमिनियम को अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है। इसे अनेक हल्के पर मजबूत धातु मिश्रण जैसे Magnalium और Duralumin में इस्तेमाल करते हैं। ये धातु मिश्रण हवाई जहाज बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। कच्ची धातु से अल्युमिनियम को निकालने के लिए बहुत अधिक बिजली शक्ति की आवश्यकता होती है। इसलिए इस धातु को प्राप्त करने का काम वहीं किया जाता है, जहाँ सस्ती पन-बिजली (Hydro Electricity) उपलब्ध है। स्काटलैण्ड में पोयर्स और किनलाकलेबन (Kinlockleven) इसी प्रकार के स्थान हैं। सन १९३९–४५ के युद्ध से पूर्व अल्युमिनियम उत्पादन की अपेक्षा वर्त्तमान उत्पादन तिगुना हो गया है।

बाक्साइट उत्पादक देश (१९५२)

(कच्ची धातु के हजार टन)

डच गिनी	३,१६४	यूगोस्लाविया	५७७
ब्रिटिश गिनी	२,४२६	रूस	५००
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	१,७४४	इन्डोनेशिया	३४६
फ्रांस	१,११५	इटली	२३२

कुल विश्व योग : ११,०००

डच गिनी से कच्ची धातु संयुक्त राष्ट्र अमरीका को भेजी जाती है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका इन्डोनेशिया से भी आयात करता है। ब्रिटिश गिनी से कच्ची धातु कनाडा को जाती है। संयुक्त राज्य, फ्रांस और गोल्ड कोस्ट से कच्ची धातु मँगवाता है।

अल्युमिनियम के उत्पादक राष्ट्र (१९५२)

(हजार टनों में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका	१,०२९	संयुक्त राज्य	१०२
कनाडा	४५०	इटली	५३
जर्मनी	१४२	नार्वे	५३
फ्रांस	१२६	जापान	५१

कुल विश्व योग (रूस को छोड़कर) : १,८००

सोना (Gold)

सोना अन्य धातुओं से भिन्न है, और असंयुक्त या स्वतंत्र रूप में पाया जाता है। इसका दाम बहुत अधिक होता है। एक औंस सोने का मूल्य १२ पौंड होता है, और जरा सी धातु अंश वाली चट्टान से भी सोना आसानी से निकाला जा सकता है। संसार के कुल सोने का आधा भाग केवल दक्षिणी अफ्रीका संघ से आता है।

सोने का उत्पादन (१९५३)
(लाख पौंड में मूल्य)

दक्षिणी अफ्रीकी संघ	१,४९०	आस्ट्रेलिया	१३०
कनाडा	५३०	गोल्ड कोस्ट	९०
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	२५०	रोडीशिया	६०
रूस	२५०	विश्व योग	३३१

चांदी (Silver)

चाँदी भी एक मूल्यवान् धातु है, जो कभी तो स्वतंत्र रूप से और कभी शीशे व ताम्बे के साथ मिली पाई जाती है।

चांदी का उत्पादन (१९५३)
(हजार टन में)

मेक्सिको	१,२५०	कनाडा	८३७
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	९७२	आस्ट्रेलिया	३०५
मध्य और दक्षिणी अमरीका ...	९००	विश्वयोग	५,५६०

यूरेनियम (Uranium)

अणु बम (Atom Bumb) निकलने से पहिले यूरेनियम तथा अन्य Radio-active धातुओं के लिए विश्व माँग नगण्य थी। परन्तु इसकी सैनिक महत्ता और अणुशक्ति के औद्योगिक विकास की संभावनाओं के फलस्वरूप इस धातु का महत्त्व बहुत बढ़ गया है। इस धातु के स्वाभाविक स्रोतों में वास्तविक धातु का अंश इतना कम होता है, कि उनको निकालकर अलग करना कठिन तथा महँगा पड़ता है। सुरक्षा के दृष्टिकोण से विविध उत्पादक राष्ट्र अपने उत्पादन के आँकड़े विज्ञापित नहीं करते। परन्तु विश्वव्यापी उत्पादन कुछ टन प्रतिवर्ष से अधिक नहीं है।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका सबसे प्रधान उत्पादक देश है। इसका मुख्य स्रोत कोलेरैडो पठार है। इसके बाद बेल्जियन, कान्गो और कनाडा का स्थान है। चेकोस्लोवाकिया, पुर्त्तगाल और आस्ट्रेलिया अन्य उत्पादक राष्ट्र हैं। रूस में भी इस धातु की अनेक खानें है और पूर्वी जर्मनी के एर्जबर्ज (Erzgebirge) प्रदेश से भी यह धातु प्राप्त होती है।

रासायनिक खाद (Fertilizers)

सन् १९३८ की अपेक्षा अब रासायनिक खादों का उत्पादन दुगना हो गया है। रासायनिक खादों को देकर खेती की उपज बढ़ाई जाती है। तीन प्रधान रासायनिक

खाद वे है जिनसे नाइट्रोजन, फासफोरस और पोटाश मिलता है। अमोनियम सलफेट, नाइट्रोजन देनेवाला खाद है और कोयले की गैस तैयार करते समय प्राप्त होता है। जहाँ बिजली शक्ति उपलब्ध है, वहाँ नाइट्रोजन युक्त खादों को विशेष कृत्रिम रूप से तैयार किया जा सकता है।

फासफोरस की खाद विविध फासफेट चट्टानों से प्राप्त की जाती है और पोटाश खादें स्वाभाविक रूप से उपलब्ध पोटाशियम नमक से बनायी जाती हैं। जर्मनी में पोटाश के स्टॉसफर्ट (Strassfart) निक्षेप अब तक विश्वविख्यात थे।

फासफेट चट्टान का उत्पादन (१९५२)

(हजार टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका ...	११,४३१	रूस	२,०००
मरक्को	३,९५४	नाउरु	१,०६२
ट्यूनीशिया	२,२६४	अलजीरिया	६९३

विश्व योग : २३,२००

पोटाश का विश्व उत्पादन (१९५२)

(हजार टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका ...	१,२५१	फ्रांस	८६७
जर्मनी	१,१९८	विश्व योग	४,९००

सीमेन्ट (Cement)

चीका मिट्टी या चूने के पत्थर को मिलाकर भट्टियों में गर्म करके सीमेंट तैयार किया जाता है। इसे इमारतों और भवन निर्माण में विस्तृत रूप से प्रयोग करते हैं। बड़ी-बड़ी औद्योगिक योजनाओं में भी इसकी आवश्यकता पड़ती है।

सीमेंट का उत्पादन (१९५३)

(लाख टन में)

संयुक्त राष्ट्र अमरीका ...	४४५	फ्रांस	८४
रूस	१३२	जापान	७९
पश्चिमी जर्मनी	१४९	इटली	७४
संयुक्त राज्य	११४	बेल्जियम	४७

इन देशों के अलावा, कनाडा, भारत, पोलैण्ड, स्पेन, स्वीडन और दक्षिणी अफ्रीका संघ अन्य उत्पादक देश है। प्रत्येक का वार्षिक उत्पादन २०–३० लाख टन तक है।

अध्याय इक्कीस

विश्व के शक्ति साधन

(THE POWER RESOURCES OF THE WORLD)

विषय प्रवेश

औद्योगिक शक्ति के तीन प्रधान साधन है—कोयला, तेल और गिरता हुआ पानी। वर्त्तमान युग में गिरते हुए पानी से पन-बिजली तैयार की जाती है।

सन् १९१३ मे विश्वव्यापी औद्योगिक शक्ति का ९० प्रतिशत अंश कोयले से प्राप्त हुआ था। परन्तु हाल के दिनों में तेल और बिजली का उपयोग तेजी से बढ़ रहा है। कोयले के महत्त्व मे अब कमी होती जा रही है।

कोयला (Coal)

कोयले का वार्षिक उत्पादन १५,००० लाख टन है। इसके अन्तर्गत अन्थ्रासाइट विटुमिनस और लिगनाइट जाति के कोयले शामिल हैं परन्तु पीट का उत्पादन इससे बाहर है। आयरलैण्ड, हालैण्ड और रूस में पीट का विशेष महत्त्व है। कोयले से केवल शक्ति ही नही प्राप्त होती, बल्कि इससे अनेक गौण पदार्थ भी प्राप्त होते है जिनमें गैस, रसायन, खाद, सुगंधि, रंग आदि विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

कोयले के वास्तविक उत्पादन का वितरण कोयले के भंडार के वितरण से भिन्न है। बहुत-से विस्तृत कोयला-भंडार को अभी तक छुआ भी नहीं गया है। चीन का कोयला भंडार संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बाद दूसरे नम्बर का है, परन्तु राजनीतिक कठिनाइयों के कारण उनका अधिक उपयोग नहीं हो पाया है। इसी प्रकार के अन्य विस्तृत भंडार मध्य कनाडा में पाये जाते हैं, परन्तु वहाँ का कोयला निम्न कोटि का है। पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र अमरीका (यूताह राज्य में) तथा साईबेरिया में भी विस्तृत कोयला भंडार है, परन्तु यातायात की कठिनाई के कारण उनका अधिक उपयोग नही हो पाया है।

सन् १९५३ में कोयले के प्रमुख उत्पादक राष्ट्रों को अगले चित्र में दिखलाया गया है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका सबसे बड़ा उत्पादक है और कुल उत्पादन का एक-तिहाई भाग वहीं से प्राप्त होता है। अमरीका के कोयले का अधिकतर भाग पूर्वी अर्द्धभाग की खानों से प्राप्त होता है। पेनसलवेनिया, वरजीनिया, केनटकी और इलीनाय रियासतें कोयले के उत्पादन के लिए प्रमुख हैं।

कुल उत्पादन का आधा भाग यूरोप से प्राप्त होता है। युद्ध से पहिले कोयले के उत्पादन में प्रमुख देश ब्रिटेन और जर्मनी थे। चूँकि युद्ध के बाद जर्मनी का सालीशिया कोयला क्षेत्र पोलैण्ड को दे दिया गया इसलिए जर्मनी का उत्पादन सन् १९३९ की अपेक्षा कम है। युद्ध के दिनों में ग्रेट ब्रिटेन का उत्पादन भी कम हो गया और युद्धपूर्व से अभी भी २०० लाख टन कम है। सन् १९५३ में ग्रेट ब्रिटेन से ६२० लाख पौंड मूल्य का १७० लाख टन कोयला बाहर भेजा गया जबकि सन् १९३९ में निर्यात की मात्रा ४०० लाख टन थी। यूरोप में कोयले के उत्पादन में माँग-पूर्त्ति का संतुलन है। परन्तु सन् १९५१ में करीब २५० लाख टन कोयला संयुक्त राष्ट्र अमरीका से मँगवाया गया और उसका मूल्य डालरों में अदा किया गया।

यूरोप के देशों में अकेले पोलैण्ड में माँग से अधिक उत्पादन होता है और यूरोप का सबसे बड़ा निर्यातक देश पोलैण्ड ही है। रूस में कोयले का उत्पादन सन् १९३४ से तिगुना हो गया है और सन् १९१३ की अपेक्षा ग्यारह गुना अधिक हो गया है।

यूरोप, एशियाई रूस और उत्तरी अमरीका को छोड़कर शेष विश्व में १० प्रतिशत कोयला ही उत्पन्न होता है। इसका अधिकतर भाग भारत और जापान से प्राप्त होता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिणी गोलार्द्ध के देश कोयला उत्पादन के दृष्टिकोण से कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। दक्षिणी गोलार्द्ध के महाद्वीपों में प्रमुख कोयला उत्पादक क्षेत्र निम्नलिखित हैं—(क) दक्षिणी चिली में कौन्सेपसिन (Concepsion) के समीप, (ख) दक्षिणी अफ्रीका में न्यूकैसल (Newcastle) मिडलबर्ग (Middleburg) और वान्की (Wankie), (ग) आस्ट्रेलिया में न्यूकासल (Newcastle) इप्सविच (Ipswich) और काली (Collie), (घ) न्यूजीलैण्ड में वेस्ट पोर्ट और ग्रेमाउथ (West Part and Greywouth)।

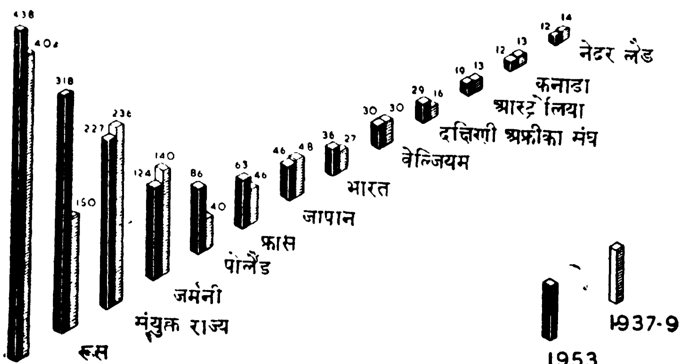

चित्र १६५—कोयले का विश्वव्यापी उत्पादन (दस लाख टन में)

खनिज तेल (Mineral Oil)

सन् १८५० में बहुत कम खनिज तेल प्रयोग किया जाता था, परन्तु आजकल यह विश्व की प्रमुख वस्तु है और इसे औद्योगिक शक्ति, जल को गर्म करने, रोशनी करने, चिकना करने तथा विविध रासायनिक पदार्थ बनाने में प्रयोग करते हैं। जहाजों में कोयले के स्थान पर तेल का प्रयोग तेजी से बढ़ रहा है। सन् १९५३ में विश्व के ९० प्रतिशत जहाज (टन भार के अनुसार) तेल द्वारा ही चलाये जाते थे।

यातायात और उद्योग-धन्धों में इसके महत्त्व के कारण तेल का उत्पादन आश्चर्य-जनक रीति से बढ़ रहा है। नये तेल क्षेत्र खोले जा रहे हैं और संसार के तेल भंडार का पता लगाने के अनेक प्रयत्न हो रहे हैं। इस समय तेल भंडार के विषय में जानकारी इतनी कम और जाँच-पड़ताल इतनी सीमित है कि कोई विश्वसनीय आँकड़े प्राप्त नहीं किये जा सकते।

खनिज तेल निकालने से पृथ्वी के भीतर उसका भंडार बराबर खाली होता जाता है। किसी भी देश में नए तेल-क्षेत्रों के पता लगने पर उसका महत्त्व बढ़ जाता है, परन्तु थोड़े अरसे के बाद जब तेल भंडार समाप्त हो जाता है, तो फिर वही प्रश्न खड़ा होता है। उदाहरण के लिए, सन् १९२१ में मेक्सिको का वार्षिक उत्पादन ३०० लाख टन था और संयुक्त राष्ट्र अमरीका के बाद उसका दूसरा स्थान था परन्तु सन् १९३४ में मेक्सिको ने केवल ६० लाख टन तेल ही उत्पन्न किया और तेल उत्पादक देशों में इसका स्थान सातवाँ हो गया। पिछले कुछ सालों से कैलीफोर्निया का तेल उत्पादन भी कम हो गया है।

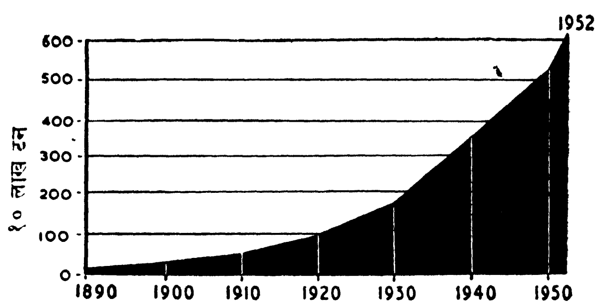

चित्र १६६—खनिज तेल का विश्व उत्पादन

आजकल तेल उत्पादन में संयुक्त राष्ट्र अमरीका सर्वप्रमुख है। विश्वव्यापी उत्पादन का आधा भाग वहीं से प्राप्त होता है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के प्रमुख तेल केन्द्र टेक्सास, ओक्लाहामा, कन्सास और कैलीफोर्निया हैं। उपज क्षेत्रों से उपयोगी प्रदेशों तथा बन्दरगाहों तक तेल ले जाने की एक लाख मील लम्बी पाइप लाइन है।

वेनेजुला में तेल का उत्पादन अभी हाल में ही शुरू हुआ है, परन्तु उसका स्थान दूसरा है। माराकैबो (Maracaibo) की खाड़ी में और उसके चारों ओर प्रमुख

तेल-क्षेत्र स्थित हैं। पूर्ण आशा है कि दक्षिणी अमरीका और विशेष कर एण्डीज पर्वत माला के पूर्वी किनारे पर और भी तेल-क्षेत्र पाये जायेंगे।

रूस का तीसरा स्थान है। रूसी तेल-क्षेत्र कैस्पियन सागर पर बाकू के पास और काकेशस पर्वत के उत्तर में ग्रोजनी तथा मैकाप में पाये जाते हैं। यूराल पर्वतमाला के पश्चिमी किनारे पर कुछ नए तेल-क्षेत्रों का विकास हुआ है। बाकू और ग्रोजनी काला सागर से पाइप लाइन द्वारा सम्बन्धित हैं। यूराल पर्वतीय तेल-क्षेत्रों को उद्योग केन्द्रों से मिलाने के वास्ते अन्य पाइप लाइनों का निर्माण हो रहा है।

रूमानिया के तेल-क्षेत्र कारपेथियन पर्वतमाला के दक्षिणी सिरे पर प्लोस्टी (Ploesti) में स्थित हैं। युद्धकाल मे वह बहुत बुरी तरह बरबाद हो गया था और अभी भी उत्पादन युद्धपूर्व से कम ही है।

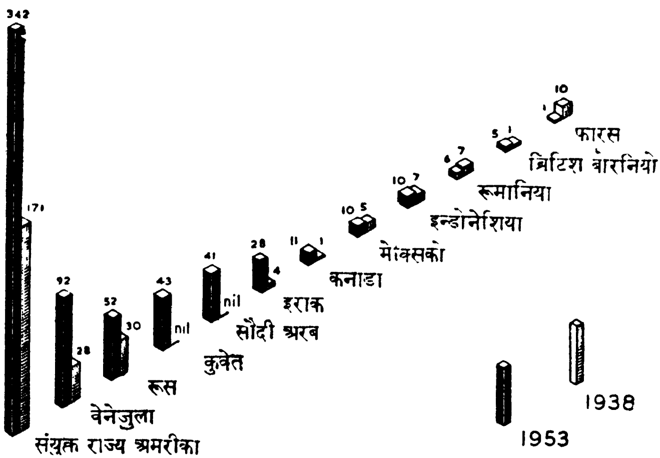

चित्र १६७—खनिज तेल का विश्वव्यापी उत्पादन (दस लाख टन में)

फारस (ईरान) के तेल-क्षेत्र देश के दक्षिण पश्चिम में मैदान-ए-नाफटान में हैं। ईराक के उत्तर में किरकुक के पास भी तेल भंडार को निकाला जा रहा है। किरकुक के समीप का तेल पाइप लाइन द्वारा भूमध्यसागरीय बन्दरगाह ट्रिपोली और हैफा को ले जाया जाता है। सन् १९५६ तक ईराक में तेल का उत्पादन ३०० लाख टन हो जायेगा। दूसरे महायुद्ध के दौरान और उसके बाद ईरान में तेल का उत्पादन तेजी से बढ़ा। सन् १९५१ के शुरू में उत्पादन ३४० लाख टन प्रतिवर्ष के हिसाब से था परन्तु तेल उद्योग के राष्ट्रीयकरण और ईरान तथा अंग्रेज़ों के झगड़े में तेल का उत्पादन बिल्कुल ही बन्द हो गया। परन्तु इस प्रकार से हुई तेल की कमी सौदी अरब और कुवैत के तेल-क्षेत्रों द्वारा पूरी कर दी गई है। ये तेल-क्षेत्र अभी हाल में ही पता लगे हैं और प्रत्येक का वार्षिक उत्पादन ४०० लाख टन है। सौदी अरब का तेलक्षेत्र अमरीकी पूँजी से चल रहा है और कुवैत के क्षेत्र को अंग्रेज और अमरीकी पूँजी संयुक्तरूप से चला रही है। अन्य तेल उत्पादक देश मेक्सिको, इन्डोनेशिया (सुमात्रा, बोर्निओ), बर्मा, पीरू, पेटा-

गोनिया, ट्रिनीडाड तथा कनाडा हैं। अलबर्टा में कनाडियन तेल-क्षेत्र का उत्पादन कम होते हुए भी तेजी से बढ़ रहा है। एडमानटन से रेजीना तथा सुपीरियर झील के तट पर स्थित तेल साफ करने के कारखानों तक पाइप लाइन बना दी गई है। विश्वव्यापी तेल उत्पादन माँग के बराबर है। इस कारण फारस के तेल-क्षेत्रों में उत्पादन को तेजी से शुरू करना कठिन है।

संसार के तेल-क्षेत्रों के वितरण को ध्यान से देखने के बाद स्पष्ट हो जाता है कि ये मोड़दार पर्वतों के बीच में या समीप पाये जाते हैं। खनिज तेल के उत्पादन से ही सम्बन्धित प्राकृतिक गैस (Natural Gas) का उत्पादन भी है। परन्तु इसका उपयोग कनाडा तथा संयुक्त राष्ट्र अमरीका तक ही सीमित है। यहाँ पाइप लाइन द्वारा गैस को टेक्सास से शिकागो पहुँचाया जाता है। उत्तरी इटली में भी प्राकृतिक गैस काफी निकलती है, परन्तु तेल का अभाव है।

तेल का वितरण और प्रमुख जहाजी मार्गों का उससे सम्बन्ध ध्यान देखने योग्य है। मध्यपूर्व और इन्डोनेशिया का तेल भूमध्यसागर—स्वेज मार्ग के समीप पड़ता है। आन्ध्र महासागर के आरपार के मार्ग को अमरीकन तेल मिलता है। पनामा मार्ग के समीप अमरीकी, मेक्सिको और वेनेजुला के तेल-क्षेत्र पड़ते हैं।

तेल उत्पादन केन्द्रों का औद्योगिक केन्द्रों से सम्बन्ध भी ध्यान देने योग्य है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका, ब्रिटेन, जर्मनी और रूस प्रधान औद्योगिक देश हैं जिनमें संयुक्त राष्ट्र अमरीका तथा रूस में कोयले व तेल का अपार भंडार है। ब्रिटेन और जर्मनी में कोयला तो है, परन्तु तेल का अभाव है। यही कारण है कि ब्रिटेन ने सदैव तेल की खोज जारी रखी है। इन देशों में कोयले से तेल निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है।

तेल को साफ करने में कच्चे तेल से कई प्रकार की वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। साफ किये हुए तेल का आधा भाग ईंधन के रूप में प्रयोग किया जाता है। एक चौथाई भाग मोटरों व हवाई जहाजों में प्रयोग किया जाता है। इसके बाद बिटुमन, चिकनाने के तेल तथा जलाने वाला तेल आदि बनाया जाता है। तेल को साफ करने की क्रिया में टुकड़ों में अलग-अलग करके छानते हैं। दशाओं में जरा बहुत परिवर्तन करके इन गौण वस्तुओं का उत्पादन घटाया बढ़ाया जा सकता है।

तेल को साफ करने का उद्योग बड़ा ही मशीन युक्त होता है। इसकी मशीनें बहुत बड़ी तथा मूल्य वाली होती हैं। साउथ एम्पटन के पास फाले (Fawley) में तेल साफ करने का नया कारखाना यूरोप में सबसे बड़ा है। इसको बनाने में ४०० लाख पौंड खर्च हुए और १० करोड़ टन इस्पात प्रयोग किया गया। यही कारण है, कच्चे तेल की अपेक्षा साफ किये हुए तेल की वस्तुएँ अधिक महँगी होती हैं।

संयुक्त राष्ट्र अमरीका में सबसे अधिक तेल साफ किया जाता है। संसार के कुल उत्पादन का दो-तिहाई भाग ४,००० लाख टन यहीं साफ किया जाता है। इसके बाद नेदरलैण्ड्स पश्चिमी द्वीपसमूह का स्थान है, जहाँ ३३० लाख टन तेल साफ किया जाता है। युद्ध से पूर्व इंग्लैण्ड में प्रयुक्त सब तेल संयुक्त राष्ट्र अमरीका से साफ करने के

बाद मँगवाया जाता था। युद्ध से अब तक डालर मुद्रा पर भार कम करने के लिए ग्रेट-ब्रिटेन में तेल साफ करने के अनेक कारखाने बना दिये गए हैं। इन कारखानों में मध्य-पूर्व का तेल साफ किया जाता है और सन् १९५३ में संयुक्त राज्य का तेल साफ करने वाले देशों में तीसरा स्थान है। यहाँ २९० लाख टन तेल साफ किया गया। अब तो यहाँ से ७०० लाख पौंड मूल्य का पेट्रोल निर्यात भी किया जाता है। ईरान में अबादान (Abadan) का तेल साफ करने का कारखाना संसार में सबसे बड़ा है और सन् १९५१ तक एशिया और आस्ट्रेलिया की सम्पूर्ण माँग की पूर्ति इसी के उत्पादन द्वारा होती थी। अदन, भारत और आस्ट्रेलिया में तेल साफ करने के नए कारखाने खोले जा रहे हैं। आस्ट्रेलिया का गीलांग कारखाना तो तेल साफ करने भी लगा है।

हाल के दिनों में, सयुक्त राष्ट्र अमरीका में तेल साफ करने के उद्योग के सहारे रसायन उद्योग उठ खड़ा हुआ है। इससे बहुत-से रासायनिक पदार्थ तैयार किये जाते हैं और अब इसी प्रकार का उद्योग संयुक्त राज्य में भी होने लगा है।

पन बिजली (Water Power)

गिरते हुए पानी से शक्ति उत्पादन करने का काम तेल के प्रयोग के बाद में शुरू किया गया। आजकल पन-बिजली का प्रयोग केवल उन्ही देशों में होता है, जो आर्थिक विकास की चरम सीमा पर है। पन-बिजली के विकास के लिए निम्नलिखित प्राकृतिक दशायें होना जरूरी है :—

(अ) भारी परन्तु साल भर बराबर से वर्षा ताकि नदियों का प्रवाह बना रहे।

(ब) बहुत अधिक ठंडी सर्दी के मौसम का अभाव ताकि नदियाँ जमने न पाये।

(स) उच्च पर्वतों का होना ताकि नदियाँ तेजी से बहें। नदी के बीच में जल-प्रपातों का होना लाभप्रद होता है।

(द) झीलें भी होनी चाहिएँ ताकि उनमें पानी जमा हो जाये और नदियों का प्रवाह कम न होने पाये।

संसार के बहुत से प्रदेशों मे प्राकृतिक सुविधायें है, परन्तु उनका प्रयोग नहीं किया गया है। उदाहरण के लिए, अफ्रीका के कान्गो बेसिन में संभावित जलशक्ति का सबसे बड़ा भंडार है, परन्तु उनका जरा-सा भी विकास नहीं हुआ है। भविष्य में यदि पन-बिजली का विकास हो जाये तो यहाँ के बृहत् खनिज भंडार का उपयोग हो सकेगा—इस महाद्वीप पर उपलब्ध ताम्बा, लोहा, फासफेट, सोना, एसीबेस्टास आदि का उपभोग हो सकेगा।

अफ्रीका के बाद संभावित जलशक्ति के भंडार के दृष्टिकोण से एशिया का स्थान आता है। एशियाई रूस के दक्षिणी पर्वतों में काफी प्रगति हुई है, परन्तु चीन में एक भी पन-बिजली केन्द्र नहीं है और सम्पूर्ण एशिया में तैयार की गई पन-बिजली नार्वे या इटली से भी कम है।

संभावित जलशक्ति के अन्य प्रदेश दक्षिणी अमरीका के एण्डीज पर्वत में और ब्राजील तथा गिनी के पठारों के किनारों पर हैं।

उत्पन्न या तैयार पन-बिजली का ९५ प्रतिशत अंश उत्तरी अमरीका और पश्चिमी तथा मध्य यूरोप में केन्द्रित है। परन्तु सबसे अधिक पन-बिजली दक्षिणी रूस की नीपर (Dnieper) नदी के किनारे पर स्थित नीपरोस्ट्राय (Dnieprostroi) में तैयार की जाती है।

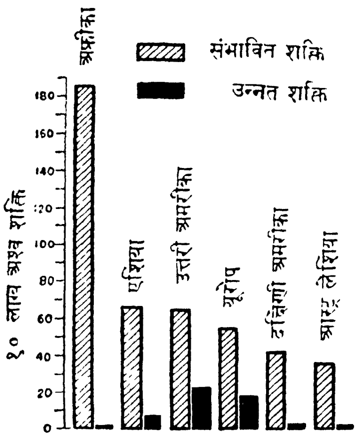

चित्र १६८—महाद्वीपों में पन बिजली का वितरण

पन-बिजली को प्रयोग करने वाले प्रमुख देश संयुक्त राष्ट्र अमरीका, नार्वे, न्यूफाउण्डलैंड, कनाडा, स्विट्जरलैंड, स्वीडन, इटली, फ्रांस, रूस, न्यूजीलैंड, जापान, चिली, जर्मनी, ब्राजील और ब्रिटेन हैं। इनमें से बहुत-से देशों में जैसे नार्वे, स्वीडन, स्विट्जरलैण्ड और इटली में कोयले का बिल्कुल अभाव है। वहाँ के औद्योगिक विकास का आधार पन-बिजली ही है। सन् १९३८ में यूरोप के उद्योगों में तीन-चौथाई शक्ति कोयले से ही प्राप्त होती थी परन्तु अब केवल दो-तिहाई औद्योगिक शक्ति ही कोयले से मिलती है। प्रति व्यक्ति उपभोग के आधार पर नार्वे, कनाडा और स्विट्जरलैण्ड में सबसे अधिक बिजली का इस्तेमाल किया जाता है परन्तु संयुक्तराष्ट्र अमरीका में पन-बिजली का उत्पादन सबसे अधिक है।

चित्र १६९—बिजली का उत्पादन (हजार दस लाख किलो अश्व शक्ति)

प्रायः सभी देशों में पिछले १५ सालों में घरेलू और औद्योगिक उपयोग के लिए बिजली का प्रयोग दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा है। इसका कारण यह है कि इसका उपयोग अधिक सुविधाजनक तथा लाभप्रद रहता है। कनाडा जैसे देशों में जलशक्ति या पन-बिजली के कारण ही इतनी अधिक उन्नति हुई है। अन्य देशों में कोयले की शक्ति को परिवर्त्तन करके जलशक्ति बनाई जाती है।

अध्याय बाईस

विश्व यातायात

(WORLD COMMUNICATION)

समुद्री मार्ग (Ocean Routes)

आन्ध्र महासागर के मार्ग

कुछ मानचित्रावली में ऐसे मानचित्र होते है जिनमें संसार के विभिन्न व्यापार मार्गों को अलग-अलग मोटाई की रेखाओं द्वारा दिखाया जाता है। इस प्रकार के मानचित्रों से स्पष्ट है कि उत्तरी आन्ध्र महासागर का मार्ग उत्तरी पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमरीका जैसे दो घने बसे, उन्नत तथा औद्योगिक प्रदेशों के बीच सम्पर्क स्थापित करता है। इस मार्ग के अमरीकी छोर के अनेक अन्तिम बिन्दु है। सबसे अधिक जहाज तो न्यू इंगलैण्ड के बन्दरगाहों को जाते है और न्यूयार्क, फिलाडेल्फिया, बाल्टीमोर आदि में उनसे माल उतारा जाता है। गर्मी के मौसम में सेंट लारेन्स का मार्ग खुला रहता है और मुख्य उत्तरी आन्ध्र महासागर का मार्ग कुछ अधिक उत्तर में—न्यूफाउन्डलैण्ड के उत्तर से होकर जाता होता है।

पूर्वी उत्तरी अमरीका और उत्तरी पश्चिमी यूरोप दोनों ही शिल्प उद्योगी प्रदेश है। इसलिए कारखानों में बने सामान का व्यापार कम है और भोजन तथा कच्चे माल का हेर-फेर अधिक होता है। अतएव पूर्व की अपेक्षा पश्चिम की ओर कम माल ले जाया जाता है। किसी अन्य समुद्री मार्ग की अपेक्षा इस मार्ग से अधिक मुसाफिर सफर करते हैं। अमरीका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी और इटली के सबसे अधिक आरामदे जहाज इसी मार्ग पर चलते है।

आन्ध्र महासागर पर चलने वाले जहाजों के मार्ग यूरोप से पश्चिमी द्वीपसमूह, पनामा और कैनेरीज की तरफ पंखे की तीलियों की भाँति फैले हुए हैं। कैनेरीज़ से व्यापार की दो धारायें हो जाती हैं—एक मार्ग दक्षिण-पश्चिम को अमरीका के रियोडिजैनीरो और ब्यूनस आयर्स को जाता है और दूसरा दक्षिण पूर्व की तरफ केप टाउन को चला जाता है। मार्गों की दूसरी शृंखला न्यूयार्क प्रदेश से भूमध्यसागर, दक्षिणी अमरीका, और पनामा की ओर जाती है।

आन्ध्र महासागर के व्यापार मार्गों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यूरोप-अमरीका के बीच मार्गों के समान कोई भी मार्ग दक्षिणी गोलार्द्ध में नहीं है। दक्षिणी अफ्रीका के शीतोष्ण प्रदेश और अर्जेन्टाइना में प्रायः एक ही प्रकार के भोज्य पदार्थ तथा कच्चा माल उत्पन्न होता है। इसलिए दोनों के बीच व्यापार की अधिक गुन्जाइश

नही है। इन दोनों प्रदेशों का व्यापार यूरोप और अमरीका के साथ होता है, जहाँ इन भोज्य पदार्थ तथा कच्चे माल की खपत होती है और जहाँ से इन्हें बना हुआ सामान मिल जाता है।

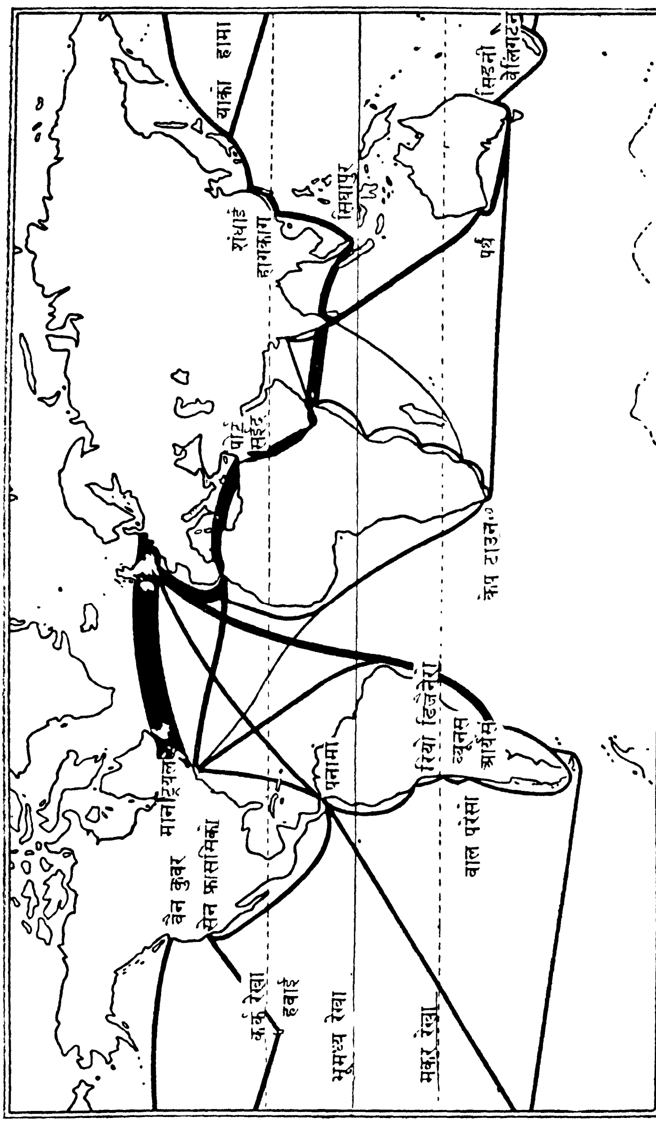

चित्र १७०—संसार के प्रधान समुद्री मार्ग

भूमध्य सागर-स्वेज का मार्ग

उत्तरी आन्ध्र महासागर के मार्ग के बाद भूमध्यसागर-स्वेज मार्ग का स्थान आता

है। यह मार्ग पूर्व को, आस्ट्रेलिया को और पूर्वी अफ्रीका को जाता है। यह महान् मार्ग पुराने संसार के बीच से होकर गुजरता है और इस मार्ग से होकर जाने वाले जहाज अधिक बन्दरगाहों पर रुक सकते हैं तथा अधिक मनुष्यों के बीच से होकर जाते हैं। जिब्राल्टर, माल्टा, पोर्ट सईद, अदन, कोलम्बो जैसे बहुत-से बन्दरगाह रास्ते में पड़ते हैं, जहाँ रुक कर जहाज कोयला या तेल ले सकते हैं। इस प्रकार ये अधिक माल ढो सकते है। परन्तु इस मार्ग पर इतने अधिक मुसाफिर नहीं होते कि आन्ध्र महासागरीय मार्ग पर चलने वाले बड़े-बड़े जहाजों को चलाना पड़े और ये बड़े-बड़े जहाज स्वेज नहर में से होकर जा भी नही सकते, क्योंकि उनके लिए इसको गहरा करना होगा। भारत, पूर्वी द्वीप समूह, चीन और जापान के लिए भारत के सभी जहाज और अमरीका के अधिकतर जहाज इसी मार्ग पर से होकर जाते हैं। इनमें तेल ले जाने वाले टैंकर जहाजों की संख्या सबसे अधिक होती है। ये जहाज फारस की खाड़ी से आते-जाते है।

भूमध्यसागर के तट तक पाइप लाइनों के बन जाने से उम्मीद थी कि स्वेज द्वारा तेल का आना-जाना कम हो जावेगा परन्तु कुवेत और सौदी अरब में तेल का उत्पादन इतना बढ़ गया कि इसका बिल्कुल उल्टा हुआ है। सन् १९५१ में अबादान स्थित एंग्लो-ईरानियन तेल कम्पनी के कारखाने के बन्द हो जाने से यूरोप और अमरीका में साफ किये हुए तेल को आस्ट्रेलिया और एशिया की तरफ ले जाने वाले जहाजों की संख्या अधिक हो गई है। जब अबादान का कारखाना फिर से चालू हो जायेगा और अदन, भारत और आस्ट्रेलिया में तेल साफ करने के नये कारखाने खुल जायेंगे तो यह स्थिति समाप्त हो जायेगी।

स्वेज से होकर आस्ट्रेलिया को प्रधानतः मुसाफिर और डाक जाती है। स्वेज नहर के कर अधिक है, इसलिए सामान व मुसाफिर दोनों के ही लिए सस्ते किराये की वजह से आस्ट्रेलिया को जानेवाले जहाज केप मार्ग से होकर जाते है। ये जहाज केप टाउन में तेल या कोयला लेने के बाद सीधे आस्ट्रेलिया की ओर रवाना हो जाते हैं, क्योंकि दक्षिणी शीतोष्ण कटिबंध की तेज बहने वाली पछुवाँ हवायें सहायता पहुँचाती है। पाल से चलने वाले जहाज हमेशा केप मार्ग से ही जाते हैं। दक्षिणी हिन्द महासागर की पछुवाँ हवायें इन जहाजों के लिए सुविधाजनक होती है। आस्ट्रेलिया से लौटते समय जहाज निम्नलिखित तीन मार्गों से होकर जाते है :—

(१) पाल वाले जहाज दक्षिणी प्रशान्त महासागर में पूर्व की ओर जाते हैं और तेज पछुवाँ हवाओं के सहारे हार्न अन्तरीप और आन्ध्र महासागर होते हुए यूरोप जाते है। प्रतिवर्ष अन्न ले जाने वाले जहाज इसी मार्ग से जाते हैं।

(२) कुछ जहाज वापसी में भी दक्षिणी अफ्रीका होकर आते है। परन्तु वापसी में वे कुछ थोड़े उत्तर से होकर जाते है ताकि उन्हें तेज पछुवाँ हवाओं के विरोध का सामना न करना पड़े।

(३) आस्ट्रेलिया से इंग्लैण्ड आनेवाले ५० प्रतिशत जहाज स्वेज से ही होकर

आते हैं। प्राय: ये जहाज ऊन, गेहूँ, मांस आदि लाते हैं। इसलिए ये जहाज थोड़ा अधिक खर्चे का ध्यान न करके छोटे रास्ते से ही आना पसन्द करते हैं।

प्रशान्त महासागर के मार्ग

प्रशान्त महासागर के मार्ग सबसे अधिक हाल के है। उत्तरी अमरीका के पश्चिमी भाग और चीन-जापान के बीच एक मार्ग है, जो बहुत मानों में उत्तरी आन्ध्र महासागर के मार्ग से मिलता-जुलता है। जापान से कच्चा रेशम और चाय तथा हवाई द्वीपसमूह से चीनी पूर्व की ओर अमरीका को ले जाई जाती है। लौटती बार ये जहाज प्रधानतया लकड़ी, बना हुआ सामान और भोज्य पदार्थ लाते है। प्रशान्त महामागर के मार्गों के अन्तिम बिन्दु चार हैं—(१) पश्चिमी अमरीका (वैनकुवर और सैन फ्रांसिस्को), (२) पनामा, (३) चीन, जापान और पूर्व, (४) आस्ट्रेलिया।

प्रशान्त महासागरीय मार्गों की विशेषता यह है कि पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमरीका और यूरोप से चलने वाले तेज मुसाफिर जहाज पनामा-न्यूजीलैण्ड मार्ग से होकर जाते हैं। दक्षिणी आन्ध्र महासागर की ही तरह दक्षिणी प्रशान्त महासागर में कोई विशेष मार्ग नहीं है जो पूर्व से पश्चिम की ओर जाते है। आस्ट्रेलिया और दक्षिणी अमरीका की उपज इस प्रकार की नही है कि व्यापार हो सके।

उत्तरी गोलार्द्ध में पूर्व से पश्चिम की ओर फैले हुए दो बड़े मार्ग भूमि और समुद्री मार्गों की एक पेटी भी बनाये हुए हैं। उत्तरी पश्चिमी यूरोप से पूर्वी अमरीका समुद्र द्वारा जाया जा सकता है। पूर्वी अमरीका से पश्चिमी अमरीका महाद्वीपीय रेलमार्ग द्वारा पहुँचा जा सकता है। पश्चिमी अमरीका और पूर्वी एशिया के बीच समुद्र द्वारा सम्पर्क होता है और पूर्वी एशिया को यूरोप से मिलाने के लिए महाद्वीपीय रेलमार्ग है। इस प्रकार के पेटीनुमा मार्गों का दक्षिणी गोलार्द्ध में अभाव है।

पनामा और स्वेज

सन् १९१४ में पनामा नहर के खुलने से पहिले, अमरीका के पूर्वी और पश्चिमी तटवर्ती बन्दरगाहों के बीच आने-जाने का सब से छोटा मार्ग हार्न अन्तरीप होकर था। उत्तरी पश्चिमी यूरोप से दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट को जाने वाले जहाजों को भी यही मार्ग ग्रहण करना पड़ता था। पनामा नहर के बन जाने से अमरीकी बन्दरगाहों और व्यापार को बहुत बड़ी सहायता मिल गई है। पश्चिमी यूरोप के बन्दरगाहों को भी इस से लाभ हुआ है। प्रतिवर्ष पनामा नहर से होकर स्वेज नहर का एक तिहाई माल गुजरता है।

इस नहर के खुलने से होने वाले लाभ इस प्रकार हैं:—

(१) इंग्लैण्ड से न्यूजीलैण्ड तक का मार्ग स्वेज की अपेक्षा पनामा से होकर कुछ कम पड़ता है परन्तु सिडनी तक की दूरी स्वेज से ही होकर कम है। स्वेज मार्ग पर अधिक देश स्थित हैं, इसलिए माल व मुसाफिर इकट्ठा करने की सुविधा रहती है। इसलिए न्यूजीलैंड को पनामा मार्ग से केवल मुसाफिर व डाक ही भेजी जाती हैं।

(२) यद्यपि इंग्लैण्ड और आस्ट्रेलिया के बीच की दूरी पनामा मार्ग से कम नहीं हो पाती परन्तु पूर्वी अमरीका और आस्ट्रेलिया के बीच का फासला इस मार्ग से जरूर कम हो जाता है।

(३) पूर्वी एशिया और यूरोप के बीच सम्पर्क स्वेज मार्ग से ही करीब पड़ता है। इसलिए इस माने में स्वेज मार्ग का महत्त्व उसी प्रकार कायम है। परन्तु हाँग-काँग से उत्तर तथा पूर्व की ओर स्थित सभी बन्दरगाह जैसे शान्घाई, मैनीला, याकोहामा आदि पनामा मार्ग से ही न्यूयार्क से करीब पड़ते है। इसलिए पनामा मार्ग द्वारा सुदूरपूर्व अमरीकी व्यापार अधिक नहीं होता क्योंकि हाँग-काँग से पश्चिम में भारतीय और एशियाई बन्दरगाहों पर आने वाले अमरीकी जहाज अभी भी स्वेज मार्ग से ही आना पसन्द करते हैं क्योंकि दूरी भी कम है और रास्ते में व्यापार की सुविधायें भी अधिक हैं।

(४) उत्तरी व दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी तट पनामा नहर खुलने से पूर्वी अमरीका और पश्चिमी यूरोप के समीप आ गए हैं। यह पनामा नहर का सबसे बड़ा लाभ है, क्योंकि इसके द्वारा दक्षिणी अमरीका के पश्चिमी राज्यों का व्यापार पहले से अधिक हो गया है। अब ब्रिटिश कोलम्बिया से अनाज, लकड़ी तथा अन्य भारी सामान सस्ते जलमार्ग से भेजा जाने लगा है। पहिले इसी सामान को महँगे महाद्वीपीय मार्ग से भेजा जाता था।

(५) जहाँ तक संयुक्त राष्ट्र अमरीका का सम्बन्ध है, पनामा नहर से सबसे अधिक लाभ यह हुआ कि उसके पूर्वी और पश्चिमी तटों के बीच दूरी बहुत कम हो गई। इससे न केवल व्यापार को ही लाभ हुआ बल्कि सैनिक दृष्टिकोण से भी सुविधा हो गई। राजनीतिक आवश्यकता के अनुसार अमरीकी जलसेना के जहाजों को अब आन्ध्र महासागर से प्रशान्त महासागर में अधिक आसानी और जल्दी से भेजा जा सकता है।

(६) पनामा नहर के खुल जाने से पश्चिमी द्वीपसमूह का महत्त्व बहुत बढ़ गया है, क्योंकि पहले यह महासागरीय मार्ग का अन्तिम बिन्दु ही था परन्तु अब यह एक महत्त्वपूर्ण मार्ग के मध्य में पड़ता है।

वायुमार्ग

महाद्वीपों और महासागरों के विस्तार से स्थल व जलमार्ग स्वभावतः सीमित हो जाते हैं। वायुमार्गों के लिए ऐसी कोई भी सीमा नहीं है। शुरू-शुरू में दूरतक उड़ान करने में इस डर से कि कहीं जबरदस्ती उतरना न पड़े, निम्नलिखित बातों का ध्यान रक्खा जाता था और वायुमार्ग बनाते समय, इनको छोड़ देते थे :—

(क) महासागर के विस्तृत खंड। वायुमार्ग जहाँ तक हो सकता था स्थल खंड और द्वीपों की शृंखला के साथ-साथ ही बनायी जाती थी।

(ख) विस्तृत मरुस्थली भागों को।

(ग) उच्च पर्वतीय प्रदेशों को जहाँ पर बादल, अदृश्यता या बर्फ के कारण हवाई उड़ान करना खतरनाक होता था।

(घ) विस्तृत वन प्रदेशों को, जहाँ हवाई जहाज उतारना बहुत ही कठिन होता था।

इस प्रकार जिन रुकावटों के कारण मनुष्य स्थलखंड पर नहीं बढ़ पाता था, उन्ही रुकावटों के कारण वायुमार्ग भी नहीं बनाये जाते थे। हवाई जहाजों के प्रकारों में सुधार हो जाने से, अब ऐसे बहुत कम प्रदेश रह गए है जहाँ केवल प्राकृतिक बनावट के आधार पर वायुमार्ग का बनना निर्भर रहता है। अब केवल विस्तृत महासागर और उच्चतर पर्वतीय श्रेणियाँ ही कठिनाई उपस्थित करती है।

आजकल वायुमार्ग बनाने मे दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाता है। प्रथम तो भूमि की सुविधा और दूसरे माल व मुसाफिरों की उपलब्धता ताकि वायुयान संचालन लाभप्रद रहे। वर्तमान वायुयानों को भूमिस्थित यन्त्रों से विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। वायुयान संचालन मे रेडियो सम्बन्धी सहायता, ऋतु सम्बन्धी ज्ञान, हवाई अड्डों और उतरने के स्थान की सुविधा तथा कर विभाग के दफ्तरों तथा मुसाफिरो के ठहरने के लिए काफी स्थान का होना बड़ा ही जरूरी होता है। चूँकि ये सभी सुविधायें घने आबाद प्रदेशों मे अधिक आसानी से मिल सकती है और इन्ही भागों मे वायुयात्रा के लिए माँग भी अधिक रहती है, इसलिए वायुमार्ग कम बसे प्रदेशो जैसे रेगिस्तान और वनों पर से होकर नही जाते।

दिन-प्रति-दिन हवाई अड्डों की संख्या दुनिया मे बढ़ रही है, इसलिए पुराने मार्गो के स्थान पर नए मार्ग बराबर बनते रहते है और मुसाफिरों की सुविधानुसार उसमें अदल-बदल करते रहते है। सबसे ज्यादा काम मे आने वाले वायुमार्गों पर हवाई उडानें दो प्रकार की होती है——धीरे-धीरे चलनेवाली और अधिक स्थानों पर उड़नेवाली उड़ाने तथा तेज चलनेवाली और कम-से-कम स्थानों पर रुकने वाली उड़ानें। अक्सर लम्बी उड़ानों में मुसाफिरों को एक या अधिक रातें होटलों में बितानी पड़ती हैं।

संसार के प्रमुख वायु मार्ग निम्नलिखित हैं——

(१) **उत्तरी आन्ध्र महासागर और उत्तरी अमरीका** का वायुमार्ग युद्धकाल मे बना और इसे लम्बे सागरीय भाग को पार करना पड़ता है। सन् १९५१ के बाद मे आन्ध्र महासागर को वायुद्वारा पार करने वालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रही है। लन्दन से न्यूयार्क और मानट्रियल आदि नगरों को सीधा वायुमार्ग जाता है। ये मार्ग स्काटलैण्ड के प्रेस्टविक, आयरलैण्ड के शैनन और न्यूफाउन्डलैण्ड के गैन्डर से होकर गुजरते है। यदि मुख्य मार्ग पर मौसम खराब हो तो वायुयान आइसलैण्ड होकर जा सकते है। लन्दन से बरमूडा तक का सीधा वायुमार्ग है। इस वायुमार्ग का सम्बन्ध पश्चिमी द्वीपसमूह और कैरीबियन राज्यों से है। एक दूसरा वायुमार्ग लिस्बन और एज़ोर से होकर जाता है। पश्चिमी द्वीपसमूह का न्यूयार्क या गैन्डर से भी वायु द्वारा सम्बन्ध है।

(२) **दक्षिणी आन्ध्र महासागर और दक्षिणी अमरीका** को ब्रिटिश ओवरसीज एयरवेज कारपोरेशन के हवाई जहाज उड़ानें करते है। इसका मार्ग मैडरिड, लिस्बन, डकार, रेसाइफ (ब्राजील) रिओ डि जैनीरो और ब्यूनस आयर्स से होता हुआ

एण्डीज पार करके सैनटियागो तक जाता है । डकार में इस वायुमार्ग से सम्बन्धित अन्य वायुमार्ग बाथर्स्ट, फ्रीटाउन और अक्रा को जाते हैं। इस प्रकार पश्चिमी अफ्रीका भी इसी मार्ग पर आ जाता है ।

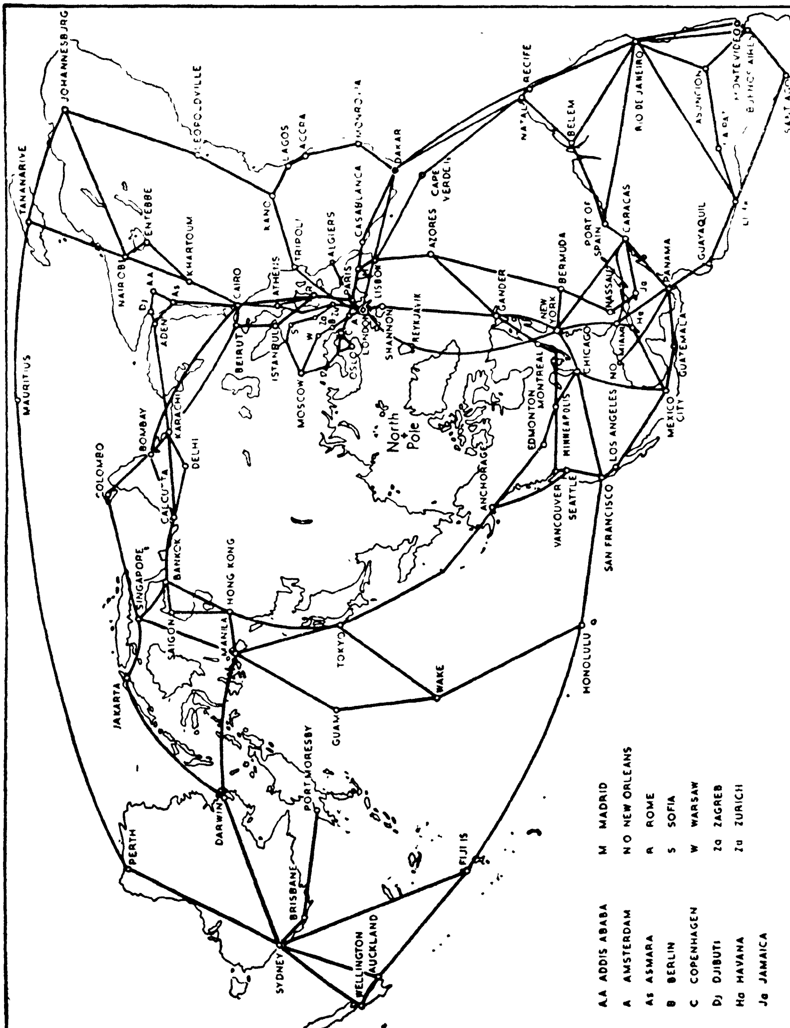

चित्र १७१—विश्व के मुख्य वायु मार्ग—उत्तरी गोलार्द्ध में पूर्व से पश्चिम के ओर की पट्टी पर ध्यान दीजिए। वायुमार्गों की योजना में देखने की बात यह है कि ये एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु तक नहीं जाते। इनका वितरण प्रादेशिक है ।

उत्तरी और दक्षिणी अमरीका के बीच काफी वायु यातायात है। हाल में महत्वपूर्ण विकास यह हुआ है कि कोलम्बिया जैसे प्रदेशों में आन्तरिक वायुमार्ग बन गये हैं क्योंकि वहाँ पर अन्य प्रकार के यातायात साधनों का सर्वथा अभाव है।

(३) **यूरोप और रूस** में तो वायुमार्गों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। यूरोप की प्रायः सभी राजधानियों का अन्य नगरों के साथ वायु सम्बन्ध है। लन्दन, पेरिस, ब्रूसल्स, एमस्टरडम, प्राग, रोम और एथन्स इस दृष्टिकोण से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। महाद्वीप पर रूस द्वारा होकर पश्चिमी यूरोप और सुदूरपूर्व के बीच कोई भी वायुमार्ग नही है, क्योंकि रूस अपने वायुमार्गों का सम्बन्ध दूसरे देशों के वायुमार्गों के साथ नहीं रखना चाहता और अपनी उड़ानों का समय भी विज्ञापित नही करता। रूसी वायुमार्गो का जाल मास्को और काकेशस के बीच फैला हुआ है। मास्को और काबुल; मास्को और मंचूरिया तथा वहां से शान्घाई तक भी वायुमार्ग है। मास्को से एक वायुमार्ग खाबारोबस्क होता हुआ ब्लाडीवोस्टक तक जाता है। यूराल के पूर्व में स्थित औद्योगिक प्रदेश के केन्द्रों का भी मास्को से वायुसम्बन्ध है। इन मार्गो पर स्थित केन्द्रो से कई वायुमार्ग आर्कटिक वृत्त तक जाते है।

(४) **मध्यपूर्व** के देशों से होकर पूर्व और दक्षिणी अफ्रीका को जानेवाले सभी मुख्य वायुमार्ग गुजरते हैं। काहिरा और ब्यूरट इस प्रदेश के मुख्य हवाई अड्डे हैं। मध्यपूर्वी रियासतों में आन्तरिक वायुमार्गो की योजना अमरीकी ओर ब्रिटिश सहायता से हुई है। इनकी सहायता से तेहरान, बगदाद, अन्कारा और दमिश्क का सम्बन्ध आपस में तथा संसार से अधिक समीप हो गया है।

(५) **भारत, सुदूरपूर्व और आस्ट्रेलिया** को अनेक वायुमार्ग जाते है। प्रमुख मार्ग लन्दन से रोम, काहिरा, ब्यूरट होता हुआ करांची तक जाता है। इस मार्ग की शाखायें जो भारत सरकार के आधिपत्य में उड़ानें करती है, भारत और पाकिस्तान के नगरों को एक दूसरे से मिलाती है। भारत के सभी प्रधान नगरों के बीच वायुमार्गों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। करांची से ढाका तक जाने वाला वायुमार्ग भारत से होकर ही जाता है।

सुदूरपूर्व के लिए मुख्य वायुमार्ग करांची, कलकत्ता, रंगून, बैंकाक, हाँगकाँग, ओकिनावा तथा टोकिओ को आपस में मिलाता है। लन्दन से टोकियो ३६ घंटों में पहुँचा जा सकता है।

आस्ट्रेलिया को जाने वाले वायुमार्ग करांची और बम्बई से कोलम्बो या कलकत्ता होते हुए जाते हैं। इस मार्ग पर सिंघापुर तथा जकार्ता भी स्थित हैं। जकार्ता से यह मार्ग डारविन या पर्थ होता हुआ सिडनी और तत्पश्चात् आकलैंड और वेलिंगटन तक जाता है।

आस्ट्रेलिया में नगर एक दूसरे से बहुत अधिक दूरी पर स्थित हैं। इसलिए विभिन्न नगरों और आबाद प्रदेशों के बीच आन्तरिक वायुमार्गों का एक जाल-सा बिछा

हुआ है। यहाँ पर दूर-दूर बसे प्रदेशों को डाक्टरी सहायता पहुँचाने के लिए भी वायुयान की उड़ानों की व्यवस्थित योजना है।

(६) **अफ्रीका** के दक्षिणी भाग को हवाई जहाज रोम होकर जाते हैं। ये जहाज रोम से काहिरा होते हुए खारतूम जाते हैं और फिर वहाँ से एनटीबी या नैरीबोई होते हुए लिवंग्स्टन तथा जोहेन्सबर्ग तक जाते हैं। लन्दन से जोहेन्सबर्ग तक के सफर में ३२ घंटे लगते हैं।

दूसरा मुख्य वायुमार्ग लन्दन से ट्रिपोली होता हुआ नाईजीरिया में कानों स्थान तक जाता है और फिर वहाँ से अन्य पश्चिमी अफ्रीका राज्यों को। बेल्जियम की सरकार एक उड़ान ब्रूसल्स से कानों होती हुई बेल्जियम कान्गो के नगर लेपोल्डविले तक करती है। वहाँ से दक्षिणी अफ्रीका, रोडीशिया और पूर्वी अफ्रीका के बीच भी वायुमार्ग है। एक वायुमार्ग डकार से अक्रा तथा लेपोल्डविले होता हुआ जोहेन्सबर्ग तक जाता है।

(७) **प्रशान्त महासागर** के आरपार वायुमार्गों की अभी भी कमी है और जो हैं भी वे नितान्त निश्चित हैं। सैनफ्रांसिस्को और लास एन्जलीस से अमरीकी वायुयान होनूलोलू होते हुए वेक द्वीप जाते हैं और वहाँ से टोकियो तक उड़ान होती है। यहीं से ग्वाय या मैनीला होता हुआ एक वायुमार्ग सैगॉव और सिंघापुर तक जाता है। एक दूसरा अमरीकी वायुमार्ग होनूलोलू, केन्टन द्वीप और फिजी होता हुआ सिडनी तथा आकलैण्ड तक जाता है। इसी मार्ग पर क्वान्टास इम्पायर एयरवेज के जहाज वैनकुवर से उड़ान करते हैं।

बी० ओ० ए० सी० ने दो विश्वव्यापी वायुमार्गों की योजना की है। **एक** के द्वारा आन्ध्र महासागर और अमरीका महाद्वीप को पार करके, प्रशान्त महासागर से होते हुए आस्ट्रेलिया पहुँचते हैं और फिर सिंघापुर, भारत, पाकिस्तान और मध्यपूर्व होते हुए ग्रेट ब्रिटेन वापस चले आते हैं। **दूसरे** के द्वारा आन्ध्र महासागर को अधिक उत्तर से पार करके, एलेशियन द्वीपों से होते हुए टोकियो पहुँचते हैं जहाँ इसका सम्बन्ध सुदूरपूर्व के दक्षिणी मार्ग से हो जाता है और भारत, पाकिस्तान तथा मध्यपूर्व होते हुए ब्रिटेन वापस आ जाते हैं।

ध्यान देने योग्य बात तो यह है कि भूमध्यरेखा के दक्षिण में महाद्वीपों को मिलाने वाली मार्गों की पेटी का अभाव है। सिडनी से पर्थ होते हुए, कोकोस द्वीपसमूह, मारीशस तथा जोहेन्सबर्ग तक का वायुमार्ग अभी हाल में ही शुरू किया गया है।

महाद्वीपीय रेलमार्ग (Transcontinental Railways)

संसार के प्रधान मार्गों में महाद्वीपीय रेलमार्गों को शामिल करना बहुत ही आवश्यक है। इन महाद्वीपीय रेलों का पूरा हवाला तो विभिन्न महाद्वीपों के प्रादेशिक भूगोल का विषय है परन्तु ये रेलमार्ग विभिन्न महासागरों के बीच महाद्वीप के एक सिरे को दूसरे सिरे से मिलाते है। चूंकि स्थलमार्गों द्वारा माल ढोना जल की अपेक्षा महँगा पड़ता है, इन्हें भारी वस्तुओं के दूर तक ले जाने के लिए बहुत कम प्रयोग करते हैं। परन्तु उत्पादन क्षेत्रों से तट तक गेहूँ, खनिज आदि इन्हीं रेलों द्वारा ले जाये जाते हैं।

इन मार्गों द्वारा मुसाफिर, डाक, शीघ्र नष्ट हो जाने वाले सामान तथा हल्की परन्तु बहु-मूल्य वस्तुओं को एक सिरे से दूसरे सिरे तक ले जाया जाता है।

उत्तरी गोलार्द्ध में, पूर्व से पश्चिम तक यातायात पेटी में इन महाद्वीपीय रेलों का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। दक्षिणी गोलार्द्ध में इस प्रकार की यातायात पेटी का सर्वथा अभाव है, क्योंकि (१) वहाँ के महाद्वीप संकरे है, (२) अधिकतर महत्त्वपूर्ण महासागरीय मार्ग दक्षिण से उत्तर की ओर यूरोप और उत्तरी अमरीका को जाते है, (३) दक्षिणी अमरीका, दक्षिणी अफ्रीका और आस्ट्रेलिया की उपज समान होने के कारण उनके बीच व्यापार का अभाव है।

उत्तरी अमरीका

इस महाद्वीप में पूर्व से पश्चिम तक जाने वाली अनेक रेलें है। यद्यपि इन सब को महाद्वीपीय रेलमार्ग ही कहते है, परन्तु संयुक्त राष्ट्र अमरीका की रेले मिसीसिपी नदी के पूर्व मे अपना महाद्वीपीय या पूर्व से पश्चिमी रूप त्यागकर पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के जाल में मिल जाती है।

उत्तरी अमरीका की प्रमुख महाद्वीपीय रेलें निम्नलिखित है :—

(अ) **कनाडा**—(१) कैनेडियन पैसिफिक रेलमार्ग जो सन् १८८५ में ब्रिटिश कोलम्बिया को पूर्वी कनाडा से मिलाने के लिए बनाया गया था। इस मार्ग द्वारा हैलीफैक्स और सेंट जान का मान्ट्रीयल, विन्नीपेग, रेजीना और मेडीसन हाट से सीधा सम्बन्ध है। मेडीसन हाट पर मुख्य लाइन की एक शाखा हो जाती है—एक शाखा क्रोसनेस्ट दर्रे से होती हुई बैनकुवर को चली जाती है और दूसरी किकिंग हार्स दर्रे से तथा फ्रेजर घाटी से होती हुई बेनकुवर पहुँचती है।

(२) कैनेडियन नेशनल रेलमार्ग जो फन्डी की खाडी पर स्थित मान्कटन को क्वेबक से मिलाती है और फिर वहाँ से प्रथम रेलमार्ग के उत्तर मे होती हुई विनीपेग पहुँचती है। विनीपेग से यह एड मानटन जाती है और वहाँ से यलोहेड दर्रे से होती हुई प्रिंस रूपर्ट तथा बैनकुवर पहुँचती है।

(**ब**) **संयुक्त राष्ट्र अमरीका**—(१) उत्तरी रेलमार्ग जो डुलुथ को सियाटल से मिलाता है।

(२) उत्तरी पैसिफिक रेल जो शिकागो, सेंट पाल और बिसमार्क को टकोमा तथा पोर्टलैण्ड से मिलाती है।

(३) यूनियन पैसिफिक रेल जो शिकागो से ओमाहा, ओगडेन तथा सैन फ्रांसिस्को को जाती है।

(४) सान्टा के रेलमार्ग सेंट लुइ, कन्सास सिटी, सान्टा फे और लास एन्जलीस को मिलाता है।

(५) दक्षिणी पैसिफिक रेलमार्ग जो न्यूआरलियन्स से लास एन्जलीज तक जाता है।

उत्तरी अमरीकी महाद्वीपीय रेलों से आन्ध्र महासागरीय और प्रशान्त महा-

सागरीय तटों के बीच द्रुत यानायात प्राप्त होता है। पनामा नहर खुलने से पहिले तो इनका विशेष महत्त्व था। अब भारी माल तो पनामा नहर द्वारा ही भेजा जाता है, परन्तु डाक और मुसाफिर इन्ही रेलों से जाते हैं। इनके द्वारा फल तथा फिल्म पश्चिमी राज्यों से पूर्व को और ऊँचे दाम के बने हुए सामान पूर्व से पश्चिम को भेजे

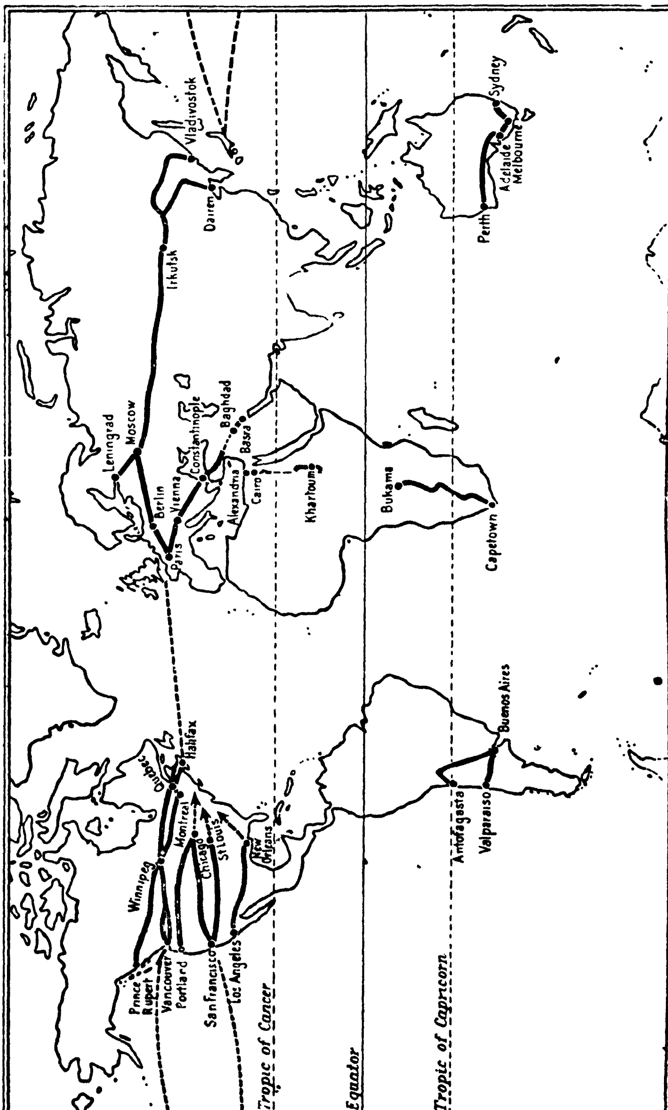

चित्र १७२—महाद्वीपीय रेलमार्ग और उत्तरी समुद्री मार्ग जो उत्तरी गोलार्द्ध में यातायात की पेटी बनाते हैं

जाते हैं। पूर्वी देशों से आया हुआ कच्चा रेशम और चाय भी पश्चिम से पूर्वी संयुक्त राष्ट्र को भेजा जाता है।

यूरेशिया

यूरेशिया की प्रमुख महाद्वीपीय रेलें निम्नलिखित हैं:—

(१) ओरियन्ट एक्सप्रेस मार्ग जो पेरिस, वियना, बेलग्रेड तथा इस्ताम्बुल को मिलाती है। यह रेलमार्ग एशिया माइनर से होता हुआ आगे बढ़ जाता है और इससे भविष्य में पेरिस से बसरा तक का सीधा रास्ता बन जाता है। इस मार्ग के द्वारा दक्षिणी पूर्वी एशिया और उत्तरी पश्चिमी यूरोप के घने बसे भागों के बीच सम्पर्क स्थापित होता है। परन्तु आजकल अधिकतर लोग हवाई जहाजों से सफर करने लगे हैं।

(२) पश्चिम से पूर्व तक का मार्ग जो मध्य यूरोप और उत्तरी एशिया के मैदानों से होकर पेरिस से व्लाडीवोस्टक तक जाता है। इस मार्ग का पश्चिमी सिरा पेरिस से कोलोन, बर्लिन और वारसा होता हुआ मास्को तक जाता है। पूर्वी सिरे को ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग कहते हैं। यह लेनिनग्रेड और मास्को से साईबेरिया के आरपार व्लाडीवोस्टक तक जाता है। यह रेलमार्ग सन् १९०५ में बनकर तैयार हुआ और इसका ध्येय यूरोपीय रूस के शासनकेन्द्र को दूर स्थित प्रशान्त महासागरीय प्रदेशों से सम्पर्क में लाना था। इस रेलमार्ग की एक शाखा अब कम्यूनिस्ट चीन की राजधानी पीकिंग तक जाती है। क्यूबिशेव और इरकुटस्क के बीच एक दूसरा समानान्तर पर दक्षिणी स्थिति का रेलमार्ग बनाया जा रहा है।

इस रेलमार्ग से मध्य साईबेरिया के अलग-अलग भागों से सम्बन्ध स्थापित हो गया और साथ-साथ एक सीधा मार्ग भी बन गया। अमरीकी महाद्वीपीय रेलों के ही समान इस पर भी मुसाफिर, डाक तथा अत्यन्त मूल्यवान पदार्थ ही भेजे जाते हैं। भारी सामान स्वेज मार्ग से सस्ते में पहुँच जाता है।

(३) रूसी प्रदेश का सम्बन्ध फारस की खाड़ी पर स्थित बन्दरगाहों से भी है। युद्धकाल में इसी मार्ग से रूस को सामान पहुँचता था परन्तु अब इसको बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है।

दक्षिणी अमरीका

ब्यूनस आयर्स रेलमार्ग द्वारा वालपरेसो से सम्बन्धित है। मैगेलन जलडमरूमध्य वाला रास्ता इसकी अपेक्षा कहीं अधिक लम्बा है।

एक दूसरा मार्ग ब्यूनस आयर्स से उत्तर पश्चिम की ओर टूकूमन तक जाता है और फिर वहाँ से बोलीवियन पठार को पार करके उत्तरी चिली के एन्टोफोगास्टा तक जाता है। कुछ कहा नहीं जा सकता कि यह मार्ग कभी भी महाद्वीपीय दृष्टिकोण से बड़ा हो सकेगा।

अफ्रीका

सेसिल रोड्स द्वारा शुरू की गई अन्तरीप या केप टाउन से काहिरा तक का

रेलमार्ग अभी भी अधूरा पड़ा हुआ है। इसका उद्देश्य मिश्र और सूडान की रेलों को दक्षिणी अफ्रीका की रेलों से मिला देना था। ट्रांस साइबेरियन रेलमार्ग की भाँति इसके द्वारा बहुत दूरस्थ या अलग-थलग प्रदेशों से सम्पर्क नहीं हुआ है। बल्कि इसके समानान्तर पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ सस्ते समुद्री मार्ग उपलब्ध हैं। इसका प्रधान कार्य तो पूर्व या पश्चिमी तटों की तरफ से आने वाले रेलमार्गों के अन्तिम बिन्दुओं को आपस में मिला देना है। इसके अन्तिम बिन्दु केपटाउन से कोई बड़े समुद्री मार्ग शुरू नहीं होते। जोहेन्सवर्ग और केपटाउन के बीच भी कोई अधिक व्यापार नहीं है, क्योंकि अधिकतर माल का आवागमन पूर्व की तरफ मारक्वेस या वीयरा की रेल द्वारा होता है। बेल्जियन कान्गो के कटांग प्रदेश और उत्तरी रोडीशिया का निकास पश्चिम की तरफ लोविटो खाडी या वेनेजुला को है। इससे अगोला प्रदेश की उन्नति व विकास की संभवनायें हैं।

आस्ट्रेलिया

यहाँ की महाद्वीपीय रेल बड़ी ही आश्चर्यजनक है। १,००० मील मरुस्थल को पार करके यह रेलमार्ग दक्षिणी पूर्वी आस्ट्रेलिया को पश्चिमी आस्ट्रेलिया के पर्थ से मिलाती है। इसके निर्माण का उद्देश्य राजनीतिक था और वहाँ की सरकार का ध्येय पश्चिम आस्ट्रेलिया को अन्य राज्यों से मिलाना था। इसके समानान्तर भी समुद्री मार्ग है। इसलिए इस पर अधिक माल नही लाया ले जाया जाता। इसका एक और दोष यह है कि विभिन्न राज्यों के रेलमार्गों की पटरियों का चौड़ाव अलग-अलग है। डारविन से एडीलेड तक एक अन्य महाद्वीपीय रेलमार्ग बनाया गया है, ताकि उत्तर के प्रदेशों का सम्पूर्ण देश के साथ सम्पर्क हो जाये। परन्तु वायु यातायात के तीव्र विकास से रेलमार्गों की उन्नति की संभावना बहुत कम है। डारविन और अन्य प्रधान नगरों के बीच वायु यातायात की पूर्ण व्यवस्था है।

अध्याय तेईस

जनसंख्या का विश्वव्यापी वितरण

(DISTRIBUTION OF POPULATION)

जनसंख्या के वितरण पर प्रभाव डालने वाले तत्त्व

संसार में जनसंख्या के घनत्व को प्रदर्शित करने वाले मानचित्र से स्पष्ट होता है कि संसार के सभी भागों में लोगों की आबादी का वितरण एक समान नहीं है। अधिकतर लोगों को वही रहना पसन्द होता है, जहाँ प्राकृतिक व अन्य दशाये इतनी सुविधाजनक होती है कि जीविका आसानी से कमाई जा सकती है। जहाँ पर जीविकोपार्जन की कठिनाई होती है, वहाँ लोग रहना कदापि नही पसन्द करते। प्राकृतिक बनावट, जलवायु, वनस्पति और पहुँचने की सुविधा के ऊपर मनुष्य का क्रिया-कलाप निर्भर रहता है। टुन्ड्रा प्रदेश बहुत सर्द और दूर होने के कारण, केवल इक्का-दुक्का जातियों तथा खानाबदोश लोगों द्वारा आबाद है। शीतोष्ण व उष्ण प्रदेशों के वनों मे भी रहने की दिक्कत है, इसलिए शीतोष्ण वनो में कही-कहीं जानवर पकड़ने वाले या लकड़ी काटनेवाले रहते है, उष्ण वनों मे इधर-उधर घूमने वाली अर्द्ध-सभ्य शिकारी जातियाँ निवास करती हैं।

उष्ण मरुस्थल मे भी बहुत कम लोग रहते है। जहाँ कही खनिज सम्पत्ति उपलब्ध है, वहाँ लोग भोजन पानी की कमी की परवाह न करके जा बसे है। पश्चिमी आस्ट्रेलिया तथा अलास्का की सुवर्ण खानों ने अनुपयुक्त जलवायु होने पर भी बहुत से लोगों को आकर्षित कर लिया है। मरुस्थलों में जहाँ कहीं सिचाई की सुविधा है, वहाँ खेती की जाती है। मिश्र, ईराक, पश्चिमी संयुक्त राष्ट्र अमरीका के मरुस्थल के कुछ भाग और पीरू रेगिस्तान मे नदीघाटी की उपजाऊ भूमि इसी प्रकार के क्षेत्र है।

पर्वतों पर भी आबादी कम ही रहती है, क्योंकि वहाँ की भूमि ऊबड़-खाबड़, जलवायु अनुपयुक्त, यातायात की कठिनाइयाँ और खेती की संभावना कम होती है। जिन पर्वतीय प्रदेशों में खनिज सम्पत्ति पाई जाती है, या जहाँ की जलवायु समतल मैदानों की अपेक्षा शीतल होती है, वहाँ कुछ लोग जा बसते हैं। तिब्बत जैसे पठारों पर पहुँच से बाहर होने के कारण आबादी बहुत कम होती है। परन्तु इसके विपरीत एण्डीज़ पर्वतमाला में पीरू और इक्वेडर के शीतल पठारों पर अमेजन के गर्म तर वनाच्छादित प्रदेश की अपेक्षा कहीं अधिक आबादी पाई जाती है।

संसार में सबसे अधिक घनी आबादी के प्रदेश या तो औद्योगिक क्षेत्र हैं, या वैज्ञानिक तथा गहरी खेती के प्रदेश।

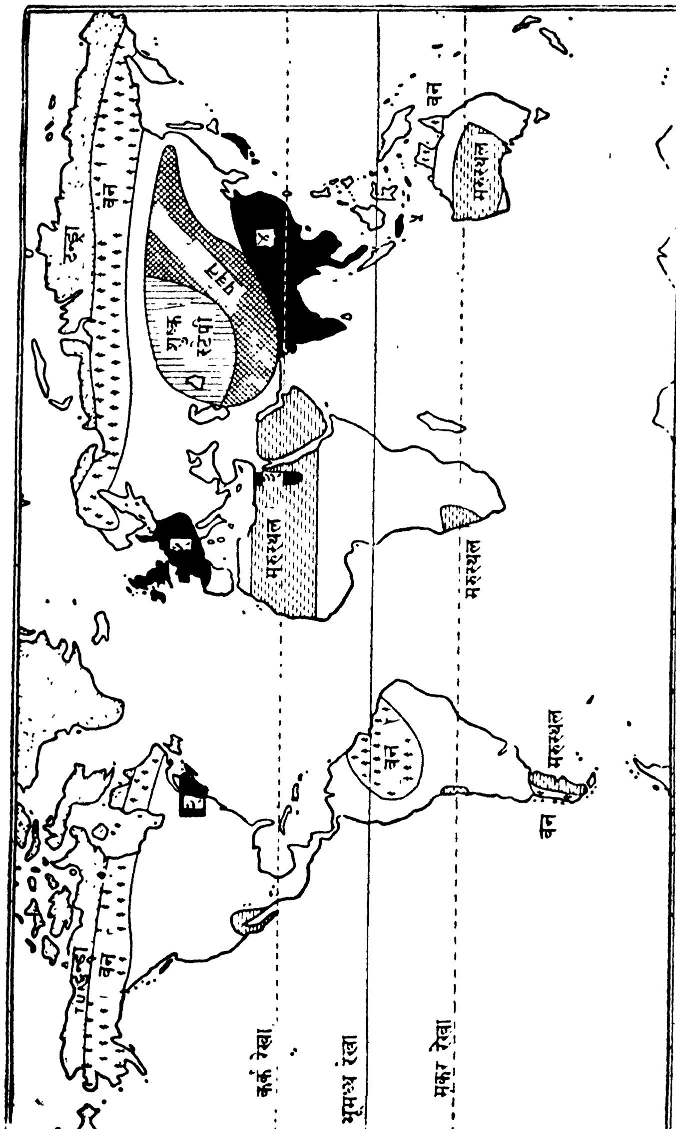

चित्र १७३—संसार में घनी और कम आबादी के क्षेत्र

उपर्युक्त चित्र में एक से पाँच तक संख्यायें दी हुई हैं। इनमें एक और दो तो औद्योगिक क्षेत्र हैं और बाकी घने बसे खेतिहर प्रदेश।

औद्योगिक प्रदेश

(१) उत्तरी पश्चिमी यूरोप सबसे बड़ा औद्योगिक प्रदेश है। इसके अन्तर्गत

ब्रिटेन, बेल्जियम, उत्तरी-पूर्वी फ्रांस और जर्मनी के प्रदेश शामिल हैं। कोयला क्षेत्रों के समीप सबसे घनी आबादी पाई जाती है । इन प्रदेशों की खेती भी गहरी, सयत्न व वैज्ञानिक होती है। यूरोप के सबसे घने आबाद मुल्क हालैण्ड में जनसंख्या का घनत्व ८०० व्यक्ति प्रति वर्गमील है। इसके बाद इटली के उत्तरी मैदान का नम्बर आता है, जहाँ पर सयत्न खेती की जाती है और पनबिजली की सहायता से बहुत-से उद्योग-धन्धे चलाये जाते हैं।

(२) दूसरा महत्त्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमरीका है। यह औद्योगिक पेटी शिकागो से पूर्व की ओर, ग्रेटलेक्स के दक्षिण में पेन्सलवेनिया कोयला क्षेत्र से होती हुई न्यूयार्क तथा न्यू इंग्लैण्ड प्रदेश तक फैली हुई है।

घने आबाद खेतिहर प्रदेश

घनी आबादी वाले परन्तु खेती पर निर्भर प्रदेशों में (३) मिश्र, (४) दक्षिणी-पूर्व एशिया और (५) जावा प्रधान हैं।

नील नदी के दोनों ओर मिश्र घना आबाद है । यह मरूद्यान (Oasis) प्रदेश है, जहाँ जलवायु व मिट्टी सम्बन्धी दशाओं के कारण प्रतिवर्ष दो या तीन फसलें उगाई जाती हैं। प्रति एकड़ उपज भी बहुत अधिक होती है और इसी के फलस्वरूप आबादी घनी है। इसके अतिरिक्त नील नदी का बड़ा पुराना इतिहास है।

दक्षिणी-पूर्वी एशिया के देशों में जैसे जापान, चीन, भारत, स्याम और फ्रांसीसी इन्डोचीन में घने व कम बसे भाग दोनों ही पाये जाते हैं। नदी घाटी प्रदेश जैसे गंगा, सिक्यांग और यांगटीसी के बेसिन बहुत घने बसे हैं । परन्तु पहाड़ी व शुष्क मरुस्थली भागों जैसे थार रेगिस्तान में आबादी बहुत कम है।

भूमध्यरेखीय प्रदेशों मे स्थित जावा में व्यवस्थित उद्यानकृषि और उपजाऊ ज्वालामुखी भूमि के कारण आबादी का घनत्व ७८५ व्यक्ति प्रति वर्गमील है।

*

अध्याय चौबीस

नगर स्थिति (TOWN SITES)

नदियों का प्रभाव

प्राकृतिक अथवा स्वाभाविक मार्गों के मिलन स्थान पर मनुष्य बस जाता है। अपना निवास-स्थान बनाने से पहिले मनुष्य यह भी देखता है कि वहाँ पर पानी खूब उपलब्ध है या नहीं। नदी घाटियाँ किसी भी प्रदेश के आर-पार आने-जाने का स्वाभाविक मार्ग बनाती है और इसीलिए प्रायः लोग नदी किनारे बस्तियाँ बनाते हैं क्योंकि पानी और यातायात दोनों ही प्रकार की सुविधाये उपलब्ध होती है।

संसार के अधिकतर पुराने नगर नदियों के किनारे पर ही बसे हुए हैं परन्तु वर्तमान युग के अधिकतर बड़े शहर पिछली शताब्दी के औद्योगिक विकास में कोयला-क्षेत्रों पर बस गए हैं। नदी के निकट स्थिति कुछ मानों में अधिक सुविधाजनक होती है और कुछ महत्त्वपूर्ण नगर स्थितियाँ नीचे दी गई है—

(१) **दो नदियों के संगम पर** जैसे जर्मनी का कोबलेन्ज (Coblenz) नगर लहन तथा मोजेल और राइन के संगम पर बसा है। चारवेल और टेम्स नदियों के संगम पर आक्सफोर्ड (Oxford) स्थित है। मिसीसीपी और मिसौरी नदियों के संगम पर सेंट लुई (St. Louis), नीली और श्वेत नील के संगम पर खारतूम (Khartoum), जमुना और गंगा के संगम पर इलाहाबाद (Allahabad) तथा यॉगटीसी क्याँग और हान नदी के संगम पर वू चॉग (Wu-Chang) इसी प्रकार के अन्य प्रसिद्ध शहर हैं।

(२) **नदियों के जोड़ या घुमाव पर** जहाँ नदी प्रवाह अपनी दिशा बदलता है। शेफील्ड, आरलियन्स, केफेन्ज और स्टालिनग्राड इसी प्रकार के नगर है, जो क्रमशः डान, लायर, हावन्ग हो और वोल्गा के मोड़ पर स्थित हैं।

(३) **नदियों के आर-पार जाने का निम्नतम स्थान** जो कि सामान्यतः खुले मुहाने के सिरे पर होता है और जहाँ तक समुद्री जहाज आ जा सकते हैं। लन्दन, हैमबर्ग और रोअन की स्थिति इसी प्रकार की है।

(४) **नदियों के प्रवाह में** वह स्थान जहाँ पानी इतना छिछला हो कि आसानी से पार किया जा सके। वेडफोर्ड, वोरसेस्टर इसी प्रकार के नगर हैं।

(५) **नाव चलाने की हद पर** या जहाँ तक नावें आसानी से आ-जा सकें। मुगलकाल में गंगा नदी पर इलाहाबाद तक बड़े-बड़े जहाज व नावें आ जा सकती थीं। रोमन काल में यार्क ऊस नदी पर नावों द्वारा यार्क नगर तक जाया जा सकता था।

(६) **जब कोई नदी पर्वतों के बीच से होकर बहती है**, तो दर्रे पर नगर बस

जाते हैं। ऐसे स्थानों पर सब ओर से आकर मार्ग उसी प्रकार इकट्ठा होते हैं जसे कि नदी के पुल पर। लिन्कन, गिल्डफोर्ड, रीम्स और मुकडेन इसी प्रकार के नगर हैं।

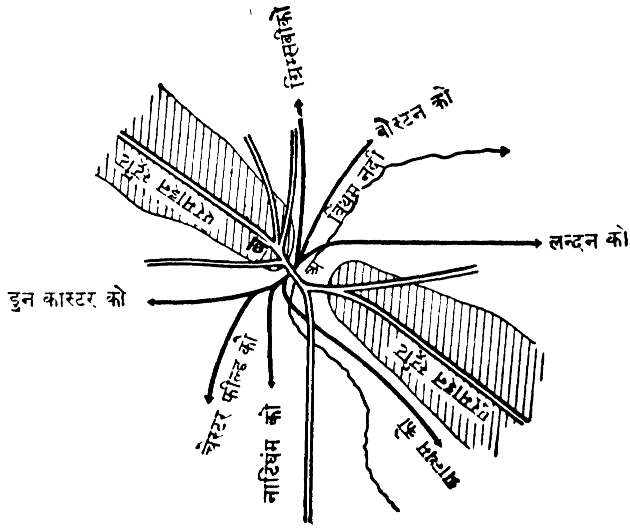

चित्र १७४——लिन्कन——देखिए दर्रे पर मार्ग किस प्रकार आकर इकट्ठा हैं। छायांकित प्रदेश चूने की पहाड़ी है जिसके बीच से होकर विथम नदी अपना दर्रा काटती है। दुहरी रेखाओं से सड़कों और इकहरी रेखाओं से रेलों को दिखाया गया है। रोमन काल की प्राचीन एरमाइन स्ट्रीट पर्वतों के ऊपर से होकर आती है। 'ब' स्थान पुराना लिन्कन शहर है। 'अ' भाग में स्टेशन व मिलें हैं

(७) **जहाँ नदी किसी गहरी संकीर्ण घाटी में प्रवेश करती है** और जहाँ वह उसमे निकल कर खुले प्रदेश में बहती है। डैन्यूब पर लिन्ज और बीयना, बिन्जन और बौन राइन नदी पर तथा याँगटीसीक्याँग पर इंचाग और वानशेन इमी प्रकार से स्थित नगर हैं।

(८) **जहाँ कोई नदी संकरी पहाड़ी घाटी से निकल कर मैदान में प्रवेश करती है।** ऐमे स्थानों पर पहाडी व मैदानी लोग मिल-जुल कर रहते हैं। लीड्स, ड्रेसडेन और हरद्वार इसी प्रकार बसे हैं।

(९) **यदि नदी के मार्ग में झीलें हैं** तो वहाँ ही नगर बस जाते हैं। इनमें निम्नलिखित स्थितियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं—

(अ) जहाँ नदी झील में प्रवेश करती है। सुपीरियर झील पर डुलुथ और मिशीगन झील पर शिकागो की स्थिति इसी प्रकार की है।

(ब) जहाँ नदी झील से निकलती है। जेनेवा और डेट्रायट इसी दिशा में महत्त्वपूर्ण हैं।

(स) दो झीलों के बीच के प्रदेश में जैसे इन्टरलेकन जो स्विट्जरलैण्ड में थुन और ब्रीन्ज झीलों के बीच में स्थित है।

(१०) **उपजाऊ मैदान के केन्द्र में।** नदी के निम्न उपजाऊ मैदान के केन्द्र में बहुधा मंडी बन जाया करती है। ग्लासगो, यार्क, पेरिस, कानपुर आदि इसी प्रकार बसे हैं।

(११) **जहाँ जलप्रपात होते हैं।** जलप्रपातों से नाव चलाने में तो बाधा जरूर पड़ती है, परन्तु जलशक्ति प्राप्त होती है। पूर्वी संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जलप्रपातों पर बहुत-से नगर बस गए हैं।

(१२) **नदी के घुमाव के बीच में।** प्रायः कुछ ऊँचा भूभाग चारों तरफ से नदी के घुमाव द्वारा घिरा रहता है या यों कहा जाय कि नदी के घुमाव से घिरा भूभाग प्रायः ऊँचा रहता है। इस प्रकार की स्थिति सुरक्षा के दृष्टिकोण से बहुत अच्छी होती है क्योंकि नदी खाई का काम करती है। शूसबरी, डरहम और पेरिस इसी प्रकार स्थित हैं।

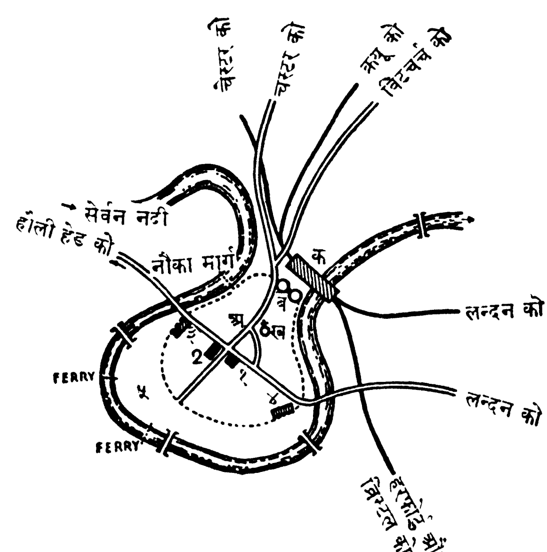

चित्र १७५--*शूसबरी की स्थिति*--रेखांकित रेखायें दीवाल की पुरानी स्थिति बतलाती हैं। (अ) गिरजा के समीप मूल मंडी है। (ब) किला है। (क) रेल का स्टेशन है जो जल की कमी के कारण नदी पर बनाया गया है। (ख) नगर के उच्चतम बिन्दु पर स्थित गिरजा। १. मंडी का केन्द्र, २. वर्त्तमान मंडी, ३. मठ, ४. पादरी के रहने का स्थान, ५. निम्न भूमि जहाँ पहले दलदल था पर अब क्रीड़ा भूमि है

(१३) जहाँ नदी किसी तीव्र ढाल वाली चट्टान या पहाड़ी से टकराती है। नाटिंघम और बुडापेस्ट इसी प्रकार से बसे हैं।

नगरों की स्थिति पर प्रभाव डालने वाले अन्य तत्त्व

कुछ नगर, जैसा पहिले कहा जा चुका है, नदियों पर स्थित नहीं होते। उनके प्रादुर्भाव के कारण कुछ भिन्न ही होते हैं, जिनमें निम्नलिखित मुख्य हैं :—

(१) खनिज सम्पत्ति की बहुलता से लोग आकर्षित होकर बस्ती बना लेते हैं। कालगूर्ली और मेगनीटोगोरस्क की उत्पत्ति उनके समीप खनिज पदार्थों के कारण ही हुई है।

(२) तटवर्ती नगरों का महत्त्व व विकास या तो (अ) अच्छे पोताश्रय पर निर्भर होता है, या (ब) पर्वतीय व समुद्रीय दृश्यों पर और या (स) विस्तृत भूमि तथा नहाने की सुविधा पर।

(३) दलदली भूभाग में जहाँ कहीं मजबूत भूमि का टुकड़ा मिला वहीं नगर बन गये हैं।

(४) जहाजों के विस्तार के बढ़ जाने से अधिकतर बन्दरगाहों का एक बाहरी बन्दरगाह भी होने लगा है। ब्रिस्टल के लिए एवन माउथ और हैमबर्ग का कक्सहेवन है।

(५) ताजे पानी की उपलब्धता पर भी बस्तियों का निर्माण निर्भर रहता है। खड़िया मिट्टी या चूने के पत्थर की पहाड़ी के आधार पर जहाँ जल निकलता रहता है, वहाँ प्रायः गाँव की कतार-सी बन जाती है।

बहुत-से नगरों की उत्पत्ति, विकास और महत्त्व कई सुविधाओं के एक साथ पाये जाने पर भी होता है। उदाहरण के लिए **कारलाइल** को देखिये। यह नगर ईड्रन नदी के निम्नतम बिन्दु पर स्थित है, जहाँ नदी के किनारे इतने मजबूत हैं, कि पुल बन सकता है, इसके तीन तरफ नदियाँ हैं और इसीलिए सुरक्षा के दृष्टिकोण से इसकी स्थिति बहुत अच्छी है। यह उपजाऊ खेतिहर मैदान के केन्द्र में स्थित है इसीलिए यहाँ मंडी बन गई है। अन्त में, यहाँ पर स्काटलैण्ड और इंग्लैण्ड के अनेक मार्ग आकर मिलते हैं और मार्गों के केन्द्र पर होने के कारण आधुनिक समय में यह एक महत्त्वपूर्ण रेल जंकशन हो गया है।

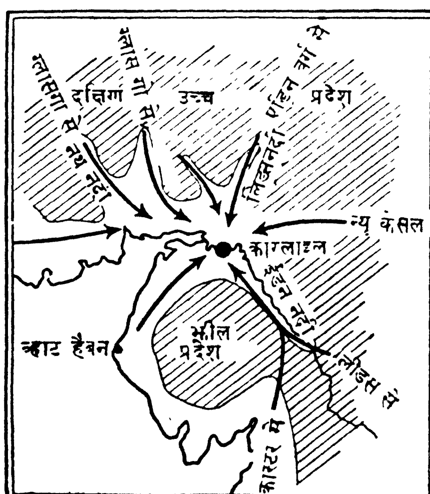

चित्र १७६—कारलाइल की स्थिति—मार्गों के मिलन बिन्दु पर स्थित नगर

अध्याय पच्चीस

सीमायें (FRONTIERS)

सीमा का महत्त्व

आदिकाल मे सीमा का तात्पर्य केवल इतना था कि लोगों को एक दूसरे से अलग रक्खा जाये और सीमा का महत्व इस बात पर निर्भर होता था कि उसके द्वारा सुरक्षा कहाँ तक हो सकती थी। पिछले दो महायुद्धों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि किसी भी प्रकार की सीमा सुरक्षा के दृष्टिकोण से पूर्ण नही है। फिर भी सीमाओं का होना जरूरी है, क्योंकि विभिन्न जाति, सभ्यता और राष्ट्रीयता के लोगो को अपनी अलग सरकार बनाने की स्वतन्त्रता अवश्य होनी चाहिए। परन्तु सीमायें इतनी कड़ी व अपारदर्शक नही होनी चाहिएं कि विभिन्न राष्ट्रों के बीच सामान व विचारों का आदान-प्रदान रुक जाये। सन् १९१४–१८ के युद्ध के बाद बनाई गई सीमाओं से वाणिज्य व व्यापार मे बड़ी रुकावट पड़ी और विभिन्न राष्ट्रों के बीच काफी तनातनी हो गई। कुछ प्राकृतिक स्थलरूप स्वाभाविक सीमायें बनाते है परन्तु बनावटी सीमाये संतोषप्रद नही होती।

समुद्र

यह सबसे पूर्ण सीमा है। युद्धकाल में यह सुरक्षा के लिए अलगाने वाली खाई का काम करता है, परन्तु शान्ति के समय विश्व के विभिन्न राष्ट्र इसी के द्वारा वाणिज्य व्यापार करते है। समुद्र को पार करने के लिए मनुष्य को अपनी यात्रा का साधन बदलना पड़ता है। हाँ, हवाई यातायात द्वारा इसे आसानी से पार किया जा सकता है। इससे न तो ताजा पानी मिलता है और न भोजन ही। तट से दूर जाने पर मार्ग प्रदर्शन के चिह्नों का भी लोप हो जाता है। इसलिए नक्षत्र विज्ञान और सूर्य तारों द्वारा मार्ग संचालन के प्रादुर्भाव से पहिले मनुष्य का समुद्र के दूरतक आना-जाना असम्भव था। जिन देशों की सीमा समुद्र बनाता है, वे वास्तव में बड़े भाग्यशाली है। सुरक्षा पंक्ति तथा निर्विघ्न अन्तर्राष्ट्रीय पथ होने के कारण सागर के बीच स्थित द्वीपों के लोगों में विचारों की संकीर्णता, दुनिया से अलगाव के साथ-साथ अंग्रेज़ों जैसी दूर-दूर घूमने की अभिलाषा भी पाई जाती है।

मरुस्थल

मरुस्थल अवरोधक है। नखलिस्तानों को छोड़कर मरुस्थलो म न तो कहीं भोजन मिलता है और न कहीं पानी। मार्ग-प्रदर्शक चिह्नों के अभाव में यात्री बिना ध्रुव-घड़ी के यात्रा नहीं कर सकते। मरुस्थल द्वारा प्रदत्त स्वाभाविक सुरक्षा के द्वारा ही शुरू-

शुरू में मिश्र की सभ्यता का इतना अधिक विकास हो सका। इसी प्रकार मध्य एशिया के रेगिस्तानी पठारों ने चीन की रक्षा की और उसे दुनिया से अलग व स्वतंत्र रख कर एक विशेष प्रकार की सभ्यता को विकास करने का मौका दिया। अभी कुछ वर्ष पूर्व तक इस पर अन्य देशों की सभ्यता का कोई भी असर नहीं पड़ा था। अरब के रेगिस्तान से मिश्र और बाबुल (Babylon) के बीच सम्पर्क रह सका। इसलिए इन दोनों केन्द्रों के बीच मार्ग उत्तर की तरफ फिलस्तीन और सीरिया होकर जाते थे। काली और श्वेत जातियों के बीच सहारा मरुस्थल सीमा बनाता है। कोई भी मानवी शक्ति अभी तक सहारा को पार नही कर सकी है। यद्यपि कई प्रकार की मोटर गाड़ियों द्वारा इसे पार करने के विफल प्रयत्न किये गये हैं। अब भी इस मरुस्थल पर से होकर हवाई उड़ान तक करना खतरे से खाली नही है, क्योंकि यदि जबरदस्ती बीच में उतरना पड़े तो जान जोखिम होती है।

पर्वत

ऊबड़-खाबड़ बनावट, तीव्र ढाल, ठंडक और वायुमंडल के हल्केपन के कारण पर्वत सम्पर्क के अवरोधक है। इसके अलावा पर्वतों की भूमि अनुपजाऊ होती है और वहाँ के लोग कम संख्या में होते हुए भी शक्तिशाली होने के कारण अजनबी लोगों को अपने पास तक नही फटकने देते। जहाँ कोई पर्वत श्रेणी दो देशों के बीच रुकावट सी सिद्ध होती है वहाँ वास्तविक सीमा जलविभाजक को मान लिया जाता है, जैसा कि पश्चिमी आल्पस प्रदेश मे फ्रास और इटली के बीच है।

किसी पर्वत प्रदेश को कितनी आसानी से पार किया जा सकता है यह वहाँ के दर्रों की सिचाई पर निर्भर होता है। आल्पस पर्वत श्रेणी में बहुत-से दर्रे है और इनके द्वारा इस श्रेणी को आसानी से पार किया जा सकता है, परन्तु दर्रे कम होने के कारण काकेशस और पेरीनीज श्रेणियो को पार करना कठिन है, यद्यपि उनकी ऊँचाई बहुत अधिक नही है।

जाड़े मे हिम पड़ जाने पर पर्वतश्रेणियों को पार करना और भी कठिन हो जाता है। इंग्लैण्ड की पेनाइन श्रेणी बहुत नीची है परन्तु उसको सड़कें भी जाड़े में बन्द हो जाती है। इस प्रकार लंकाशायर तथा यार्कशायर के लोगों के बीच यह पेनाइन श्रेणी एक अवरोध मात्र है और फलस्वरूप उनके रीति-रिवाज बिल्कुल अलग-अलग हैं।

जहाँ किसी पर्वत श्रेणी के एक तरफ का ढाल दूसरी तरफ की अपेक्षा तीव्रतर होता है, वहाँ क्रमशः ढाल की तरफ वाले प्रदेश को एक विशेष सुविधा रहती है। फ्रांस पश्चिमी आल्पस को पारकर इटली पर अधिक आसानी से हमला कर सकता है। इस बात की पुष्टि इस प्रकार होती है कि पो नदी की सहायक धाराओं की ऊपरी घाटी में लोग फ्रेंच भाषा ही बोलते है। चिली और अर्जेन्टाइना के बीच एण्डीज पर्वत भी अच्छी सीमा बनाते है।

नदियाँ

प्रायः ऐसा विश्वास है कि नदियाँ अच्छी स्वाभाविक सीमायें बनाती हैं। इस

विश्वास का मूलाधार यूरोपीय इतिहास में राइन व डैन्यूब नदियों का स्थान है । सच तो यह है कि नदियों द्वारा बनाई गई सीमा स्पष्ट व साफ होती है परन्तु अक्सर नदियाँ मार्ग बदल देती हैं और तब सीमा सम्बन्धी अनेक उलझनें पैदा हो जाती हैं।

विभिन्न जाति, सभ्यता, तथा संस्कृति के लोगों को नदियाँ कदापि अलग नहीं करतीं। नदी प्रदेश की उपजाऊ मिट्टी, यातायात सम्बन्धी सुविधाओं, जल की उपलब्धता तथा समीपवर्ती वनप्रदेशों में ईंधन और घर बनाने की सामग्री के कारण लोग नदियों के किनारे ही बस जाते हैं। इस प्रकार एक नदी-घाटी के लोग सभ्यता, जाति व भाषा में समान होते हैं और एक राष्ट्र बनाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि नदी का बेसिन देश का केन्द्र होता है, और उसकी सीमा कदापि नहीं हो सकती। मिश्र की सभ्यता नील के बेसिन में ही फूली फली। दजला-फरात की घाटी में बेबीलोन की सभ्यता जागी। भारतीय सभ्यता की भूमि गंगा और सिंधु का मैदान था और चीनी सभ्यता की जन्म-भूमि ह्वान्ग हो की घाटी थी। सीन नदी के बेसिन के केन्द्र में स्थित पेरिस फ्रांस का वास्तविक हृदय है।

इंगलैण्ड में टेम्स को छोड़कर और कोई नदी सीमा नहीं बनाती। टेम्स के दोनों किनारों पर विस्तृत दलदली भूमि होने के कारण उसे लगातार जिलों के बीच सीमा मान लिया गया है। संयुक्त राष्ट्र अमरीका और मेक्सिको के बीच की सीमा रियो ग्रान्डे डेल नार्टे नदी बनाती है परन्तु वास्तविक सीमा तो वह रेगिस्तान है जिसमें से होकर यह बहती है। गुड होप अन्तरीप और दक्षिणी पश्चिमी अफ्रीका के बीच की सीमा आरेन्ज नदी बनाती है परन्तु यह सीमा सफल इसीलिए हो सकी है, क्योंकि यह नदी बड़ी गहरी संकरी घाटी में से होकर बहती है।

रोमन साम्राज्य के समय यूरोप की राइन और डैन्यूब नदियों को अन्तर्राष्ट्रीय सीमायें माना जाता था। राइन-डैन्यूब रेखा के उत्तर और पूर्व की तरफ तक रोमन लोगों ने अपना प्रभुत्व फैलाया था परन्तु ये नदियाँ सदैव एक सुरक्षा पंक्ति का काम करती रहीं और अर्द्धसभ्य जातियों को उत्तर तथा पूर्व की तरफ बढ़ने से रोकती रहीं।

नवीन राज्यों में बहुधा सीमाओं के लिए नदियों को ही चुना गया क्योंकि ये काफी स्पष्ट होती हैं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका के विविध राज्यों के बीच मिसीसीपी की सहायक नदियाँ ही सीमा बनाती हैं। दक्षिणी अमरीका की युरुगवे, पराना और परागुवे; दक्षिणी अफ्रीका की वाल, लिमपोपो और जमबेसी तथा आस्ट्रेलिया की मरे नदियाँ इस दृष्टिकोण से बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। संसार के पुराने देशों में नदियाँ सीमा रूप में नहीं पाई जातीं।

जंगल

जंगलों के बीच से होकर गुजरना कठिन होता है। इसीलिए आदिकाल में लोग जंगलों से बचकर चलते थे। जंगल एक प्रकार के अवरोध थे। यह इसी बात से स्पष्ट हो जाता है कि अफ्रीका के आदि निवासी घास के मैदानों से होकर जाया करते थे। आजकल के युग में कहीं पर भी वनों को सीमा नहीं माना जाता परन्तु फिर भी दक्षिणी

अमरीका की एण्डीज पर्वतीय रियासतों का विस्तार पूर्व की ओर अधिक नहीं है, क्योंकि अमेजन वनप्रदेश इसको सीमित करते हैं। इंग्लैण्ड में ससेक्स की उत्तरी सीमा वील्ड के वनप्रदेश द्वारा निर्धारित होती है।

दलदल प्रदेश

दलदल प्रदेश का पार करना बड़ा कठिन होता है क्योंकि उस पर पैर नहीं टिकता और न इस पर नावें ही चल सकती हैं। जाड़े के ठंडे मौसम में दलदल प्रदेश अवरोध नहीं रह जाते क्योंकि उस समय दलदल सूख जाता है। दलदली भूमि को सुखाकर खेती के लिए ठीक कर लिया जाता है इसलिए अब अधिक दलदली भूमि नही मिलती। दलदली भूमि द्वारा बनाई गई सीमा का सबसे अच्छा उदाहरण पोलैण्ड और रूस की सीमा पर स्थित प्रिपेट और रोकिटनो मार्श है। सन् १९१४ के युद्ध में कैले की तरफ बढ़ती हुई जर्मन सेनाओं को रोकने के लिए दलदली भूमि मे पानी भर दिया गया था। सन् १९४० मे मित्र राष्ट्रों की सेनाओं को डनक्रिक से निकालने के लिए इसी प्रकार पानी भर दिया गया था।

बनावटी सीमायें

पुराने जमाने में शत्रु से रक्षा के लिए दीवारे बनाई जाती थीं। चीन की बड़ी दीवार और राइन नदी की घाटी में बनी हेडरियन की दीवार इसी प्रकार की सीमायें हैं। इसके स्थान पर आजकल विद्युतमय तार का अवरोध खड़ा कर दिया जाता है। सन् १९१४–१८ के युद्ध में हालैण्ड की सीमा पर इसी प्रकार के तार खींच दिये गए थे। स्विट्जरलैण्ड और इटली की पहाड़ी सीमाओं पर इसी प्रकार की सीमा बनी है। इससे सैनिक सुरक्षा तो नहीं होती, परन्तु लोग बिना आज्ञा के आ-जा नहीं सकते।

सीमा प्रदेश का सबसे अच्छा उदाहरण स्पेनी प्रायद्वीप और जिब्राल्टर के बीच का मनुष्यहीन तटस्थ प्रदेश है। इस प्रकार का सीमा प्रदेश लोगों को अलग रहने में जरूर सहायक होता है, परन्तु इसके द्वारा बहुमूल्य भूमि का बहुत अधिक भाग बेकार हो जाता है।

उत्तरी अमरीका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के कुछ भागों के राजनीतिक मानचित्रों में सीमायें सीधी रेखाओं द्वारा बनाई जाती हैं। इनमें से अधिकतर तो अक्षांश व देशान्तर रेखायें है। ४९° उत्तरी अक्षांश कनाडा और संयुक्तराष्ट्र अमरीका के बीच सीमा बनाती है। कनाडा और अलास्का के बीच की सीमा १४१° पश्चिमी देशान्तर बनाती है। मिश्र और एंग्लो मिश्री सूडान के बीच २२° उत्तरी अक्षांश रेखा सीमा बनाती है।

इस प्रकार की रेखाओं को सीमा के लिए उन देशों में स्वीकार कर लिया गया जहाँ भूमि की पैमाइश से पूर्व ही तेजी से बस्ती बन गई है। इन देशों में सरकार ने अन्तर्राष्ट्रीय व अन्तर्राज्य सम्बन्धी सीमाओं को जल्दी में निर्धारित करने के लिए इन्हीं सीधी रेखाओं को अपना लिया है। इस प्रकार की सीमाओं में स्वाभाविक स्थलरूपों का बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया जाता और बाद में अनेक कठिन समस्यायें उठ खड़ी

होती हैं। दक्षिणी अमरीका में यह बात विशेष प्रकार से दिखलाई पड़ती है। चिली और पीरू के बीच तथा परागुवे और बोलीविया के बीच इस प्रकार के सीमा सम्बन्धी अनेक झगड़े होते रहते हैं।

भूमि की वास्तविक पैमाइश करके इस प्रकार की रेखाओं का भूमि पर अंकित करना बहुत कठिन होता है। हाँ, जहाँ बहुमूल्य पदार्थ पाये जाते हैं, वहाँ इस प्रकार की सीमाओं को बहुत सावधानी से बनाया जाता है। सुवर्ण खानों की वजह से यूकन और कनाडा के बीच की सीमा को बड़े ध्यान से बनाया गया है।

अध्याय छब्बीस

उष्ण कटिबंधीय कृषि

(TROPICAL AGRICULTURE)

उष्ण कटिबंधीय कृषि की कठिनाइयाँ

गर्म व तर देशों मे किसानों को शीतोष्ण कटिबंध की अपेक्षा अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इनमे से मुख्य कठिनाइयों को नीचे दिया जाता है :—

(१) वनस्पति का बहुत तेजी से बढ़ना। जहाँ तक फसलों का सम्बन्ध है, यह निश्चय ही एक बड़ी सुविधा है। परन्तु घास-फूस के दृष्टिकोण से यह बड़ी असुविधा है, क्योंकि घास-फूस इतनी तेजी से बढ़ती है कि तर दशाओं मे उनकी उत्पत्ति को रोकना किसानों के लिए बहुत कठिन हो जाता है। स्थानीय किसान अपने पुराने औजारों से इस काम को करने में असफल रहते हैं।

(२) उष्ण प्रदेशों में पौधों को हानि पहुँचाने वाले कीड़े व रोग शीतोष्ण कटिबंध की अपेक्षा कही अधिक होते हैं।

(३) ठंडे और शुष्क प्रदेशों की अपेक्षा गर्म व तर प्रदेशों मे फसलों को सम्भालना अधिक कठिन होता है क्योंकि प्रथम तो यह कि पौधे जल्दी खराब हो जाते है, और दूसरे कीड़ों व जानवरों से बचाने के लिए विशेष रूप से पक्के भंडार-गृहों का निर्माण करना पड़ता है।

(४) यद्यपि जलवायु की दशाये पौधे की बाढ़ के लिए अच्छी होती है, परन्तु मिट्टी बहुत अनुपजाऊ है। उष्णकटिबंध की अधिकांश मिट्टी लाल लैटराइट है, जिसमें से अधिकतर खनिज तत्त्व क्षीण हो चुके है।

(५) घोड़ों और पशु के लिए टी टी सी मक्खी के समान बहुत कीड़े-मकोड़े हानिकर होते है। इसीलिए अफ्रीका के बहुत से भागों में इन जानवरों को नहीं रक्खा जा सकता। दक्षिणी पूर्वी एशिया में भैस प्रधान है, क्योंकि यह गर्मी और नमी दोनों को सहन कर सकती है।

(६) उष्णकटिबंध के अधिकतर लोग असभ्य या कम सभ्य है। जावा के लोग इस नियम से पृथक् है। आलसी व सुस्त होने के कारण उनके अन्दर काम करने की इच्छा नहीं होती। इसके लिए वे विभिन्न रोगों से पीड़ित रहते हैं।

उष्ण कटिबंधीय कृषि के प्रकार

दुनिया की जनसंख्या के मानचित्र को देखने से पता चलता है कि अलग-अलग जगहों पर जनसंख्या का घनत्व अलग-अलग है। सर्वप्रथम तो ऐसे बहुत-से प्रदेश है,

जहाँ आबादी का पूर्णतया अभाव है। इसके अन्तर्गत मरुस्थल, तथा विस्तृत भूमध्य-रेखीय वन प्रदेश आते हैं, जिनमें बौने तथा असभ्य जातियाँ निवास करती है।

दूसरे, थोड़े से वे स्थान है जहाँ घनी आबादी पाई जाती है, जैसे जावा।

तीसरे, शेष भाग के अन्तर्गत वे भाग आते हैं, जहाँ की आबादी न तो घनी है और न बहुत कम ही। औसत घनत्व १०० व्यक्ति प्रति मील से कम पड़ता है।

जनसंख्या के घनत्व की ये तीन श्रेणियाँ तीन प्रकार की कृषि का प्रतिनिधित्व करती हैं। जहाँ आबादी बहुत कम है, वहाँ के जगली लोग शिकार कर अपना पेट पालते हैं। यदि थोड़ी बहुत खेती करते भी है, तो वह बहुत पुराने ढंग की होती है—कुछ केले के पेड़ और थोड़ा सा अनाज उगा लेते है। जहाँ आबादी का घनत्व साधारण है, वहाँ के आदि निवासी खेती का धंधा करते है और उसमें सफलता भी विभिन्न दशाओं मे है। कुछ लोग तो केवल खुरपे से ऊपरी मिट्टी को तोड़ डालते है। कुछ बड़े पुराने हलों का प्रयोग करते है और इस प्रकार ज्वार-बाजरा, मक्का, कपास आदि की अच्छी फसलें उगा लेते है।

वन प्रदेशों मे मूल-निवासी पेड़ों को जलाकर कुछ साफ भूमि प्राप्त कर लेते है और उसी में फसलें उगाते है। एक या दो साल के बाद भूमि का उपजाऊपन जब समाप्त हो जाता है, ये लोग उस भूमि के टुकड़े को छोड़कर दूसरा साफ कर लेते है। खेती के इस प्रकार को फैन्ग या मिल्पा ढंग की कृषि कहते है।

उष्ण कटिबंध में जहाँ कहीं भी घनी आबादी है, वहाँ चावल उगाया जाता है या उद्यानकृषि की जाती है।

कृषि उद्यानों की स्थिति

उष्णकटिबंधीय कृषि उद्यान निम्नलिखित प्रदेशों में स्थित ह :—

(१) द्वीपों पर, जैसे जावा, जमाइका, हवाई, मारीशस, क्यूबा, फिलीपाइन, लंका और फारमोसा में।

(२) तटवर्ती मैदानों में जैसे कैरीबियन सागर के तटीय मैदान में, पूर्वी ब्राजील, पूर्वी अफ्रीका, पूर्वी क्वींसलैण्ड और मलाया में।

केवल कुछ उद्यानों को छोड़कर अधिकतर कृषि उद्यान यूरोपीय लोगों के अधिकार में हैं। यही कारण है कि उद्यानों का वितरण सीमित ह, क्योंकि समुद्र से निकट होने के कारण यातायात की समस्या इतनी कठिन नहीं है।

उष्णकटिबंधीय कृषि-उद्यानों की दूसरी विशेषता यह है कि बहुत-से पहाड़ी ढालों या पठारों पर स्थित हैं। उदाहरण के लिए ब्राजील के कहवा के उद्यानों को लिया जा सकता है। कृषि-उद्यानों के विकास में सबसे बड़ी समस्या मजदूरों की है। इस दृष्टिकोण से वहाँ के आदि निवासी बिल्कुल बेकार हैं। उपयुक्त मजदूरों की खान तो दक्षिणी पूर्वी एशिया है। यही कारण है कि पूर्वी द्वीप समूह में उद्यान कृषि इतनी सफल हो सकी है। सस्ते मजदूरों के अभाव में अमेजन प्रदेश उद्यान कृषि से हीन है।

उष्णकटिबंधीय उपज का महत्त्व

विश्व व्यापार के दृष्टिकोण से कौन-सी उष्णकटिबंधीय उपज महत्त्वपूर्ण है? चाय, कहवा, कोको, चीनी और चावल ऐसी ही वस्तुएँ है, परन्तु इनमें से कोई भी वस्तु, गेहूँ या गोश्त (जो कि शीतोष्ण कटिबंध में उपजती है) का मुकाबला नहीं कर सकती।

इसके बाद उस कच्चे माल का नंबर आता है जो उष्ण कटिबंध में उत्पन्न होता है। इनमें सर्वप्रधान वास्तव में रबड़ है। इसके साथ ही कई प्रकार का पटुआ भी उत्पन्न किया जाता है। इस कच्चे माल के व्यापार का मूल्य ऊन, सन या लकड़ी की लुग्दी के समान नहीं है।

खाने-पीने की वस्तुओं और कच्चे माल, फल, मसाले तथा तिलहन का स्थान उष्णकटिबंधीय व्यापार में मुख्य है।

ब्रिटिश आयात की सूची को देखने से स्पष्ट होता है कि ऊन, मांस, गेहूँ और दुग्धशाला उपज सबसे महत्त्वपूर्ण है। ये सभी वस्तुएँ शीतोष्ण कटिबंध की उपज हैं। उष्ण कटिबंध से मँगाई जाने वाली प्रधान वस्तुएँ चीनी, तम्बाकू, रबड़ और चाय हैं। आयात सूची पर इन वस्तुओं का स्थान क्रमशः दसवाँ, ग्यारहवां, बारहवाँ और तेरहवां है। मांस या गेहूँ की अपेक्षा आधे मूल्य की चीनी आयात की जाती है। अन्य वस्तुओं का मूल्य एक-तिहाई है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उष्णकटिबंधीय व्यापार का मूल्य उतना अधिक नहीं है जितना कि समझा जाता है। सच तो यह है कि शीतोष्ण कटिबंध से दैनिक भोजन की सामग्री—रोटी और मक्खन—प्राप्त होता है और उष्णकटिबंध से जीवन को आराम पहुँचाने वाली वस्तुएँ प्राप्त होती है।

प्रश्नावली

१. पृथ्वी की आकृति सम्बन्धी प्रमाणों में कौन-सा तथ्य यह दिखलाता है कि—(अ) पृथ्वी का धरातल मुड़ा हुआ है, (ब) पृथ्वी गोलाकार है।

२. १०° उत्तरी अक्षांश पर दोपहर में सूर्य की किरणें सिर के ठीक ऊपर से आ रही हैं। सिडनी (आस्ट्रेलिया), न्यूयार्क और लन्दन के क्षितिज पर दोपहर के सूर्य की ऊँचाई बतलाइये।

३. २१ जून के दिन उत्तरी गोलार्द्ध में दोपहर के समय दक्षिण की तरफ देखने पर एक नाविक को सूर्य शिरोबिन्दु से ५° हटा हुआ दिखाई देता है। नाविक की अक्षांश रेखा बतलाइये।

४. क्या उत्तरी गोलार्द्ध में दोपहर का सूर्य सदैव दक्षिण की तरफ दिखलाई पड़ता है? कारणों सहित उत्तर दीजिये।

५. जब न्यूयार्क में मंगल के दिन रात के १० बजे हैं तो लन्दन, वियना और कलकत्ता में क्या समय होगा? कारण सहित समझाइये।

६. परतदार चट्टानें किस प्रकार बनती हैं? समझाकर लिखिये।

७. संसार के मैदान किस प्रकार बने हैं? उदाहरण देते हुए उत्तर दीजिये।

८. भमिति चित्र के अध्ययन से किसी प्रदेश की चट्टानों तथा प्राकृतिक बनावट को किस प्रकार समझा जा सकता है?

९. संसार के विविध पर्वतमालाओं का मनुष्य के लिए आर्थिक मूल्य क्या है? विस्तार से उत्तर दीजिये।

१०. "महासागरीय जलधाराओं का प्रधान कारण हवायें है।" हिन्द महासागर की प्रमुख धाराओं को ध्यान में रखते हुए इस विषय की विवेचना कीजिये।

११. उत्तरी आन्ध्र महासागर के तटीय प्रदेशों तथा द्वीपों पर विचार करते हुए बतलाइये कि किस प्रकार जलधारायें तटीय प्रदेशों की जलवायु को प्रभावित करती हैं?

१२. दीर्घ और लघु ज्वार के बीच अन्तर स्पष्ट कीजिये।

१३. ब्रिटिश द्वीपसमूह के तट पर स्थित अधिकतर प्रदेशों में दिन में दो बार ज्वार आता है। क्यों? कारणसहित उत्तर लिखिये।

१४. 'ज्वार की ऊँचाई (१) विभिन्न समुद्रों, (२) एक ही स्थान और (३) अलग-अलग दिनों में अलग-अलग होती है।' उदाहरण देते हुए कारण बतलाइये।

१५. ब्रिटिश द्वीपसमूह के बन्दरगाहों पर ज्वार-भाटे का क्या प्रभाव पड़ता है?

१६. किसी प्रदेश पर हिम आवरण के प्रवाह का क्या असर पड़ता है? संक्षेप में उत्तर दीजिये और समझाइये कि हिम नदी के प्रभावों से मनुष्य को क्या सुविधायें प्राप्त होती हैं।

१७. विभिन्न महाद्वीपों की प्रधान झीलों की एक सूची बनाइये और उनके बनने की विधि के अनुसार उनका वर्गीकरण कीजिये।

१८. फिआर्ड तटरेखा की विशेषतायें बतलाइये और उदाहरण दीजिये।

१९. एस्कीमो, बौने और खिरगीज़ लोगों के भोजन, निवास और पहिनावे की विशेषताओं का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि इन बातों पर उनकी परिस्थिति का क्या प्रभाव पड़ा है?

२०. निम्न गंगा घाटी मे आबादी बहुत घनी है परन्तु सिन्धु की निचली घाटी में जनसंख्या बहुत कम है। ऐसा क्यों है? कारण सहित पूर्ण उत्तर लिखिये

२१. निम्नलिखित तालिका में अ से म तक के स्थानों की ऊँचाई, फा० मे विभिन्न महीनों का तापक्रम तथा इंचों में मासिक वर्षा दी गई है। स्थानों के नीचे उनकी ऊँचाई, ऊपर की लाइन मे तापक्रम तथा नीचे की लाइन में वर्षा के आँकड़े दिये हुए हैं। ऊँचाई का ध्यान रखते हुए सब से गर्म महीना निकालिए। वार्षिक तापान्तर और मध्यममान वार्षिक तापमान भी निकालिये। वार्षिक वर्षा का योग तथा उसका मौसमी वितरण भी दीजिये। इन सबके आधार पर यह निश्चय कीजिये कि निम्नलिखित स्थान किस-किस प्राकृतिक विभाग में स्थित हैं:—

	ज.	फ.	मा.	अ.	म.	जू.	जूला.	अग.	सि.	अक्टू.	नव.	दिस.
अ	७१	७४	८३	९२	९५	९४	८९	८६	८९	८८	८०	७१
५२०′	०	०	०.१	०	०.३	०.९	३.५	२.८	१.१	०.४	०	०
ब	२३	२४	२४	२८	३३	४०	४२	४१	३८	३१	२९	५
४४००′	१९	१५	१७	१०	८	८	११	१४	१७	१५	१९	२१
म	२०	२३	३६	५०	६२	७१	७६	७४	६५	५४	३७	२७
१००′	०.६	०.८	१.४	३.०	४.४	५.२	४.४	३.४	३.०	२.५	१.०	०.९
द	६२	६३	५९	५५	५०	४७	४६	४८	५१	५४	५७	६०
१६०′	१.८	१.५	१.६	१.८	१.९	२.२	२.१	१.८	२.२	२.२	२.५	१.९

	ज.	फ.	मा.	अ.	म.	जू.	जूला.	अग.	सि.	अक्टू.	नव.	दिम.
इ	६५	६८	७२	७४	७९	८१	८२	८३	८१	७७	७२	६९
५′	३.३	२.५	२.८	३.२	५.९	७.९	७.२	७.३	९.९	९.२	२.२	२.२
फ	६२	६२	६१	५७	५३	४९	४७	४८	५१	५४	५७	६०
१४३′	३.६	३.२	३.१	४.१	४.६	५.०	५.९	५.०	४.२	३.९	३.६	३.३
ज	७५	७५	७८	८२	८५	८२	८०	७९	७९	८१	७९	७६
३७′	०	०	०	०.१	०.५	२१	२५	१५	११	२	०.५	०.१
ह	७८	७९	८०	८१	८२	८१	८१	८१	८०	८०	७९	७९
१०४	८.५	६.१	६.५	६.९	७.२	६.७	६.८	८.५	७.१	९.२	१०	१०
आइ	५१	५२	५५	५९	६४	७१	७६	७७	७३	६७	५९	५३
६०’	४.१	३.१	३.२	२.६	१.३	०.६	०.३	०.६	१.५	४.०	४.०	४.५
जे	५५	५९	६५	७०	७७	८५	९१	९०	८४	७२	६१	५६
१४१’	०.४	०.५	०.१	०	०	०.१	०.५	०.२	०.२	०.२	०.२	०.३
के	—१	५	१५	३३	४८	६०	६६	६०	४८	३३	१४	१
३४०’	०.७	०.६	०.७	०.८	१.३	२.७	३.५	३.२	१.५	१.४	१.३	०.९
ल	३९	३९	४०	४५	५०	५५	५७	५६	५३	४७	४४	४०
१७१’	८.७	६.९	७.०	४.०	३.५	३.५	४.६	६.९	८.२	८.९	७.५	११.३
म	७४	७४	७१	६७	६०	५६	५५	५६	५८	६१	६५	७१
१९७’	०.३	०.३	०.७	१.७	४.९	६.६	६.४	५.६	३.३	२.१	०.८	०.६

२२. उत्तरी आस्ट्रेलिया में वर्षा प्रधानतः गर्मी के मौसम में होती है और दक्षिणी आस्ट्रेलिया में वर्षा जाड़े के मौसम में होती है। ऐसा क्यों है ? कारण सहित उत्तर लिखिये।

२३. मैनीटोबा, अलबर्टा तथा जापान के खेतों के विस्तार तथा उपज की क्या विशेषताएँ हैं ? इनकी भिन्नता का कारण लिखिये।

२४. महाद्वीप के पश्चिमी किनारे पर ६०° उत्तरी अक्षांश से अयन रेखा की ओर चलने पर वर्षा कम होती जाती है, परन्तु पूर्वी तट पर ६०° उत्तरी अक्षांश से अयन रेखा की ओर बढ़ने पर वर्षा बढ़ती जाती है। ऐसा क्यों है ? समझा कर लिखिये।

२५. लैनोस, सेल्वाज, कैम्पोज, बंजर भूमि, पैम्पास तथा स्टेपी से आप क्या समझते हैं ? ये कहाँ पर है ? विस्तार से वर्णन कीजिये।

२६. पूर्वी साइबेरिया और सेंट लारेन्स घाटी की जलवायु की तुलना कीजिये और उनके भेद का कारण बतलाइये।

२७. ऐसे दो जलवायु विभागों के उदाहरण दीजिये जिनमें भूमध्यरेखा के दोनों तरफ के प्रदेश जलवायु में सम्पूर्णतया भिन्न हैं। इस अन्तर व भेद का विस्तृत वर्णन दीजिये और प्रत्येक को समझा कर लिखिये।

२८. रूस की भौगोलिक स्थिति पर विचार कीजिये और उसके द्वारा आर्कटिक तटरेखा के विकास के लिए किये गये प्रयत्नों का कारण बतलाइये।

२९. निम्नलिखित के कारण बतलाइए :—

(अ) शीतोष्ण कटिबंध के सभी वन प्रदेशों का प्रधान धंधा लकड़ी काटना है।

(ब) शीतोष्ण कटिबंध की अपेक्षा भूमध्यरेखीय प्रदेशों के वन में लकड़ी काटने का धंधा कम महत्त्वपूर्ण है।

३०. अफ्रीका में भूमध्यरेखा के उत्तर और दक्षिण में स्थित संवाना प्रदेशों की तुलना कीजिये।

३१. ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्तराष्ट्र अमरीका जिन वस्तुओं को अपने आधीन राज्यों से नहीं प्राप्त कर सकते, उनके उदाहरण दीजिये। किन प्रदेशों से ये वस्तुएँ प्राप्त की जाती है और इन देशों में आत्मनिर्भरता की क्या सम्भावनाएँ हैं ?

३२. (अ) एशियाई मानसून प्रदेशों से ग्रेट ब्रिटेन कौन-कौन सी वस्तुएँ आयात करता है ?

(ब) इन वस्तुओं की माँग पूर्ति और कहाँ से हो सकती है ?

३३. जब ध्रुवीय प्रदेशों से वायुमार्ग निकाले जा सकेंगे तो विभिन्न महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों के बीच दूरी को कम करने के दृष्टिकोण से संसार की वायुमार्ग व्यवस्था में क्या कुछ परिवर्त्तन होंगे, उनका विवरण दीजिये।

३४. निम्नलिखित विषयों पर निबंध लिखिये—

(१) श्वेत आस्ट्रेलिया, (२) महाद्वीपीय रेलमार्ग, (३) अन्तर्द्वीपीय वायु-मार्ग, (४) संरक्षित राज्य (Mandated Territories), (५) लंकाशायर का सूती वस्त्र उद्योग, (६) चुकन्दर की चीनी के उद्योग का विकास, (७) यूरोपीय राष्ट्रों के लिए उष्ण कटिबंधीय उपनिवेशों का मूल्य तथा महत्त्व, (८) कृत्रिम रेशम तथा नाइलन, (९) प्राकृतिक तथा कृत्रिम रबड़, (१०) रूस की आर्थिक शक्ति, (११) एशिया में स्वायत्त शासत का विकास, (१२) नये शिल्प-उद्योग।

३५. रेखाचित्रों की सहायता से स्तरभ्रंश (Faulting) द्वारा बने तीन स्थल-रूपों का विवरण दीजिये और प्रत्येक का उदाहरण दीजिये।

३६. किन्हीं विशेष क्षेत्रों को ध्यान में रखते हुए पर्वतीय भागों पर हिमप्रवाह के प्रभाव को निम्न भागों पर प्रभावों से तुलना कीजिये।

३७. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन की उत्पत्ति व प्रकृति का वर्णन दीजिये—उठे हुए समुद्री चबूतरे (Raised Beaches), बालू की स्पिट (Sand Spits), निमग्न घाटी (Rias), मूंगे की चट्टानें (Coral Reefs)।

३८. निम्नलिखित तीन प्राकृतिक भोगों से तीन भिन्न प्रकार के दृश्यों का भास होता है। प्रत्येक समूह में से एक स्थलरूप को चुन लीजिये और रेखाचित्रों की सहायता से (अ) रूप विशेष का वर्णन दीजिये तथा उसकी उत्पत्ति का कारण बतलाइये (ब) जहाँ कहीं इसके उदाहरण मिलते हों, वहाँ का नाम बतलाइये।

(अ) { लटकती हुई घाटी (Hanging Valley) अंतिम मोरेन (Terminal Moraine)

(ब) { गर्त (Swallow Hole) भूगर्भवती कन्दरा (Underground Cavern)

(स) { धनुषाकार झील (Oxbow Lake) उन्नत कगार (Levee)

३९. नवीन मोड़दार पर्वत श्रेणी, पठार तथा उच्छृंग प्रदेश (Scrapland) का (अ) एक खंडचित्र बनाइये ताकि प्राकृतिक बनावट स्पष्ट हो जाये। चित्र पर प्रयुक्त लम्ब व समाकार मानदण्ड को भी अंकित कीजिये।

(ब) ऐसे प्रदेश की स्थिति व नाम बतलाइये जहाँ इस प्रकार की प्राकृतिक बनावट पाई जाती है।

४०. निम्नलिखित में से किसी एक प्राकृतिक रूप के आकार, उत्पत्ति तथा प्रकार का वर्णन कीजिये और इसके उदाहरण वाले प्रदेश का नाम और स्थिति लिखिये—

बालुका स्तूप (Sand Dune), फियार्ड (Fiord), धनुषाकार झील (Oxbow Lake), समुद्री चट्टान (Sea Cliff)।

४१. नवीन नदी घाटी, प्रौढ नदी घाटी और डेल्टा विभाग में कौन-सी विशेष प्राकृतिक बनावट पाई जाती है? रेखाचित्रों तथा उदाहरणों के सहित अपना उत्तर लिखिये।

४२. निम्नलिखित स्थलरूपों में से किन्हीं दो को चुन लीजिये :—हिमप्रवाहित पर्वतीय घाटी, धनुषाकार मूँगे की चट्टान (Atoll), दरार घाटी (Rift Valley), नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी से बना मैदान (Alluvial Plain)। चुने हुए दो में से प्रत्येक के विषय में निम्नलिखित बातें बतलाइये :—

(अ) उदाहरण दीजिये और उस प्रदेश का नाम लिखिये जहाँ यह उदाहरण मिलता है।

(ब) इसकी विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

(स) वहाँ के लोगों के रहन-सहन पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है?

४३. (अ) नवीन नदी घाटी की विशेषताओं का समझा कर वर्णन कीजिये और

(ब) वायु द्वारा पृथ्वी के धरातल पर काट-छाँट के काम को विस्तार से लिखिये।

४४. रेखाचित्रों की सहायता से निम्नलिखित में से किन्हीं तीन की व्याख्या कीजिये :—

नदी द्वारा बना मैदान (Alluvial Plain), महाद्वीपीय सागर (Continental Shelf), डेल्टा (Delta), लटकती घाटी (Hanging Valley), अंतिम मोरेन (Terminal Moraine)।

४५. समुद्र की तरफ झुके हुए प्रदेश में जहाँ कठोर तथा मुलायम चट्टानें क्रमिक रूप से एक के ऊपर एक करके तट के समानान्तर बिछी हुई हैं, वहाँ किस प्रकार की नदी प्रणाली का विकास होगा ? रेखाचित्रों सहित उत्तर लिखिये।

४६. तटों पर होने वाले निर्माणकारी तथा क्षयकारी क्रिया-कलाप का वर्णन कीजिये। इनसे कौन-से स्थलरूप बन जाते हैं ?

४७. उत्पत्ति के अनुसार पर्वतों के प्रकार बतलाइये और प्रत्येक का उदाहरण दीजिये।

४८. मिट्टी के कटाव (Soil Erosion) से प्रभावित तीन भिन्न महाद्वीपों पर एक-एक प्रदेश का नाम लिखिये और बतलाइये कि भूमि के कटाव में मनुष्य ने किस प्रकार सहायता दी है। इसका खेती पर क्या असर पड़ा है और इसकी हानि से बचने के लिए खेती की प्रणाली में क्या कुछ परिवर्त्तन कर दिया गया है ?

४९. निम्नलिखित स्थलरूपों की उत्पत्ति समझाइये :—

एरीट (Arete), एस्कर (Esker), बोल्डर मिट्टी (Boulder Clay)।

५०. तर शीतोष्ण प्रदेशों में नदी के निर्माणकारी व क्षयकारी क्रियाकलाप किस प्रकार के स्थलदृश्य को जन्म देते हैं ? समझा कर लिखिये।

५१. समुद्र द्वारा आवरण-क्षय तथा निक्षेप क्रियाओं का वर्णन कीजिये।

५२. भूमि का कटाव क्यों और कैसे होता है ? इसको रोकने के लिए कौन-से उपाय किये जाते हैं ?

५३. मोड़दार पर्वतों, दरार घाटियों तथा बाढ़ के मैदानों की उत्पत्ति रेखा-चित्रों द्वारा समझाइये।

५४. निम्नलिखित की व्याख्या कीजिये और प्रत्येक की उपस्थिति का क्षेत्र तथा वहाँ के लोगों पर इसका प्रभाव समझाइये—बाढ़ का मैदान, पशुचारण द्वारा खानाबदोशी का जीवन, कटाफटा पठार, (Dissected Plateau), फियार्ड तट, काँटेदार वनस्पति, द्वीपीय (Insular) जलवायु।

५५. निम्नलिखित प्रदेशों में से किन्हीं दो का विस्तृत वर्णन दीजिये और बतलाइये कि उनकी विशेषताओं की भिन्नता के कारण वहाँ के लोगों का रहन-सहन किम प्रकार का हो गया है।

(अ) भूमध्यरेखीय तथा नुकीली पत्ती वाले वन, (ब) खुले मुहाने वाले तट और फियार्ड तट, (स) तटीय उच्च प्रदेश और आन्तरिक उच्च प्रदेश, (द) जाड़े की वर्षा वाले और गर्मी की वर्षा वाले प्रदेश।

५६. संसार के भिन्न-भिन्न भागों में किसानों को निम्नलिखित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है—(अ) भूमि का कटाव, (ब) वर्षा की कमी, (स) कीड़े-मकोड़े, (द) नदी की बाढ़। प्रत्येक कठिनाई के एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र को बतलाइये और वहाँ की समस्या का निरूपण कीजिये तथा उसके लिए किये गए उपायों को समझाइये

५७. वर्षा, कुहरा, हिम (तुषार), तथा ओलों के लिए वायुमण्डल की किन दशाओं का होना जरूरी है ? समझा कर लिखिये।

५८. महासागरों तथा समुद्रों के जल में खारेपन की भिन्नता क्यों पाई जाती है ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिये।

५९. ४०° उत्तरी और ६०° उत्तरी अक्षाशों के बीच पायी जाने वाली तीन भिन्न प्रकार की जलवायु का वर्णन कीजिये और प्रत्येक का कारण बतलाइये।

६०. संसार में उष्ण मरूस्थलों या गर्म रेगिस्तानों का वितरण बतलाइये। यह भी लिखिये कि इन प्रदेशों में वायु की सहायता से किस प्रकार के स्थलरूप उत्पन्न हो गए है।

६१. उत्तरी गोलार्द्ध के समुद्रों तथा महासागरों मे खारापन किस प्रकार से भिन्न है । समझा कर कारण सहित उत्तर दीजिये।

६२. स्टेपी तथा सवाना घास के मैदानों मे पाई जाने वाली प्राकृतिक वनस्पति का कारण सहित वर्णन कीजिये।

६३. उत्तरी और दक्षिणी आन्ध्र महासागर में महासागरीय जल की गतियो का वर्णन कीजिये और उनका कारण बतलाइये।

६४. शीतोष्ण कटिबंध के पतझड़ वनों और उष्णकटिबंधीय मानसून वन प्रदेशों की प्राकृतिक वनस्पति की तुलना कीजिये और उनके बीच के अन्तर को स्पष्ट कीजिये।

६५. उत्तरी पश्चिमी यूरोप के समीप का जल अपने अक्षांश के तापक्रम से अधिक गर्म है। इसका कारण बतलाइये।

६६. यूरोप से बाहर ऐसे चार प्रदेशों का नाम लिखिये जहाँ पर वर्षा केवल जाड़े के मौसम में होती है। इन प्रदेशों की और कौन-सी जलवायु सम्बन्धी विशेषतायें है और इसके अनुरूप यहाँ की वनस्पति कैसी होती है ? यहाँ पर खेती का धंधा किस प्रकार से किया जाता है।

६७. निम्नलिखित नाम चार प्रकार की प्राकृतिक वनस्पति के हैं—नुकीली पत्ती वाले वन, शीतोष्ण कटिबंध के घास के मैदान, टुन्ड्रा प्रदेश, सवाना प्रदेश। इनमें से प्रत्येक की उत्पत्ति का क्षेत्र, वहाँ की जलवायु के कारण उत्पन्न विशेषतायें तथा जीव-जन्तुओं का वर्णन कीजिये और प्रत्येक का कारण बतलाइये।

६८. निम्नलिखित कथनों की व्याख्या कीजिये और उदाहरण सहित वर्णन दीजिये :—

(अ) प्राकृतिक वनस्पति की विशेषताओं पर जलवायु का गहरा असर पड़ता है।

(ब) बहुत-से देशों में दिसम्बर की अपेक्षा जून में सूर्य प्रकाश की अवधि दूनी होती है।

(स) भूमि के दुरुपयोग से मिट्टी का कटाव शुरू हो जाता है।

(द) समीपवर्त्ती तटीय प्रदेशों की जलवायु पर जलधाराओं का असर पड़ता है।

६९. कुछ लोगों का कोई स्थायी घर नही होता। कुछ समय के बाद वे दूसरे

स्थान को चले जाते हैं। भिन्न वनस्पति प्रदेशों में इस प्रकार की जातियों के दो उदाहरण दीजिये और बतलाइये कि किस प्रकार वहाँ की प्राकृतिक परिस्थिति के कारण लोगों को खानाबदोश बनना पड़ता है।

७०. ब्रिटिश कामनवेल्थ और साम्राज्य में गेहूँ, मक्खन, चाय और चीनी उत्पन्न की जाती है और ग्रेट ब्रिटेन को निर्यात कर दी जाती है। इनमें से किन्हीं तीन वस्तुओं के उपज-क्षेत्रों तथा उपज दशाओं का वर्णन दीजिये।

७१. गेहूँ और मक्का के लिए किन उपज-दशाओं की आवश्यकता होती है, उनकी तुलना कीजिये और इनके विश्व-व्यापार का वर्णन कीजिये।

७२. रबड़ और पटसन (Jute) के लिए किन भौगोलिक दशाओं का होना जरूरी है? प्रत्येक दशा में एक प्रमुख उपज-क्षेत्र का नाम लिखिये और मनुष्य के लिए वस्तु विशेष की उपयोगिता बतलाइये।

७३. कहवा और कोको के उत्पादन के लिए कौन-सी प्राकृतिक तथा आर्थिक दशायें आवश्यक होती हैं? प्रत्येक दशा में रेखाचित्र द्वारा प्रमुख उपज-क्षेत्रों तथा उसके प्रधान बन्दरगाहों को दिखलाइये।

७४. निम्नलिखित में से किन्हीं दो का भौगोलिक विवरण दीजिये :—

(अ) आस्ट्रेलिया में गेहूँ की खेती, (ब) संयुक्तराष्ट्र अमरीका में कपास की खेती, (स) पश्चिमी द्वीपसमूह में चीनी उत्पादन, (द) दक्षिणी अफ्रीका संघ में फलों का उत्पादन, (इ) न्यूजीलैण्ड में दुग्धशाला उद्योग।

७५. निम्नलिखित में से किन्हीं दो वस्तुओं का विश्व उत्पादन बतलाइये : चाय, उद्यानों का रबड़, कहवा, मूँगफली। प्रत्येक की उपज के लिए आवश्यक दशाओं का भी निरूपण कीजिये।

७६. निम्नलिखित में से किन्हीं दो का संक्षिप्त भौगोलिक विवरण दीजिये :–

(अ) आस्ट्रेलिया के उष्ण कटिबंधीय प्रदेश का उपयोग।
(ब) दक्षिणी अफ्रीका संघ की खनिज सम्पत्ति।
(स) एशिया में उत्तल खेती (Terrace Cultivation)।

७७. विभिन्न राज्यों के बीच नदियों द्वारा बनाई गई सीमा के लाभ व दोष बतलाइये। किसी एक यूरोपीय देश का उदाहरण देते हुए पूर्ण उत्तर लिखिये।

७८. संसार के उन दो देशों का नाम लिखिये जहाँ पर्वत सीमायें बनाते हैं और ऐसे दो राष्ट्रों का भी उल्लेख कीजिये जहाँ पर्वतों द्वारा सम्पर्क उत्पन्न होता है। ऐसा कैसे और क्यों होता है? विस्तार से लिखिये।

७९. सड़कों, रेलों तथा नहरों द्वारा माल के यातायात के गुण-दोषों का तुलनात्मक विवेचन कीजिये। अपने उत्तर में समुचित उदाहरण दीजिये।

८०. संसार के ऐसे दो प्रदेशों का नाम लिखिये जहाँ रेल यातायात बहुत कम उन्नत है और इस अवनति के कारण बतलाइये। इन प्रदेशों में प्रयुक्त यातायात के अन्य

साधनों का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि ये साधन वहाँ की भौगोलिक दशाओं के अनुरूप किस प्रकार हैं।

८१. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन का महत्व स्पष्ट कीजिये :— ट्रांस साइ-बेरियन रेलमार्ग, कान्गो नदी, मलक्का जलडमरूमध्य, पनामा नहर।

८२. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन के महत्व का वर्णन कीजिये और बतलाइये कि इनके महत्व पर इनकी स्थिति का कसा प्रभाव पड़ा है? अबरडीन, कारलाइल, एडिनबर्ग, इनवरनेस, पर्थ, कानपुर।

८३. रेखा-चित्रों की सहायता से निम्नलिखित में से तीन नगरों के महत्त्व का भौगोलिक दशाओं के साथ सम्बन्ध स्पष्ट कीजिये :—

एण्टवर्प, बारसीलोना, बोर्डो, ड्यूइसवर्ग, जेनोआ, मारसेल्स, रोम, बम्बई, दिल्ली, अमृतसर।

८४. यूरोप के तीन बड़े समुद्री बन्दरगाहों को चुन लीजिये जो क्रमशः आन्ध्र महासागर, बाल्टिक सागर तथा भूमध्यसागर पर स्थित हों। प्रत्येक की स्थिति तथा व्यापार का वर्णन कीजिये और रेखा चित्रों द्वारा अपने उत्तर को स्पष्ट कीजिये।

८५. महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहों की उन्नति किन भौगोलिक दशाओं पर निर्भर रहती है? अफ्रीका और दक्षिणी अमरीका के एक बन्दरगाह को लीजिये और रेखाचित्रों की सहायता से बतलाइये कि भौगोलिक दशाओं ने इन पर क्या प्रभाव डाला है?

८६. निम्नलिखित में से किन्हीं तीन की स्थिति व महत्व पर अपने विचार प्रकट कीजिये—बोस्टन, लॉस एंजलीस, मानट्रियल, न्यूयार्क, वैनकुवर, कलकत्ता, मद्रास, कोलम्बो, सिंघापुर।